ॐ

संस्कृत नाटकों में आर्षपात्र : एक समीक्षात्मक अध्ययन

(A Critical Study of Arsapatras in Sanskrit Drama)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोधप्रबन्ध

● पर्यवेक्षक
डॉ० वीरेन्द्रकुमार सिंह
उपाचार्य, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

● ● अनुसन्धात्री
(श्रीमती) अनिता सिंह

संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं प्राच्य भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
●
१ ९ ९ ३

आलोक

आलोक

आनन्दस्वरूप ईश्वर का अंश होने के कारण मनुष्य का समस्त क्रिया-कलाप आनन्दानुभूति के लिए होता है। ललित कलाओं में काव्य का अप्रतिम स्थान है। भावों की आनुपातिक सघनता, प्रचुरता और प्रभाव के स्थायित्व के कारण यह निर्णय लिया गया है। जिस कला से सहृदय को अधिक से अधिक रसानुभूति हो, वही कला सर्वश्रेष्ठ है। काव्य से अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक रसानुभूति होती है - आनन्द मिलता है, इसलिये यह सर्वश्रेष्ठ कला है।

भारतीय नाट्यशास्त्र के चिन्तन की अत्यन्त प्राचीन परम्परा और इसका वैभव विश्व-विश्रुत है। भारतीय नाट्य के चिन्तन का प्रमाण वेद, उपनिषद्, अष्टाध्यायी, रामायण और महाभारत के अनेक सन्दर्भों में देखा जा सकता है। इन्द्रिय सन्निकर्ष के आधार पर काव्य के दो भेदों - श्रव्य एवं दृश्य - में नाटक श्रेष्ठ है। श्रव्य काव्य विशेषतः श्रवणीय या पठनीय होता है। इसे पढ़ने या सुनने से इतनी तीव्र रसानुभूति नहीं हो सकती, जितनी नाटक देखने से। काव्यकारों को शब्दों तथा भावों का विम्ब खड़ा करना पड़ता है। जब तक नेत्रों में किसी भाव विशेष का चित्र अंकित न हो जाय, तब तक आनन्दोपलब्धि नहीं हो सकती। नाटकों में जिस प्रकार का विम्ब अभिनेताओं द्वारा उपस्थित किया जा सकता है, वैसा यथार्थ विम्ब कवि नहीं उपस्थित कर सकता। दृश्य काव्य की सौन्दर्यानुभूति में चक्षुओं की ही प्रमुखता होती है इसलिए इनका प्रभाव भी हृदय पर साक्षात् रूप से पड़ता है जो स्थायी होता है।

संस्कृत साहित्यशास्त्रियों ने काव्य कोटि के तारतम्य का विवेचन करते हुए नाटक को काव्य की सर्वोत्तम विधा बताया है - "काव्येषु नाटकं रम्यम्।" इसका कारण यह है कि "न कोई ऐसा ज्ञान है, न शिल्प है, न विद्या है, न ऐसी कोई कला है, न कोई योग है और न कोई कर्म है जिसका उपयोग नाट्य

में न होता हो।" अतएव भरतमुनि ने कहा है -

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृष्यते।।

-नाट्यशास्त्र 1/116

रसानुभूति का अर्थ है अपने को भूलकर तन्मय हो जाना। आश्रय से तादात्म्य स्थापित कर लेना। यह तभी सम्भव है जब हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ एक स्थान पर केन्द्रित हो जायें। नाटक में कान, आँख, मन, बुद्धि सभी एकाग्र होकर रसानुभूति करते हैं। सद्यःपरिनिवृत्ति का झटिति अनुभव दृष्यकाव्य के माध्यम से ही हो सकता है। विभिन्न भूमिकाओं के आरोप {अभिनय} के कारण इसका नाम "रूपक" भी है - "तद्रूपारोपात्तुरूपकारा"।

नाटक में सभी कलाओं का समुचित समन्वय हो जाता है। चरित्र-चित्रण, कथावस्तु, संवाद, रस सभी तत्त्वों का समावेश नाटक में पात्रों के माध्यम से होता है। अभिनय में भाव स्वयं मूर्त रूप में सामने उपस्थित हो जाता है। नाटक में सैकड़ों व्यक्ति एक साथ समान रूप से रसानन्द ग्रहण कर सकते हैं।

नाटक एक लोकतान्त्रिक कला है। इसलिये भी इसका महत्त्व सभी कलाओं से बढ़कर है। अन्य कलाओं काआनन्द वही ले सकते हैं जिनको उस कला का समधिक शास्त्रीय ज्ञान हो। वेद प्रभुसम्मित है और पुराण सुहृत्सम्मित। इनमें प्रत्येक व्यक्ति की गति भी नहीं हो सकती है, अर्थात् नाटक के अतिरिक्त सभी कलायें व्यक्तिगत रूचि, साधना, और प्रतिभा की वस्तु हैं। नाटक सभी प्रकार के व्यक्तियों के लिये होता है। इसमें सभी प्रकार की घटनाओं का चित्रण होता है। प्रत्येक दर्शक अपनी भावना के अनुकूल फल प्राप्त कर सकता है। इसका आनन्द अशिक्षित व्यक्ति भी ले सकता है। इसी कारण भरत ने इसे "सार्ववर्णिक पञ्चम वेद" कहा है।

नाटक का उद्देश्य मनोरञ्जन से ही पूर्ण नहीं हो जाता है। लोकरञ्जन के साथ-साथ इसमें, लोकसंग्रह अथवा लोककल्याण की भी भावना निहित रहती है। ब्रह्मा की आज्ञानुसार मुनियों के द्वारा जो देवताओं की विजय पर प्रथम नाटक अभिनीत किया गया था उसमें दैत्यों के कृत्यों की निन्दा की गयी थी, जिस पर दैत्यों ने रोष प्रकट किया था। भरत के अनुसार इसमें "त्रैलोक्य के भावों का अनुकरण रहता है {त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्} अतः स्पष्ट है कि नाटक मुख्य रूप से दैवी शक्तियों की आसुरी शक्तियों पर विजय के प्रतीक हैं, चूंकि इसमें त्रैलोक्य के भावों का अनुकीर्तन रहता है, इसलिये उसके प्रभाव की व्यापकता स्वतः सिद्ध है।

संस्कृत नाटक अपनी उत्पत्तिकाल से ही धर्मिक भावना एवं पौराणिक चेतना से अनुप्राणित रहे हैं। बहुत से नाटकों में आर्ष पात्र इसी धर्मिक व पौराणिक मनोभूमि की देन हैं। संस्कृत नाटकों में आर्ष पात्र प्राचीन भारत में विकसित सांस्कृतिक मान्यताओं की ही कलात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। नाट्य साहित्य की सम्यक् अवगति, रसानुभूति एवं मूल्यांकन के लिए उनका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य, सृष्टि में स्वतः पूर्ण, स्वतन्त्र और अकेला नहीं है। मनुष्य विराट् शक्ति का एक अंग है। इस सृष्टि में देवता, ऋषि, मुनि, असुर, पशु-पक्षी आदि सभी का अस्तित्त्व है, इन सभी के साथ मनुष्य नाना सम्बन्ध-सूत्रों में बंधा है। हमारे नाट्य साहित्य इन सम्पूर्ण सृष्टि के साथ जीवन के सामञ्जस्य का दर्शन कराते हैं।

संस्कृत नाटक में आर्ष या दिव्य शक्तियाँ मनुष्य के प्रति प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से स्वभावतः उदार एवं सहयोगी के रूप में परिकल्पित हैं जिन पर हमारे धार्मिक व पौराणिक विश्वासों की छाप है। संस्कृत नाटकों में मानव पात्रों के प्रति आर्षपात्रों के अनुग्रह, शाप, उपकार, साहाय्य हस्तक्षेप आदि के नाना प्रसंग परिलक्षित होते हैं। भास, कालिदास, भवभूति, दिङ्नाग क्षेमीश्वर आदि की नाट्य कृतियों में आर्ष पात्रों की यह भूमिका द्रष्टव्य है। संस्कृत नाट्य साहित्य में आर्ष पात्रों का स्वरूप व प्रयोग भारतीय विचारधारा की उक्त सामान्य प्रवृत्तियों व दिशाओं से दूर तक प्रभावित हैं।

संस्कृत नाटकों के जन्म से ही विभिन्न हेतुओं व उद्देश्यों से ऋषि पात्रों का प्रयोग होता रहा है। नाटक के तीनों अंगो - विशेषतः नेता को चमत्कारपूर्ण व प्रभावशाली बनाने में आर्ष पात्रों की विशेष भूमिका रहती है। कुशल एवं समर्थ नाटककार के हाथों पड़कर ये आर्ष पात्र नाटकीय वस्तु के उत्थान, विकास, परिवर्तन एवं परिवर्धन में इनका उल्लेखनीय योगदान रहता है। नाटक को सुखान्त बनाने में भी इनका प्रमुख योगदान रहता है। अतः कथावस्तु में जटिलता, संघर्ष, अन्तर्द्वन्द शाप आदि की सृष्टि तथा उनके सुखान्त समाधान में इनकी भूमिका साभिप्राय होती है। वस्तुतः नाटकों के स्वरूप एवं शास्त्रीय मूल्यांकन के साथ-साथ उसमें प्रयुक्त आर्ष पात्रों के स्वरूप निर्वचन, लक्षण कार्य एवं भूमिका का अध्ययन अपेक्षित ही नहीं, अपरिहार्य कहा जा सकता है। संस्कृत नाटक के अनुसन्धानकर्ताओं की दृष्टि इसके विभिन्न पक्षों की ओर तो आकृष्ट हुई है, परन्तु उसमें प्रयुक्त आर्ष पात्रों के साङ्ग्गोपाङ्ग्ग विवरण तथा उसके नाटकीय वैशिष्ट्य की ओर इससे पूर्व कोई उल्लेखनीय प्रयत्न नहीं हुआ है।

इन्हीं बातों को दृष्टि में रखकर इनके मूल में जाकर इनके स्वरूप एवं विकास के उपादानों की साङ्ग्गोपाङ्ग्ग एवं सर्वग्राही मीमांसा की प्रवल इच्छा जागृत हुई। इस इच्छा की पूर्ति में जो लगभग तीन वर्ष सतत् प्रयत्न हुए उसका परिणाम प्रबुद्ध जनों के समक्ष प्रस्तुत है क्योंकि वे ही सारासार-विवेचन में समर्थ हैं। इसमें यावच्छक्य कोई ऐसी बात नहीं कही गयी है जो निर्मूल हो जो भी विवेचन या समीक्षा है उसका मूल प्राचीन समीक्षकों की चिरन्तन उक्तियों में कहीं न कहीं अवश्य विद्यमान है। एतन्मात्र ही निवेद्य है।

आरम्भ में ही मेरी अभिरुचि संस्कृत नाटकों की ओर विशिष्ट रूप से जागृत हुई। सौभाग्य से परम श्रद्धेय गुरुवर्य डॉ0 **वीरेन्द्र कुमार सिंह** जी ने "संस्कृत **नाटकों में आर्षपात्र : एक समीक्षात्मक अध्ययन**" इस मेरे मनोवांछित विषय की उद्भावना कर सुरुचिपूर्वक शोध कार्य में प्रवृत्त होने के लिये प्रेरित किया। नाना प्रकार की कठिनाईयों एवं अवरोधों ने इस कार्य के मार्ग को निरन्तर वाधित करने का प्रयत्न किया है।

सर्वप्रथम मैं सर्ववन्द्य वाग्देवी सरस्वती के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने की शक्ति प्रदान की। इस कार्यकाल में सबसे अधिक सतत् प्रेरणा, प्रोत्साहन, स्नेहमय, मंगलकामना एवं वैदुष्यपूर्ण दिग्दर्शन व परामर्श मुझे प्रस्तुत शोध कार्य के निर्देशक परम श्रद्धेय गुरुवर्य **डॉ० वीरेन्द्र कुमार सिंह**, (उपाचार्य, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) से मिला है। उन्हीं की कृपा दृष्टि, निरापद संरक्षण एवं सुयोग्य निर्देशन अनवरत परिश्रम करती हुई मैं इस कार्य को पूर्ण करने में सफल हुई हूँ। गुरु जी के अप्रतिम वात्सल्य, स्नेहिल प्रोत्साहन एवं असीम आशीर्वाद का फल है कि प्रस्तुत प्रबन्ध इस रूप को पा सका। उन्हीं की छाया में बैठकर नाट्य के जटिल तत्त्वों को कुछ समझ सकी। इसमें जो कुछ भी उत्तम है अभिनन्दनीय पूज्य गुरु जी का ही पुण्य प्रसाद है। गुरु ऋण से शिष्य वैसे ही कभी उऋण नहीं हो सकता, उस पर भी उनका अनुग्रह रूप एक अतिरिक्त ऋण भी मुझ पर है जिसे वाणी का कोई शब्द उसे पूरा नहीं कर सकता है। अतः मैं श्रद्धयवनत हूँ और हृदय से आभारी तथा कृतज्ञ हूँ। उनका आशीर्वाद मेरा सम्बल है।

आदरणीय गुरु प्रो० सुरेश चन्द्र पाण्डेय (प्रो० एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय), डॉ० हरिशंकर त्रिपाठी (उपाचार्य, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) का कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने समय-समय पर अमूल्य सुझाव एवं सत्प्रेरणाएं देकर मुझे अनुग्रहीत किया है। मैं अपने अन्य गुरुजनों के प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिनके चरणों में बैठकर मैंने संस्कृत के दो अक्षर सीखे तथानिके आशीर्वादों तथा शुभकामनाओं ने मुझे निरन्तर प्रोत्साहित्व व प्रेरित किया।

परमपूज्य पितृव्य महाभाग एवं माता-पिता ने मेरी उत्कट इच्छा को देखते हुए अध्ययन के लिए जो अवसर एवं आशीर्वाद प्रदान किया उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता है। परमादरणीय श्वसुर (श्री अभय कुमार सिंह) एवं पिता जी (श्री मुल्क बहादुर सिंह) को मैं विशेष आभारी हूँ जिनका प्रेरणा

और आशीर्वाद मेरी शोध यात्रा का अनुपम पाथेय रहा है, जिनके अटूट धैर्य एवं असीम सहिष्णुता के अभाव में शायद मेरी शोध कार्य की कल्पना केवल एक स्वप्न बनकर ही रह जाती, उसे साकार रूप न मिल पाता।

अपने जीवन साथी (श्री राजेन्द्र विक्रम सिंह) एवं सास को मात्र धन्यवाद देकर मैं कदापि उऋण नहीं हो सकती क्योंकि उनकी असीम सहिष्णुता के अभाव में इस कार्य को शायद ही पूर्ण कर पाती।

संस्कृत भाष तथा साहित्य के लिये उन सभी महामनीषियों एवं उदार सहृदयों के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा एवं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनके परिश्रम का फल मेरे प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में प्रत्यक्षाप्रत्यक्षा रूप से सहायक रहा है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की पूर्णता में इलाहाबाद विश्वविद्यालयीय पुस्तकालय तथा गंगानाझ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के अधिकारियों एवं कर्मचारियों से प्राप्त अपेक्षित सहयोग के प्रति मै हार्दिक आभार व्यक्त करना उचित समझती हूँ।

डॉ0 रफी उल्ला अंसारी तथा सन्तोष सिंह ने शोध प्रबन्ध को सुचारु रूप से टंकित कर मेरे कार्य में हाथ बंटाया है इसके लिवे वे धन्यवाद के पात्र हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध की योजना के मस्तिष्क में आने से लेकर इसके प्रस्तुत रूप तक अनेकानेक व्यक्तियों ने इस कार्य में मुझे नाना रूपों से सहयोग प्रदान किया है जिनके प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना पुनीत कर्तव्य समझती हूँ।

अवग्रह (S) का स्थान टंकक ने छोड़ा है जिसे हाथ से बनाया गया है। टाइपराइटर के अनुपलब्ध अक्षर यदि कहीं हाथ से बनानें में छूट गये हों तो उसे अन्यथा न माना जाय।

अन्त मे मैं अपने समस्त गुरूजनों, स्वजनों, स्निग्ध सहयोगियों एवं सुहृदों के प्रति अभिनन्दन एवं कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ जिनके शुभाशीः का सम्बल इस अवधि में मुझे प्राप्त होता रहा है। यह शोध प्रबन्ध अपने गुणवगुणों के साथ सहृदय विज्ञ समीक्षकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है, क्योंकि वे ही सारासार-विवेचन में समर्थ हैं। त्रुटियों के लिये विनम्र भाव से क्षमाप्रार्थिनी हूँ।

विनयावनता

श्रीमती अनिता सिंह

इलाहाबाद

21·12·1993

(श्रीमती अनिता सिंह)

विषयानुक्रमणिका

xxx———xxx

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

- संस्कृत नाटक
- उद्भव व विकास
- प्राचीनता
- परम्परा
- विशिष्टता एवं महत्त्व
- प्रमुख नाटकों का संक्षिप्त परिचय
- नाटकों की सूची

संस्कृत नाटक

उद्‌भव व विकासः

आनन्दोपलब्धि मानव की महती आकांक्षा है। आनन्दस्वरूप परमात्मा का अंश होने के कारण मानव का समस्त क्रिया-कलाप आनन्दानुभूति के निमित्त होता है। भौतिक एवं सांसारिक विषमताओं से आक्रान्त मानव प्रतिपल ऐसे क्षणों की खोज में रहता है जिससे समधिक आनन्दोपलब्धि हो सके। इसके लिए विभिन्न साधनों को अपनाता है।

आध्यात्मिक ज्ञान की गूढ़ता के साथ काव्यानन्द का समन्वय सुरभारती संस्कृत साहित्य की अपनी विशेषता है। ज्ञान की गरिमा, भक्ति की भव्यता काव्य की कमनीयता, विविधता, विशिष्टता, सार्वभौमिकता आदि सभी दृष्टि से संस्कृत साहित्य विश्व-विश्रुत है। संस्कृत साहित्य में नाटकों की विशिष्ट परम्परा रही है। साहित्य के विभिन्न विधाओं में लोकप्रियता की दृष्टि से "नाटकों" का प्रथम स्थान है। श्रव्य काव्य विशेषकर सुधीजनों के हृदय को आनन्दित करता है क्योंकि किसी बात को केवल सुनकर उसके मर्म को समझना तथा उसके साथ साधरणीकरण स्थापित करना शिक्षितों किंवा कतिपय लोगों के ही वश का है, सबके वस का नहीं। परन्तु दृश्य काव्य अर्थात् नाटक सबको रसविभोर करने में सर्वथा समर्थ है - नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।[1] क्योंकि इसमें जीवन की अनुकृति को शब्दगत संकेतों में संकुचित करके उसे सजीव पात्रों द्वारा एक सञ्चरणशील सप्राण रूप में अंकित किया जाता है, यह जीवन की सांकेतिक अनुकृति मात्र नहीं प्रत्युत जीवन्त प्रतिलिपि है। श्रव्य काव्य में शब्दों के माध्यम से ही भावनात्मक चित्रों को मानसपटल पर अंकित किया जाता है इसे आत्मसात् करने के लिए सहृदय जनों में कल्पना आदि की अपेक्षा होती है। नाटक अभिनेय होने के कारण श्रव्य की अपेक्षा अधिक प्रभावोत्पादक, हृदयग्राही, भावाविभव्यञ्जक सबसे बढ़कर सार्ववर्णिक

1· मालविकाग्निमित्रम् 1/4

और शिक्षित-अशिक्षित सभी को समान उपयोगी है। अन्य शब्दों में समस्त काव्य विधाओं में नाटक रम्य होता है - "काव्येषु नाटकं रम्यम्।" इसका कारण यह है कि ऐसा कोई भी ज्ञान, शिल्प, विधा, कला, योग और कर्म अवशिष्ट नहीं है जो नाटक द्वारा सुरुचिपूर्ण एवं आकर्षक प्रकार से प्रदर्शित व प्रचारित न हो सके -

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृष्यते।।"[2]

विनोदार्थ दूसरे के भावों एवं क्रियाकलापों का अनुकरण करने की प्रवृत्ति मनुष्य में स्वाभाविक रूप से पायी जाती है। माता-पिता को अपने नन्हें शिशु के लिए हाथी और घोड़े बनने में भी एक विशिष्ट आनन्द की अनुभूति होती है और तब शिशु भी अपने उल्लास के क्षणों में अपने माता-पिता के कार्यों और चेष्टाओं को अनुकृति करके हर्षित और आनन्दित तो होता ही है साथ ही अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा भी ग्रहण करता है। "लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति।" छोटे बड़ों को इसी अनुकृति से हर्षित एवं उल्लसित होने की भावना में शायद नाटक के बीज भी छिपे हुए हैं। कहा भी गया है - "अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्।" लोकरञ्जन की अद्भुत शक्ति से ओतप्रोत यह नाटक विश्ववाङ्मय के गर्भ से कब और कैसे आविर्भूत हुआ, आज भी शोध का विषय बना हुआ है। इस पर अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भी अपने विचार उपन्यस्त किए हैं जिसका विवेचन आगे किया जायेगा। प्राचीन भारतीय नाट्यशालाओं के अवशेष या खण्डहरों आदि के रूप में किसी मूर्त प्रमाण के अभाव में केवल अनुमान एवं आप्त प्रमाणों पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। अतः नाटक की उत्पत्ति कब और कैसे हुई ? इसका विवरण सर्वप्रथम भरत के "नाट्यशास्त्र" में बड़े ही युक्तिसंगत एवं विस्तृत ढंग से प्राप्त होता है। भरत के नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में ही नाट्योत्पत्ति की कथा इस प्रकार दी हुई है -

---

2. भरतः नाट्यशास्त्र 1/116

एक दिन नाट्य का मर्म जानने वाले भरत जी व्रतधारियों और अपने पुत्रों से घिरे हुए छुट्टी मना रहे थे। उसी दिन आत्रेय आदि तपस्वी और बुद्धिमान मुनि लोग उनके पास आये और पूछने लगे - हे ब्रह्मन्। आपने जो वेद के समान यह नाट्यवेद का प्रणयन किया है वह क्यों और किसके लिए रचा गया था ? इसके कितने अंग है, क्या प्रमाण है और उसका प्रयोग किस प्रकार किया जाता है ? हे भगवन् आप इसे ठीक-ठीक बताने की कृपा करें।" उन मुनियों की बातें सुनकर भरतमुनि ने नाट्यवेद के उत्पन्न होने की कथा इस प्रकार बताई- "ब्रह्मा जी ने जिस नाट्यवेद को बताया है, उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई वह आप महात्मा लोग ध्यानपूर्वक सुनें। स्वायम्भुव मन्वन्तर और इस वैवस्वत मन्वन्तर में भी सतयुग की समाप्ति और त्रेता युग प्रारम्भ होने के समय संसार में ऐसी अव्यवस्था फैल गयी कि सभी लोग बुरे काम करने लगे और काम, लोभ, ईर्ष्या, क्रोध आदि में फसे हुए वे किसी प्रकार सुख दुःख में जीवन यापन करने लगे। इसी बीच लोकपालों[3] से भली प्रकार पाले जाने वाले इस जम्बुद्वीप पर देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष और महानागों ने धावा बोल दिया और वे यहाँ आकर जम गये। उन्हीं दिनों इन्द्र आदि देवताओं ने ब्रह्माजी से आकर कहा कि हम लोग ऐसा खेल चाहते हैं जो सुना भी जा सके और देखा भी जा सके[4]। अतः आप कोई ऐसा पाँचवा वेद बनाइये जो सार्ववर्णिक हो क्योंकि जितने वैदिक उत्सव है उनका आनन्द शूद्र नहीं ले पाते[5]। इसके उत्तर में "एवमस्तु" कहकर उन देवताओं तथा देवराज को विदा करके तत्वज्ञानी ब्रह्मा ने समाधि लगाकर चारों वेदों का स्मरण किया और संकल्प लिया कि "मै इतिहास से युक्त ऐसा नाट्य नाम का वेद बनाता हूँ, जिससे धर्म, अर्थ, और यश की प्राप्ति होगी, जिसमें सुन्दर उपदेश भरे होंगे, जिसके द्वारा आगे होने वाले संसार के सब कार्यों का अनुकरण दिखाया जा सकेगा, जिसमें सभी शास्त्रों के तत्व भरे होंगे और जिसमें संसार के समस्त शिल्पों का प्रदर्शन

---

3. समाप्त जप्यं व्रतिनं स्वसुतैः परिवारितम्।।
4. कीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद्भवेत्।। नाटयशास्त्र
5. न वेदव्याहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु।
तस्मात्सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम् ।। नाट्यशास्त्र 1/92

हो सकेगा"6। यह संकल्प करके ब्रह्मा ने चारो वेदों से जिसके अंग की उद्भावना हुई है, इस नाट्यवेद की रचना की। इसकी रचना में ऋग्वेद से नाटक का पाठ्य अथवा संवाद भाग, सामवेद से गीत भाग यजुर्वेद से अभिनय भाग तथा अथर्ववेद से रस भाग ग्रहण किया गया7। इस प्रकार सर्वज्ञ ब्रह्मा ने वेदों उपवेदों से नाट्यवेद की रचना की8। और इन्द्र को आदेश दिया कि वे इसे विदग्ध, प्रगल्भ तथा श्रमजयी देवताओं को समझा दें। इन्द्र ने देवताओं के सम्बन्ध में असमर्थता व्यक्त करते हुए वेदज्ञ मुनियों की समर्थता का सुझाव दिया तब ब्रह्माजी के आदेश से भरतमुनि ने स्वयं उसे सीखकर शाण्डिल्य, वात्स्य आदि अपने सौ पुत्रों को उसकी शिक्षा दी। भरत ने भारती, सात्वती तथा आरभटी नामक तीन वृत्तियों का आश्रय ग्रहण कर नाट्याभिनय किया। बाद में कैशिकी वृत्ति भी जोड़ी गयी। जिसका प्रदर्शन स्त्री पात्र के बिना नहीं हो सकता था। अतः उन्होंने मंजुकेशी, सुकेशी आदि अप्साराओं की कल्पना की। भरतमुनि इन सब वस्तुओं से सुसज्जित होकर ब्रह्मा जी के पास गये और आने का प्रयोग पूछा। पितामह ने कहा इसके प्रयोग के लिए अति सुन्दर अवसर भी है महेन्द्र विजय के उपलक्ष्य में ध्वजपूजन का उत्सव होने वाला है। इसमें तुम इस नाट्यवेद का प्रयोग करो। तत्पश्चात ब्रह्मा के आदेशानुसार भरत ने इन्द्र के ध्वजमहोत्सव पर सुरविजय नाटक के अभिनय द्वारा नाट्यवेद का सर्वप्रथम प्रदर्शन किया। देवतागण अपनी विजय देखकर प्रसन्न हुए और उन्होंने भरत को विभिन्न उपहार-नाट्य सम्बन्धी दिये तथा अपनी पराजय का दृश्य देखकर दैत्यगण रुष्ट होकर उसमें विघ्न उपस्थित करने लगे। इन्द्र ने अपने ध्वज से उन विघ्नों को जर्जर कर दिया। तभी से उस ध्वज का नाम ही

6· धर्म्यमर्थ्यं यशस्यं न सोपदेशं ससंग्रहम्
भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम्।।
सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं सर्वशिल्पप्रदर्शकम्।
नाट्यसंज्ञमिमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्।। नाट्यशास्त्र

7· एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम्
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसायनाथर्वणादपि।। नाट्यशास्त्र 1/16/17

8· वेदोपवेदैः सम्बद्धो नाट्यवेदो महात्मना।
एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा ललितात्मकम।।नाट्यशास्त्र

"जर्जर" हो गया। फिर भी यदा-कदा दैत्यगण विध्न उपस्थित करते ही थे। भरत की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने विश्वकर्मा से अतिशीघ्र सर्वगुणसम्पन्न, विशाल और सुन्दर नाट्यगृह की रचना करायी। तब ब्रह्मा जी ने नाट्यशाला तथा अभिनेताओं की रक्षा के लिए विभिन्न स्थानों पर देवताओं की स्थापना की। तभी देवताओं ने ब्रह्मा जी से निवेदन किया आप पहले केवल शान्तिपूर्ण वचनों के द्वारा ही इन विध्नों को रोकने का प्रयत्न करें, फिर भी वे न माने तो शम, भेद और दण्ड की नीति में लाई जाय। उस समय दैत्यों को समझाते हुए ब्रह्मा जी ने नाटक की और नाटक के उद्देश्य की विस्तृत व्याख्या की। उन्होंने कहा कि यह नाट्यवेद देव और दैत्य दोनो के लिए है तथा ऐसा कोई भी ज्ञान शिल्प, कला, विद्या, योग और कर्म अवशिष्ट नहीं है जो इसमें न हो।[9] भरतमुनि के द्वारा यह कला मर्त्यलोक में पहुचाई गई और "इन्द्रध्वज" के अवसर पर "त्रिपुरदाह" और "समुद्रमन्थन" जैसे नाटक खेले गये।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि संगीत, संवाद और अभिनय के संयोग से मनोरञ्जनार्थ इतिहास और उपदेश से परिपूर्ण, सार्ववर्णिक, विशेष पर्वो और उत्सवों पर अभिनयार्थ नाट्य की उत्पत्ति हुई। तथा उक्त विवेचन से यह भी प्रतीत होता है कि नाट्य का जन्म संसार के दुःख और चिन्ताओं को विस्मरण करने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया गया है। भारत वर्ष में आदि नाट्य के प्रयोग से ही स्वाभाविकता रही है, पुरूषों का अभिनव पुरूष पात्र और स्त्रियों की भूमिका स्त्री पात्र ही ग्रहण करती थी। स्त्रियों की भूमिका में पुरूष जन्म का नितान्त अनुचित माना जाता था। नाट्य की उत्पत्ति दैत्यों के पराभव और देवताओं के उत्कर्ष से ही सम्बन्धित है। "नाट्यशास्त्र" के इन उल्लेखों से प्रतीत होता है कि भरतमुनि के समय में नट, नटी, नृत्य, वाद्य, संगीत, संवाद, कथावस्तु अभिनव, रस तथा रंगमञ्च आदि का विकास हो चुका था। नाटक के द्वार स्त्री, शूद्र, देवता-दानव आदि सबके लिए समान रूप से खुला था। इसके आदि रचयिता ब्रह्मा है। यहां एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि कौन ब्रह्मा? किसी ठोस प्रमाण के

---

9. द्रष्टव्य, भरतः नाट्यशास्त्र, 1/107-113

अभाव में अनुमान और आप्त वचनों के आधार पर कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम जिस आचार्य ने वेदों से तत्त्व ग्रहण कर इस नाट्यवेद का निर्माण किया, उसी आदि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के अनुकरण पर "ब्रह्मा" नाम परम्परा से चल पड़ा होगा।

नाट्योत्पत्ति के विषय में भरत के पश्चात् "अभिनयदर्पणकार" नन्दिकेश्वर ने लिखा है कि ब्रह्मा ने नाट्य की रचना के बाद सर्वप्रथम उसे भरत को दिया।[10] और भरत ने शिव के समक्ष इसका प्रदर्शन किया। शिव ने अपने गणों द्वारा इस कला को भरत को सिखाया। सन्तों ने इसे मर्त्यों को बताया। इसके अतिरिक्त पार्वती ने वाण की कन्या उषा को लास्य की शिक्षा प्रदान की। उषा ने द्वारका की गोपियों को, गोपियों ने सौराष्ट्र की स्त्रियों को, उन स्त्रियों ने अन्य देश की स्त्रियों को इसकी शिक्षा दी। इस प्रकार यह कला परम्परा के द्वारा संसार में आयी।

दशरूपककार धनञ्जय ने इसी कथा का समर्थन करते हुए लिखा है - ब्रह्मा जी ने समस्त वेदों से तत्त्व ग्रहणकर जिस नाट्यवेद की रचना की थी मुनि भरत ने भी जिसके प्रयोग (अभिनव) के नियम बनाये थे, भगवान शंकर ने जिसमे ताण्डव (उद्धत) नृत्य किया था और पार्वती ने लास्य अर्थात सुकुमार नृत्य किया था उसका परिपूर्ण लक्षण कौन बना सकता है किन्तु फिर भी प्रकृष्ट गुणों वाली रचना के द्वारा मैं उस नाट्यवेद के लक्षणों को संक्षेप में लिख रहा हूँ।[11]

10· ऋग्यजुः सामवेदेभ्यो वेदाच्चाथर्वणः क्रमात्।।7।।
पाठ्यं चाभिनयगीतं रसान् संगृह्य पद्मजः।
व्यरीरच्छास्त्रमिदं धर्मकामार्थ मोक्षदम्।।8।।
नाट्यवेदं ददौ पूर्व भरताय चतुर्मुखः।। अभिनयदर्पण

11· उद्धृत्योद्धृत्य सारं दमखिलनिगमान्नाट्यवेदं विरञ्चि-
श्चक्रे यस्य प्रयोगं मुनिरपि भरतस्ताण्डवं नीलकण्ठः।
शर्वाणी लास्यमास्य प्रतिपदमपरं लक्ष्म कः कर्तुमीष्टे
नाट्यानां किन्तु किञ्चित्प्रगुणरचनया लक्ष्णं संक्षिपामि।। दशरूपक 1/4

लगभग ग्यारहवीं शताब्दी में "भावप्रकाशनम्" के रचयिता शारदातनय ने अपने गुरु नाट्यशाल्यधिपति दिवाकर जी से जितने प्रकार के नाट्याशास्त्र सीखे थे उनका कृतज्ञतापूर्ण उल्लेख करते हुये वे ग्रन्थारम्भ में ही कह दिये हैं ।[12] एक अन्य कथा के अनुसार बताया गया है कि स्वायम्भुव मनु ने राज्य की चिन्ताओं से चिन्तित होकर अपने पिता सूर्य के पास गये और अपने मन को शान्ति प्रदान करने का उपाय पूछा सूर्यदेव ने कहा, सृष्टि कर चुकने पर ब्रह्माजी भी यही प्रार्थना लेकर महाविष्णु के पास गये थे । उन्होंने उन्हें शिव के पास जाने का परामर्श दिया । शिव ने अपने गण नन्दिकेश्वर से ब्रह्मा को नाट्यवेद की शिक्षा देने को कहा । ब्रह्मा सब सीख कर अपने निवास स्थान पर आये और कुछ समय तक विचार किया । तत्पश्चात् उनके निकट पांच शिष्यों के साथ एक मुनि आ गये।. उस समय सरस्वती वहाँ विराजमान थी । ब्रह्मा ने उन सबको नाट्यवेद सिखाया उन्होने उसका अभिनय कर ब्रह्मा को प्रसन्न कर दिया । नाट्यवेद के प्रति उनकी रुचि और भक्ति देखकर ब्रह्माजी ने उन्हें वरदान दिया कि आज से आप लोग तीनों लोकों में "भरत कहलायेंगे और यह नाट्यवेद भी तुम्हारे नाम पर "भरत" कहलायेगा । यह कथा कहकर सूर्यदेव ने मनु से ब्रह्मा की प्रार्थना करने की सम्मति दी । मनु ने ब्रह्मा के पास जाकर उनकी प्रार्थना की ब्रह्मा ने मन की कठिनाइयों को समझकर भरतों को उनके साथ भारतवर्ष जाने की आज्ञा दी। तदनुसार भरत मनु के साथ अयोध्या आये । वहां आकर उनहोंने वे सभी नाटक खेले जो देवताओं की रंगशाला में खेले जाते थे । उनहीं भरतों के शिष्यों ने भारत के विभिन्न प्रदेशों में शनैः शनैः नाट्यवेद का प्रचार और प्रसार किया ।[13]

12· प्रतिस्सोऽपि सदाशिवस्य शिवयोगोर्या गतं वासुके-
वाग्देव्या अपि नारदस्य च मुनेः कुम्भोद्भव व्यासयोः।
शिष्याणां भरतस्य यानि च मतान्यध्याप्य तान्यञ्जना-
सूनोरप्यथ नाट्यवेदमखिलं सम्यक्तमध्यापयत।। भाव्रकाशनम्।
उद्धृत सीताराम चतुर्वेदीः अभिनवनाट्यशास्त्र, पृ0 26

13· पुरा मनुर्महीपालः सप्तद्वीपवतीं भुवं
यदिदं भारते वर्षे मनुना सुप्रकाशितम्।।भावप्रकाशनम।
अभिनवनाट्यशास्त्र, पृ026-28 पर उद्धृत।

उपर्युक्त मतों से नाटक की दैवी उत्पत्ति सिद्ध होती है।

ऋग्वेद में ऐसे अनेक सूक्त पाये जाते हैं जो संवाद हैं। नाटक की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मैक्डोनल आदि विद्वानों का मत है कि ऋग्वेदोक्त संवाद-सूक्तों में इसके बीज यथेष्ट रूप में निहित हैं इनमें से कुछ निर्विवाद सूक्त जैसे - यम-यमी-संवाद सूक्त[14], पुरूरवा-उर्वशी-संवाद-सूक्त[15], सरमा-पणि-संवाद[16], इन्द्र-मरुत्-संवाद सूक्त[17], विश्वामित्र-नदी-संवाद[18], इन्द्र इन्द्राणी वृषाकार्य-संवाद[19], अगस्त्य-लोपामुद्रा-संवाद[20] आदि। उक्त कतिपय संवाद सूक्तों को देखकर आचार्य मैक्डोनल ने अपनी पुस्तक "हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर" में कहा है कि ये संवाद ही भारतीय नाट्य साहित्य के आदि रूप हैं। उन्होंने सरमा और पणि, यम-यमी तथा पुरूरवा और उर्वशी के संवाद का महाकवि कालिदास के "विक्रमोर्वशीयम्" का आधार बताया है। डॉ० कीथ के साथ-साथ, डॉ० विण्डिश, ओल्डेनवर्ग, पिशेल और गेल्डेनर आदि ने इन संवादो को आख्यान माना है। उनकी धारणा है कि वेदकालीन साहित्य में पद्य के साथ-साथ गद्य का भी अस्तित्व था किन्तु गद्य समय के प्रवाह में पड़कर विलीन हो गया। नाटकों में गद्य-पद्य के मिश्रण की जो परम्परा दृष्टिगोचर होती है उसका कारण वेदों का गद्य-पद्यमय होना ही था। पद्य भाग सरस और सुन्दर होने के कारण परम्परया एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ में चला आया और बचा रहा तथा गद्य भाग विलीन हो गया। इसलिए इन संवाद सूक्तों में नाटक के बीच उपलब्ध नही होते। पर इतना अवश्य है कि इनसे पर्याप्त सामग्री मिली।

डॉ० कीथ तथा कुछ अन्य विद्वानों की दृष्टि भरत की दृष्टि से कुछ भिन्न प्रतीत होती है। भरत का तात्पर्य तो मात्र इतना है कि नाटक की सृष्टि

14· ऋग्वेद, 10/90
15· ऋग्वेद, 10/95
16· ऋग्0, 10/108
17· ऋग्0, 1/165, 1/170
18· ऋग्0, 3/33
19· ऋग्0, 10/86
20· ऋग् 6, 1/179

में वैदिक संवादो और इतिहासों या आख्यानों से मात्र "तत्त्व" अर्थात "शैली" ग्रहण की गयी। संवाद और कथावस्तु इन दोनों से ही नाटक में गति और रोचकता की सृष्टि ली गई है।

जर्मन विद्वान मैक्समूलर, डॉ0 श्रोडर, जोहान्स, हर्टेल और फ्रांसीसी विद्वान सिल्वालेवी ने वैदिक कर्मकाण्ड वाली प्रक्रिया में अभिनय की प्रवृत्ति खोजी है। उनकी स्थापना है कि यज्ञादि के अवसरों पर होता लोग अभिनयात्मक ढंग से मन्त्रों का उच्चारण करते तथा विविध देवताओं का अनुकरण करते हुए संलाप करते थे। इन्हीं वैदिक संलापों एवं अभिनयों द्वारा नाटक का संयोजन हुआ। लेवी ने मैक्समूलर के कथन को परिष्कृत करते हुए कहा है कि ऋग्वेद में अभिनव, अनुकरण और संलाप का भाव विकसित हो चुका था और आगे चलकर सामवेद में संगीत और नृत्य के तत्त्व प्रतिष्ठित हुए। इन्हीं दोनों वेदों की सम्मिलित विशिष्ट प्रवृत्तियों से नाटक का विकास हुआ। वान श्रोडर ने भी भारतीय नाटकों का विकास भारतीय नृत्य, गीत, सोमपान स्वगतोक्तिकों और संलापों से माना है। हर्टेल ने उक्त विद्वानों के विचारों का समर्थन किया है। वान श्रोडर ने ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के 120 संख्यक मण्डूक सूक्त को भी नाटकीय बताया है और यज्ञ के समय सोम विक्रय के अभिनय को स्वीकार किया है। हर्टेल ने इनका गाया जाना प्रमाणित किया है। डॉ0 कीथ ने इस मत का खण्डन करते हुए कहा है कि ऋग्वेद के संवाद सूक्तों का गायन न होकर शंसन होता था। गायन के लिए तो सामवेद संगीत का आकार ही था। इसीलिए ऋग्वेद के मन्त्रों का उच्चारण करने वाले को "ऋत्विज" तथा साम-गायन करने वाले को "उद्गाता" कहा जाता था। श्री विण्टरनित्स ने इस मत का समर्थन करते हुए कहा है कि इन सूक्तों को नाटक का स्थानापन्न तो नहीं पर नाट्य का एक दूसरा रूप अवश्य माना जा सकता है।

जर्मन विद्वान डॉ0 पिशेल पुत्तलिका-नृत्य से नाटक का उद्भव सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। डॉ0 पिशेल के मतानुसार कठपुतली नृत्य का उद्भव भारत में हुआ और वहीं से विश्व के अन्य देशों में इसका प्रचार-प्रसार हुआ।[21]

21· डॉ0 पिशेल - थ्योरी आफ पपेट शो।

पिशेल महोदय "सूत्रधार" आदि पारिभाषिक शब्दों के आधार पर नाटक की उत्पत्ति का स्रोत कठपुतली नृत्य को मानते है। नाटक का प्रबन्ध करने वाला सूत्रधार कहलाता है और प्रस्तावना करने वाला "स्थापक" इन दोनों शब्दों का सम्बन्ध कठपुतली नृत्य से भी है। इस नृत्य में एक मनुष्य कठपुतली को डोरी में बांधकर नचाता है। इसलिए उस सूत्र को धारण करने वाले को "सूत्रधार" कहते है यही अर्थ डॉ0 पिशेल के मत का आधार है। सूत्रधार नाटक की कथावस्तु नायक तथा रसादि का वर्णन संक्षेप में सूत्ररूप में करता है इसलिए उसे "सूत्रधार" कहते है।[22] अतः इसका अर्थ पुत्तलिका की डोरी पकड़ने वाला करना उचित प्रतीत नहीं होता है। कठपुतलियों के नृत्य का उल्लेख महाभारत, वृहत्कथा के आधार पर कथासरित्सागर, राजशेखर दारा रचित "बालरामायण" में भी हुआ है। नाटक का उद्भव इनसे बहुत पहले का है अतः पिशेल का मत समीचीन प्रतीत नही होता है।

डॉ0 पिशेल ने ही एक अन्य मत का प्रतिपादन करते हुए कहा था कि नाटक की उत्पत्ति "छायानाटक" से हुई है। इस मत का डॉ0 ल्यूडर्स ने यह भी माना है कि वीर काव्यों की कथा में छायाचित्रों से भी कथा को हृदयंगम् कराया जाता था। प्राचीन नटों की कला से मिलकर ये छायाचित्र दर्शन नाटक के रूप में परिणत हो गये। संस्कृत के नाट्यग्रन्थों में कहीं भी छाया नाटक का उल्लेख नही मिलता। पं0 सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार संस्कृत में सात छाया नाटकों का विवरण मिलता है जिनमें प्राचीनतम् तथा प्रकाशित सुभट का "दूताङ्गद" है। जिसकी कथा रामायण से ली गयी है।[23] परन्तु ये सब इतने अर्वाचीन है कि इनसे नाटक के विकास में छाया नाटकों के योग को स्वीकार करना उचित नहीं प्रतीत होता है।

22· मानस्य च वाद्यस्य पाठ्यस्याप्येकभावविहितस्य।
शास्त्रोपदेशयोगात् सूत्रज्ञः सूत्रधारस्तु।।नाट्यशास्त्र, 35/76

23· पं0 सीताराम चतुर्वेदी - अभिनवनाट्यशास्त्र, पृ0 46

डॉ0 रिजवे ने नाटक की उत्पत्ति के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए अपने मत का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि नाटक के मूल में मृत वीरों की पूजा की भावना है। उनका मत है कि पुराकाल में जनता अपने मृतक वीरों के जन्म-दिवस उनके वीरतापूर्ण कार्यो का अभिनय करके मनाती थी और सम्मानपूर्वक किये गये इन्हीं अभिनयात्मक प्रदर्शनों से नाटकों का उद्भव हुआ है।[24] ग्रीक और भारत में मृत वीरों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के तरीके लगभग एक ज़ैसे थे। अपने मत की पुष्टि के लिए उन्होंने रामलीला, कृष्णलीला और यात्रा के उत्सवों का उल्लेख किया है तथा विभिन्न प्रान्तों में अभिनीत ऐतिहासिक वीरों के चरित्रों को उद्धृत किया। परन्तु इस मत का खण्डन अनेक योरोपीय विद्वानों ने भी किया है। संस्कृत के अधिकांश नाटकों - "अभिज्ञान-शाकुन्तलम्" स्वप्नवासवदत्ता" "विक्रमोर्वशीयम्", मालविकाग्निमित्रम्" रत्नावली आदि में वीरता की अपेक्षा प्रेमालाप ही अधिक है।

डॉ0 रिजवे के इस मत का खण्डन करते हुए डॉ0 कीथ ने एक नवीन मत की उद्भावना की है। उनके मतानुसार प्राकृतिक परिवर्तनों को जनसाधारण के सामने मूर्तरूप से दिखलाने की अभिलाषा से ही नाटकों का उद्भव हुआ। इन्होंने महाभाष्य में उल्लिखित "कंस-बध" का उल्लेख करते हुए कहा है कि कंस और उसके अनुयायी अपना मुख काला रखते थे तथा कृष्ण और उनके अनुयायी अपना मुख लाल रखते थे। डॉ0 कीथ का मत है कि बसन्त ऋतु की हेमन्त ऋतु पर विजय दिखलाना ही इस नाटक का मुख्य उद्देश्य है। कृष्ण का विजय प्रसंग प्रकृति के भीतर विलास करने वाली जीवनी शक्ति का प्रतीक है। बाद में डॉ0 कीथ ने ही इस मत को अमान्य कर दिया।[25]

---

24. डॉ0 रिजवे: ड्रामा ऐण्ड ड्रामैटिक डांसेज आफ नान यूरोपियन रेसेज।

25. डॉ0 कीथ: भाषान्तरकार - डॉ0 उदयभानु सिंह, पृ0 21-27।

कतिपय पश्चिमी विद्वानों ने नाटक की उत्पत्ति में पोल नृत्य से मानी है। यह नृत्य मई मास में पश्चिमी देशों में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। वहाँ मई मास की प्रथम तिथि को किसी युवती को पुष्पालड्·कृत करके उसे मई की रानी मानकर एक लम्बा बांस {मे पोल} गाड़कर उसके चारों ओर नृत्य गान करते हुए आनन्दोत्सव मनाते हैं। उन्होंने "इन्द्रध्वज" महोत्सव का सम्बन्ध इसी नृत्य से स्थापित किया है। यह कोई उचित तर्क प्रतीत नहीं होता है। "पोल उत्सव" वसन्त ऋतु में मनाया जाता है जबकि "इन्द्रध्वज" भारत में वर्षा ऋतु के अन्त में भाद्रपद शुक्ल द्वादशी के दिन इन्द्र को सन्तुष्ट करने के लिए मनाया जाता है। यह इन्द्र की वृत्त {मेघ} पर विजय का सूचक है। मे-पोल नृत्य और इन्द्रध्वज उत्सव में उद्देश्य,भाव, क्रिया, रूढ़ि तथा काल आदि किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही है। नाट्यशास्त्र में वर्णित कथा के अनुसार सबसे प्रथम नाटक महेन्द्रध्वजोत्सव के अवसर पर खेला गया था।[26]

महाव्रत में कुछ ऐसे तत्त्व दृष्टिगोचर होते है जिनसे नाटक का विकास संभव हो सका होगा। महाव्रत एक ऐसा अनुष्ठान है जिसका उद्देश्य मकरसंक्रान्ति के अवसर पर सूर्य को शक्तिशाली बनाना होता है जिससे वह अपना ओज पुनः प्राप्त करके पृथ्वी को उपजाऊ बना सके। इसमें एक श्वेतवर्ण वैश्य और एक कृष्णवर्ण शूद्र का झगड़ा दिखाया जाता है जिसमें श्वेतवर्ण वैश्य विजयी होकर सफेद चर्मखण्ड को प्राप्त करता है। डॉ0 कीथ के अनुसार यह चर्मखण्ड सूर्य का प्रतीक है। इसमें एक प्रारम्भिक नाटकीय क्रिया है जो वैदिक काल में खूब लोकप्रिय रही होगी। इस महाव्रत में एक ब्राह्मण ब्रह्मचारी और एक गणिका के मध्य भद्दी-भद्दी गालियों का चित्रण भी है। डॉ0 कीथ के मतानुसार-"इस गाली का कर्मकाण्ड परक उद्देश्य निर्विवाद है, इसका प्रयोग उर्वता उत्पन्न करने के लिए किया गया है। इसका बिल्कुल ठीक उदाहरण अश्वमेघ में इस अवसर पर प्रयुक्त भाषा में मिलता है जब

26· सीताराम चतुर्वेदीः अभिनवनाट्यशास्त्र, पृ0 52

अभागिनी पटरानी आहत अश्व के बगल में लेटने के लिए विवश की जाती है। हम कल्पना कर सकते है कि इसका प्रयोजन उस राजा के लिए, जिसका विजयोत्सव इस प्रकार मनाया गया है, पुत्रलाभ का दृढ़ विश्वास प्राप्त करना है।[27] प्रो0 हिलेब्राण्ड यहां पर कर्मकाण्डी नाटक मानते है। प्रो0 कोनो का विचार है कि ये कर्मकाण्ड में प्रचलित एवं लोकप्रिय स्वांगों से गृहीत किये गये होंगे जिसमें भद्दे एवं अश्लील संवादों का अवश्य प्रयोग होता रहा होगा, परन्तु जिसके मुख्य अंग थे- नृत्य, गीत एवं वाद्य। कुछ भी हो डॉ0 कीथ का भी अभिमत है कि इन क्रियाओं में वास्तविक नाटक नहीं है। यजुर्वेद के पुरूषमेध प्रकरण में अनेक व्यवहारों के नाम गिनाये गये है, परन्तु "नट" का नाम नही है जिसे उत्तरकालीन साहित्य में अभिनेता नाम से जाना जाता है। वहां "शैलूष" शब्द आया है, परन्तु "गीताय शैलूषम" कहकर उसका अर्थ गायक बता दिया गया है। यदि उस समय नाटक होते तो नट का नाम अवश्य आता, परन्तु उसी स्थल पर "नृत्ताय सूतम्। गीताय शैलूषम्। नर्माय रेभम्।" कहकर नाटकीय तत्त्वों की सत्ता का संकेत भी दिया गया है। सम्भवतः उस काल में "सूत" ही "नट" अभिधान से जाने जाते रहे हों। नाटकों का उल्लेख नही है फिर भी वैदिक काल में नाटकों के तत्त्व अवश्य उद्भूत हुए जिन्हें मनीषियों ने अपनी प्रखर बुद्धि शनैः शनैः अंकुरित और विकसित किया।

लौकिक उत्पत्ति सम्बन्धी मत के अन्तर्गत प्रो0 हिलेब्राण्ट तथा स्टेनकोनो का कहना है कि महाकाव्यों में नट और नाटकों की चर्चा स्वांगो से हुई है। भारतीय नाटकों की प्रासादात्मकता, संस्कृत के साथ प्राकृत का प्रयोग, गद्य-पद्य का मिश्रण, रंगशालाओं में आडम्बरशून्यता और सादगी, विदूषक जैसे पात्रों का अनिवार्य रूप से नियोजन प्रचलित स्वांगो के आधार पर ही हुई है जो लौकिक उत्पत्ति के ही संकेत है।[28] परन्तु डॉ0 ए0बी0 कीथ का अभिमत है कि नाटकों से पहले

27· डॉ0 कीथः संस्कृत ड्रामा-अनुवादक डॉ0 उदयभानु सिंह, पृ0 14
28· शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (भाग 2), डॉ0 गोविन्द त्रिगुणायत्, पृ0 184

स्वांगों की स्थिति का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं उपलब्ध है।

डॉ0 वेवर भारतीय नाटकों के उद्गम में यूनानी नाट्यकला के प्रभाव को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। पाश्चात्य विचारकों का मत है कि भारत में उपलब्ध तत्त्वों से किसी वास्तविक नाटक की रचना बड़ी कठिन है। परन्तु प्रो0 सिल्वांलेवी तथा डॉ0 पिशेल इन मतों का समूल खण्डन कर चुके थे। श्री वेवर महोदय ने कल्पना की कि यूनानी राजाओं ने भारत में अपनी राजसभाओं में यूनानी नाटकों का अभिनय कराया होगा। फलतः संस्कृत नाटक की उत्पत्ति हुई। पुनः विण्डिश महोदय ने इन्ही मतों की स्थापना की है। श्री विण्डिश का विचार है कि भारतीय नाटक पर 240 से 260 ई0पू0 में विद्यमान नवीन एटिक सुखान्त नाटकों का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। उज्जयिनी और अलेक्जेन्ड्रिया के मध्य व्यापार का प्रचलन अवश्य था। भड़ोच इस रोमन व्यापार का प्रमुख बन्दरगाह था। उन्होने उज्जयिनी में लिखित "मृच्छकटिक" नाटक पर यूनानी प्रभाव सिद्ध करने की चेष्टा की है किन्तु यह महाभाष्य आदि से ही सिद्ध हो चुका है कि "मृच्छकटिक" से बहुत पूर्व ही भारतीय नाटक अपनी विकासावस्था को प्राप्त कर चुके थे। इन नवीन नाटकों और भारतीय नाटकों में जो अति न्यून समानताएं है वह तो प्रत्येक अभिनय में स्वतः उद्बुद्ध हो जाती है। दूसरी ओर संस्कृत नाटक का विभाजन क्रिया के विश्लेषण पर निर्भर करता है। यह नियम यूनानी नाटकों में नही पाया जाता है मृच्छकटिक" नाटक न तो इतना पुराना है और न ही उसके कथानक और पात्र-विश्लेषण आदि में कोई नयी बात ही कही गई है जिसके आधार पर ग्रीक प्रभाव माना जा सके।

यूनानी प्रभावों को सिद्ध करने वाले अन्य शब्द-यवनिका, यवनो और शकारादि भी है। जहां तक "यवनिका" शब्द का सम्बन्ध है, यह शुद्ध शब्द "जवनिका" है जिसका अर्थ है-तेजी से गिरने वाला परदा रंगमञ्च पर अंक की समाप्ति होने पर परदा गिराया जाता था। इसी "यवनिका" नाम को लेकर बहुत से समालोचक

विदानों ने भारतीय नाट्यकला पर ग्रीक प्रभाव की घोषणा की है जिसका उत्तर अनेक भारतीय विदानों ने बड़े युक्तियुक्त ढंग से दे दिया है। जवनिका शब्द का प्रयोग "जूयते=आच्छाद्यते यया यस्या वासा जवनिका" इस अर्थ में किया गया है। "जु" धातु का अर्थ वेग से चलना भी होता है जिसके अनुसार पर्दों के वेग से उठाये और गिराये जाने के कारण इसका नाम "जवनिका" पड़ा, अथवा एक प्रकार का आवरण जिसमें नट भागकर छिप जाय, जवनिका कहा जाता है। जवनिका शब्द की व्युत्पत्ति अनेक टीकाओं में दी गयी है- जवन्ति अस्यां जवनिका §क्षीरस्वामी§, जनति अस्याम्। "जुः" सौत्रो गतौ वेगे च ल्युट्-करणाधिकरणयोश्च §3/3/116§, स्वार्थेकन् §5/4/5 सूत्रेण ज्ञायनात्§ §रामाश्रयी§, जवनिका स्त्री। सौत्र धातु जु। करणे ल्युट् संज्ञायांकन् §वाचस्पत्य§, जु इति सौत्रो धातुर्गतौ वेगे च। जननः। "जु चङ्क्रम्यदन्द्रम्य-सृ-गृधि-ज्वल-शुच-लष-पत-पदः" §3/2/150§ इति युच्-कौमुदी। स्त्रियां ङीप् जवनी, जवनिका। जवनं वेगेन प्रतिरोधनमस्ति अस्याः। जवनः ठन् ठाप च §शब्दकल्पद्रुम§[29] जवनिका शब्द का अर्थ "अमरकोश" में "पटवेश्म" §खेमा§ लिखा है। नावों के पाल के अर्थ में भी जवनिका का प्रयोग मिलता है और खेमों के ढकने वाले परदे के अर्थ में भी जवनिका शब्द आया है इसी से बाद में जवनिका का सामान्य अर्थ परदा हो गया। अमरकोश, कल्पद्रुम कोश शब्द रत्नावली इत्यादि में यही अर्थ उपलब्ध होता है। नाट्यशास्त्र[30], दशरूपक, भर्तृहरिशतक, शिशुपालबधम्, हरिवंश[31] और भागवत आदि ग्रन्थों में "जवनिका" शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है प्रथम दो में जवनिका शब्द का प्रयोग नाटकीय आवरण के लिए हुआ है तथा अन्तिम चार में सामान्य परदे के अर्थ में हुआ है। इसलिए मूल अर्थ जवनिका ही है। यवनिका नहीं। इसके अतिरिक्त ग्रीक नाटकों में जवनिका का अभाव मिलता है और संस्कृत नाट्यशाला में जहां जवनिका की स्थिति मानी गयी है उसका यूनानी नाटकों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वहां तो दर्शकों की सुविधा के लिए नाटक खुले मैदान में ही प्रदर्शित किये जाते थे। भारतीय नाटकों में यवनी कन्याओं की सत्ता के अनुरूप यूनानी नाटक में कोई

29· उत्तररामचरितम् हिन्दी व्याख्याकार डॉ0 कृष्णकांत शुक्ल, भूमिका पृ0 4

30· नाट्यशास्त्र 5/11 शिशुपालवधम् 4/54

31· हरिवंश 2/88 श्री मद्भागवत 1/8/19

प्रथा नहीं है। संस्कृत नाटकों में प्रायः राजा लोग यवनियों को अपनी परिचारिका के रूप में रखते थे। यवनी शब्द का प्रयोग दासियों के लिए हुआ है। अभिज्ञान शाकुन्तल के द्वितीय अंक में धनुर्धारिणी यवनियाँ राजा दुष्यन्त की परिचारिका के रूप में चित्रित की गई है।[32] संभवतः विदेशी दासियां भारत में बिकने आती रही होगीं। उन्हीं को क्रय करके भारतीय राजन्यवर्ग अपने अन्तःपुर में नियुक्त करते थे। इसका मूल तो भारतीय नरेशों की रुचि और यूनानी गणिकाओं की धन से सरलता से उपलब्धि में ही निहित है इससे ग्रीक नाटकों के प्रभाव पड़ने का समर्थन समीचीन नहीं लगता।

इसके अतिरिक्त कथानक के विकास उसकी ग्रन्थियों के सुलझाव तथा अन्य सभी विशेषताओं की दृष्टि से भी संस्कृत नाटक ग्रीक नाटकों से सर्वथा भिन्न प्रकार के है। भारतीय नाटक सुखान्त होते है ग्रीक नाटक नहीं। यूनानी नाटकों में संकलनत्रय (देश, काल, कार्य) पर विशेष ध्यान दिया जाता है किन्तु संस्कृत नाटकों में केवल कार्य की एकता पर ध्यान दिया जाता है। यूनानी नाटक में घटनाएं एक दिन से अधिक की नहीं हो सकती, परन्तु संस्कृत नाटक में दो अंको के बीच में एक वर्ष तक का समय बीत सकता है। उत्तररामचरित में यह समय बारह वर्ष तक पहुँच गया है। पात्रों की संख्या में भी विषमता पाई जाती है। यूनानी नाटकों की अपेक्षा संस्कृत नाटकों में इनकी संख्या बहुत अधिक होती है। भास के नाटकों में तो पात्रों की संख्या अधिक है ही इसके अतिरिक्त अभिज्ञानशाकुन्तल में तीस, मृच्छकटिक में उनतीस, विक्रमोर्वशीय में अठारह और मुद्राराक्षस में चौबीस केवल भवभूति के मालतीमाधवं में तेरह और उत्तररामचरित में ग्यारह पात्र है। यूनानी नाटकों में द्वन्द्व की प्रधानता होती है और उनके कथानक का विकासक्रम, उत्कर्ष तथा चरमसीमा इत्यादि संस्कृत नाटकों में नहीं उपलब्ध होती है। संस्कृत नाटकों में चरित्र की प्रधानता होती है। संस्कृत नाटकों के संवादों में पात्रों के अनुकूल विभिन्न भाषाओं प्राकृतों आदि का प्रयोग होता है जबकि यूनानी नाटकों में इस प्रकार की कोई विशिष्टता नही होती है। संस्कृत नाटक सुव्यवस्थित

32· "एष वाणासनहस्ताभिर्यवनीभिर्वनपुष्पमालाधारिणीभिः परिवृत इत एवागच्छति प्रियवयस्यः।"-अभिज्ञानशाकुन्तलम्, दूसरा अंक।

रंगमञ्च पर अभिनीत किये जाते है जबकि यूनानी नाटक खुले मैदान में या तम्बू में। यूनानी नाटकों में कोरस का प्राधान्य था। "कोरस" का अर्थ एक साथ नाचने-गाने वाले पात्रों की टोली से है। जबकि संस्कृत नाटकों में इसका अभाव है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यात्रा, अभिनय, नाट्यशाला, भाव विस्तार एवं संकलन आदि विभिन्न दृष्टियों से संस्कृत नाटक ग्रीक नाटक से भिन्न हैं। विदूषक की कल्पना संस्कृत नाटकों की अपनी देन है। यह पात्र नायक के कार्य व्यापार में सहायक होता है। संस्कृत नाटकों में रस को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया गया है जबकि पाश्चात्य नाटकों में संघर्ष को। युद्ध, हत्या, विप्लव, मृत्यु आदि कई दृश्य जो संस्कृत नाटकों में वर्जनीय है वे पाश्चात्य नाटकों में धड़ल्ले से प्रदर्शित किए जाते हैं।

भारतीय नाटकों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रो0 आर0वी0 जागीरदार के मत को भी यहाँ उद्धृत करना समीचीन प्रतीत होता है। प्रो0 जागीरदार संस्कृत नाटकों का स्रोत धार्मिक नही मानते। उनके मतानुसार "भारतीय नाट्यकला के आचार्य "भरत" का सम्बन्ध वैदिक आर्य जाति की एक शाखा "भरत" से रहा है। वैदिक साहित्य में "भरत" शाखा आर्यों की प्रमुख जाति के रूप में प्रसिद्ध हो चुकी थी, कि उत्तर वैदिक काल तक आते-आते यह जाति वैशिष्ट्य समाप्त प्राय था। प्रो0 जागीरदार की धारणा है कि इसी भरत जाति द्वारा भारतीय नाटक का विकास हुआ। उस काल के वैदिक कर्मकाण्डी पुरोहित वर्ग ने नाट्यकला को घृणा की दृष्टि से देखा था। वे इसे कुत्सित, नीच और अस्वस्थ कर्म समझते थे। फलतः भरत जाति के लोगों के सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि या तो पुरोहित वर्ग के सम्मुख नत होकर नाट्यकला को तिलाञ्जलि दी जाय अथवा शूद्रों में परिगणित होकर अपनी इस परम्परागत सम्पत्ति की सुरक्षा की जाये। भरतों ने दूसरा विकल्प चुना।" नाट्यशास्त्र के आधार पर ही प्रो0 जागीरदार ने इस तथ्य का भी उद्घाटन किया है कि "ब्राह्मणों ने रुष्ट होकर भरत के एक सौ पुत्रों को शूद्र होने का शाप दिया था[33]।

---

33. भरतः नाट्यशास्त्र 36/34-36

आर्य लोग वैदिक कर्मकाण्डों में आस्था और विश्वास रखते थे अतः उन्होंने नाट्यकला को प्रश्रय प्रदान करना उचित नही समझा। परिणामतः भरतों को सप्त सिन्धु प्रदेश त्यागकर दक्षिण प्रदेश की ओर प्रस्थान करना पड़ा जहां एक अवैदिक (अनार्य) राजा दारा इनकी कला का सम्मान किया गया और यही उन्हें प्रश्रय मिला। नाट्यशास्त्र में नहुष नामक राजा दारा इन भरतों को आश्रय और प्रश्रय प्रदान करने के संकेत प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है[34]। "नहुष" का अर्थ होता है - न-हुट-यज्ञ न करने वाला अर्थात् अनार्य। प्रो० आर०वी० जागीरदार ने उपर्युक्त विवेचनोपरान्त यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि भारतीय नाट्य साहित्य की उत्पत्ति और विकास वैदिक (धार्मिक) क्रिया कलापों से न होकर वेद विरोधी प्रवृत्ति से हुआ है[35]।

स्पष्ट है कि नाटक के लिए तत्वों की विशेष आवश्यकता होती है- संवाद, संगीत, अभिनय और रस। ये चारों तत्त्व चारो वेदों में देखे जा सकते है। पाश्चात्य विदान भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि नाटकों का आरम्भ सर्वप्रथम भारतवर्ष में ही हुआ है। प्रो० मैक्समूलर पिशेल, सिल्वालेवी, मैक्डानल और कीथ प्रभृत विदानों ने इसी मत को स्वीकार किया है। अतः यह मानना उचित प्रतीत होता है कि वेदों की वर्णन शैलियों के अन्तःकरण पर नाटकों की उत्पत्ति हुई और सूतों ने उसके विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

संस्कृत नाट्यकला की प्राचीनताः

वस्तुतः नाट्यकला का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मनुष्य जाति का। वैदिक काल में नाट्यकला के अस्तित्व के सम्बन्ध में प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। ऋग्वेद के सूक्तों से ज्ञात होता है कि ये संवाद ही भारतीय नाट्य साहित्य के आदि रूप है। इन्द्र, अग्नि, उषस्, मरुत आदि देवताओं के महत्त्वबोधक

34· भरतः नाट्यशास्त्र 36/48-49

35· आर०वी०जागीरदारः दि ड्रामा इन संस्कृत लिटरेचर, अध्याय 5

सूक्तों में नाटकोपयोगी सामग्री पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती है नृत्यकला पूर्ण रूप से प्रकाश में आ चुकी थी। उषा के वर्णन प्रसंग मेंउसकी उपमा एक नर्तकी से दी गयी है। "कात्यायन श्रौतसूत्र"36 में "सोमक्रय" के अवसर पर अभिनय का पुट मिलता है। "महाव्रतस्तोम" के अवसर पर कुमारियाँ नृत्यगान के साथ अग्नि की परिक्रमा करती थी। "कौषीतकि ब्राह्मण" में नृत्य, गीत एवं वाद्य की कलाओं के रूप में गणना की गई है किन्तु द्विजातियों के लिए जिनके उपयोग का "पाराशरगृह्यसूत्र" ने निषेध किया है प्रो0 मैक्समूलर सिल्वालेवी और ओल्डेनवर्ग आदि विद्वानों ने वेद में प्रयुक्त संवादात्मक सूक्तों को आधार मानकर संस्कृत नाट्यकला की उत्पत्ति वैदिक काल में सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।37 डॉ0 एस0एन0 दास गुप्ता का मन्तव्य है कि "वेद मन्त्रों में नाटकीय तत्त्व पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है" और वैदिक युग के धार्मिक अवसरों संगीत समारोहों तथा नृत्योत्सवों से नाटक का घनिष्ट सम्बन्ध था38।

शुक्ल यजुर्वेद की "वाजसनेयिसंहिता" पुरुषमेध प्रकरण में शैलूष शब्द आया है जिसका अर्थ अभिनेता लगाया गया है। इस प्रसंग में बताया गया है कि - "नृत्त (ताल-लय के साथ) नाचने के लिए सूत को, गीत के लिये शैलूष (नट) को, धर्म की बातें बताने के लिए सभाचतुर व्यक्ति को, सबको ठीक ढंग से बैठाने के लिए लम्बे-चौड़े जवान को, लोगों के विनोद के लिए वाक्-चतुर को, श्रृंगार की बातों के लिए कलाकार को, आनन्द के लिए नपुंसको को, समय बिताने के लिए कुमारी पुत्र को, चतुराई के कामों के लिए इथकार को और धीरज से काम करने के लिए बढ़ई को नियुक्त करना चाहिए39। इससे इस कथन की पुष्टि होती है कि आज से हजारों वर्ष पूर्व वैदिक युग में भी नाटक विद्यमान था।

36· कात्यायन श्रौतसूत्र 7/8/25

37· मैक्समूलरः वर्जन आफ दि ऋग्वेद, वाल्यूम 1, पृ0 173

38· डॉ0 एस0एन0दास गुप्ता एण्ड एस0के0डे0: हिन्दी ऑफ संस्कृत लिटरेचर, वाल्यूम 1, पृ0 44

39· नृत्ताय सूतङ·गीताय शैलूषन्धर्म्माय सभाचरन्नरिष्ठायै भीमलन्नर्म्माय रेभं हसायकारिमानन्दाय स्त्रीषखम्प्रमदे कुमारी पुत्रम्मेधायै रथकारन्धैर्य्याय

वेदोत्तरकालीन साहित्य में भी नाट्यकला समबन्धी विभिन्न शिल्पविधियों का पूरा-पूरा इतिहास परिलक्षित होता है। वाल्मीकीय रामायण के एक प्रसंग में कहा गया है कि "नये, नर्तकों और गायकों के गानों और मनोहर वचनों की जहां-जहां श्रुति मधुर वाणी सुनाई पड़ती थी वहीं-वहीं जनता सुन रही थी।[40] महाकवि वाल्मीकि का कथन है कि "शासकहीन जनपद में नट और नर्तक प्रसन्न नही दिखाई देते।[41] अयोध्याकाण्ड में नाटकों का उल्लेख उपलब्ध है। राम वन गमन तथा दशरथ मरण के कारण उत्पन्न अयोध्या की परिस्थितियों अनभिज्ञ भरत अपने ननिहाल में अपशकुनों तथा दुःस्वप्नों से उद्विग्न थे। उनके मनो विनोद के लिए जो आयोजन किये गये उनमें नाटक का भी उल्लेख है।[42] रामायण कालीन अयोध्या नगरी में नाटक मण्डलियां पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुकी थी कुशीलव ‌﴾नट-नर्तक﴿ लोगों का उस समय प्रचुर प्रचार हो चुका था। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से प्रतीत होता है कि रामायण में नट, नर्तक, नाटक, नृत्य का उल्लेख अनेक स्थलों पर मिलता है।[43] वहीं बालकाण्ड में यह भी दृष्टिकगोचर होता है कि अध्योध्यापुरी में ऐसी अनेक रंगशालाएं थी जो मात्र स्त्रियों हेतु ही निर्मित की गयी थी।[44]

महाभारत के हरिवंश पर्व में व्रजनाभ के बध और प्रद्युम्न के विवाह के प्रकरण में "रामायण नाटक" और "कौबेर-रम्भाभिसार" नामक नाटक का बड़ा अद्भुत प्रकरण यहां प्राप्त होता है।[45] प्रद्युम्न विवाह के प्रसंग में वसुदेव जी

40· नटनर्तकसंघानां गायकानां च गायताम्।
यतः कर्णसुखा वाचः शुश्राव जनता ततः।।

41· नाराजके जनपदे प्रहृष्ट नट नर्तकाः
उत्सवाश्च समाजश्च वर्धन्ते राष्ट्रवर्धनाः रामायण 2/67/15

42· वादयन्ति तथा शान्तिं लासयन्त्यपि चापरे।
नाटकान्यपरे स्माहुर्हास्यानि विविधानि च।। वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकांड 2/69/4

43·﴾क﴿ रसैश्श्रृंगारकरूणहास्यरौद्रभयानकैः
वीरादिभी रसैर्युक्तंकान्यमेतदगायताम्।।रामायण, 1/4/9
﴾ख﴿ शैलूषाश्च तथा स्त्रीभिर्यान्ति। रामायण, 2/83/15

44· वधू नाटक संघैश्च संयुक्ता सर्वतः पुरीम्। वा0रा0 1/5/12

के यज्ञ के अवसर पर भद्र नामक एक नट ने अपने सुन्दर नाट्य से महर्षियों से यह वर प्राप्त कर लिया था कि सब लोग मेरे नाट्य से सदा प्रसन्न रहे, मै आकाश में विचरण कर सकूँ।[46] महाभारत में भी सूत्रधार नट, नर्तक आदि का सुस्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है।[47] महाभारत के विराट् पर्व में रंगशाला का उल्लेख मिलता है।

महर्षि पाणिनि का समय ईसा से लगभग 400 वर्ष पूर्व निर्धारित किया गया है। पाणिनी ने अपने सूत्रों में दो नट सूत्रों अर्थात् नाट्यशास्त्रों का उल्लेख किया है एक के रचयिता "पाराशर्य शिलालि" है तथा दूसरे के "कृशाश्व"। इन सूत्र ग्रन्थों के उपलब्ध न होने के कारण नाट्यकला के विषय में उनके क्या मत थे यह सर्वथा अज्ञात ही है।[48] यदि ये उपलब्ध होते तो कदाचित् नाट्यकला सम्बन्धी बहुत सी गूढ़ बातों का पता चल गया होता। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय नाटकों का इतना प्रचार-प्रसार था कि नटों की शिक्षा के लिए स्वतन्त्र सूत्र-ग्रन्थों की रचना होने लगी थी। महर्षि पाणिनि ने मात्र अष्टाध्यायी की ही रचना नहीं की, अपितु "जाम्बवतीजय" नामक नाटक भी लिखा था।[49] उसके कुछ प्रसिद्ध श्लोक इस प्रकार है -

---

46· महा0 वनपर्व 15/13

47·(क) इत्यब्रवीत् सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तथा। महा0, 1/51/15

(ख) नाटका विविधाः काव्याः कथाख्यायिककारकाः। महा0, 2/12/36

(ग) आनर्ताश्च तथा सर्वे नटनर्तकगायकाः। महा0, 2/15/13

48·(क) पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः। अष्टाध्यायी 4/3/110

(ख) कर्मन्दकृशाश्वादिनिः। अष्टाध्यायी 4/3/111

49· स्वस्ति पाणिनये तस्मै येन रुद्र प्रसादतः।
आदौ व्याकरणं प्रोक्तं ततो जाम्बवतीजयम्।।
डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी, अभिज्ञा0,भूयिथा पृ0 5

गतेऽर्धरात्रे परिमन्द्रमन्दं गर्जन्ति यत् प्रावृषि कालमेघाः।
अपश्यती वत्समिवेन्दुबिम्बं तच्छर्वरी गौरिव हुंकरोति।।1।।
उपोढरागेड विलोलतारकं तथा गृहीतं शशिना निशामुखम्।
यथा समस्तं तिमारंशुकं तथा पुरोऽपि रागाद् गलितं न लक्षितम्।।2।।

प्राचीनता के विचार से महर्षि पतञ्जलि जिनका समय 150 ई0पू0 माना जाता है, अपने महाभाष्य में "कंसवध" और "वलिबन्धन" नामक नाटकों के खेले जाने का उल्लेख किया है।[50] पतञ्जलि ने "कंस को मारता है, "बलिको बांधता है" में प्रयुक्त वर्तमान कालिक क्रिया का समाधान[51] करते हुए नटों ﴾शोभनिक या सौभिक का उल्लेख किया है। ये दोनों कृत्य वास्तविक हनन तथा वास्तविक बन्धन, सुदूर अतीत की घटनाएं है, फिर भी ये वर्तमान काल में वर्णित हैं क्यों कि वहां पर तात्पर्य यह न होकर कि वे कृत्य वस्तुतः किए जा रहे है यह है कि उनका वर्णन किया जा रहा है। तत्पश्चात् वर्णन के तीन प्रकार बतलाये गये है- प्रथम शौभिकों या शोभनिकों का नाम आता है। जो दर्शकों की आंखों के सामने वस्तुतः कंस वध करते है तथा बालि को बांधते है। स्पष्टतः पहले उदाहरण में इसका केवल आभास मात्र है। जहां तक शब्दावली से विदित होता है दुष्टों के वध और वन्ध का आंगिक अभिनय ही करते है वाचिक नहीं। दूसरे चित्रकार है जो अपनी चित्रकारी द्वारा वे वर्णन करते हैं, क्योंकि चित्रपट पर ही हम कंस के ऊपर प्रहारों की बौछार और उसका इधर-उधर घसीटा जाना देखते है, अर्थात चित्रकार

50· ये तावद एते शोभनिका नामैते प्रत्यक्षं कसं घातयन्ति प्रत्यक्षं बालिं बन्धयन्ति। चित्रेषु कथम् ? चित्रेष्वप्युद्गूर्णा निपाहिताश्च प्रहारा दृश्यन्ते कंसकर्षण्यश्च। ग्रन्थिकेषुकथं यत्र शब्दगडुमात्र लक्ष्यते तेऽपि हि· तेषामुत्पत्तिप्रभृत्या विनाशादृ दीर्व्याचक्षाणाः सतो बुद्विविषयान् प्रकाशयन्ति। आतश्च सतो व्यामिश्रा हि दृश्यन्ते। केचित् कंसभक्ता भवन्ति, केचिद् वासुदेवभक्ताः। वर्णान्यत्वं खल्वपि पुष्यन्ति। केचित् कालमुखा भवन्ति केचिद्रक्तमुखाः।।

51· "इह तु कथं वर्तमानकालता कंसं घातयति बलिं बन्धयतीति चिरहते कंसे चिरबद्धे च बलौ। अत्रापि युक्ता। कथम्। ये तावदेते शोभनिका ﴾सौभिका﴿ नामेते प्रत्यक्षं कंसं घातयन्ति, प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्तीति।।" पंतञ्जलि,

चित्रकार इन घटनाओं का वर्णन करने वाले दृश्य का चित्रण करके कंसवध और बालि वध करता है। तीसरे ग्रन्थिक आते है जो शब्दों का प्रयोग करते है, शोभिकों की भांति आंगिक व्यापार नही करते है। वे भी अपने कथानायकों के जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त के वैभव का वर्णन करते हुए श्रोताओं को उनकी वास्तविक रूप में प्रतीति कराते है। इस हेतु वे अपने को दो वर्गो मे विभाजित कर लेते है। एक कृष्णभक्त जो लाल रंग का चेहरा लगाते है और दूसरे कंसभक्त जो काले रंग का चेहरा लगाते थे। इसकी विवेचना कीथ महोदय और विस्तार से किए है[52]। यह वही से उद्धृत किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि नाटकों की परम्परा पतञ्जलि से बहुत पहले ही प्रारम्भ हो चुकी थी। नाटकों का अभिनय जनता के मनोरञ्जन का प्रमुख और लोकप्रिय साधन बन चुका था।

प्राचीनता की दृष्टि से कुछ पुराणों में भी नाटकों के अभिनय का संकेत मिलता है। श्रीमद्भागवत पुराण में अभिनेताओं का उल्लेख है। मार्कण्डेय पुराण में राजा शुक्रजीत के पुत्र ऋतुध्वज को नाटकों में अभिनय की अभिरूचि दृष्टिगोचर होती है। वह अपना समय काव्य संगीत और नाटकों की उन्नति में सहर्ष व्यतीत करता था। अग्निपुराण में 338 से लेकर 342 अध्याय तक नाटक, रस, रीति, नृत्य तथा अभिनय आदि पर विस्तार से विचार किया गया है किन्तु यह उतना पूर्ण और सांगोपांग नही है जितना भरतमुनि का नाट्यशास्त्र। यद्यपि पुराणों की प्रामाणिकता संदिग्ध है क्योंकि यह पुराने ज्ञान का संकलन मात्र है।

प्रारम्भिक बौद्ध ग्रन्थों का अवलोकन करने से प्रतीत होता है कि उस समय नाट्यकला सम्पूर्ण भारत में प्रचलित हो चुकी थी। "विनयपिटक" के "चुल्लवग्ग" की एक कथानुसार अश्वजित् और पुनर्वसु अभिधान वाले दो भिक्षु एक बार जब कीटागिरी की रंगशाला में अभिनय देखने के पश्चात् एक नर्तकी के साथ प्रेमालाप करते हुए जब पकड़े गये तो विहार के महास्थविर ने उन्हें तत्काल विहार से निष्कासित कर दिया था[53]। "दिग्घनिकाय" में विभिन्न प्रकार के मनोरञ्जक

52· संस्कृत नाटकः उदभव विकास सिद्धान्त व प्रयोगः भाषाकार डॉ० उदयभानु सिंह, पृ० 21-24।

53· जयशंकर प्रसादः काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० 91।

दृश्यों सम्बन्धी शब्दों की एक तालिका प्राप्त होती है। "अवदान शतक" में एक रूपक के रंगमन्च पर प्रदर्शित करने का स्पष्ट उल्लेख है[54]। एक बार जब महात्मा बुद्ध राजगृह में थे उस समय उनके शिष्य मौद्गलायन और उपतिष्य ने सबके समक्ष अभिनय करके दिखाया था।

बौद्ध सूत्तों में भिक्षुओं को विसूकदस्सनः नच्च, पेक्खा आदि अज्ञात स्वरूप वाले दृश्यों को देखने का निषेध किया गया है। परन्तु कालान्तर में यह भाव परिवर्तित हो गया। ललित विस्तार में बुद्ध को भी नाट्यकला का ज्ञाता कहा गया है। बुद्ध के समय विम्वसार ने एक नाटक का अभिनय कराया ऐसा वर्णन मिलता है। "संद्धर्मपुण्डरीक" पर बौद्ध नाटकों का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है इसमें बुद्ध भी एक पात्र है। लंका में भूपों की स्थापना के वृत्तों में बौद्धों में नाटकों के महत्त्व के स्वीकार और अभिनयों के प्रयोग का परिचय प्राप्त होता है।

जैनियों के "रायपसेणीयसुत्त" नामक एक आगम ग्रन्थ में कथा है कि एक बार भगवान महावीर घूमते हुए आमलकप्पा नगरी के अम्बसाल वन में एक शिला पर बैठे थे··· उसी समय सूर्याभदेव ने गा-बजा और नाचकर महावीर स्वामी की वन्दना की। इस अवसर पर सूर्याभदेव ने 32 प्रकार का अभिनयात्मक नाटक का प्रदर्शन किया। महावीर स्वामी के लगभग दो सौ वर्ष बाद भद्रबाहु दारा रचित कल्पसूत्र में नाटक देखने से जैन साधुओं को विरत होने का उपदेश दिया गया है।

मौर्य साम्राज्य की यश गाथा को पूरे विश्व में फैलाने वाले आचार्य कौटिल्य के "अर्थशास्त्र" में नाटक मण्डलियों के कार्य तथा उनकी व्यवस्था का पर्याप्त वर्णन मिलता है अर्थशास्त्रकार के अनुसार -"नट, नर्तक, गायक, वाग्जीवन {कथा करके जीविकोपार्जन करने वाले} कुशीलव, प्लवक {रस्सी पर चढ़कर खेल दिखाने

54· इन्द्रपाल सिंह इन्द्रः संस्कृत नाटक समीक्षा, पृ0 10

वाले§ सौभिक §ऐन्द्रजालिक नट§ चारण तथा स्त्रियों के द्वारा अपनी जीविका कमाने वालों की स्त्रियों आदि के सम्बन्ध में यथोचित नियम वरते जावें[55]। एक स्थान पर उल्लेख है कि यदि कोई नाटक मण्डली अन्य देश से रंगमञ्च पर नाटक प्रदर्शित करने के लिए आती तो उसे पांच पण कर रूप में राजा को देने पड़ते थे[56]। एक अन्य स्थान पर उल्लेख हुआ है कि राजा को चाहिए कि वह स्त्रियों के लिए ऐसे अध्यापकों की नियुक्ति करे जो उनको रंगमञ्च पर अभिनय करना, गाना, लिखना, वीणा, वेणु तथा मृदंग को विशेष रीति से बजाना दूसरे के चित्त को पहिचानना, गन्ध बनाना, माला गूंथना, आदि जो चौसठ कलांए है उनके शिक्षण के लिए सुयोग्य आचार्यो का प्रबन्ध करें[57]।

कामशास्त्र के ख्यातिलब्ध आचार्य वात्सायन ने अपने "कामसूत्र" में अत्यन्त प्राचीन काल के नाटककारों का उल्लेख किया है। आचार्य वात्सायन का मन्तव्य है कि तत्कालीन कलापूर्ण सरस्वती भवनों §या विद्यालयों§ में पक्ष या मास के प्रसिद्ध पर्वो पर राजा की ओर से नियुक्त नटों के द्वारा नियमित नाटक या उत्सव होता था[58]। आगे कहा है कि अन्य देश के अभिनेताओं के साथ वैसा ही व्यवहार होता था जैसा व्यवहार राज्य की ओर से नियुक्त नटों के प्रति होता

55· "एतेन नटनर्तक गायकवादक वाग्जीवन कुशलोवप्लवक सौभिक चारणानां स्त्री व्यवहारिणा स्त्रियोगूढाजीवाश्च व्याख्याताः।" कौटिल्यः अर्थशास्त्र, अध्यक्ष प्रचार, अध्याय 38।

56· तेषां तूर्यमागन्तुकं पञ्चपणं प्रेक्षावेतनं दद्यात्। वही, अध्याय 39

57· गीतवाद्यपाठ्यवृत्त नाट्याक्षर चित्रवीणावेणुमृदंगपरचित्तज्ञान-गन्धमाल्यसंव्यूहन सम्पादन-संवाहन वैशिकलाज्ञानानि गणिका-दासीरङ्गोपजि-विनीश्च ग्राहयतो राजमण्डलादाजीव कुर्यात।। वही अध्याय, 41।

58· "पक्षस्यमासस्य वा प्रख्यातेहनि सरस्वत्याभवने नियुक्तानां नित्यं समाजः।" वात्सायनः कामसूत्र, नागरवृत्त, प्रकरण, 15

था[59]।

उपर्युक्त विवेचनोपरान्त निष्कर्षतः निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि नाटक की उत्पत्ति भारत में ही हुई। आदि काल से ही भारतीय जन-जीवन के मनोरञ्जनार्थ नाटकों को प्रमुख माध्यम के रूप में अपनाया जाता रहा है। अतः वैदिक काल से लेकर विक्रम के समय तक नाटकों की रचना एवं उनके प्रदर्शन की प्रथा क्रमशः विकसित होती हुई अविच्छिन्न रूप से हमारे देश में चली आ रही है।

अतः भारतीय प्रतिभा जिस प्रकार नाटक के विन्यास में स्वतंत्र है उसी प्रकार अभिनय कला में भी वह परमुखापेक्षी नही है। जवनिका के लिए भारतीय नाटककार यवनों के पराधीन नहीं हैं। नाटकीय परदा भारत की अपनी निजी वस्तु है, मंगनी की चीज नही[60]।

संस्कृत नाटकों की परम्पराः

विश्व-विश्रुत विशाल संस्कृत साहित्य में नाटकों की विशिष्ट परम्परा रही है। आज से सहस्त्रों वर्ष पूर्व वैदिक युग में भी भारत वर्ष में नाटक विद्यमान था। प्रायः नाटक का अस्तित्त्व विश्व को सभी मनुष्य जातियों एवं राष्ट्रों में किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान है। विकसित एवं समृद्ध राष्ट्रों में वह अपने परिष्कृत एवं परिवर्धित रूप में तथा पिछड़ी एवं आदिम जातियों में उनकी अपनी लोक-संस्कृति के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। प्राचीन काल में नाटकों का अभिनय राजाओं के सम्मान या मनोरंजन के लिए विशेष पर्वो एवं उत्सवों पर तथा नववर्षारम्भ, युद्ध-विजय, विशेष पर्व, उत्सव धार्मिक पूजन, अर्चन पर सामूहिक रूप से हर्षोल्लास के अवसर पर किया जाता था। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक नाट्यकला विषयक पर्याप्त अध्ययन अध्यापन हुआ है, इसके संकेत हमें पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। किन्तु प्रामाणिक शास्त्रीय निरूपण हमें भरत के "नाट्यशास्त्र" में उपलब्ध

---

59. "कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षण कमेषां दधुः। द्वितीयेऽहनि तेभ्यः पूजा नियतं लभेरन्। ततो यथाश्रद्धमेषां दर्शनमुत्सर्गो वा। व्यवसनोत्सवेषु चैषां परस्परस्यैककार्यता।" वही, प्रकरण 16

60. वलदेव उपाध्यायः संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 492

होता है नाटक की दैवी उत्पत्ति की भारतीय परम्परा जिसका सूत्र अपौरुषेय वेदों में बिखरा पड़ा है, नाट्य सिद्धान्त के प्राचीनतम ग्रन्थ "नाट्यशास्त्र" में संरक्षित है। नाट्यशास्त्रकार के रूप में भरतमुनि का संस्कृत साहित्याकाश में अद्वितीय स्थान है। अतः सर्वप्रथम भरतमुनि और उनके "नाट्यशास्त्र" के विषय में समधिक चर्चा समीचीन होगी।

संस्कृत साहित्य में भरत नाम से पांच विभिन्न व्यक्तियों का उल्लेख पाया जाता है। इनमें §1§ दशरथ के पुत्र भरत §2§ दुष्यन्त के पुत्र भरत §3§ मान्धाता के प्रपौत्र भरत §4§ जड़ भरत §5§ और नाट्यशास्त्र के प्रवर्तक भरतमुनि। प्रथम चार भरतों का साहित्यशास्त्र के साथ कोई सम्बन्ध नही है। कुछ विद्वान भरत नाम को एक काल्पनिक नाम मानते है। अपने नाट्यशास्त्र के अंग्रेजी अनुवाद में डॉ0 मनमोहन घोष ने भी उन्हें एक काल्पनिक व्यक्ति सिद्ध करने का प्रयास किया है। ऐसे मत को मानने वाले लोगों का विचार है कि प्रारम्भ में जो नटगण स्वांग भरते थे वे ही स्वांग भरने के कारण "भरत" कहलाते थे। बाद में उनकी आदि पुरूष भरतमुनि के रूप में कल्पना कर ली गयी।

आचार्य विश्वेश्वर ने उन्हें काल्पनिक व्यक्ति न मानकर एक ऐतिहासिक व्यक्ति माना है। उनका मत है कि सारे साहित्यशास्त्र में उनको "नाट्यशास्त्र" के प्रवर्तक के रूप में स्मरण किया गया है। मत्स्यपुराण के चौबीसवें अध्याय में सत्ताइस से बत्तीसवें श्लोक पर्यन्त 6 श्लोकों में भरतमुनि का उल्लेख अनेकशः हुआ है। उनमें कहा गया है कि भरतमुनि ने देवलोक में "लक्ष्मीस्वयम्बर" नामक नाटक का अभिनय करवाया था। उसमें अप्सरा उर्वशी लक्ष्मी का अभिनय कर रही थी। वहां देवसभा में इन्द्र के साथ राजा पुरूरवा भी उपस्थित थे। पुरूरवा के रूप से मोहित होकर उर्वशी अपना अभिनय भूल गयी इस पर कृद्ध भरतमुनि ने दोनों को शाप दे दिया। महाकवि कालिदास के एक श्लोक से भी इसकी पुष्टि होती है -

"मुनिनां भरतेन यः प्रयोगो भवतीष्वष्टरसाश्रयः प्रयुक्तः।
ललिताभिनयं तमद्य भर्ता मरुतां द्रष्टुमनाः सलोकपालः।।" विक्रमोर्वशीय 2/18।।

"नाट्यशास्त्र" में देवलोक में भरतमुनि द्वारा किए जाने वाले अभिनय का उल्लेख हुआ है इसमें भरतमुनि के शाण्डिल्य, वात्स्य, कोहल आदि सौ पुत्रों एवं मजुकेशी, सुकेशी आदि अप्साराओं की लम्बी सूची दी गयी है। संस्कृत के सभी नाटकों की समाप्ति प्रायः भरतवाक्य के साथ होती है। अभिनवगुप्त आदि सभी आचार्यो ने भरतमुनि को ही नाट्यशास्त्र का प्रवर्तक स्वीकार किया है। उनका समय 500 विक्रम पूर्व से लेकर प्रथम शताब्दी के बीच में माना जाता है। भरत का "नाट्यशास्त्र" मात्र नाट्य के विषय का ही ग्रन्थ न होकर समस्त कलाओं का विश्वकोष है। वर्तमान नाट्यशास्त्र प्रायः 6000 श्लोकों का ग्रन्थ है इसलिए उसको "षट्साहस्त्री संहिता" भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त द्वादशसाहस्त्री संहिता का भी उल्लेख पाया जाता है। शारदातनय ने अपने भाव प्रकाशन ग्रन्थ में इन दोनों संस्करणों का उल्लेख किया है। वहां द्वादशसाहस्त्री संहिता का रचयिता वृद्ध भरत को और "षट्साहस्त्री" संहिता का रचयिता भरत को बतलाया गया है। उन्होंने लिखा है -

"एवं द्वादशसाहस्त्रैः श्लोकैरेकं तदर्थतः।
षड्भिः श्लोकसहस्त्रैर्यो नाट्यवेदस्य संग्रहः।।[61]

वर्तमान "षट्साहस्त्री" संस्करण में 36 अध्याय है। निर्णयसागर से प्रकाशित प्रथम संस्करण में नाट्यशास्त्र के 37 अध्याय दिखलाये गये थे। "नाट्यशास्त्र" के टीकाकारों के रूप में प्रायः दस विद्वानों का उल्लेख पाया जाता हैं। परन्तु उनमें से एक "अभिनवभारती" को छोड़कर अन्य किसी का टीकाग्रन्थ अब तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

नाटक के स्वरूप एवं परिभाषा से पूर्व संस्कृत नाट्यसाहित्य के भारतीय परम्परानुसार विकास के विभिन्न स्तरों पर संक्षेप में प्रकाश डालना अप्रासंगिक

---

61. भावप्रकाशन, पृ0 287।

नहीं होगा। भारतीय नाट्य परम्परा का सर्वप्रथम रूप हमें ऋग्वेद के संवाद सूक्तों में उपलब्ध होता है। नाटक रचना के विशिष्ट उद्देश्य की सूचना भरत के नाट्यशास्त्र से प्राप्त होती है। नाटक की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इन्होंने ये कहा है कि देवताओं ने ब्रह्माजी के पास जाकर यह कहा कि आप हमारे लिए ऐसे खेल की रचना कीजिए जो दृश्य और श्रव्य दोनो हो[62]। यह सुनकर ब्रह्माजी ने चारों वेदों- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में क्रमशः संवाद, अभिनय, गीत लेकर[63] वेदों तथा उपवेदों से मिलता जुलता ऐसा पञ्चम नाट्यवेद बनाया जिसके साथ इतिहास भी जुड़ा हुआ था[64]। जहां ब्रह्माजी ने पहले ही नाट्य को "विनोदजननम्" कहा वहीं उसे "सर्वोपदेशजननम्" भी कह दिया इससे यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने नाट्य के बाह्य प्रभाव को ही महत्व नही दिया अपितु इसके अन्तःप्रभाव की भी महत्ता स्वीकार की है। इसी के अन्तर्गत वेद तथा रामायण पर आधारित मत भी हैं। नाट्यवेद की सृष्टि हो जाने के बाद ब्रह्माजी ने भरत से इसका प्रयोग करने के लिए कहा। भरत ने महेन्द्र-विजयोत्सव के अवसर पर सर्वप्रथम "दैत्य-दानव-नाशनम्" नाटक का अभिनय किया।

संस्कृत के साहित्याचार्यो ने काव्य को दो भागों में विभाजित किया है- दृश्य और श्रव्य[65]। श्रव्य काव्य विशेषतः श्रवणीय और पठनीय होता है। परन्तु दृश्य चक्षु का विषय होने से दर्शनीय भी है। दृश्य में रंगमंच की सहायता से विभिन्न उपकरणों द्वारा वर्ण्य वस्तु का यथार्थ चित्रण किया जाता है। यह अभिनय की वस्तु है। यह सार्ववर्णिक तथा शिक्षित अशिक्षित सभी के लिये समान रूप से उपादेय है। दृश्य काव्य की सौन्दर्यानुभूति में चक्षुरिन्द्रिय की प्रमुखता के कारण इसका प्रभाव भी हृदय पर साक्षात् रूप से पड़ता है। दृश्य काव्य में नाटकों या रूपकों तथा उपरूपकों का ग्रहण होता है क्योंकि ये अभिनेय है। "नाटक"

62· क्रीडनीयकमिच्छामो दृष्यं च यद्भवेत्।।नाट्यशास्त्र 1/11

63· नाट्यशास्त्र, 1/16/17

64· नाट्यसंज्ञमिदं वेद सेतिहासं करोम्यहम्।।नाट्यशास्त्र 1/15

65· दृष्यश्रव्यगत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधामतम्।

के लिए संस्कृत में पारिभाषिक शब्द "सम्यक" है हिन्दी तथा अन्य अनेक भारतीय भाषाओं में नाटक शब्द रूपक का स्थानापन्न या रूढ़ हो गया है। साधारण बोलचाल की भाषायें लोक में "नाटक" शब्द से दृष्य काव्य के सभी भेदों का बोध हो जाता है। अभिनेता अभिनय की अवस्था में काव्य-निवद्ध पात्रों के स्वरूप का अनुकरण प्रतिरूपण अथवा आरोप कर लेता है। इसलिए नाटक का नाम "रूपक" पड़ा। इस प्रकार नाटक के दो अर्थ हुए प्रथम नाटक· रूपक और द्वितीय नाटक = रूपक का एक भेद। इसके दस भेद होते हैं:-

(1) नाटक
(2) प्रकरण
(3) भाव
(4) व्यायोग
(5) समनकार
(6) डिम
(7) इहामृग
(8) अंक
(9) वीभी
(10) प्रहसन[66]।

आचार्य विश्वनाथ ने रूपक (नाटक) की परिभाषा करते हुए कहा है- "रूपारोपात्तु रूपकम्"[67] अर्थात् एक व्यक्ति का दूसरे में आरोप करने को रूपक कहते है। दृश्य काव्य अभिनय के लिये ही लिखा जाता है। इसमें नट लोग राम आदि का स्वरूप धारण करते है।

66· नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसभवकारडिमाः।
ईहामृगाड·क्वीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दस।। साहित्यदर्पण, 6/3

67· साहित्यदर्पण 6/3

सभी भारतीय आचार्यों ने नाटक के मूल में अनुकरण-प्रियता की प्रवृत्ति को स्वीकार किया है। अतः नाटक की व्याख्याओं अनुकरण तत्व पर विशेष बल दिया गया है। रूपक या नाट्य क्या है ? भरत मुनि ने इस पर विस्तार से प्रकाश डाला है -

"भवतां देवतानां च शुभाशुभ विकल्पकः।।
कार्यभायास्वयापेक्षी नाट्य वेदो मया कृतः।
नैकान्तोऽत्र भवतां देवानां चात्र भावनम्।।[68]

अर्थात इस नाट्यवेद में दैत्य तथा देवता दोनों के भले बुरे कार्यों, भावों और चेष्टाओं का समावेश है। किसी एक का नहीं। इसके अतिरिक्त नाट्य द्वारा हम क्या-क्या सीख सकते है इस विषय में कहा गया है -

"त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।।[69]

सम्पूर्ण त्रैलोक्य का भावों का अनुकरण ही नाट्य है। इस परिभाषा में अनुकृति के साथ-साथ भाव अर्थात् इस पर विशेष ध्यान दिया गया है अर्थात इस असीमित विश्व में जो भी घटनायें घटित हो चुकी हों या ले रही हों उन सभी का वर्णन इस नाट्य क्षेत्र के अन्तर्गत आ जाता है। इसी को और अधिक स्पष्ट करते हुए तथा मूलभूत अन्य संश्लिष्ट तत्त्वों का निर्देश करते हुए कहा है-

"नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मक।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मयाकृतम्।।[70]

इस परिभाषा में भरत ने भाव रूप में रस की, अवस्था के रूप में रचनात्मक तत्वों की तथा अनुकृति के रूप में अभिनय तत्व की स्थापना की है-

उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम्।।
सर्वशास्त्राणि शिल्पानि कर्माणि विविधानि च।।

68· भरतः नाट्यशास्त्र 1/102, 103
69· वही 1/107
70· वही 1/108

अस्मिन्नाट्ये समेतानि तस्मादेतन्मया कृतम।।

सप्तद्वीपानुकरणं नाट्येह्यस्मिन् प्रतिष्ठितम्।।

देवानामृषीणां च राज्ञामथ कुटिम्बिनाम्।

कृतानुकरण लोके नाट्यमित्यभिधीयते।[71]

नाट्य के द्वारा उत्तम, मध्यम और अधम सभी प्रकार के लोगों का चरित्र दिखाया जा सकेगा। सातों द्वीपों के वासियों देवताओं, ऋषियों, राजाओं और कुटुम्बियों के किये हुए कार्यों का अनुकरण जिसके द्वारा किया जा सकेगा वही नाट्य कहलायेगा। अर्थात् इसमें कहीं धर्म है तो कहीं क्रीड़ा कहीं अर्थ की चर्चा है तो कहीं शान्ति की, कहीं हास्य है तो कही युद्ध, कहीं काम का वर्णन है तो कहीं वध[72]। भरत के अनुसार नाटक में अवस्थानुकृति, भावानुकृति एवं वृत्तानुवृति संर्वागीण तथा यथार्थ रूप में होनी चाहिए[73]। यहां इन अवस्था, भाव तथा वृत्त से भरत का तात्पर्य क्रमशः नेता, रस तथा वस्तु तत्व से है। भरत मुनि के अतिरिक्त सागरनन्दी नामक आचार्य ने अपनी परिभाषा में कहा है -

"अवस्था या तु लोकस्य सुख दुःख समुद्भवा।

तस्यास्त्वभिनयः प्राज्ञैः नाट्यमित्यभिधीयते।।"[74]

अर्थात् इस संसार की सुख-दुःख की अवस्थाओं से उत्पन्न अवस्थाओं के अभिनय को नाटक कहते हैं। दशरूपककार ने नाटक की व्याख्या को स्पष्ट करते हुए कहा है-

अवस्थानुकृतिर्नाट्य रूपंदृश्यतयोच्यते।

रूपकं तत्समारोपाद् दशधैव रसाश्रयम्।।[75]

अर्थात् काव्य में नायक की जो धीरोदात्त आदि अवस्थाएं बतलाई गई हैं, उनकी अनुरूपता जब अभिनेता अभिनय के द्वारा प्राप्त कर लेता है तब वही एकरूपता की प्राप्ति नाट्य कहलाती है। नाटक की लिखित सामग्री अभिनय की प्रक्रिया

71· वही 1/109, 113, 114, 115, 116, 118

72· क्वचिद्धर्मः क्वचित्क्रीडा क्वचिदर्थः क्वचिच्छमः
क्वचिद्धास्यं क्वचित्युद्धं क्वचित्कामः क्वचित्वधः।।नाट्यशास्त्र 1/108

73· यस्मात्स्यभावं संस्कृत्य सांगोपांगातिक्रमैः।
अभिनीयते गम्यते च तस्माद्दै नाटकं स्मृतम्।।
यो यः स्वभावो लोकस्य नानावस्थान्तरात्मकः।सांगाभिनयोपेतः नाट्यमित्याभिधीयते।। नाट्यशास्त्र 21/125, 123

से संयुक्त होकर रसानुभूति को प्राप्त होती है। इसे और स्पष्ट करते हुए धनिक ने अभिनय की व्याख्या इस प्रकार की है - "यह अभिनय चार प्रकार का होता है- §1§ वाचिक, §2§ आंगिक, §3§ सात्विक और §4§ आहार्य।"

"स्वरों के आरोह-अवरोह और उसके बोलने के ढंग से अवस्थाओं के अनुकरण को "वाचिक" अभिनय कहा जाता है। शरीर के विभिन्न अंगों का सञ्चालन आंगिक अभिनय कहलाता है। अर्थात आंगिक अभिनय में विभिन्न शारीरिक चेष्टाओं को नटों के माध्यम से भाव और अर्थ को व्यक्त करने वाला माध्यम बना दिया जाता है। किसी भाव को गहराई से अनुभव करते हुए स्वेद, प्रकम्प, रोमान्च आदि जो सहज प्रतिक्रिया अभिनेताओं के शरीर से उत्पन्न होती है उसे सात्विक अभिनय कहा जाता है और वेष-रचना, श्रृंगार आदि के द्वारा जो अभिनय किया जाता है उसे "आहार्य" अभिनय कहते हैं।"

इस नाटक को रूप भी कहते हैं क्योंकि यह देखा जाता है और उस रूप का आरोप करने के कारण नाट्य को रूपक भी कहते हैं क्योंकि अभिनेता मूल पात्रों का रूप धारण करता है। अतएव अवस्थानुकृति ऐसी होनी चाहिए जो सामाजिक को सुखात्मक अथवा दुखात्मक रसानुभूति करा सके अर्थात् उन अनुकृतियों में भावों का पुट होना चाहिए। नाटक में घटनाओं के अनुरूप लोग रूप धारण करते हैं और उन रूपों के अनुसार चेष्टा या अभिनय करते हैं। इसलिए साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने भी दृश्य का यही लक्षण बताया है - "दृश्यं तत्राभिनेयं, तद्रूपारोपात्तु रूपकम्[76]।" अर्थात दृश्य काव्य अभिनय के लिए लिखा जाता है और उसमें अभिनेता रामादि का स्वरूप धारण करते हैं और उन्हें नाटक के समय राम आदि माना जाता है इसलिए उस रचना को रूपक भी कहते हैं आगे चलकर विश्वनाथ ने भी अभिनय के चार प्रकार की व्याख्या की है - आंगिक, वाचिक आहार्य और सात्विक।

---

74. सागरनन्दी, जयशंकर प्रसाद और लक्ष्मीनारायन मिश्र के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन पृ0 1 पर उद्दृत।

75. दशरूपक 1/7

76. साहित्य दर्पण 6/1

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नाटक त्रैलोक्य का ऐसा भावानुकीर्तन है जो अभिनय और संगीत के द्वारा सामाजिकों को मनोरंजन और मनःशान्ति प्रदान करता हैं। अतः अनुकरण, अभिनय और रस नाटक का प्राणतत्त्व है।

अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भी नाटक को सुनिश्चित सीमित तथा सर्वांगीण परिभाषा में निबद्ध करने का प्रयत्न किया हैं। सर्वप्रथम प्रकाण्ड चिन्तक और दार्शनिक अरस्तू के विचारों को उद्धृत करना समीचीन होगा- अरस्तू ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "पोलटिक्स" में नाटक के दो भेद बताएं हैं- त्रासद §ट्रेजडी§ और कामद §कॉमेडी§। अरस्तु के मतानुसार त्रासद में उच्च आदर्श का अभिनय होता है जब कि कामद में निम्न कोटि के आदर्श का। अरस्तू की व्याख्यानुसार "त्रासद दुःखान्त" का पर्यायवाची नहीं है। अरिस्टाटिल के युग में त्रासद में देवताओं की लीला का अभिनय और कीर्तिगान होता था। कामद में दुष्ट व्यक्तियों के चरित्र पर व्यंग्य किया जाता था। परन्तु होमर के समय से कामद में हास्य का पुट भी दिया जाने लगा। आगे चलकर त्रासद दुःखान्त नाटक का और कामद सुखान्त नाटक का पर्यायवाची हो गया[77]।

अरिस्टारिल ने त्रासद §ट्रेजेडी§ की परिभाषा करते हुए कहा है कि - "त्रासद उस व्यापार विशेष का अनुकरण है जिसमें गम्भीरता हो, पूर्णता तथा जिसमें एक विशेष परिणाम हो, भाषा अलंकृत, सजीव तथा विभाषाओं से युक्त हो और शैली वर्णन प्रधान न होकर नाटकीय हो जो करुणा तथा भय प्रदर्शन द्वारा मनोविकारों का उचित परिष्कार कर सकें।" अर्थात् -

Tragedy, then is an imitation of an action that is serious, complete and of a certain magnitude, in language embellished with each kind of artistic ornament, the several kinds being bound in separate parts of the play, in the form of action not of narrative,

---

77. जयशंकर प्रसाद और लक्ष्मी नरायन मिश्र के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ0 2 पर उद्धृत।

through pity and fear effecting the proper purgation of there emotions, by 'longuage embellished' I mean longuage into which rhythm, harmony and song enter. By the several kinds in several parts' I mean, that some horts are rendered through the medium of herse, others again with the aid of song."[78]

अतः कहा जा सकता है कि इन्होंने अन्याय वाह्य आवश्यकताओं के अतिरिक्त अनुकरण तथा जीवन की सुख-दुःखपूर्ण अनुभूतियों की सशक्त अभिव्यक्ति है।

निकॉल महोदय ने अपनी पुस्तक "द थ्योरी आफ ड्रामा" में कहा है कि - "नाटक जीवन के विषय में विचार व्यक्त करने की एक कला है जिसमें अभिव्यक्ति इस प्रकार की जाती है कि अभिनेता उसकी व्याख्या कर सकें और उनके शब्दों को सुनने तथा अभिनय को देखने के लिए एकत्र प्रेक्षकों के लिए वह रूचिकर हो सके।"

कल्पना-तत्त्व पर अधिक बल देते हुए वोल्टन ने कहा है "नाटक, अपने विशिष्ट स्वरूप में लेखक निर्माता तथा अभिनेता के साथ-साथ दर्शकों के लिए भी कल्पना शक्ति का व्यायाम है[79]।

सिसरों के अनुसार "नाटक जीवन की प्रतिवृति, व्यवहार का दर्पण तथा सत्य का प्रतिविम्ब है[80]। सिसरों की उक्त परिभाषा में अनुकृति अभिनेयता तथा सत्य के स्वरूप के प्रकटीकरण पर विशेष महत्व दिया गया है। इसके अतिरिक्त ह्यूगो, सार्से आदि अन्य पाश्चात्य विदानों ने भी इन्हीं से मिलते-जुलते अपने विचार व्यक्त किये हैं प्रायः पाश्चात्य विदानों ने अनुकरण की यथार्थता पर विशेष बल दिया है।

78· पोयटिक्स आफ अरिस्टाटिल, ब्यूचर दारा अनूदित, पृ0 23

79· एम0 वोल्टनः दि अनाटोमी आफ ड्रामा, पृ0 196

80· प्रसाद और मिश्र के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ0 3 पर उद्धृत।

नाटक के स्वरूप को और स्पष्ट करने के लिए "नृत्त" तथा "नृत्य" पर प्रकाश डालना आवश्यक हैं। "नृत्य" शब्द "नृती गात्र विक्षेपे" इस धातु से क्यप प्रत्यय होकर बनता है। मात्र विक्षेपार्थक होने के कारण इसमें अभिनय की प्रधानता रहती है। लोक में नृत्य करने वाले को नर्तक कहा जाता है। नृत्य काव्य के सम्बन्ध से रहित और अश्राव्य होता है नृत्य केवल देखने की वस्तु है जबकि नाटक रसाश्रित होता है जबकि नृत्य आवारीत। नाट्य में वाक्यार्थ का अभिनय होता है और नृत्य में पदार्थ का। "नृत्त" ताल और लय पर आश्रित होता है। अर्थात् (अन्यद्भावाश्रयं नृत्यं नृत्तं तालंलयाश्रयम्)। अतः नृत्य भाव पर आरित होता है, नृत्त ताल और लय पर आश्रित होता है और नाट्य रसात्मक होता हैं। नृत्त के विषय में नाट्यशास्त्र में कहा गया है - नृत्त में किसी अर्थ की अपेक्षा नहीं होती है, केवल शोभाधायक होने से ही इसका उपयोग नाट्य में हुआ करता है प्रायः संसार में सभी को स्वभावतः नृत्त अभीष्ट हुआ करता है। 4-260-262) दशरूपककार ने मधुर और उद्दत[81] रूप से नृत्य और नृत्य के दो-दो प्रकार बतलाये हैं अर्थात् सुकुमार नृत्य और सुकुमार नृत्त को लास्य कहते हैं। उद्दत नृत्य और उद्दत नृत्त को ताण्डव कहते है इन्हीं रूपों में ये नाटक इत्यादि के उपकारक होते हैं।

संस्कृत नाटकों का अपना विशिष्ट विधान होता हैं। परम्परया वस्तु, नेता, रस के निर्वाह पर कवि का ध्यान रहता है। किसी भी नाटक के स्वरूप एवं परम्परा को ठीक से समझने के लिए आवश्यक है कि उसके मूल तत्त्वों को भली-भाति समझ लिया जाय। धनञ्जय के अनुसार नाटक के तीन तत्त्व होते हैं जिसका आधार पर उसका विभाजन किया जाता है - वस्तु, नेता(पात्र) और रस[82]। नाटकीय तत्त्वों को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। बहुत से विद्वानो ने कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन शैली देश काल और उद्देश्य में छह तत्त्व स्वीकार करते हैं कुछ ने इनमें पात्र के स्थान पर चरित्र चित्रण और देशकाल निकालकर कुतूहल, घात-प्रतिघात अर्थत् द्वन्द और अभिनयशीलता- ये तीन तत्त्व और बढ़ा दिये हैं। अरस्तु ने अपने काव्य शास्त्र में त्रासद की परिभाषा देकर उसके तत्त्वों

81· "माधुरीद्धत भेदेन तदयं द्विविधं पुनः
लास्य ताण्डव रूपेण नाटकाद्युपकारकम्।। दशरूपक 1/90

82· वस्तु नेतारसास्तेषा भेदक·····।। वही 1/99

का भी विवेचन किया है। उसके अनुसार प्रत्येक त्रासद के वह अंग होने चाहिए - §1§ इतिवृत्त §प्लाट§, §2§ आचार §कैरेक्टर§, §3§ वर्णन शैली §डिक्शन§, §4§ विचार §थाट§, §5§ दृष्य §स्पेक्टिकिल§ और §6§ गीत §सांग§। पं0 सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार नाटक के तीन मूल तत्त्व हैं जिनमें अन्य सभी तत्त्वों का समाहार हो जाता है ये तत्त्व है - कथा, संवाद और रंग-निर्देश। यहां शोध प्रबन्ध के विस्तार भय से इससे अधिक विस्तार में जाना अप्रांसगिक एवं अनुपयुक्त है। अतः प्राचीन भारतीय नाट्याचार्यों एवं प्राचीन भारतीय परम्परानुसार मुख्य रूप से वस्तु, नेता तथा रस ही ऐसे तत्त्व हैं जिनके आधार पर समस्त नाट्यप्रासाद खड़ा किया जाता है। इसलिए यहां पर इनका सूचना नाम अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन किया जायेगा। नाट्यशास्त्र के मूल तत्त्वों का विस्तृत वर्णन धनञ्जय "दशरूपक" और विश्वनाथ कृत "साहित्यदर्पण" में द्रष्टव्य है[83]।

यहां वस्तु-वर्णन का विशेष महत्त्व है। वस्तु को कथा, कथावस्तु §प्लाट§, इतिवृत्त आदि नामों से भी जाना जाता है। नाटक की कथावस्तु दो प्रकार की होती है - आधिकारिक और प्रासंगिक[84]। नायक की अभीष्ट फलप्राप्ति अधिकार से सम्बद्ध होने के कारण इसका नाम "अधिकारिक" है। अधिकार का अर्थ है स्वामित्व। यह फल धर्म, अर्थ, काम में से कोई भी या तीनों हो सकता है। जैसे रामायण में राम की कथा। प्रासंगिक वह कथा है जो गौण रूप से हो और मुख्य कथा का अंग हो। जैसे रामायण में सुग्रीव या शवरी की कथा[85]। प्रासंगिक कथा के दो भेद है - पताका और प्रकरी। पताका उस कथा को कहते है जो मूल कथावस्तु के साथ दूर तक चलती है। इसका नायक दूसरा व्यक्ति होता है वह मुख्य नायक का साथी होता है और गुणों में उससे न्यून होता है। उसके कार्य का उद्देश्य कोई स्वतन्त्र फल प्राप्त करना नहीं है। उदाहरणार्थ राम के सहायक के रूप में सुग्रीव का चरित। जो स्थान विशेष पर ही मुख्य कथा का सहायक होती है जैसे -रामायण में शबरी आदि की कथाएं तथा शकुन्तला के छठे अंक का वह दृश्य

83· द्रष्टव्य सा0द0 षष्ठ परिच्छेद, दशरूपक प्रथम प्रकाश, नाट्यशास्त्र 21/117-120 आदि।

84· दशरूपक 1/11 तथा सा0द0, 6/42

85· वही, 1/12, वही, 6/42, 43

जिसमें दो परिचारिकाओं का संवाद है।

विषय सामग्री की दृष्टि से कथावस्तु तीन प्रकार की होती है - §1§ प्रख्यात §2§ उत्पाद्य और §3§ मिश्र। इतिहास-प्रसिद्ध कथानक के प्रख्यात कहते हैं जैसे शाकुन्तल की कथा महाभारत और पद्म पुराण पर अवलम्बित है उत्पाद्य कवि द्वारा कल्पित हो सकता है जैसे- शूद्रक का मृच्छकटिक और भवभूति का मालतीमाधव। मिश्र में इतिहास और कवि कल्पना दोनों का अंश होने से मिश्र कहते हैं[86]। इसका उदाहरण हर्षचरित आदि है।

यदि नाटककार किसी लोक प्रचलित उपाख्यान का अनुसरण करता है तो उसके लिए वह ध्यातव्य है कि वह किसी अनावश्यक कल्पना द्वारा उसके प्रभाव को नष्ट होने से बचाये। नाटककार को अपनी उद्भावना को प्रासंगिक वृत्त तक ही सीमित रखना चाहिए क्योंकि परम्परा का उल्लंघन करने पर सहृदयों को कष्ट व विक्षोभ होगा। दूसरी ओर यदि प्रख्यात कथावस्तु में नायक के ऐसे कार्य बतलाये गये हैं जो साधारणतः उसके प्रदर्शित चरित्र से मेल नहीं खाते तो नाटककार के लिए यह आवश्यक है कि अपने नायक का उदात्तीकरण करें। डॉ0 ए0वी0 कीथ के अनुसार "इतिहास काव्य महाभारत इस प्रकार के विचारों से भारग्रस्त नहीं था, वह दुष्यन्त का इस रूप में चित्रण कर सकता था कि वह शकुन्तला के प्रति की गयी अपनी प्रतिज्ञाओं को भूल गया। परन्तु कालिदास के लिए यह आवश्यक था कि वे नायक के चरित्र को इस प्रतीयमान भद्दे पन से मुक्त करते। अतएव उन्होंने दुष्यन्त की विस्मृति के कारण रूप में उस शाप की निबन्धना की जो स्वयं नायिका की असावधानी से प्रेरित हुआ है[87]।

कथावस्तु के मर्यादित विकास और उपसंहार के लिए पांच अर्थ प्रकृतियों, पांच अवस्थाओं और पांच सन्धियों का विधान किया गया है। कथावस्तु को मुख्य

86· दशरूपक 1/15, 16

87· डॉ0ए0वी0 कीथः संस्कृत नाटक, अनुवादक डॉ0 उदयभानु सिंह, पृ0 316

फल की प्राप्ति की ओर अग्रसर करने वाले चमत्कारयुक्त अंशों को आर्य प्रवृत्ति कहते हैं। ये नाटकीय कथावस्तु या कथानक के पांच तत्त्व है। धनञ्जय तथा विश्वनाथ के अनुसार - "प्रयोजन सिद्ध हेतवः" अर्थात् प्रयोजन सिद्धि के लिये जो उपाय किये जाय वे ही अर्थ प्रकृति हैं। इनके पांच भेद बताये गये हैं - §1§ बीज, §2§ विन्दु, §3§ पताका, §4§ प्रकारी और §5§ कार्य।

"बीज" वह तत्त्व है जो वृक्ष के बीज की तरह क्रमशः विस्तृत होता चलता है यह नायक के मुख्य फल का कारणभूत होता है जैसे- रत्नावली में योगन्धरायण द्वारा राजा के लिए राजकुमारी की प्राप्ति की योजना[88]। किसी दूसरी कथा के कारण मुख्य कथावस्तु की धारा अवरुद्ध हो जाने पर जो प्रसंग उस मुख्य कथा को पुनः सकृय कर दे वह "विन्दु" कहलाता है अर्थात विंदु वह है जो जल पर तेल विन्दु की भांति फैल जाती है जैसे-जैसे रत्नावली में मदन महोत्सव की समाप्ति पर राजकुमारी राजा को §जिसको वह अब तक कामदेव समझ रही थी और जिसकी पत्नी होने के लिए वह पूर्व निर्दिष्ट थी§ पहचान कर नाटिका के कार्य को निश्चित रूप से आगे बढ़ाती है। "पताका" वह प्रासंगिक कथा है जो मुख्य कथा के साथ दूर तक चली जाती है। जैसे - रामायण में सुग्रीव की और शकुन्तला में विदूषक की कथा। "प्रकरी" वह प्रासंगिक कथा है जो मुख्य कथा के साथ थोड़ी ही दूर चलती है जैसे- रामायण में रावण और जटायु का संवाद या शबरी की कथा। "कार्य" का अर्थ फल हैं। जिस फल या उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यत्न किया जाता है तथा जो साध्य होता है वही कार्य है। जैसे- रामायण में रावण का वध अथवा रत्नावली नाटिका में उदयन और रत्नावली का विवाह। यह फल धर्म, अर्थ, काम में से कोई भी हो सकता है। इसे ही मुख्य प्रयोजन और लक्ष्य भी कहा जाता है[90]।

नाटक में जो कार्य प्रारम्भ किया जाता है उसकी प्रगति के विभिन्न विश्रमों को कार्यावस्था कहते हैं। अर्थात् पूर्ण रूप से विकसित कार्य §नाटक§ में

88· दशरूपक 1/17 सा0द0 6/66, 67

89· दश0 1/96, सा0द0 6/66

आवश्यक रूप से विकास की पांच अवस्थाएं है- §1§ आरम्भ, §2§ यत्न, §3§ प्राप्तयाशा, §4§ नितािप्त और §5§ फलागम[91]।

पुरुषार्थ अथवा मुख्य फल की प्राप्ति के लिए नायक में जो उत्सुकता होती है या कामना होती है उसे "आरम्भ" कहते हैं[92]। अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिये नायक द्वारा संकल्पपूर्वक किया गया अध्यवसाय "प्रयत्न" है[93]। जब अनुकूल परिस्थितियों के कारण फल प्राप्ति की सम्भावना होती है किन्तु आगे चलकर मार्ग में आने वाली विघ्न-बाधाओं के कारण आशंका बनी रहती है। संदिग्धावस्था यह "प्राप्त्याशा" या "प्राप्तिसंभव" है[94]। तदनन्तर वह अवस्था आती है जिसमें यदि किसी विशिष्ट विघ्न-बाधाओं को पार कर लिया जाय तो सफलता निश्चित प्रतीत होती है उस अवस्था को "नियताप्ति" कहते है[95]। अन्त में जब इष्ट फल की प्राप्ति हो जाती है वह "फलागम" है[96]। उदाहरण स्वरूप अभिज्ञानशाकुन्तल के आरम्भ में नायक की नायिका विषयक औत्सुक्य का चित्रण हुआ है, तत्पश्चात् नायिका से फिर मिलने की युक्ति निकालने की उत्कटता का, चौथे अंक में विदित होता है कि दुर्वासा ऋषि का क्रोध अंशतः शान्त हो गया है और दुष्यन्त के साथ शकुन्तला के पुनर्मिलन की संभावना बढ़ गयी है। छठे अंक में अंगूठी के मिल जाने पर दुष्यन्त की स्मृति लौट आती है और पुनर्मिलन का मार्ग प्रशस्त हो जाता है, अन्तिम अंक में दोनों का मिलन हो जाता है।

पांचों अर्थप्रवृत्तियों को पांचों अवस्थाओं से जो सम्बद्ध करती हैं, उन्हें सन्धियां कहते हैं। अर्थात् एक ही मुख्य प्रयोजन की सिद्धि में सहायता देने वाली कथाओं या घटनाओं का उस मुख्य प्रयोजन के साथ सम्बन्ध होने को सन्धि कहते हैं। अतः ये पांच प्रकार की होती है - §1§ मुख, §2§ प्रतिमुख, §3§ गर्भ,

---

91· दश0 1/19, सा0द0 6/70,71

92· दश0 1/20 सा0द0 6/71

93· दश0 1/20 सा0द0 6/72

94· दश0 1/21 सा0द0 6/72

95· दश0 1/21 सा0द0 6/73

96· दश0 1/22 सा0द0 6/73

§4§ विमर्श और §5§ उपसंहृति या निर्वहण[97]। इन्हीं के आधार पर नाटक का विभाजन किया जाता है[98]।

मुख सन्धि में बीज की उत्पत्ति का वर्णन होता है, प्रतिमुख में बीज का कुछ प्रकट होना दिखाया जाता है, गर्भ में बीज का नष्ट होना और उसके लिए पुनः अन्वेषण का वर्णन होता है। विमर्श में गर्भ की अपेक्षा बीज अधिक प्रकट होता है, परन्तु शाप या क्रोध आदि के कारण उसमें विघ्न दिखाया जाता है उपसंहृति में बिखरे हुए अर्थो को एकत्र किया जाता है और मुख्य फल का वर्णन होता है[99]। उदाहरणार्थ अभिज्ञान शाकुन्तल में प्रथम अंक से लेकर द्वितीय अंक तक में उस स्थल तक मुख सन्धि हैं जहां सेनापति प्रस्थान करता है, प्रतिमुख सन्धि विदूषक से दुष्यन्त की अनुराग विषयक स्वीकारोक्ति से लेकर तीसरे के अन्त तक है। गर्भ सन्धि चतुर्थ और पञ्चम अंक में उस स्थल तक है जहां गौतमी शकुन्तला के मुख पर से अवगुण्ठन हटा लेती है, उस समय दुर्वासा का शाप दुष्यन्त की स्मृति को अच्छादित कर लेता हैं वह अपनी पत्नी के मिलन पर हर्षित होने के बजाय चिन्ताग्रस्त होकर विमर्श करने लगता है और यह विमर्श छठें अंक के अन्त तक चलता है अन्तिम अंक में निर्वहण सन्धि होती है।

अतः मुख्य प्रयोजन §अर्थ§ की सिद्धि के हेतुओं को "अर्थप्रकृति" कार्य की विकास प्रणाली को "अवस्था" तथा इन दोनों को परस्पर सम्बद्ध करने की प्रक्रिया को तथा इन दोनों को परस्पर सम्बद्ध करने की प्रक्रिया को सन्धि कहते हैं। संक्षेप में इन्हें निम्नलिखित रूप में रखकर सरलता से समझा जा सकता है

	अर्थप्रकृतियाँ	अवस्थाएं	सन्धियाँ
1.	बीज	आरम्भ	मुख
2.	विन्दु	यत्न	प्रतिमुख
3.	पताका	प्राप्त्याशा	गर्भ
4.	प्रकरी	नियताप्ति	विमर्श
5.	कार्य	फलागम	उपसंहृति

---

97. दश0 1/24 सा0द0 6/75

98. दश0 1/22, 23 सा0द0 6/74

99. दश0 1/24, 30, 36, 43, 48, सा0द0 6/75-81

अभिनय की दृष्टि से कथावस्तु के दो भेद होते है - सूच्य और दृश्य। कुछ वस्तुएं नीरस होती हैं या रंगमन्च पर उनका प्रदर्शन अनुचित है, ऐसी वस्तुओं की मात्र सूचना दे दी जाती है, इन्हें सूच्य कहते हैं। वस्तुतः जो वस्तुएं दृश्य और श्रव्य हैं, उनका प्रदर्शन किया जाता है। सूच्य वस्तुओं या घटनाओं को जिस उपायों से सूचित किया जाता है उन्हें अर्थोपक्षेपक कहते हैं। ये पाँचों अर्थोपक्षेपक इस प्रकार है- §1§ विष्कम्भक §2§ प्रवेशक, §3§ चूलिका, §4§ अंकास्य और §5§ अंकावतार।

भूत और भावी घटनाओं की सूचना या उसका संक्षिप्त वर्णन मध्यम पात्रों के द्वारा जिस अंक में किया जाता है उसे विष्कम्भक कहते हैं। विष्कम्भक के दो भेद है - "शुद्ध" और "मिश्र"। जब एक या दो पात्र मध्यम कोटि के आते हैं उसे "शुद्ध" और जब मध्यम और बीच दोनों प्रकार के पात्र आते हैं, उसे "मिश्र" विष्कम्भक कहते हैं। शुद्ध विष्कम्भक में मध्यम पात्रों का वार्तालाप संस्कृत में और मिश्र में मध्यम तथा नीच पात्रों का प्राकृत में होता है। शुद्ध का उदाहरण "मालतीमाधव" के पन्चम अंक में कपाल-कुण्डलाकृत प्रयोग और मिश्र का रामाभिनन्दन में क्षपणक और कापालिक कृत प्रयोग है। जब भूत और भावी घटनाओं की सूचना निम्न श्रेणी के पात्रों द्वारा दी जाती है, उसे प्रवेशक कहते हैं। इसका प्रयोग दो अंकों के बीच में हो सकता है। इसमें प्राकृत भाषा का प्रयोग होता है। शकुन्तला नाटक में विष्कम्भक और प्रवेशक दोनों के उदाहरण हैं। इस नाटक के तीसरे अंक की प्रस्तावना विश्कम्भक द्वारा की गयी जिसमें कण्व का एक ब्रह्मचारी शिष्य संस्कृत में राजा दुष्यन्त के आश्रम वास की सूचना देता है, इसके विपरीत उसके छठें अंक में प्रवेशक है जिसमें मछुए और सिपाहियों की बातचीत प्राकृत में होती है। पर्दे के पीछे बैठे हुए पात्रों द्वारा वस्तु या घटना की सूचना देने को "चूलिका" कहते है जैसे - नेपथ्य से किसी महत्वपूर्ण घटना का वर्णन किया जाता है इसका उदाहरण "महावीरचरित" के चौथे अंक में देखा जा सकता है जहां यह सूचना दी जाती है कि राम ने परशुराम को पराजित

कर दिया है। अंक की समाप्ति पर जाते हुए पात्रों के द्वारा अगले अंको की कथा की सूचना को अंकास्य या अंकमुख कहते हैं जैसे- महावीरचरित के दूसरे अंक के अन्त में सुमंत्र के द्वारा वशिष्ठ, विश्वामित्र और परशुराम के आगमन की सूचना दी जाती है और इन तीनों से तीसरे अंक का आरम्भ होता है। आचार्य विश्वनाथ इस प्रकार के मत से सहमत नहीं है उनके मतानुसार "अंकमुख" अंक विशेष का ही एक भाग होता है जिसमें आगामी अंकों और सम्पूर्ण कथानक की सूचना दी जाती है जैसा कि मालतीमाधव के पहले अंक में अवलोकिता एवं कामन्दकी के संवाद में किया गया है।" अतः इसमें उन घटनाओं या वस्तुओं की सूचना दी जाती है तो सरलता से रंगमंच पर प्रदर्शन करने योग्य नहीं है तथा अंकावतार से भिन्न है। अंक समाप्त होनेसे पहले ही आगामी अंक की कथा प्रारम्भ कर देने का अंकावतार अर्थोपक्षेपक कहते हैं[100]। उदाहरण के लिए मालविकाग्निमित्र के पहले अंक के अन्त और दूसरे अंक के आरम्भ में इसका प्रयोग हुआ है। इस प्रकार उक्त पांचों अर्थोपक्षेपकों द्वारा सूच्य विषयों की सूचना दी जाती है।

कथनोपकथन तीन प्रकार के होते हैं - {1} सर्वश्राव्य या प्रकाश, {2} स्वगत या अश्राव्य और {3} नियतश्राव्य। जो बात सबको सुनाने योग्य हो। प्रायः अभिनेता प्रकाश रूप में ही बोलते हैं ताकि रंगमन्च पर उपस्थित और सामाजिक सभी उन्हें सुन सके। जो बात दूसरों को सुनानी अभीष्ट न हों, मन ही मन कहने योग्य हो वह "स्वगत" या "अश्रव्य" है। जो केवल कुछ ही पात्रों को सुनानी अभीष्ट हो उसे "नियतश्राव्य" कहते है इसके तीन भेद किये गये है - जनान्तिक, अपवारित और आकाशभाषित। जब दो पात्र द्वारा की ओर करके बात करते हैं ताकि अन्य पात्र न सुन पावे, उसे "जनान्तिक" कहते हैं। मुंह फेरकर किसी दूसरे पात्र की गुप्त बात कहना, "अपवादित" है। यदि किसी पात्र को रंगमंच पर उपस्थित करना अभीष्ट नहीं है तो "आकाशभाषित" से काम

100· दश0 1/56-63, सा0द0 6/54-60

चलाया जा सकता है जिसमें मंच पर उपस्थित कोई पात्र एक दूसरे पात्र की बात को सुनता हुआ सा प्रतीत होता है, उसकी बात को दोहराता है और फिर उसका उत्तर देता है[101]।

संस्कृत नाटकों की विशिष्टता एवं महत्त्वः

संस्कृत साहित्य में नाट्य साहित्य का अपना वैभवशाली रूप दृष्टिगोचर होता है। अतएव नाटक रूपक का उत्कृष्टतम रूप है। इसकी उत्कृष्टता का कारण बताते हुए प्रो० ए०बी० कीथ ने कहा है कि वह संकुचित प्रतिबन्धों से अपेक्षाकृत मुक्त रहा है और नाटककारों ने निष्ठापूर्वक शास्त्र का अनुवर्तन किया है। नाटक ने विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति की है[102]। संस्कृत नाटक की अपनी कुछ विशेषताएं हैं जो इस प्रकार हैं- नाटक का प्रधान उद्देश्य रसनिष्पत्ति है। उनमें कथावस्तु की यथार्थता पर इतना आग्रह नहीं जितना कि रसनिष्पत्ति है। उनमें कथावस्तु की यथार्थता पर इतना आग्रह नहीं जितना कि रसनिष्पत्ति पर। रसभिव्यञ्जना की शक्ति ही कवि की सफलता की कसौटी है। संस्कृत नाटक आदर्शवादी होते हैं उनमें आदर्श चरित्रों की सृष्टि की जाती है। नाटक एक मिश्रित कला है जिसकी पूर्णाभिव्यक्ति और पूर्णता के लिए अन्य कलाओं के ज्ञान एवं कुशलता की आवश्यकता है[103]। आचार्य भरत ने इसके उद्देश्य एवं महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा है कि "इसमें देवताओं के प्रदर्शन के साथ ही समस्त विश्व के भावों का प्रदर्शन है। इसमें कहीं धर्म, कहीं क्रीड़ा, कहीं अर्थ कहीं शम, कहीं हास्य, कहीं युद्ध, कहीं काम और कहीं वध का प्रदर्शन है। धार्मिकों के लिए धर्म का कामियों के लिए काम का, दुष्टों के लिए दण्ड व्यवस्था का और विनीतों के लिए यम क्रिया का प्रदर्शन है। यह नाट्य नपुंसकों में धृष्टता उत्पन्न करने वाला, शूरों में उत्साह जागृत करने वाला, अविद्वानों के लिए ज्ञानप्रद और विद्वानों के लिए विद्वत्तादायक है धनिकों के लिये यह विलाजनक, दुखियों के लिए धैर्यदायक अर्थोपजीवियों के लिए अर्थदायक और अधीरों के लिए धैर्यदायक है। इस प्रकार यह नाट्य मैंने नाना भावों और नाना अवस्थावों वाला लोकव्यवहार का अनुकरणकर्त्ता बताया है।

101· दश० 1/64-67, सा०द० 6/127-140

102· संस्कृत नाटक उद्भव एवं विकास अनुवादक, डॉ० उदयभानु सिंह, पृ० 378

उत्तम, अधम और मध्यम मनुष्यों के कर्मों के आधार पर यह उनके हित का उपदेशदायक धैर्य मनोरञ्जन और सुख प्रदान करने वाला है। यह दुखियों, थके हुए, शोक-संतप्तों तथा दीनों के लिए विश्रांतदायक होगा। यह धर्म का जनक यशदायक आयु वृद्धिकारक कल्याणकारी बुद्धिवर्द्धक और संसार को उपदेशदायक होगा। ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या कला, योग अथवा कर्म नहीं है जो इसमें प्रदर्शित नहीं है[104]।

ग्रीक नाटकों के दो भेद किए गये हैं- कामद या सुखान्त §कामेडी§ तथा भाराद या दुःखान्त §ट्रेजिडी§ किन्तु भारतीय नाटकों में इस प्रकार के वर्गीकरण का सर्वथा अभाव पाया जाता है। सामान्यतः संस्कृत साहित्य में दुःखान्त नाटक है ही नहीं। संस्कृत नाटकों का परिमाप अन्य साहित्य के नाटकों से बहुत अधिक हैं। संस्कृत नाटकों में दर्शकों के ह्रदय की शुद्धि का भी ध्यान रखा जाता है कि वे मात्र मनोरञ्जन के साधन ही नहीं वरन् कल्याणकारी मार्ग की ओर प्रवृत्त होने के लिए प्रेरित भी करते हैं। भाषा का मिश्रण भी संस्कृत नाटकों की अपनी विशेषता हैं। यहां पात्रों की संख्या निश्चित नहीं होती है। उच्च श्रेणी के पात्र संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं परन्तु स्त्रियां तथा निम्नवर्गीय पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते ऐसा लोकव्यवहार के दृष्टि से ही किया गया था क्योंकि उस समय सामान्य जनता की बोलचाल की भाषा प्राकृत ही थी। संस्कृत नाटक अंको में विभाजित होते हैं। अंक की समाप्ति पर रंगमञ्च से पात्रों का चला जाना आवश्यक होता हैं। नाटकों का अंको में विभाजन नई वस्तु हैं जिसका यूनानी नाटकों में अभाव हैं "विदूषक" की कल्पना संस्कृत-नाटकों की अपनी एक विशेषता है। इसकी तुलना का पात्र ग्रीक नाटकों में नहीं मिलता। वह नायक का मित्र एवं सहायक होता हैं साथ वह हास्यरस का उत्पादक भी होता हैं। विदूषक प्रणय-व्यापार में भी नायक की सहायता करता है उसे अनेक विषम परिस्थितियों से उबारता भी है।

---

103 "Drama is a composite art, requiring for its full expression and perfection an understanding of and proficiency in other arts."

-Philip A.Coggim, The uses of Drama, Page 277.

संस्कृत नाटकों में स्वाभाविकता पर विशेष ध्या दिया जाता है स्त्रियों का अभिनय स्त्री पात्रों द्वारा ही किये जाने से उसमें स्वाभाविकता, सरसता, प्रभावोत्पादकता सदैव अक्षुण्ण बनी रहती है। संस्कृत नाटकों में अन्विहित्रय का अभाव है यहां कार्यान्विति का ही पूर्ण निर्वाह हुआ हैं कार्यान्विति आवश्यक मानी गयी है। स्थान और काल का ही पूर्ण निर्वाह हुआ है कार्यान्विति आवश्यक मानी गयी हैं। स्थान और काल की एकता का पालन नहीं हुआ है अन्विहिमय का सिद्धान्त यूरोपीय नाटककारों को सर्वथा मान्य था। नाटक की कथावस्तु "ख्यात्" अर्थात इतिहास पुराण प्रसिद्ध होती है। §नाटकं ख्यात वृत्तम§ यह रामायण, महाभारत, पुराण तथा वृहत्कथा पर आश्रित रहता है। संस्कृत नाटकों में मन्च पर वध, युद्ध, शयन, भोजन, मृत्यु, शाप, अधःपतन, निर्वासन, राष्ट्रीय, विपत्ति, चुम्बन आदि लज्जाजनक व्यापार दिखावे का निषेध हैं। ये नाटक सदैव सुखान्त होते हैं। इनकी सुखन्तता का रहस्य हमारी आशावादिता में ही सन्निहित है, क्यों कि आशा ही जीवन है और निराशा मृत्यु। संघर्ष करते हुए लक्ष्य की प्राप्ति ही भारतीय दर्शन का मूल मंत्र है। लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग में भले ही नानाविध विघ्न-बाधाएं एवं क्लेश उपस्थित होकर भले ही हमारे जीवन के दुःखमय बना दे, परन्तु जीवन का लक्ष्य सदैव आनन्द की प्राप्ति ही है। डॉ0 बलदेव उपाध्याय ने भी नाटक के सुखान्त होने का औचित्य बताते हुए कहा है कि -"कलात्मक दृष्टि से भी नाटक का सुखान्त होना ही उचित है भारतीय दृष्टि से विशुद्ध कला मानवों में सात्विक भावों का उदय कराती है। कला का मुख्य प्रयोजन सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का उदय है। कला अपने साधक को सत्य, शिव §मंगल§ तथा सुन्दर की ओर ले जाती है। नाटक-कला का विशुद्ध विलास तथा आनन्दमय अभिव्यक्ति ठहरा। अतः नाटक का आनन्दमय होना नितान्त उचित है। इन्हीं दार्शनिक, सांस्कृतिक तथा कलात्मक

104· त्रैलोकस्यास्य सर्वस्य नाट्य भावानुकीर्तनम्।।नाट्यशास्त्र, 1/104

नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेन्मया कृतम्।। नाट्यशास्त्र, 1/109

क्वचिद्धर्मःक्वचित्क्रीड़ा क्वचिदर्थः क्वचिच्छ्रमः
क्वचिद्धास्यं क्वचिद्युद्धं क्वचित्कामः क्वचिद्धास्य क्वचिद्युद्ध क्वचित्कायः क्वचिद्वधः।।
वही, 1/108

न तद् ज्ञानं नतच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्थर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।। वही, 1/14

दृष्टियों को लक्ष्य में रखने से भारतीय नाटक सर्वदा सुखान्त ही होता है[105]। अतः भारतीय परम्परा का अनुगमन करते हुए नाटक के द्वारा रंगमञ्च पर ही समस्त ज्ञान, विज्ञान कला की उपस्थिति से, सरसता एवं ऋजुता से सत्यं, शिवं तथा सुन्दरं की अभिव्यञ्जना एवं पुरुषार्थ चतुष्टय की संप्राप्ति सहज एवं ऋजु है।

आदि काल से ही भारतीय जनमानस को मनोरञ्जनार्थ नाटकों को उच्चकोटि के माध्यम के रूप में प्रयोग होता रहा है। आचार्य वामन ने साहित्य विद्या के विभिन्न अंगों में नाटक का प्रथम स्थान प्रदान किया है। उनका मन्तव्य है कि आख्यायिका, काव्य, महाकाव्य आदि के अध्ययन, अध्यापन से वास्तविक आनन्द की अनुभूति तभी संभव है जब उसमें नाटकत्व का भी समावेश हो। जब सहृदय सामाजिक के समक्ष कथा आदि के पात्र सजीव होकर चित्रपटवद् अभिनय करते हुए दृष्टिगत होते है तभी काव्यत्व की सहजानुभूति सम्भव होती है[106]। अभिनवगुप्त पादाचार्य का भी मन्तव्य है कि नाटक ही एक ऐसा काव्यांक है जिससे रंगमञ्च के परिवेश पात्रों के चारों प्रकार के {आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक} अभिनय एवं नाट्य व्यापार के द्वारा नीरस सामाजिक भी सहृदय सामाजिक की भाँति अलौकिक रसानुभूति का आनन्द प्राप्त कर लेता है[107]। नाटक एक जनतांत्रिक कला है जिससे संसार के सभी लोगों का मनोरंजन होता है। किनतु नाटक का उद्देश्य मात्र मनोरंजन से ही पूर्ण नहीं हो जाता लोकरंजन के साथ ही साथ इसमें लोकसंग्रह अथवा लोक कल्याण की भी उद्भावना रहती है। देवताओं के विजय पर अभिनीत प्रथम नाटक के अवसर पर जब दैत्यों द्वारा रोष प्रकट किया गया था तब ब्रह्मा ने कहा था मेरे द्वारा जिस नाट्य वेद की रचना की गयी है वह देव-दानव दोनों के शुभाशुभ को प्रकट करने वाला है और·· इसमें त्रैलोक्य के भावों का अनुकरण रहता है[108]। सम्भवतः समग्र काव्य-साहित्य में नाटक की उपयोगिता

105· डॉ0 बलदेव उपाध्यायः संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 496

106· सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः। तद्विचित्रं चित्रपटवद्विशेषसाकल्यात्। ततो- न्यभेदक्लृप्तिः, ततो दशरूपकादन्येषां भेदानां क्लृप्तिः कल्पनमिति। दशरूपकस्य हि-इदं सर्वं विलसितं, यदुतकथाख्यायिकामहाकाव्यमिति।
-काव्यालङ्कार सूत्र वृत्ति, 1/3/30-32

107· अभिनवभारती, 282-283

का यही रहस्य है। काव्य में रसानुभूति के लिए अर्थ का समझना नितान्त आवश्यक है किन्तु नाटक में ऐसा आवश्यक नहीं हैं। इसीलिए नाटक की समता चित्र से की गयी है। महाकवि कालिदास ने भी भिन्न रुचि वाले लोगों के लिए नाटक को एक सामान्य मनोरञ्जन का साधन बतलाया है -

देवानमिदममामनन्ति मुनयः शान्तं कृतुं चाक्षुषं
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकेर स्वांगे विभक्तं दिधा।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधकम्।। मालविका0 1/4

यों तो प्रत्येक व्यतीत कलाओं का अपना-अपना स्वाभाविक आकषर्ण होता हैं। मनुष्य बौद्धिक प्राणी है अतः उसकी अपनी भिन्न-भिन्न व्यक्तिगत रुचियां भी हैं, किसी को किसी का संगीत सुहाता है तो किसी को वाद्य, किसी को चित्र देखने में मजा आता है तो किसी को काव्य में आनन्द आता है। किन्तु नाटक ही एक ऐसी सामूहिक कला है जिसमें सभी कलायें अपना सुन्दरतम रूप लेकर समाहित रहती हैं। इसलिये सभी रुचि के लोगों को चाहे वे बाल हों चाहे वृद्व हों, शिक्षित-अशिक्षित सभी को समान रूप से आनन्द मिलता है।

पाश्चात्य विदान प्रो0 मैक्समूलर, पिशेल, लेवी, मैक्डानल और कीथ आदि ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि नाटक की उत्पत्ति भारत में ही हुई और वह वैदिक काल से क्रमशः विकसित होता हुआ अपने उन्नत स्वरूप को प्राप्त कर सका।

अब प्रश्न यह है कि संस्कृत का सर्वप्रथम नाटककार किसे माना जाय। नाट्य ग्रन्थों के अनुसार ब्रह्मा ने सर्वप्रथम "समुद्र मंथन" नामक समवकार और "त्रिपुरदाह" नामक डिम की रचना की। जिसका अभिनय परमेश्वर के समक्ष हिमालय के उत्तरी ढाल पर किया गया और सरस्वती ने "लक्ष्मी स्वयम्बर" नामक नाटक रचा। भरत-मुनि ने इस नाटक को इन्द्र की रंगशाला में दिखाया गया। भरत

मुनि द्वारा प्रणीत "जामवनन्य-विजय" व्यायोग, "कुसुमशेखर विजय" इहामृग और "शर्मिष्ठा-ययाति" अंक का उल्लेख मिलता है। महाभारत के हरिवंश पर्व में "रामायण नाटक" तथा "कौरवेररम्भाभिसार" नाटक के अभिनीत होने का वर्णन किया गया हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने भी "कंस वध" और "बलिवन्ध" नामक नाटकों का उल्लेख किया है। इनसे ज्ञात होता है कि संस्कृत नाटकों की परम्परा अतीत काल से चली आ रही हैं। किन्तु उपर्युक्त नाटकों मे से कोई भी कृति उपलब्ध नहीं है। लक्ष्य ग्रन्थों के अनन्तर ही लक्षण ग्रन्थों की रचना होती है। इस दृष्टि से भी नाट्यशास्त्र जैसी सुन्दर और प्रौढ़ रचना को देखकर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता हैं कि नाटकों की रचना उससे पूर्व अवश्य हुई होगी, लेकिन वे सभी काल-कवलित हो गये।

डॉ0 कीथ ने अश्वघोष को सर्वप्रथम नाटककार माना हैं। जबकि अधिकांश विद्वान् भास को पहला नाटककार मानते हैं। भास कौटिल्य से पूर्व अवश्य ही अवतरित हो गये थे क्योंकि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भास के प्रतिज्ञायोगन्धरायण का एक श्लोक किसी अन्य के नाम से उद्धृत किया गया है। इसके अतिरिक्त भास ने अपने नाटकों में जहाँ योगशास्त्र और अर्थशास्त्र का उल्लेख किया हैं वहां उन्होंने न तो पतञ्जलि के योगसूत्र को स्मरण किया है और न कौटिल्य के अर्थशास्त्र को, अपितु "माहेश्वर योगशास्त्रतम" और "वार्हस्पत्यमर्थशास्त्रम्" की चर्चा की है। अतः वे कौटिल्य से पूर्व ई0पूर्व चौथी शताब्दीं में अवतरित हुए होंगे। इसलिए उन्हें ही सर्वप्रथम नाटककार मानना अधिक समीचीन है।

भास ने लगभग एक दर्जन नाटकों की रचना की है। उनके नाटकों में "प्रतिज्ञा योगन्धरायण", "स्वप्न वासवदत्ता" और "अविमारक" ऐतिहासिक, "चारुदत्त" सामाजिक "प्रतिभा"और "अभिषेक" रामायण पर आधारित तथा पञ्चरात्र, "बालचरित", "मध्यम व्यायोग", "दूतवाक्य", "दूत घटोत्कच", "कर्णभार" और "उरुभंग" महाभारत की कथाओं पर आधारित नाटक हैं। भास ने अपने नाटकों में अपनी स्वाभाविक नाट्यकला का अद्भुत कौशल दिखाया है। उनका चरित्रांकन

आकर्षक, घटना संगठन स्वाभाविक, भाषा छोटे-छोटे वाक्यों से पूर्ण किन्तु भावमयी है। उनकी कविता मानव हृदय के भावों की उद्घाटिका है। वाह्य प्रकृति का चित्रण भी सुन्दर हुआ है। उन्होंने स्वाभावोक्ति एवं उपमा अलंकारों को विशेष रूप से अपनाया है। यद्यपि भास प्रथम नाटककार माने जाते हैं किन्तु उनकी नाट्यकला को देखने से प्रतीत होता है कि संस्कृत नाटक इतने विकसित रूप में ही सर्वप्रथम कैसे आ गये। अवश्य उनसे पूर्व नाटकों की परम्परा रही होगी।

भास के बाद अश्वघोष और कालिदास का अवतरण हुआ। इन दोनों नाटककारों में से कौन पहले हुआ। इस विषय में मतैक्य नहीं है। कालिदास का समय तो ई0पू0 प्रथम शताब्दी से लेकर पंचम शताब्दी के मध्य माना जाता है और अश्वघोष का समय ईसा की प्रथम शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। अधिकांश विद्वानों के मत से तो कालिदास ही अश्वघोष के पूर्ववर्ती थे। कालिदास वास्तव में ऐसे कवि और नाटककार थे जिसने अपनी प्रतिभा, कल्पना-शक्ति, भावुकता एवं कलाकारिता से संस्कृत साहित्य को गौरवान्वित करके संसार में उत्कृष्ट स्थान दिला दिया। "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" के अतिरिक्त उन्होंने "मालविकाग्निमित्र" तथा "विक्रमोर्वशीय" नामक नाटकों की भी रचना की। "मालविकाग्निमित्र" में विदर्भराज की पुत्री मालविका और अग्निमित्र का प्रेम दिखाया गया है। इस नाटक की कथावस्तु तो "नाटिका" के अनुरूप है। किन्तु पाँच अंकों के प्रयोग के कारण इसे नाटक कहा जाता है। "विक्रमोर्वशीय" में राजा पुरूरवा और उर्वशी अप्सरा का प्रेम प्रदर्शित किया गया है। इस प्रकार कालिदास के तीनों नाटकों का विषय प्रेम है और उनका रस शृंगार है। तीनों नाटकों को देखने से ज्ञात होता है कि उनकी कला उत्तरोत्तर विकसित होती चली गई है और अभिज्ञान शाकुन्तल में जाकर अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी है।

बौद्ध कवि "अश्वघोष" ने "शारिपुत्र-प्रकरण" नामक नव अङ्कों के एक सुन्दर प्रकरण की रचना की। जिसमें उन्होंने शारिपुत्र की बौद्ध धर्म में दीक्षा लेने के प्रसंग को चित्रि किया है। इसी प्रकरण की हस्तलिखित प्रति के

साथ ही प्रतीक नाटक और सामाजिक नाटक के अंश भी उपलब्ध होते हैं। जिनमें डॉ0 कीथ तो दोनों नाट्यांशो को अश्वघोष की ही रचना मानते हैं तथा डॉ0 जानस्टन सामाजिक अंश को किसी अन्य की कृति कहते हैं।

इसके अनन्तर शूद्रक ﴾?﴿ ने "मृच्छकटिक" नामक यथार्थवादी सामाजिक प्रकरण की रचना की। "मृच्छकटिक" की कथा का आधार भास का चारुदत्त ही है। इस नाटककार का "पद्मप्राक्तक" नामक एक भाग भी प्राप्त हुआ है।

हर्षवर्द्धन ने "प्रियदर्शिका", "रत्नावली" नामक नाटिकायें और "नागानन्द" नामक नाटक लिखा। दोनों नाटिकाओं के कथानक उदयन से सम्बन्धित है तथा विकास आदि में भी समता है। किन्तु "प्रियदर्शिनी" पहली कृति होने के कारण शिथिल है। सम्भवतः हर्षवर्द्धन ने उसकी त्रुटियों का अनुभव करके ही "रत्नावली" की रचना की थी। रत्नावली में ही कलाकार की कला अपने निखरे हुए रूप में प्रदर्शित हुई है। "नागानन्द" जीमूतवाहन और मलयवती के परिणय तथा नागों की रक्षा के लिए जीमूतवाहन के शरीरदान की प्रेम, साहस, दान, वीरता और करुणायुक्त भावों की कहानी है। इस नाटक में व्यापार अन्विति के अभाव के कारण शैथिल्य आ गया है।

हर्षवर्द्धन के अनन्तर विशाखदत्त ने "मुद्राराक्षस" नामक राजनीति प्रधान नाटक लिखा। इस नाटक में यद्यपि काव्य तत्त्व का प्राधान्य नहीं है तथापि नाटकीय व्यापारों की दृष्टि से यह उच्च कोटि का नाटक है। फिर भट्टनारायण ने महाभारत से कथानक लेकर "वेणीसंहार" नामक वीर रस प्रधान नाटक की रचना की। इसके बाद महाकवि भवभूति ने अवतरित होकर अपनी कला से नाटक साहित्य को एक बार पुनः चमका दिया। कालिदास के बाद सर्वश्रेष्ठ नाटककार भवभूति ही हुए। कतिपय बातों में तो वे कालिदास से भी आगे हैं। उन्होंने भगवान् राम के जीवन से सम्बन्धित "महावीरचरित" और "उत्तर रामचरित" नाटक और "मालती-माधव" प्रकरण लिखा। उनमें क्रमशः वीर, करुण एवं श्रृंगार रस प्रधान है। "मालती-माधव"

में कवि ने वीभत्स रस का भी समावेश किया है। संस्कृत नाटकों में वीभत्स रस का अभावरहता है। इस क्षेत्र में सम्भवतः भवभूति अकेले हैं। वैसे इस प्रकरण की कथावस्तु में शिथिलता पाई जाती है। "महावीरचरित" में राम के जीवन के पूर्वार्द्ध की कथा है। रावण वध और सीता की प्राप्ति के साथ नाटक समाप्त हो जाता है। नाटककार ने अपनी कल्पना से नाटक के अनुरूप रामकथा में कई परिवर्तन किए हैं। इसमें राम मानव के रूप में चित्रित किये गये हैं। पर उनका चरित्र इस नाटक में उतना आकर्षक और महान् नहीं हैं, जितना "उत्तर रामचरित" में है। "उत्तर रामचरित" कवि की अमर कृति है।

भवभूति के बाद प्रसिद्ध नाटककार अनङ्गहर्ष अथवा मातृराज हुए। इनकी प्रसिद्ध रचना "तापसवत्सराज" है। यह छः अंको का नाटक है। इसमें वासवदत्ता के विरह में तापस बने हुए एदयन और पद्मावती के विवाह का कथानक है। उदयन सम्बन्धी नाटकों में यह महत्वपूर्ण है। इसकी भाषा, सरल, सुबोध और रोचक है जो हृदय को तुरन्त प्रभावित कर लेती है। इसी समय के लगभग यशोवर्भन के "रामाभ्युदय" नामक नाटक का उल्लेख मिलता है। ध्वन्यालोक में आनन्दवर्द्धन ने इसका उल्लेख किया है। अवन्ति वर्मा के आश्रित कवि शिव स्वामिन ने भी कई नाटक, नाटिकायें और प्रकरण लिखे। वामन भट्टबाण का "पार्वती परिणय" और उद्दण्डिन का "मल्लिका मरूत" भी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं।

नाटक साहित्य में भवभूति के बाद मुरारि ने अधिक यश प्राप्त किया। मुरारि ने अपनी उपाधि "बाल वाल्मीकि" रखी है। इनका अवतरण ईसवीं आठवीं के अन्त या नवीं सदी के आरम्भ में हुआ था। मुरारि ने भवभूति का पदविन्यास और गोड़ी शैली तथा माघ का पाण्डित्य लेकर अपने नाटक की रचना की। किन्तु जहां भवभूति की शैली में भावानुरूप स्वाभाविकता है वहां मुरारि में प्रयत्न साध्यता एवं कृत्रिमता दृष्टिगत होती है। मुरारि की केवल एक ही कृति उपलब्ध है -

अनर्घ राघव नाटक। जो लम्बे-लम्बे अंक कथावस्तु की विशृंड·खलता नाटकीय कोतुहल के अभाव तथा कृत्रिम शैली के कारण सफल नहीं कहा जा सकता। इस नाटक में राम के समस्त जीवन विश्वामित्राशमन से रावण वध और रामराज्याभिषेक की कथा को नाटकीय रूप दिया गया है। समस्त कथानक सात अंकों में विभाजित किया गया है, जो अधिक लम्बे हैं तथा जिनमें व्यापार का अभाव और वर्णन की प्रचुरता है। भवभूति का इस नाटक पर अधिक प्रभाव पड़ा है। पर भवभूति के नाटकों की सी सफलता प्राप्त नहीं हुई। कथावस्तु में गत्यात्मकता एवं प्रभाव का अभाव तथा प्रभात, सन्ध्या, चन्द्रोदय और आश्रम आदि के आवश्यक विस्तृत वर्णन इस नाटक के प्रमुख दोष है। वास्तव में इस नाटक में न तो काव्य की सरसता है न नाटकीय प्रोढ़ता, पाण्डित्य प्रदर्शन अवश्य हुआ है। फिर भी भवभूति के चरण चिन्हों पर चलने के कारण यह प्रसिद्ध हो गया है।

मुरारि के बाद राजशेखर हुए, जो अपने को वाल्मीकि का अवतार बताते थे। इनके पूर्वजों में अनेक प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं। इनकी पत्नी अवन्ति सुन्दर भी संस्कृत और प्राकृत भाषाओं की विदुषी थीं। राजशेखर कन्नोज के प्रतिहारवंशीय राजा महेन्द्रपाल के आरित थे। इन्होंने "बाल-रामायण", "बालभारत" नाटक "विद्धशालभञ्जिका" नाटिका और "कर्पूर मञ्जरी" सट्टक की रचना की। बाल रामायण एक विशाल नाटक है जिसमें भवभूति के राम सम्बन्धी दोनों नाटकों की कथा को निबद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। इस नाटक में भी नाटकीय व्यापार और गत्यात्मकता का अभाव है, काव्य-सोन्दर्य अवश्य पाया जाता है। "कर्पूर-मञ्जरी" में इनकी कला अधिक मुखरित हुई है। राजशेखर के समकालीन कवि क्षेमीश्वर ने "चण्डकौशिक" और "नैषधानन्द" नामक नाटकों की रचना की। "चण्डकौशिक" में सत्य हरिश्चन्द्र का जीवन प्रदर्शित किया गया है। यही उनकी प्रसिद्ध रचना है।

इसके बाद जयदेव ने "प्रसन्न राघव" नाटक रामायण की कथा के आधार पर लिखा। अपनी ललितपदावली सुमधुर कविता एवं प्रसादमयी शैली के कारण यह नाटक संस्कृत-साहित्य में अधिक लोकप्रिय हुआ। समस्त कथा सात

अंकों में विभाजित है। राम और सीता का विवाह से पूर्व वाटिका में मिलन दिखाकर कवि ने अपनी सुन्दर कल्पना शक्ति का परिचय दिया है। हिन्दी के अमर कवि तुलसीदास भी इससे प्रभावित हुए हैं। "प्रसन्न राघव" में अलंकार-सौन्दर्य और रीति सौन्दर्य तो अवश्य मिलता है किन्तु नाटकीय गत्यात्मकता का अभाव है। कई दृश्य तो अनाटकीय हैं, जिनमें याज्ञवल्क्य द्वारा दो मक्खियों के वार्तालाप को सुनना तथा रावण और वाणासुर का विवाद प्रमुख है। साथ ही सीता विरह में राम को विक्षिप्त जैसा बना देना खटकता है। ये नाटककार के साथ तार्किक भी थे।

जयदेव के बाद कुलशेखर ने तपती संचरण और "सुभद्रा धनञ्जय" मधुसूदन मिश्र ने "हनुमन्नाटक" दामोदर मिश्र ने भी "हनुमन्नाटक" लिखा। रामचन्द्र ने "नलविलास" और "सत्य हरिश्चन्द्र" नाटक "निर्भय भीम" व्यायोग तथा "कौमुदी-मित्रानन्द" नामक प्रकरण की रचना की। जयसिंह सूरि ने "हम्मीर मदमर्दन" और रवि वर्मा ने "प्रद्युम्नाभ्युदय" नामक नाटक का प्रणयन किया। महादेव ने "अद्भुत दर्पण" और शक्तिभद्र ने "आश्चर्य चूड़ामणि" नामक नाटक रामकथा के आधार पर लिखे। धीर नाग का "कुन्दमाला" नाटक भी रामायण की कथा से सम्बन्धित है, जिसमें उत्तर रामचरित का विशेष अनुकरण हुआ है। इन नाटकों के अतिरिक्त कौमुदी महोत्सव नामक एक नाटक और मिलता है जिसके प्रणेता का पता नहीं। कहा जाता है कि यह प्रसिद्ध स्त्री कवि विज्जका की रचना है। संस्कृत साहित्य में प्रतीकात्मक नाटकों की भी एक परम्परा रही है। इन नाटकों के अमूर्त भावों को मूर्त रूप प्रदान करके पात्र के रूप में उपस्थित किया जाता है। कतिपय नाटकों में मूर्त और अमूर्त का मिश्रण भी मिलता है। ऊपर अश्वघोष के "शारिपुत्र-प्रकरण" के साथ प्रतीकात्मक नाट्यांश का उल्लेख किया जा चुका है। इससे प्रतीकात्मक नाटकों की परम्परा का आभास मिलता है। सर्वप्रथम प्रतीकात्मक नाटक कृष्ण मिश्र का "प्रबन्ध चन्द्रोदय" है। इस नाटक द्वारा नाटककार ने अद्वैत वेदान्त और विष्णुभक्ति का समन्वय दिखाया है। इसके बाद जैन कवि यश पाल

ने "मोहराज पराजय" नामक पांच अंकों का नाटक लिखा। यह मिश्र प्रतीकात्मक नाटक है। जिसमें कुमारपाल, हेमचन्द्र और विदूषक पुरूष पात्र है तथा पुण्यकेतु, विवेक, कृपासुन्दरी तथा व्यवसाय सागर आदि गुणों के प्रतीक हैं। इस नाटक का ऐतिहासिक महत्त्व है। वेदान्त देशिक {वेंड·कटनाथ} ने "संकल्प सूर्योदय" नाटक लिखा। इसमें भी मोह की पराजय दिखायी गयी है। इसके बाद 16वीं सदी के पूर्वार्द्ध में परमानन्द दास ने जो कवि कर्णपूर के नाम से प्रसिद्ध है, "चैतन्य चन्द्रोदय" की रचना की। यह भी मिश्र प्रतीकात्मक है। इसमें भक्ति, विराग, कलि और अधर्म इत्यादि प्रतीक पात्र है और चैतन्य देव तथा उनके शिष्य वास्तविक पात्र हैं। इस नाटक के द्वारा चैतन्य के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इसके अनन्तर आनंदराम भावी "वेद कवि" ने "जीवानन्द" और "विद्या परिणय" नामक दो प्रतीकात्मक नाटक लिखे। प्रथम में रोगों को पात्र रूप में उपस्थित किया गया है और दूसरे में शिव-भक्ति का प्रतिपादन किया गया है। इन प्रतीकात्मक नाटकों के अतिरिक्त सुभट कवि का "दूतांगद" नामक छायानाटक भी मिलता है। छाया नाटक में पात्र अपने वास्तविक रूप में नहीं आते, उनके स्थान पर उनकी छाया पुतलियों के द्वारा प्रदर्शित की जाती है।

उक्त विवरण में निर्दिष्ट प्रमुख नाटकों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार हैं :-

प्रतिमा नाटक

इस नाटक में कुल सात अंक है। राम का वनवास, सीताहरण आदि अयोध्या काण्ड से लेकर रावण वध तक की घटनाओं का वर्णन इस नाटक में किया गया है। इस नाटक से प्राचीन भारत में कलाविषयक नवीन वृतान्त[109] का पता लगता है। प्राचीनकाल में राजाओं के देवकुल होते थे जिनमें मृत्यु के अनन्तर

109· चन्द्रधर शर्मा गुलेरी - "देवकुल"। - ना0प्र0 पत्रिका, 1 भा0, 1 अंक

राजाओं की पत्थर की बड़ी मूर्तियां स्थापित की जाती थीं। इक्ष्वाकुवंश का भी ऐसा ही देवकुल था जिसमें मृत नरेशों की मूर्तियां स्थापित की जाती थी। केकयदेश से आते समय अयोध्या के समीप देवकुल में स्थापित दशरथ की प्रतिमा को देखकर ही भरत ने उनकी मृत्यु का अनुमान आप ही आप कर लिया। इसी कारण इसका नाम "प्रतिमा-नाटक" है। यह नाटक "रामकथाश्रित" है।

अभिषेक नाटक

इस नाटक में 6 अंक हैं। यह नाटक भी "रामकथाश्रित" है। इसमें राम के राज्याभिषेक का तथा किष्किन्धा, सुन्दर और लंकाकाण्ड के कथानक का वर्णन किया गया है।

पञ्चरात्र

यह तीन अंको का "समवकार" है। यह नाटक "महाभारताश्रित" है। महाभारत की एक घटना को लेकर यह नाटक रचित है। द्रोण ने दुर्योधन से पाण्डवों को आधा राज्य देने के लिए। दुर्योधन ने प्रतिज्ञा की कि पांच रातों में यदि पाण्डव मिल जायेंगे तो मैं उन्हें राज्य दे दूंगा। द्रोण के प्रयत्न करने पर पाण्डव मिल गए और दुर्योधन ने उन्हें आधा राज्य दे दिया।

मध्यम व्यायोग

यह एकांकी नाटक है तथा व्यायोग है। यह नाटक भी "महाभारताश्रित" है। मध्यम पाण्डव भीम द्वारा घटोत्कच के हाथ से एक ब्राह्मण पुत्र की रक्षा करना और भीम को पुत्र-दर्शन से आनन्दानुभूति तथा हिडिम्बा-मिलन का रसास्वाद वर्णित है।

दूत घटोत्कच

यह एकांकी श्रेणी का एक अद्वितीय नाटक है। यह नाटक भी "महाभारताश्रित" है। अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् श्रीकृष्ण का घटोत्कच को दूत

रूप से धृतराष्ट्र के पास भेजना, दुर्योधन द्वारा अपमान, अन्त में दुर्योधन का कथन है कि मैं अपने बाणों द्वारा उनको उत्तर दूँगा इत्यादि कथा वर्णित है।

कर्णभार

कर्णभार भी एकांकी नाटक है। यह नाटक भी "महाभारताश्रित" है। इसमें कर्ण का ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र को दान में कवच और कुण्डल देने का वर्णन है।

दूतवाक्य

यह भी एकांकी नाटक है। यह नाटक "महाभारताश्रित" है। इस नाटक में महाभारत के युद्ध से पूर्व श्रीकृष्ण का पाण्डवों की ओर से सन्धि प्रस्ताव लेकर दुर्योधन की सभा में जाना और विफल मनोरथ लौटने का वर्णन है।

उरूभंग

यह एक एकांकी उत्सृष्टिकांक है तथा संस्कृत साहित्य में एक मात्र दुःखान्त रूपक है। यह नाटक भी "महाभारताश्रित" है। इस नाटक में भीम तथा दुर्योधन के अन्तिम महायुद्ध का तथा दुर्योधन की मृत्यु का करूणापूर्ण वर्णन है।

बालचरित

यह सात अंको का नाटक है। यह नाटक "भागवताश्रित" है। इसमें श्रीकृष्ण के जन्म से कंस वध तक की कथा वर्णित है।

दरिद्रचारूदत्त

इस नाटक में केवल 4 अंक है। यह नाटक लोककथात्मक है। इसमें निर्धन किन्तु उदारचेता ब्राह्मण चारूदत्त और वसन्तसेना नाम की वेश्या के प्रण्य-सम्बन्ध का वर्णन है। यह रूपक पूरा-पूरा उपलब्ध नहीं होता परन्तु साहित्यिक दृष्टि से इस अपूर्ण रूपक का भी अधिक मूल्य है।

<u>अविमारक</u>

इस नाटक में 6 अंक है। यह नाटक भी "लोककथात्मक" है। इस नाटक में "अविमारक" नामक राजकुमार के चरित्र का वर्णन किया गया है। कामसूत्र में उल्लिखित होने से यह प्राचीन काल की अतिशय प्रसिद्ध आख्यायिका जान पड़ती है। इसमें अविमारक तथा राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरंगी के प्रेम का वर्णन किया गया है। प्रणय का चित्रण बहुत ही सुन्दर तथा सरस है।

<u>प्रतिज्ञायौगन्धरायण</u>

इसमें 4 अंक है। यह नाटक उदयन कथाश्रित है। इसमें उदयन-वासवदत्ता के प्रेम और विवाह का वर्णन है। मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा उदयन को राजा प्रद्योत के यहां से चुराने तथा उसकी नीति-वैशिष्टय का वर्णन है।

<u>स्वप्नवासवदत्ता</u>

इस नाटक में कुल 6 अंक है। यह उदयन-कथाश्रित है। भास की नाट्यकुशलता का यह चूड़ान्त निदर्शन है। इसे "प्रतिज्ञा" का उत्तरार्द्ध समझना समुचित होगा। मन्त्री यौगन्धरायण का "वासवदत्ता अग्नौ प्रविष्ठा" वासवदत्ता अग्नि में भस्म हो गई इस प्रवाद को विस्तृत कर उदयन को पद्मावती से विवाह कराने तथा उदयन के अपहृत राज्य का वर्णन है।

<u>मृच्छकटिक</u>

यह शूद्रक कृत नाटक है। इस नाटक में दस अंक है। यह रूपक का एक भेद "प्रकरण" है। इसमें एक निर्धन ब्राह्मण चारूदत्त का वसन्तसेना नामक गणिका (वेश्या) से प्रेम-वर्णन है। अन्त में दोनों का प्रेम सफल होता है और वसन्तसेना का चारूदत्त से विवाह होता है। साथ ही "पालक" नामक राजा को मार कर आर्यक के राजा होने का वर्णन है।

मालविकाग्निमित्र

यह कालिदास कृत नाटक है। इसमें पाँच अंक है। इस नाटक में मालविका और अग्निमित्र के प्रणय और विवाह का वर्णन है। मालविका विदर्भराजपुत्र माधवसेन की बहिन है। दामादों द्वारा राज्य अपहृत होने पर अमात्य सुमति मालविका को सुरक्षित रखने के लिए छिपा कर लाता है। वन में डाकुओं के द्वारा सुमति की हत्या कर दी जाती है और मालविका राजा अग्निमित्र की महारानी धारिणी के भाई वीरसेन को प्राप्त हुई। तदनन्तर मालविका दासी के रूप में धारिणी के पास रहती है और राजा अग्निमित्र उस पर अनुरक्त हो जाता है।

विक्रमोर्वशीय

यह कालिदास कृत नाटक है। यह पांच अंकों में "त्रोटक" नामक उपरूपक है। इसमें राजा पुरूरवा (विक्रम) और उर्वशी नामक अप्सरा की प्रणय-कथा वर्णित है।

अभिज्ञानशाकुन्तल

कालिदास कृत यह शाकुन्तल संस्कृत-साहित्य ही नहीं अपितु विश्व-साहित्य का सर्वोत्कृष्ट नाटक है। इसमें सात अंक है। इस नाटक में दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम, वियोग और पुनर्मिलन का वर्णन है।

मुद्राराक्षस

यह विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस नाटक है। यह सात अंको का राजनीति विषयक नाटक है। इसमें मुद्रा (अंगूठी) के द्वारा राक्षस को वश में करने का वर्णन है, अतः इसका नाम मुद्राराक्षस पड़ा। इसमें यह दिखाया गया है कि चाणक्य ने नन्दवंश का नाश किया है और अपनी कूटनीतिक चालों से नन्दवंश के मुख्य मन्त्री राक्षस को वह चन्द्रगुप्त का मुख्य मन्त्री बना देता है। इसमें राक्षस और चाणक्य के दांव-पेंचों, उखाड़-पछाड़ और सन्धि-विग्रहों का विस्तृत वर्णन है।

देवीचन्द्रगुप्त

विशाखदत्त का दूसरा नाटक "देवीचन्द्रगुप्त" है। इस नाटक में ध्रुवदेवी (अथवा ध्रुवस्वामिनी) के चन्द्रगुप्त द्वितीय शत्रु के पंजे से मुक्त किये जाने की घटना वर्णित है। इस प्रकार "देवीचन्द्रगुप्त" के उपलब्ध अंशों के आधार पर विशाखदत्त का समय छठीं शताब्दी ही प्रतीत होता है[110]।

राघवानन्द

विशाखदत्त ने "राघवानंद" नामक एक और नाटक की रचना की थी, पर यह कृति अब उपलब्ध नहीं है[111]।

प्रियदर्शिका

यह हर्ष कृत नाटिका है। इस नाटिका में चार अंक है। इसमें राजा उदयन और आरण्यिका (प्रियदर्शिका) के प्रणय और परिणय कावर्णन है।

नागानन्द

यह भी हर्ष कृत नाटक है। इस नाटक में पाँच अंक है। इसमें जीमूतवाहन नामक विद्याधर राजकुमार का अपनी बलि देकर शंखचूड़ नामक सर्प को गरुड़ से बचाने का वर्णन है।

रत्नावली

यह भी हर्ष कृत नाटिका है। इस नाटिका में चार अंक हैं। इसमें राजा उदयन और सिंहल देश की राजकुमारी रत्नावली (सागरिका) के प्रणय और परिणय का वर्णन है।

---

110. Winternitz: Historical Dramas in Sankrit Literature; Krishnaswamy Aiynangar Com. Vol. P. 360.

111. K.H. Dhruva in the Poona Orientalst, Oct. 1936, P. 42.

वेणीसंहार

यह भट्टनारायण कृत नाटक है। इस नाटक में छः अंक है। इसमें भीम के द्वारा द्रौपदी के वेणीसंहार (वेणी को बांधने) का वर्णन है, अतः नाटक का नाम वेणीसंहार पड़ा। इसमें द्रौपदी के अपमान का बदला लेने के लिए भीम प्रतिज्ञा करता है कि वह दुःशासन की छाती का खून पीएगा और दुर्योधन की जांघ तोड़ेगा। दोनों प्रतिज्ञाएं पूरी होने पर वह द्रौपदी की वेणी बांधता है।

मालतीमाधव

यह भवभूति कृत नाटक है। यह दस अंको का प्रकरण नाटक है। इसमें मालती और माधव तथा मकरन्द और मदयन्तिका के प्रणय और परिणय का वर्णन है।

महावीरचरित

यह भवभूति कृत नाटक है। इसमें सात अंक है। इस नाटक में राम के विवाह से लेकर राम-राज्याभिषेक तक रामायण की कथा वर्णित है।

उत्तररामचरित

यह भवभूति कृत नाटक है। इसमें सात अंक है। इस नाटक में रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा वर्णित है। इसमें सीता-परित्याग, राम-विलाप, लव कुश प्राप्ति और राम केद्वारा निर्दोष सीता के स्वीकार किए जाने का वर्णन है।

शारिपुत्रप्रकरण

यह अश्वघोष कृत नाटक है। यह प्रकरण नाटक है। इसमें नौ अंक है। इसमें मोद्गलायन और शारिपुत्र नामक दो युवकों के बुद्ध के उपदेश से प्रभावित होकर बौद्ध धर्म में दीक्षित होने का वर्णन है।

रूपकात्मक नाटक

यह अश्वघोष कृत नाटक है। यह नाटक खण्डित रूप में प्राप्त हुआ है। इसका नाम अज्ञात है। यह रूपकात्मक नाटक है और परकालीन "प्रबोधचन्द्रोदय" आदि रूपकात्मक नाटकों की शैली का जन्मदाता है। इसके पात्र हैं - बुद्धि, कीर्ति, धृति आदि।

गणिका विषयक नाटक

यह भी अश्वघोष कृत नाटक है। इसका नाम अज्ञात है। इसके पात्र है- मागधवती (गणिका), कौमुदगन्ध (विदूषक), नायक (संभवतः नाम सोमदत्त) शारिपुत्र, मौद्गल्यायन आदि। इसका उद्देश्य धार्मिक उपदेश है। इसमें हास्यरस भी है।

अनर्घराघव

यह मुरारि कृत नाटक है। यह सात अंको का नाटक है। इसमें रामायण की कथा वर्णित है। विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा के लिए दशरथ से राम और लक्ष्मण को मांगते हैं। यहां से लेकर रामराज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है।

बालरामायण

यह राजशेखर कृत नाटक है। यह दस अंकों का एक महानाटक है। प्रत्येक अंक एक नाटिका के बराबर है। इसमें 741 पद्य है। इसमें शार्दूलविक्रीडित एवं स्त्रग्धर छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसमें रामकथा वर्णित है। रावण को एक प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है और उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की गई है।

बालभारत या प्रचण्डपाण्डव

यह राजशेखर कृत नाटक है। इसके दो अंक प्राप्त होते हैं। इसमें द्रौपदी-स्वयंवर, द्यूत और द्रौपदी-चीरहरण की घटनाएं वर्णित हैं।

विद्धशालभंजिका

यह भी राजशेखर कृत नाटिका है। वस्तुतः यह शास्त्रीय दृष्टि से नाटिका है। इसमें चार अंक है। इसमें रत्नावली आदि के तुल्य राजकीय प्रणय-क्रीडा वर्णित है।

कर्पूरमंजरी

यह भी राजशेखर कृत नाटक है। यह चार अंकों का "सट्टक" नामक रूपक है। वस्तुतः यह नाटिका के तुल्य है। इसका कथानक रत्नावली के तुल्य राजपरिवार की प्रणय-क्रीडा से संबद्ध है।

अश्वघोष के दो नाटक और माने जाते है। एक का नाम "हरविलास" है और दूसरे का नाम अज्ञात है। ये दोनों नाटक अप्राप्य है।

कुन्दमाला

यह दिङ्नाग कृत नाटक है। इसमें छः अंक है। इस नाटक में राम के द्वारा सीता के परित्याग से लेकर राम-सीता मिलन तक की घटना का वर्णन है। गोमती के तट पर घूमते हुए राम-लक्ष्मण ने जल में बहती हुई कुन्द के फूलों की माला को देखकर सीता का पता लगाया, अतः नाटक का नाम कुन्दमाला है।

प्रबोधचन्द्रोदय

यह कृष्णमिश्र कृत नाटक है। इनका एकमात्र रूपकात्मक नाटक "प्रबोधचन्द्रोदय ही प्राप्त होता है। यह अद्वैत वेदान्त विषयक नाटक है। इस नाटक में छः अंक है। इसमें वर्णन है कि पुरुष मति, विवेक, श्रद्धा, उपनिषद् आदि के सहयोग से अविद्या आदि के अन्धकार को पार करके विष्णुभक्ति की कृपा से अपने वास्तविक स्वरूप "विष्णु" पद को प्राप्त करता है।

<u>प्रसन्नराघव</u>

यह जयदेव कृत नाटक है। इस नाटक में सात अंकों में रामायण की कथा वर्णित है। इसमें सीता-स्वयंवर से लेकर रावण-वध के बाद राम के अयोध्या लौटने और राज्याभिषक का वर्णन है।

उपर्युक्त नाटकों के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में रूपक के विविध भेदों पर नाटकों की रचना करने वालों की एक वृहत् परम्परा विद्यमान है। इनमें से कुछ नाटककारों के नाममात्र ही ज्ञात हैं। कुछ के नाटक लुप्तप्राय, अज्ञात या अप्रकाशित हैं। इनमें से कुछ प्रचलित, कुछ अप्रचलित और कुछ उद्धरणों आदि में उद्धृत किए गये हैं। इनकी एक बृहत् सूची डॉ0 कपिल देव द्विवेदी द्वारा "संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास" में दी गई है जो निम्नलिखित है-

§क§ सामान्य नाटककार

	नाटककार	नाटक	समय	विशेष
	ईसा पूर्व			
1.	वररुचि	उभयाभिसारिका	4थी श0ई0पू0	भाण
	प्रथम शता0ई0			
2.	ईश्वरदत्त	धूर्तविटसंवाद	1म शता0	भाण
3.	बोधायन	भगवदज्जुक	"	प्रहसन
4.	§अज्ञात§	वीणावासवदत्तम्	"	उदयन-वासवदत्ता अं0 4
5.	§अज्ञात§	दामक	"	प्रहसन, कर्णकथा
	चतुर्थ शता0ई0			
6.	§अज्ञात स्त्री कवि§	कौमुदीमहोत्सव	340 ई0	चन्द्रगुप्त द्वितीय 5 अं0

	नाटककार	नाटक	समय	विशेष
	7वीं शता0ई0			
7·	महेन्द्रविक्रमवर्मा	मत्तविलास	610 ई0	प्रहसन, कांची-वर्णन
8·	चन्द्र ‖चन्द्रक‖	लोकानन्द	650 ई0ल0	बौद्धनाटक
9·	श्यामिलक	पादताडितक	7वीं पू0	भाण, ब्राह्मण वेश्या-कथा
10·	शक्तिभद्र	आश्चर्यचूड़ामणि उन्मादवासवदत्त	700 ई0 "	रामकथा, 7 अंक वासवदत्ता कथा
	8वीं शता0 ई0			
11·	यशोवर्मा	रामाभ्युदय	733 ई0ल0	राम कथा, 6 अंक
12·	अनंगहर्ष ‖मात्रराज, मात्राराज‖	तापस-वत्सराज	800 ई0ल0	उदयन-वासवदत्ता, 6
13·	मायुराज	उदात्तराघव	800 "	रामकथा
14·	कुलशेखरवर्मन्	सुभद्रापनञ्जय तपनीसंवरण	800 "	सुभद्राहरण, 5 संवरण-तपती-कथा, 6 अंक
	9वीं शता0 ई0			
15·	हनुमान्	महानाटक	850 ई0ल0	रामकथा, अंक 9
16·	दामोदर मिश्र	हनुमन्नाटक	850 ई0	रामकथा, अंक 14
17·	शिवस्वामी	‖स्फुट पद्य प्राप्य‖	850 ई0	
18·	भीमट	स्वप्नदशानन् प्रतिज्ञा-चाणक्य, 5	900 ई0	
19·	क्षेमीश्वर	चण्डकौशिक, नैषधानन्द	900 ई0 "	हरिश्चन्द्र कथा, 5 अंक नलकथा, 7 अंक
	10वीं शता0ई0			
20·	‖अज्ञात‖	तरंगदत्त	10वीं0 श0	धनिक द्वारा उद्धृत
21·	‖अज्ञात‖	पुष्पदूषितक	"	"
22·	‖अज्ञात‖	पाण्डवानन्द	10वीं श0	
23·	‖अज्ञात‖	चलितराम	"	

	नाटककार	नाटक	समय	विशेष
	11वीं शता0ई0			
24.	क्षेमेन्द्र	चित्रभारत कनकजानकी	1050 ई0 "	महाभारत कथा, रामकथा
25.	बिल्हण	कर्णसुन्दरी	1080 ई0	कर्णाटकुमारी, नाटिका, 4 अंक
	12वीं शता0ई0			
26.	शंखधर कविराज	लटकमेलक	12वीं0 पू0	प्रहसन
27.	यशश्चन्द्र	मुद्रितकुमुदचन्द्र	"	कुमुदचन्द्र-पराजय
28.	कंचनाचार्य	धनञ्जयविजय	"	अर्जुन-विजय-कथा
29.	रामचन्द्र	नलविलास, निर्भयभीम, सत्य-हरिश्चन्द्र, कौमुदी-मित्रानन्द आदि।	"	नल-कथा, 7
30.	विग्रहराजदेव	हरकेलि-नाटक	1153 ई0	शिव-अर्जुन-युद्ध
31.	सोमदेव	ललित-विग्रहराज	12वीं उ0	
32.	वत्सराज	कर्पूरचरित, किरातार्जुनीय, हास्य चूड़ामणि, रुक्मिणी-हरण, त्रिपुरदाह, समुद्र-मन्थन	12वीं0 उ0	भाण, व्यायोग, प्रहसन ईहामृग, डिम, समवकार
33.	सुभट	दूताअंगद	12वीं0 उ0	छायानाटक, अंगद-कथा
13वीं शता0ई0				
34.	मदन	पारिजात-मंजरी	13वीं0 पू0	अर्जुनवर्मा-प्रणय-कथा
35.	जयसिंह सूरि	हम्मीर-मदमर्दन	1230 ई0	हम्मीर-मर्दन, 5 अंक
36.	रुद्रदेव §राजा§	उषारोदिय, ययाति-चरित	13वीं0 उ0	उषा-अनिरुद्ध ययाति-शर्मिष्ठा

	नाटककार	नाटक	समय	विशेष
37·	प्रह्लादन	पार्थ-पराक्रम	1300 ल0	व्यायोग, अर्जुनकथा
38·	मोक्षादित्य	भीम-विक्रम	"	भीमकथा, व्यायोग
39·	रामभद्र मुनि	प्रबुद्धरौहिणेय	"	रौहिणेय-कथा, 6 अंक
40·	रविवर्मा	प्रद्युम्नाभ्युदय	"	प्रद्युम्न-प्रभावती, 5 अंक
41·	विद्यानाथ	प्रतापरुद्रियकल्याण	"	प्रतापरुद्र-कथा
42·	यशपाल	मोहपराजय	13वीं उ0	रूपकात्मक नाटक
	14वीं शता0ई0			
43·	नरसिंह	कादम्बरी-कथा	1350 ई0	कादम्बरी कथा
44·	विश्वनाथ	सौगन्धिकाहरण	14वीं पू0	व्यायोग, महाभारत-कथा
45·	ज्योतिरीश्वर	धूर्तसमागम	"	प्रहसन
46·	भास्कर	उन्मत्तराघव	1350 ई0	रामकथा, एकांकी
47·	वेदान्तदेशिक (या वेंकटनाथ)	संकल्प-सूर्योदय	14वीं पू0	रूपकात्मक, 10 अंक
48·	विरूपाक्ष	उन्मत्तराघव, नारायण-विलास	14वीं उ0	रामकथा
49·	मणिक	भैरवानन्द	"	भैरव-मदनवती-कथा
50·	उद्दण्ड (उद्दण्डी)	मल्लिकामारुत	"	प्रकरण, 10 अंक
51·	काशीपति कविराज	मुकुन्दानन्द	"	भाण
	15वीं शता0ई0			
52·	वामनभट्ट बाण	पार्वती-परिणय, कनकलेखा-कल्याण शृंगार-भूषण	15वीं पू0	नाटक, 5 अंक नाटिका, 4 अंक भाण
53·	व्यास रामदेव	रामाभ्युदय, पाण्डवाभ्युदय सुभद्रा-परिणय	15वीं0 पू0	रामायण-कथा छाया-नाटक, महाभारत कथा

	नाटककार	नाटक	समय	विशेष
54.	गंगाधर	गंगादास-प्रताप-विलास	1450 ई0	गंगादास-कथा
55.	हरिहर	भर्तृहरिनिर्वेद	15वीं पू0	भर्तृहरि-वैराग्य, 5 अंक
56.	जीवराम याज्ञिक	मुरारि-विजय	1485 ई0	भागवत-कथा
57.	रूपगोस्वामी	विदग्ध-माधव, ललितमाधव, दानकेलि-कौमुदी	1500 ई0	नाटक, 7 अंक कृष्णकथा, प्रकरण, 10 अंक, कृष्ण-कथा भाण कृष्ण-कथा
58.	गोकुलनाथ	मुदितमदालसा अमृतोदय	1500ई0ल0	नाटक, 7 अंक रूपकात्मक
	16वीं शता0ई0			
59.	बाल कवि	रत्नकेतूदय, रविवर्मविलास	1537ई0ल0	केरलराज रविवर्मा " "
60.	लक्ष्मण माणिक्यदेव	कुवलयाश्वचरित, विख्यातविजय	16वीं0 उ0	मदालसा-प्रणय नकुल-कौरव युद्ध
61.	विलिनाथ	मदनमंजरी-महोत्सव	"	चन्द्रवर्मा-पराजय
62.	श्रीनिवास दीक्षित	भैमीपरिणय, भावनापुरुषोत्तम	1570 ई0	नल्-कथा रूपकात्मक
63.	शेषकृष्ण	कंसवध	1600 ई0	कंसवध
64.	कवि कर्णपूर	चैतन्यचन्द्रोदय	16वीं उ0	प्रतीकात्मक, 10 अंक
65.	जगदीश्वर भट्टाचार्य	हास्यार्णव	"	प्रहसन, 2 अंक
	17वीं शता0ई0			
66.	यज्ञनारायण दीक्षित	रघुनाथ-विलास	1630 ई0	तंजौर राजा रघुनाथ
67.	जगज्जयोतिर्मल्ल	हरगौरी-विवाह	17वीं पू0	संगीतप्रधान
68.	गुरुराम	मदन-गोपाल-विलास सुभद्रा-धनञ्जय, रत्नेश्वरप्रसादन	1630 ई0	भाण नाटक, 5 अंक

69.	राजचूड़ामणि दीक्षित	आनन्दराघव, कमलिनीकलहंस, शृंगारसर्वस्व-भाण	17वीं पू0	
70.	नीलकंठ दीक्षित	नलचरित	1650 ई0	नलकथा, 6 अंक
71	वेंकटाध्वरी	प्रद्युम्नानन्द	1650ई0ल0	प्रद्युम्न-कथा, 6 अंक
72.	रुद्रदास	चन्द्रलेखा	"	सट्टक
73.	महादेव	अद्भुत-दर्पण	"	रामकथा, 10 अंक
74.	वेद कवि (या आनन्दराय मखिन्)	विद्या-परिणय जीवानन्दन	17वीं उ0	रूपकात्मक, 7 अं0 "
75.	रामभद्र दीक्षित	जानकी-परिणय, शृंगार-तिलक	1700ई0	रामकथा (अय्यभाण)
76.	नल्ल कवि (भूमिनाथ)	सुभद्रा-परिणय शृंगारसर्वस्व-भाण चित्तवृत्तिकल्याण, जीवन्मुक्ति-कल्याण	"	भाण रूपकात्मक
77.	कवितार्किक	कौतुकरत्नाकर	17वीं श0	प्रहसन
78.	सामराज दीक्षित	धूर्तनर्तक, श्रीदामचरित	" "	प्रहसन श्रीदामन्चरित
79.	सठकोप	वसन्तिकापरिणय	"	नरसिंह-प्रेमकथा
80.	कुमारताताचार्य	पारिजात-नाटक	17वीं श0	पारिजातहरण, 5 अंक
81.	रामानुज	वसुलक्ष्मीकल्याण	"	रंगनाथ-वसुलक्ष्मी
	18वीं शता0ई0			
82.	भूदेव शुक्ल	धर्मविजय	1737 ई0	रूपकात्मक, 5 अंक
83.	विश्वेश्वर	रुक्मिणी-परिणय नवमालिका शृंगारमंजरी	18वीं पू0	नाटक नाटिका सट्टक

	नाटककार	नाटक	समय	विशेष
84·	शंकर दीक्षित	प्रद्युम्न-विजय	18वीं पू0	
85·	जगन्नाथ	रतिमन्थन, वसुमती-परिणय	18वीं0 पू0	
86·	जगन्नाथ	सौभाग्य-महोदय	"	आभूषण पात्र है
87·	मलारी आराध्य	शिवलिंगसूर्योदय	"	शैव धर्म
88·	देवराज	बालमार्तण्ड-विजय	18वीं उ0	
89·	वरदाचार्य	वसन्ततिलक	"	(अम्म भाण)
90·	घनश्याम	मदन-संजीवन नवग्रहचरित आनन्द-सुन्दरी डमरूक	"	भाण सट्टक सट्टक प्रहसन
91·	रामवर्मन्	रूक्मिणी-परिणय श्रृंगार-सुधाकर	"	कृष्ण-कथा
92·	विश्वनाथ	मृगांकलेखनाटिका	"	नाटिका
93·	कृष्णदत्त	कुवलयाश्वीय पुरंजन-कथा	18वीं श0	मदालसा-प्रणय, 7 अंक भागवत कथा, 5 अंक
94·	वेंकट सुब्रह्मण्य	वसुलक्ष्मी-कल्याण	"	
95·	पेरू सूरि	वसुमंगल	"	प्रणय-कथा
96·	रामदेव	विद्यामोदतरंगिणी	18वीं श0	रूपकात्मक
97·	विट्ठल	आदिलवंश-कथा	"	छायानाटक, आदिलवंश
98·	मथुरादास	वृषभानुजा	अनिर्णीत	नाटिका
99·	गोपीनाथ चक्रवर्ती	कौतुक-सर्वस्व	"	प्रहसन
100·	नीलकण्ठ	कल्याण-सौगंधिक	"	
101·	नरसिंह	शिवनारायणभंजमहोदय	"	आध्यात्मिक
102·	लोकनाथ भट्ट	कृष्णाभ्युदय	"	
103·	कृष्णावधूत घटिकाशत	सर्वविनोद	"	

	नाटककार	नाटक	समय	विशेष
104·	कृष्ण मिश्र	वीर-विजय		
105·	शंकर	शारदा-तिलक	"	
106·	रामकृष्ण	गोपालकेलि-क्रीड़ा	"	
107·	माधव	सुभद्राहरण	"	
	19वीं शता0ई0			
108·	राम	अन्मथोन्मथन	1820	डिम
109·	कोटिलिंगपुर-राजकुमार	रससदन-भाण	1850	भाण
110·	पद्मनाम	त्रिपुरविजय	19वीं पू0	व्यायोग, शिवकथा
111·	बल्लिशाय कवि	ययातितरुणनन्दनम् रोशनानन्दन	" "	ययातिकथा अनिरुद्ध-रोशना, 5 अंक
112·	विरार राघव	रामराज्याभिषेक वालिपरिणय	" "	रामकथा, 7 अंक बालि-कथा
113·	रामचन्द्र	शृंगारसुधार्णव	"	भाण
114·	शंकरलाल महामहोपाध्याय	सावित्रीचरित, धुवाभ्युदय पार्वती-परिणय आदि	19वीं उ0	सावित्री-कथा धुवकथा पार्वती-विवाह
115·	ईचम्बदी श्रीनिवासाचारी	शृंगारतरंगिणी उषा-परिणय	19वीं उ0	 उषा-विवाह
116·	सोंठी भद्रादि रामशास्त्री	मुक्तावल	"	
117·	वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य	चैत्रयज्ञ	"	दक्षयज्ञ, 5 अंक
118·	पेरी काशीनाथ शास्त्री	चांचालिकारक्षणम् यामिनीपूर्णतिलक	"	
119·	श्रीनिवासाचारी	धुवचरित, क्षीराब्धिशयनम्	"	धुव-कथा
120·	पंचानन	अमरमंगल	"	अमरसिंह-चरित्र

	नाटककार	नाटक	समय	विशेष
121·	मूलशंकर माणिक लाल याज्ञिक	छत्रपति-साम्राज्य	19वीं उ0	शिवाजी चरित, 10 अंक
		प्रताप-विजय	"	महाराणा प्रताप, 9 अंक
		संयोगिता-स्वयंवर	"	पृथ्वीराज चौहान
122·	अम्बिकादत्त व्यास	सामवतम्	"	सामवती-सुमेधा-विवाह
123·	आर0 कृष्णमाचारी	वासन्तिकस्वप्न	1892 ई0	"मिड् समर नाइट ड्रीम" का अनुवाद
124·	चोक्कनाथ	सेवन्तिकापरिणय	अनिर्णीत	अंक 5
125·	धर्मसूरि	नरकासूर-विजय	"	व्यायोग
	20वीं शता0ई0			
126·	हरिदास सिद्धांत वागीश	शिवाजी चरित		शिवाजी-चरित, 10 अंक
		वंगीय प्रताप	20वीं पू0	वंगीय-चरित, 8 अंक
		मेवाड प्रताप आदि		महाराणा प्रताप
127·	लक्ष्मण सूरि	दिल्ली साम्राज्य	1912 ई0	
128·	मथुराप्रसाद दीक्षित महामहोपाध्याय	वीरप्रताप, शंकर-विजय, पृथ्वीराज गांधी-विजय भारत-विजय भक्त सुदर्शन	20वीं पू0	राणा प्रताप, दार्शनिक, ऐतिहासिक दुःखान्त, गांधी-चरित, भारत-स्वाधीनता, 7अंक दुर्गा महत्त्व
129·	एस0एन0ताड़पत्रीकर	विश्वमोहन	1951 ई0	"गोएथ्रेज फोस्ट पर आश्रित
130·	नीपाज़े भीम भट्ट	काश्मीरसंधानसमुद्यम	1954 ई0	कश्मीर-समस्या, एकांकी
131·	वाई0महालिंग शास्त्री	कलिप्रादुर्भाव	1956 ई0	रूपकात्मक, कलि-कथा
132·	सदाशिव दीक्षित	सरस्वती, पाणिनी, कुसंगति	20वीं0 उ0	भारतीय संस्कृति, एकांकी
133·	डॉ0 यतीन्द्र विमल चौधरी	निष्किंचन-यशोधर,		अंक 7
		महिमामय-भारत,		भारत-वर्णन
		भारत-हृदयारविन्द		"
		भारत-भास्कर, 12		"

	नाटककार	नाटक	समय	विशेष
134·	जीवन लाल पारीख	छायाशाकुन्तल	20वीं0 उ0	संक्षिप्त शाकुन्तल, 1 अंक
135·	पिलाई	भीम-पराक्रम	"	भीम-चरित
136·	के0एस0रामस्वामी	रति-विजय	"	
137·	वेलणकर	यां चिन्तयामि, तमसो मा ज्योतिगर्मय, प्राणाहुती	"	
138·	डा0 कपिलदेव द्विवेदी	परिवर्तनम्	"	सामाजिक-परिवर्तन

§ख§ रूपकात्मक नाटक

1·	अश्वघोष	शारिपुत्र-प्रकरण	1म श0ई0	पात्र-बुद्धि, कीर्ति, धृति
2·	कृष्ण मिश्र	प्रबोध-चन्द्रोदय	1100 ई0	पात्र-मनि, दंभ, श्रद्धा आदि।
3·	यशःदेव	मोहपराजय	13वीं उ0	पात्र-विवेक, शान्ति, कृपा आदि
4·	वेदान्तदेशिक	संकल्प-सूर्योदय	14वीं पू0	10 अंक, शान्तरस
5·	गोकुलनाथ	अमृतोदय	1500ई0ल0	पात्र-मीमांसा, श्रुति
6·	श्रीनिवास दीक्षित	भावना-पुरूषोत्तम	1570 ई0	
7·	कणपूर §गोस्वामी परमानन्द§	चैतन्य-चन्द्रोदय	16वीं उ0	
8·	वेद कवि §आनन्द"राय मखिन्§	विद्या-परिणय जीवानन्दनम्	17वीं उ0	विद्या-जीवात्मा, 7 अंक जीवमोक्ष वर्णन
9·	नल्ल कवि §नल्लाध्वरी§	चित्तवृत्तिकल्याण जीवन्मुक्तिकल्याण	1700 ई0	
10·	भूदेव शुक्ल	धर्म-विजय	1737 ई0	धर्ममहत्त्व, 5 अंक

	नाटककार	नाटक	समय	विशेष
11·	रामदेव	विद्यामोदतरंगिणी	18वीं श0	विद्या-महत्त्व
12·	वाई0 महालिंग शास्त्री	कलिप्रादुर्भाव	1956 ई0	कलि-प्रारम्भ-चर्चा

(ग) नाटक की अन्य विधाएं

छाया नाटक

1·	सुभट	दूतांगद	12वीं उ0	अंगद-कथा
2·	व्यास रामदेव	सुभद्रा-परिणय	15वीं पू0	महाभारत-कथा
		रामाभ्युदय		रामकथा
		पाण्डवाभ्युदय		महाभारत-कथा
3·	विट्ठल	आदिल-वंशकथा	18वीं श0	आदिल-वंश
4·	शंकरलाल	सावित्रीचरित	1882 ई0	

रेडियो रूपक

1·	वेलणकर	प्राणपहुती (हुतात्मा दधीचि,	1963	दिल्ली से प्रसारित
		रानी दुर्गावती)	1964	" "

अनुदित रूपक

1·	आर0 कृष्णमाचारी	वासन्तिक-स्वप्न	1892 ई0	मिड्समर नाइट्स ड्रीम का अनुवाद
2·	अनन्त त्रिपाठी शर्मा	द्वादशी रात्रि, यथा ते रोचते	1965 ई0	ट्वेल्थ नाइट, एज यू लाइक इट

अनेकार्थक रूपक

1·	कृष्णानन्द वाचस्पति	अन्तर्व्याकरण नाट्य-परिशिष्ट	1894 ई0	व्याकरण और दर्शनपरक दो अर्थ वाले पद्य

****

द्वितीय अध्याय

पात्र योजना

- नायक
- नायिका
- पात्रों का वर्गीकरण
- नाटकों का संघटक तत्त्व
- वृत्तियाँ

नाटकों में पात्र-योजना

शास्त्रीय दृष्टि से "वस्तु" के पश्चात् "नेता" ﴾पात्र﴿ नाटक का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। नाटक में नायक, नायिका, खलनायक आदि पात्र रंगमञ्च पर उपस्थित होकर नाटक की कथावस्तु को क्रमशः प्रारम्भ से लेकर फलागम पर्यन्त अभिनय ﴾सात्विक, वाचिक, आंगिक, आहार्य﴿ के माध्यम से पहुँचाते है। "नायक" शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग भरत के "नाट्यशास्त्र" में परिलक्षित होता है। अग्निपुराण में भी नायक शब्द का प्रयोग हुआ है। दशरूपककार धनञ्जय और साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने नायक के स्थान पर नेता शब्द का प्रयोग किया है।[1] पहले नायक और नेता समानार्थक रूप से प्रयुक्त होते थे तथा इनका प्रयोग मुख्य पात्र के अतिरिक्त गौड़ पात्रों के लिये भी होता था। अतः पात्र शब्द से तात्पर्य मुख्य और गौड़ सभी प्रकार के पात्रों से है। यद्यपि हमारा गवेषण का विषय "आर्ष पात्र" है लेकिन इसके सूक्ष्म अध्ययन के लिए, इसी परिप्रेक्ष्य में, संस्कृत नाटकों में पात्र-योजना के अन्तर्गत पात्रों के स्वरूप आदि का विस्तृत विवेचन कर लेना अप्रासंगिक न होगा।

"नायक" शब्द की व्युत्पत्ति "नी" ﴾नय्﴿ धातु से हुई है जिसका अर्थ है - ले जाना, आगे बढ़ाना"। नाटक में निहित कथानक को विकास की ओर ले जाने वाला, तथा भारतीय दृष्टि के अनुसार मुख्य कार्य के फल को प्राप्त करने वाला "नायक" होता है। यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कथावस्तु के विकास में नायक का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। उसके उत्थान और पतन की कहानी ही नाटकीय कथावस्तु को आगे बढ़ाती है और नाटक के उद्देश्य को स्पष्ट करने में सहायक होता है। नायक के चरित्र से नाटक में प्रयुक्त अन्य पात्रों का चरित्र भी स्पष्ट होता है। नायक में जीवन के महत्त्वपूर्ण और विविध रूपों तथा पक्षों को धारण करने की सामर्थ्य एवं योग्यता होती है। जहां एक ओर संवाद के माध्यम से नाटक में कौतूहल, जीवंतता, रोचकता आती है

1· दशरूपक 2/9
2· साहित्यदर्पण 3/30

वहीं दूसरी ओर पात्रों के मानसिक संघर्ष तथा उसके क्रमशः चरम विकास और परिणति में भी सहायक होते हैं। वस्तुतः नाटक के इस महत्त्वपूर्ण तत्त्व का विकास पात्रों के द्वारा सम्भव होता है। इसलिए नाटक में पात्रों के महत्त्व को सभी ने स्वीकार किया है। आचार्य सीताराम चतुर्वेदी ने पात्र की व्याख्या करते हुए कहा है कि - "भूमिकार्थमायोजिताः पात्राः[3] अर्थात् नाटककार द्वारा जो व्यक्ति अभिनय के लिए नियोजित किए जाते हैं उन्हें पात्र कहते हैं। नाटक में अभिनय तत्त्व की प्रधानता रहती है। राम अथवा महाराज उदयन आदि का प्राचीन इतिवृत्त, अभिनेतृगण रंगमञ्च पर उपस्थित होकर अभिनय के माध्यम से उपस्थित करते हैं अतएव राम, उदयन प्रभृति पात्रों की उन-उन अवस्थाओं का अनुकरण मात्र करते हैं। कार्य-व्यापार की सफल प्रस्तुति ही नाटकीय अर्थ की संप्रेषणीय शक्ति है। यह तभी संभव है जब अभिनेतृगण इतने सहज ढंग से कार्य-व्यापारों का अभिनय करें कि दर्शकों का उनके साथ तादात्म्य स्थापित हो जाय। अतः नाटक में पात्रों का नियजन कला एवं शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

नाटक में पात्रों के संख्या के विषय में आचार्यो ने कोई दिशा-निर्देश नहीं किया है। भरत मुनि ने प्रधान पात्र के लिए नायक शब्द का प्रयोग किया है। अधिकांश परवर्ती आचार्यो ने इन्हीं मान्यताओं का पालन किया है। नाट्यदर्पणकार ने भी नायक के लिए नेता शब्द का प्रयोग किया है। रूपगोस्वामी ने नायक के लिए "पति" शब्द का प्रयोग किया है। वात्सायन के "कामसूत्र" में "नागर" शब्द का प्रयोग हुआ है। पात्रों के सम्बन्ध विभिन्न आचार्यो ने अपने-अपने मत व्यक्त किये है। आचार्य भरत प्रकृति-भेद से तीन प्रकार के प्रकृति के मनुष्य होते हैं वे जितेन्द्रिय, सदाचारी, ज्ञानवान, नाना प्रकार के शास्त्रों में कुशल, सबको प्रसन्न करने वाले, ऐश्वर्यशील, दीनों को सान्त्वना देने वाले शास्त्रमर्मज्ञ, गम्भीर, उदार, धैर्य त्याग आदि गुणों से युक्त होते हैं।[4] मध्यम प्रकृति वाले पुरुष लोकव्यवहार

---

3. अभिनव नाट्यशास्त्र, पृ० 183
4. अत ऊर्ध्वप्रवक्ष्यामि प्रकृतीनां तु लक्षणम्।
   समासतस्तु प्रकृतिस्त्रिविधा परिकीर्तिता।।1।।
   पुरुषावामथ स्त्रीणामुत्तमाधममध्यमा।
   जितेन्द्रिया ज्ञानवती नानाशिल्पविचक्षणा।।2।।

में कुशल, शिल्पशास्त्र के ज्ञाता, विज्ञानयुक्त अर्थात् मनुष्य पहचान कर व्यवहार करने वाले तथा व्यवहार में मधुर होते हैं।[5] इनके अतिरिक्त सबसे रूखा बोलने वाले, दूसरों से बुरा व्यवहार करने वाले, दुष्ट, मन्दबुद्धि, क्रोधी, हिंसक, मित्रघाती, अनेक कौशलों से प्राण लेने वाले, पर निन्दा करने वाले अभिमानी, उद्दण्ड, कृतघ्न, आलसी, मान्य का अपमान करने में प्रवीण, स्त्रियों के पीछे फिरने वाले, कलह प्रिय, दूसरे के दोष ढूँढ़ने वाले, पाप कार्य करने वाले, दूसरों की सम्पत्ति का अपहरण करने वाले पुरुष अधम प्रकृति के होते हैं।[6] नाटक में कई पात्र होते हैं। प्रत्येक पात्रों का परस्पर सम्बन्ध प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से रहता है। ये सभी पात्र इतिवृत्त के विकास में सहभागी बनते हैं साथ ही संघर्ष और रोचकता को जन्म देते हैं।

इस प्रकार आचरण की दृष्टि से पुरुषों के समान ही स्त्रियों की भी प्रकृति, उत्तम, मध्यम, अधम, तीन प्रकार की होती है।[7] शील-गुण स्वभावादि

दक्षिणाऽथ भगाल्लक्षादीनानां परिसानित्वनी
नानाशास्त्रार्थ सम्पन्ना गाम्भीर्योदार्यशालिनी।।3।।
धैर्य-त्यागगुणोपेता ज्ञेया प्रकृतिरुत्तमा। -नाट्यशास्त्र, चौतीसंवा अध्याय

5· लोकोपचारचतुरा शिल्पशास्त्रविशारदा।।4।। वही, अध्याय 34

6· रूक्षा वचसि दुःशीला कुसत्वाः स्वल्प बुद्धिकाः।।5।।
क्रोधना घाटकाश्चैव मित्रघ्नाश्चिमघातकाः।
पिशुना उद्दता वाक्यैस्कृतज्ञास्तथालसाः।।6।।
मान्या मानविशेषज्ञाः स्त्रीलोलाः कलहप्रियाः।
सूचकाः पापकर्माण परद्रव्यायहारिणः।।7।।
एभिर्दोषैस्तु सम्बद्धा भवन्ति ह्यधमा नराः।। -नाट्यशास्त्र 34वां अध्याय।

7· भरतः नाट्यशास्त्र, 34/8 -13।।

की दृष्टि से भरत ने चार प्रकार के नायक माने हैं - धीरोद्धत, धीरललित, धीरोदात्त और धीरप्रशान्त।[8] ये सभी उत्तम और मध्यम प्रकृति के गुणों से युक्त होते हैं। देवता धीरोद्धत होते हैं, राजा लोग धीरललित, सेनापति और अमात्य धीरोदात्त तथा ब्राह्मण और वैश्य लोग धीरप्रशान्त होते हैं।[9] भरत के इस वर्गीकरण का आधार नाटकीय कथावस्तु की पात्रता कहा जा सकता है। क्योंकि भरत ने स्त्रियों और पुरुषों के स्वभाव, वय और अवस्था के अनुसार उनके भेदोपभेद विस्तार के साथ नहीं दिया है। आचार्य सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार - भरत ने विशेष रूप से राजाओं के अन्तःपुर तथा सभा में काम आने वाले व्यक्तियों के गुणों का लेखा भर दिया है और वह भी उतना स्पष्ट और विस्तृत नहीं है कि त्रिलोक के पुरुषों और स्त्रियों की प्रकृति का ज्ञान हो सके।"[10]

भरत ने चार प्रकार के नायकों के लिए चार प्रकार का विदूषक बताया है[11]- देवताओं के विदूषक लिंगी (सन्यासी या धर्मध्वजी), राजाओं के विदूषक ब्राह्मण, सेनापति और अमात्य के राजपुरुष तथा ब्राह्मण-वैश्य नायकों के विदूषक उनके शिष्य होते हैं। वियोग में राजा नायक के साथ ऐसी प्रिय दासी रखनी चाहिए जो सुन्दर कथा और बातचीत करने में चतुर हो, जो दुःख ढाढ़स बंधा सके। बहुत से पुरुषों में जो अग्रगणी हो उसे नायक कहते हैं। इनमें जो भी नायक विपत्ति और अभ्युदय दोनों दशाओं में सुख का अनुभव करता हो और दोनों अवस्थाओं में जो अपनी श्रेष्ठता बनाये रखता हो वही नायक कहा जा सकता है।[12]

8· तत्र चत्वारेव स्युर्नायकाः परिकीर्तिताः।
मध्यमोत्तमायां प्रकृतौ नानालक्षणलक्षिताः।।16।।
धीरोद्धता धीरललिता धीरोदात्तास्तथैव च।
धीरप्रशान्तकाश्चैव नायकाः परिकीर्तिताः।।17।।-वही, 34वां अध्याय

9· देवा धीरोद्धता ज्ञेया ललितास्तु नृपाः स्मृताः।
सेनापतिरमात्यश्च धीरोदात्तौ प्रकीर्तितौ।।18।।
धीरप्रशान्ता विज्ञेया ब्राह्मणा वणिजस्तथा। -वही

10· अभिनवनाट्यशास्त्र, पृ0 192

11· भरतः नाट्यशास्त्र, 34वां अध्याय श्लोक 19, 20

12· वही, 34//22, 23, 24

भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में जितने प्रकार के पात्रों का वर्णन किया है उनको शारदातनय ने अपने भावप्रकाश में बड़े विस्तार के साथ समझाया है- जो व्यक्ति अनेक प्रकृति वाले संसार के भावों को वैसा-वैसा रूप धारण करके प्रकाशित करते हैं, जो लोग भाषा वर्ग आदि सामग्रियों से नाना प्रकार के स्वभाव वालों के वेष, अवस्था, कर्म तथा चेष्टा करके दिखाते हैं उन्हें "भरत" कहते हैं।[13] जो लोग रस और भाव से युक्त भूतकाल की कथा स्वाभाविक रूप से अभिनीत करते हैं, वे "नट" कहलाते हैं।[14] जो वर्तमान काल के लोगों के जैसा रूपक बनाकर भाव प्रदर्शित करे वह शैलूष ॥नकल उतारने वाला॥ कहलाता है।[15] माघ ने अपने शिशुपाल वध में कहा है -

"यथोपपत्तिं छलनापरो परामवाप्य शैलूष इवैष भूमिकाम्"।।

-शिशुपालवध, 17/86।।

शारदातनय ने उपर्युक्त पात्रों के अतिरिक्त सूत्रधार, पारिपार्श्विक, कुशील व विदूषक, अन्तःपुरिका, परिचारिका, अनुचारिका, संचारिका, अन्तःपुरचर राजा, महिषी, महादेवी, देवी, भोगिनी, आश्रिता, नाटकीया, कामुका, शिल्पकारिका, प्रेक्षणिका, महत्तरी, प्रतीहारी, कुमारी, वृद्धा, आयुक्तिका, काञ्चुकीय, वर्षवरकिरात, औपस्थापिक, र्निमुण्ड, अभ्यागार, मूक, सभासद, सदस्य, वैतालिक, वन्दी, नान्दिमंगल, पाठक, सूत तथा मागधकी बड़े विस्तार से विवेचना की है।[16] इस प्रकार भावप्रकाश में शारदातनय ने "नाट्यशास्त्र" में उल्लिखित सभी प्रकार के पात्रों का बड़े विस्तार के साथ विवेचन किया है। प्राचीन आचार्यों का नायक सम्बन्धी विवेचन सामन्तवादी प्रवृत्ति के अनुकूल रहा है इस दृष्टि से शारदातनय के भावप्रकाश का विशेष महत्त्व है। उनके कथनानुसार

13· भाषावर्षोपकरणैर्नाता प्रकृतिसम्भवम्।
वेषं वयः कर्म चेष्टां विभ्रद्भरत उच्यते।।-भावप्रकाश, दशम अधिकार

14· अतीतं लोकवृत्तान्तं रसभावसमन्विहम्
स्वभाववन्नाटयति यतस्तस्मान्नटः स्मृतः।।वही

15· नानाशीलस्य लोकस्य भावान् भासयतीह यः।
भूमिकास्ताः प्रविख्यातः शैलूष इति कथ्यते।।वही

16· द्रष्टव्य, शारदातनयः भावप्रकाश, दशम अधिकार।

यह प्रतीत होता है कि तत्कालीन युग में राजाओं का संगीत के प्रति विशेष आकर्षण था और उनकी दृष्टि में उनका महत्त्व मात्र मनोरंजन तक ही सीमित था।[17] चारों वर्णो में संगीत तो राजाओं के लिए ही शोभा देता है और प्रकृति-भेद से ये राजा तीन प्रकार के होते हैं - उत्तम, मध्यम और अधम।[18]

"अग्निपुराण" मे श्रृंगारिका प्रकरण में नायक-नायिका भेद का चित्रण किया गया है। इसमें विविध विषयों का वर्णन रहने से कुछ विद्वानों ने इसे "विश्वकोष" की संज्ञा से अभिहित किया है। विण्टरनित्स के मतानुसार "भारतीय वाड·मय में व्याप्त विषय का समावेश इस पुराण में किया गया है"[19] इस पुराण में विषय-निरूपण की अपेक्षा संग्रह-प्रवृत्ति पर विशेष ध्यान दिया गया है। सम्भवतः अग्निपुराण की इसी प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर डॉ0 सुशील कुमार डे आदि विद्वानों ने इसे विश्व-कोष की संज्ञा प्रदान की है।[20] "अग्निपुराण" धीरोदात्तादि नायक भेद का आधार श्रृंगार का आलम्बन विभाव रहा है। उक्त धीरोदात्तादि भेदों के पुनः अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट- ये चार उपभेद किये गये हैं।[21] तत्पश्चात् श्रृंगारी नायक के सहायकों का उल्लेख करते हुए कहा है

17· संगीतशास्त्रं सर्वत्रराज्ञां विश्रांति सौख्यदम्।
तस्मादिदं विनादार्थं राज्ञामेव पुराकृतम्।।
विश्रामाय महीभारविश्रातानां सुखप्रदम्।
अस्य संगीतशास्त्रस्य प्रयोक्तृषां च लक्षणम्।।
स्वरूपं कर्म चैतेषां यथावत् प्रतिस्पाद्यते।" शारदातनयः भावप्रकाश

18· "चतुर्णामपि वर्णानां राजा संगीतमर्हति।
तस्य त्रिधा स्यात् प्रकृतिरुत्तमाधममध्यमा।।
स्त्रीणां तथा स्यादेतेषां शीलं भावान्विशेषतः।
ज्ञात्वा ततस्ताः प्रवृतिः सुखेनाभिनयेन्नटः।।"

19· "ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, प्रथम भाग, पृ0 566

20· "ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत पोयटिक्स, भाग-2, पृ0 254

21· "आलम्बनविभावोऽसौ नायकादिभवस्तथा।
धीरोदात्तो धीरोद्धतः स्याद्धीरललितस्तथा।। अग्निपुराण, 3/37
धीरप्रशान्त इत्येवं चतुर्धानायकः स्मृतः
अनुकूलो दक्षिणश्च शठो धृष्टः प्रवर्तितः।। वही, 3/38

कि पीठमर्द, विट और विदूषक में नायक के श्रृंगारी सहायक हैं।[22] पीठमर्द नायक का कुशल सहायक, विट उसका अन्तरंग मित्र तथा विदूषक उसका विनोदी सहायक होता है। भरत का नायक भेद मात्र श्रृंगार रस के आधार पर नहीं हुआ है। उन्होंने श्रृंगार के आलम्बन विभाव का विभाजन न करके साधारणतः नाटकीय पात्रों का विभाजन किया है। जबकि अग्निपुराण के विभाजन का आधार आलम्बन विभाग ही रहा है। अग्निपुराणकार ने पुरुष के आठ सात्विक गुणों का भी विवेचन किया है।[23]

भोज ने नायक भेद का निरूपण "सरस्वतीकण्ठाभरण" के पांचवे एवं अन्तिम परिच्छेद में किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने श्रृंगार प्रकाश के "रत्यालम्बनविभाव प्रकाश" नामक पन्द्रहवें परिच्छेद में भी नायक-नायिका भेद विवेचन संक्षिप्त लक्षणों के रूप में हुआ है - §1§ वस्तु के आधार परः नायक, प्रतिनायक, उपनायक, नायकाभास, उपयाभास तथा हिर्यमाभास। §2§ गुणों के आधार परः उत्तम, ललित, शान्त और उदात्त। §4§ परिग्रह के आधार पर - साधारण §अनेकानुरक्त§ और अनन्य जाति §अनन्यानुरक्त§।[24]

"श्रृंगार-प्रकाश" के मोक्ष-श्रृंगार नामक इक्कीसवें प्रकाश में भी भोज ने नायक भेद का विवेचन किया है- नायक, प्रतिनायक, उपनायक और अनुनायक के साथ भोज ने भरत सम्मत धीरोदात्तादि चारों भेदों का भी विवेचन किया है।[25]

22· "अग्निपुराण", 3/39, 40।

23· "शोभा विलासों माधुर्य स्थैर्य गाम्भीर्यमेव च।
ललितं च तथौदार्य तेजोऽष्टाविति पौरुषाः।।" वही, 3/47

24· "सरस्वतीकण्ठाभरण", पांचवा परिच्छेद।

25· "श्रृंगार-प्रकाश", इक्कीसवां प्रकाश।

इस प्रकार भोज गुणन क्रिया से नायकों की संख्या 104 तक पहुँचाकर भी कहते हैं- §"एवमन्येऽपि विज्ञेयाः भेदा संभेदतो मिथः§।

भरत की मान्यताओं का पालन करते हुए "नाट्य-दर्पणकार" ने नेताओं का स्वरूप बताते हुए धीरोद्धत आदि चार प्रकार के नेता उत्तम और मध्यम स्वभाव के अनुसार होते हैं।[26] देवता धीरोदात्त होते हैं। सेनापति और मन्त्री लोग धीरोदात्त होते हैं। वैश्य और ब्राह्मण धीरशान्त होते हैं और राजा लोग चारो प्रकार के होते हैं।

"नञ्जराजयशोभूषण" के रचयिता अभिनव कालिदास ने अपने ग्रन्थ के नाटक-प्रकरण में प्रत्येक रसों के लिये विभिन्न नायकों की कल्पना की है तथा उनके लक्षण दिये हैं। अतः विभिन्न रसों के लिए भिन्न-भिन्न नायकों का निर्धारण इसी ग्रन्थ में परिलक्षित होता है - "जो व्यक्ति प्रेम में दृढ़, सुन्दर कलाओं का ज्ञाता, विलासयुक्त और कामकलाओं में चतुर हो वह श्रृंगार रस के नाटक का नायक होता है।........ जो जितेन्द्रिय, क्रोधहीन, सात्विक गुणों से युक्त, सदा प्रसन्न रहने वाला, परम सत्वशील और धीर हो वह शान्त रस का नायक होता है। ये सब दो प्रकार के होते हैं- एक नायक दूसरा प्रतिनायक। जो नायक से कुछ न्यूनगुण वाला नायक के दुःख में दुखी और उसका प्रिय होता है वह "उपनायक" कहलाता है जैसे रामायण में सुग्रीव, लक्ष्मण आदि। जो सब प्रकार के व्यसनों में लिप्त, पापी और द्वेष करने योग्य हो उसे "प्रतिनायक" की संज्ञा ये अभिहित

26· उद्धतोदात्त-ललित-शान्ता धीरविशेषणाः।
वर्ण्या स्वभावश्चत्वारो नेतृणां मध्यमोत्तमाः।।
देवा धीरोद्धता धीरोदात्तः सैनेशमन्त्रिणः।
धीरशान्ता-वणिग्विप्रा राजानास्तु चतुर्विधा।।
धीरोद्धतश्चलश्चण्डो दर्पी दम्भी विकत्थनः।
धीरोदात्तोऽतिगम्भीरो न्यायी सत्वी क्षमी स्थिरः।।
श्रृंगारी धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।
धीरशान्तोऽनहंकारः कृपालुर्विमयी नयी।।
-रामचन्द्र गुणचन्द्रः नाट्यदर्पण उद्धृत - अभिनवनाट्यशास्त्र, पृ० 201

किया जाता है जैसे- रावण आदि।27

"दशरूपककार" धनञ्जय की जो विस्तृत एवं विशद पात्र-योजना है प्रायः वही सभी आचार्यों को मान्य है। धनञ्जय के नायक सम्बन्धी वर्गीकरण का आधार नाटकीय पात्रता है। उन्होंने नायक के सामान्य गुणों, सात्विक गुणों, उनके अन्तःपुर के सहायकों तथा प्रतिनायक आदि का भी विवेचन किया है। संस्कृत नाटकों में श्रृंगार की प्रचुरता को ही ध्यान में रखकर उन्होंने नायिका के साथ रति-सम्बन्ध की दृष्टि से भी नायक का विवेचन किया है। रूपक के प्रधान पात्र को नायक कहते हैं क्योंकि वह नाटकीय कथावस्तु को आगे बढ़ाता हुआ निर्दिष्ट फलागम तक ले जाता है। नायक में सद्गुण असंख्य होते हैं। धनञ्जय के अनुसार नायक को विनीत होना चाहिये। उदाहरण के लिए जैसे "राम" जो परशुराम को पराजित कर देने के बाद भी उनकी तुलना में अपने शौर्य का अवमूल्यन करते हैं। उसे मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियबंद, शुचि अर्थात् जिसका मन पवित्र हो, लोकसेवी वाग्मी (किसी युक्तियुक्त चुभती हुई बात को प्रभावशाली ढंग से कहने वाला व्यक्ति वाग्मी कहलाता है), रूढवंश अर्थात् उच्च कुल में उत्पन्न नायक नीच कुलोत्पन्न नहीं होना चाहिये। वह या तो ब्राह्मण कुलोत्पन्न हो या राजकुलोत्पन्न हों। जैसे शाकुन्तल में दुष्यन्त, मालतीमाधव में माधव या वीरचरित में राम। स्थिर, युवा, बुद्धिमान, प्रज्ञावान, स्मृति-सम्पन्न, उत्साही, कलावान्, शास्त्रचक्षु शास्त्रानुसार देखने व चलने वाला, आत्मसम्मानी, शूर तेजस्वी व धार्मिक होना चाहिए28।

27· स्थिरानुरागः सुभगः कलाभिज्ञो विलासवान्।
चतुरः कामतन्त्रेषु श्रृंगाररसनायकः।।
×× ×× ×× ××
सदानन्दः सत्ववेदी धीरो सौ शान्तनायकः।
×× × × ×
किञ्चिदूनगुणो दुःखी प्रियस्तस्योपनायकः।
व्यासनी पापकृद्दष्यो नेता स्यात्प्रतिनायकः।।-नञ्जराजयशोभूषण उद्धृत अभिनवनाट्यशास्त्र, पृ0 201, 202

28· नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियम्बदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा।।
बद्धयत्साह स्मृति प्रज्ञाकलामान समन्वितः।

ये सभी गुण उचित सीमा के भीतर ही होने चाहिए। उपर्युक्त विवेचनोंपरान्त कहा जा सकता है कि नायक सर्वगुणसम्पन्न होना चाहिए। अन्य आचार्यों का अनुगमन करते हुए धनञ्जय ने भी नेता की कुलीनता पर अधिक बल दिया है जो सामन्तवादी प्रथा की ओर इंगित करता है। यहाँ "विनीतता" नायक की दुर्बलता नहीं वरन् उच्च संस्कार और उसके सौजन्य का शृंगार है जो भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। तेजस्विता से अभिप्राय नायक के प्रभावशाली व्यक्तित्व से है। भवभूति के "महावीरचरित" के नायक राम की तरह नायक विनम्र तथा मधुर होना चाहिये -

"यद्ब्रह्मवादिभिरुपासितवन्यपादे विद्यातपोव्रतनिधौ तपतां वरिष्ठे।
दैवात्कृतस्त्वयि मया विनयापचारस्तत्र प्रसीद भगवन्नयमंजलिस्ते।। - वीरचरित।

"राम राम नयनाभिरामतामाशयस्य सदृशीं समुद्वहन्।
अप्रतर्क्यगुणरामणीयकः सर्वभैव हृदयंगमोऽसि मे।।" -वीरचरित।

देखने मात्र से ही आकर्षक एवं सुन्दर लगना ही माधुर्य है। त्यागी से अभिप्राय है कि नायक, तन, मन, धन का लोभी न होकर अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तत्पर रहता हो। आचार्य धनिक भी कहते हैं कि वह सर्वस्वदायक हो -

"त्वचं कर्णाः शिविर्मासं जीवं जीमूतवाहनः।
ददौ दधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मनाम्।।"[29]

रक्तलोक से तात्पर्य है कि नायक ऐसा हो कि सारा विश्व उससे प्रेम करे। शुचि का अर्थ स्पष्ट करते हुए आचार्य सीताराम चतुर्वेदी ने कहा है- "जिसका मन पवित्र हो और कामादि विकारों से दूषित न हो।"[30] धनिक का भी ऐसा ही मत है[31]। विषयासक्ति की दृष्टि से काम जीवन का विधातक तत्त्व है। अथर्ववेद मे बताया गया है कि यह काम विकार मनुष्य को रोगी बनाने वाला है, मारने वाला बधिक है, यह अपने शिकार उलटा घसीटता है और बुद्धि का अपहरण कर

29· दशरूपक, पृ0 74

30· अभिनवनाट्यशास्त्र, पृ0 206

31· तत्र शौचं मनोनैर्मल्यादिना कामाधनभिभूतत्वम्।-दशरूपक, पृ0 75

लेता है शरीर मे से आरोग्य तथा बल की जड़ें खोदकर फेंक देता है। धातुओं को जलाता है आत्मा मलिन करता है और तेजस् को चुरा लेता है।[32] श्रीमद्भगवद्गीता में भी आसक्ति को विनाश का कारण बताया गया है।[33] सृष्टि के धारकत्व के रूप में ही "काम" को पुरूषार्थ स्वीकार किया गया है न कि कामुकता के रूप में। अंत में भी स्पष्ट किया गया है कि "विवेक" सम्मत-वंशपरम्परा को अविच्छिन्न रखने की दृष्टि से प्रयुक्त सहवास काम ही पुरूषार्थ है।[34]

स्वाभाविकता और रोचकता बनाये रखने के लिए श्रृंगारपरक तथा वीररस के नाटकों में नायक का "युवा" होना आवश्यक है। इसीलिए धनञ्जय ने इसे नायक का अनिवार्य गुण माना है। उक्त सामान्य गुणों के अतिरिक्त धनञ्जय ने नायक में पुरूषत्व सम्पन्न आठ सात्विक गुणों का होना भी आवश्यक मानते हैं। ये गुण हैं - शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य, स्थिरता, तेज, ललित तथा औदार्य।[35] "शोभा" नामक सात्विक गुण के अन्तर्गत शौर्य तथा दक्षता के साथ-साथ अपने से नीच के प्रति घृणा और उच्च के प्रति स्पर्धा का भाव होता है।[36] आज के प्रगतिशील युग में मानवीय दृष्टिकोण से विचार करने पर दशरूपककार का ऐसा विचार समीचीन नहीं प्रतीत होता है। ऐसा विचार तद्युगीन मान्यताओं और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही किया गया प्रतीत होता है क्योंकि प्रत्येक

---

32. "रूजन् परिरूजन् नृणन् परिमृणन।
    म्रोकी मनीहा खनो निदहि आत्मदषिस्तनदषिः।।" -अथर्ववेद।
33. "ध्यायतो विषयान् पुसां सङ्गस्तेषूपजायते।
    संगात् सञ्जायते कामः कामाद्क्रोधोऽभिजायते।।
    क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
    स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।" -गीता, 2/62-63
34. धर्माविरूद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ। -गीता, 7/11
35. शोभा विलासो माधुर्यं गाम्भीर्य स्थैर्यतेजसी।
    ललितौदार्यमित्यष्टौ सत्त्वजाः पौरुषा गुणाः।। -दशरूपक 2/10
36. नीचे घृणाधिके स्पर्धा शोभायां शौर्यदक्षते। वही 2/11

युग और युग की परिस्थितियों के अनुकूल व्यक्ति की मानसिक, धार्मिक, बौद्धिक रुचियां और प्रवृत्तियाँ आदि परिवतर्तित होती रहती है। इस परिवर्तित जीवन के मूल्य और मान्यताओं के अनुसार घृणा नीच व्यक्ति के प्रति न होकर उसके दोष और दुर्बलताओं के प्रति होनी चाहिये। "विलास" नामक सात्विक गुण में गति और दृष्टि धैर्यपूर्ण होती है।[37] दूसरी ओर वाणी स्मितिपूर्ण होती है। इसी गुण के कारण नायक का व्यक्तित्व प्रभावशाली हो जाता है। क्षोभ के कारणों के विद्यमान रहने पर भी नायक के मन में कोमल विकार का उत्पन्न होना माधुर्य कहलाता है। जिस गुण के कारण नायक में विकार परिलक्षित ही न हो उसे गाम्भीर्य कहते हैं।[38] माधुर्य में किंचित विकार परिलक्षित होता है जबकि गाम्भीर्य में विकार बिलकुल नहीं दिखाई पड़ता। अनेक विघ्न-बाधाओं के होने पर भी नायक का अपने पथ से विचलित न होना स्थैर्य गुण की विशेषता है। प्राण पर संकट आ जाने पर पर भी अपने उद्देश्य से विचलित न होना तथा अपमान को न सहना तेज कहलाता है।[39] स्वाभाविक हाव-भाव, श्रृंगारपरक चेष्टाओं का होना ही ललित गुण है। जब नायक अपने मृदु वचनों के द्वारा जीवनदान के लिए भी सहर्ष तैयार हो जाय और लोगों को अपने अनुकूल कर लेने की क्षमता हो तो उसे औदार्य गुण वाला कहेंगे।[40]

स्वभाव भेद की दृष्टि "दशरूपककार" धनञ्जय ने नायक के चार भेद बतलाये हैं- ललित, शान्त, उदात्त और उद्धत। चारों प्रकार के नायक "धीर" होते हैं।[41] रसोद्रेक के लिए नायक का धीर होना अनिवार्य है।

37· गतिः सधैर्या दृष्टिश्च विलासे सस्मितं वचः।। वही-2/11

38-41· श्लक्ष्णो विकारो माधुर्य संक्षोभे सुमहत्यापि।

× × × × ×

प्रियोक्त्याऽऽजीविताद्दानमौदार्यं सदुपग्रहः।। -दशरूपक, 2/12-14

"धीरललित" नायक निश्चिन्त नृत्य-गीतादि कलाओं में रुचि रखने वाला और विशेषतया विलासी होता है।[42] साधारणतः राजा होने के कारण योग-क्षेम की चिन्ता से मुक्त रहता है {अप्राप्तस्य प्राप्तिर्योगः, प्राप्तस्यपरिरक्षणः क्षेमः} अपने सार्वजनिक कर्तव्य का भार मन्त्रियों को सौंप देता हैं। इस उदासीन दृष्टिकोण का मुख्य कारण हैं- भोग-विलासिता एवं ललित कलाओं के प्रति विशेष आकर्षण। भास और हर्ष के नाटकों में चित्रित "वत्स" इस प्रकार के नायक का उत्कृष्ट उदाहरण है।

"धीरशान्त नायक"[43] नामकोचित सामान्य गुणों वाला होता है। धनञ्जय के अनुसार वह "द्विजातिक" में से ही होता है। धनिक ने "द्विजादिक" शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है - "धीरशान्तो द्विजादिक इति विप्रवणिक्सचिवादीनाम्" अर्थात् ब्राह्मण, वैश्य, मन्त्री आदि में से कोई धीर शान्त नायक हो सकता है। "आदि" शब्द के प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि धनञ्जय के समय में भी शूद्रों का नायक या मुख्य पात्र बनाया जाता था। धीरशांत नायक धीरललित नायक से मुख्यतया इसलिये भिन्न होता है कि वह जन्म से ब्राह्मण अथवा सार्थवाह होता है। उदाहरण के लिये- मालतीवाधव का माधव और दरिद्र चारुदत्त एवं मृच्छकटिक का चारुदत्त। प्रकरण का नायक साधारणतः इसी वर्ग से लिया जाता है। धनिक के मतानुसार - नायक के उपयुक्त निश्चिन्तता आदि गुणसम्पन्न होने पर भी ब्राह्मण आदि धीर शान्त के वर्ग में ही रखे जायेंगे। धनिक के अनुसार- "शान्तत्वं चानहंकृतत्वं, तच्च विप्रोदेरौचित्यप्राप्तमिति वस्तुस्थित्या विप्रदिः शान्तता न स्वपरिभाषामात्रेण।[44] ब्राह्मण आदि में शान्तता तो पायी ही जाती हैं लेकिन परशुराम इसके अपवाद भी हैं जो अपने क्रोध के लिए प्रख्यात् हैं।

42· भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम्। -दशरूपक 2/3

43· निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।। -दशरूपक, 2/3

44· द्रष्टव्य - दशरूपक, पृ0 80

"धीरोदात्त नायक" महासत्व, दृढ़व्रत, अंहकार-रहित, आत्मश्लाघा न करने वाला गम्भीर, क्षमावान् होता है।[45] इस प्रकार का नायक सात्विक गुणों से युक्त होता है उदात्तता इसका विशिष्ट गुण है। धनिक के अनुसार "उदात्तता" मानव की सर्वोत्कृष्ट वृत्ति का ही नाम है।[46] जो उसे अन्य व्यक्तियों से पृथक् करती है। नागानन्द का जीमूतवाहन, राम, युधिष्ठिर आदि पात्र उदात्त कोटि के ही नायक हैं। सेनापति, मंत्री, उच्चपदाधिकारी आदि इस प्रकार के नायक होते हैं। राम को बुलाया गया अभिषेक के लिए मिला वनवास, परन्तु उनके मुख पर विकार की छाया तक न दिखलाई दी। कुछ विद्वानों ने जीमूतवाहन के विषय में शंका उठाते हुए कहा है कि - औदात्य में सर्वोत्कृष्ट होने की कामन विद्यमान होती हैं, परन्तु जीमूतवाहन साम्राज्य सम्बन्धी कामना के सम्बन्ध वीतराग और शम है, परमकारुणिकत्व एवं वैराग्य का प्रतिरूप है। दूसरी बात यह है कि उसका केवल मलयवती के प्रति अनुराग वर्णित किया गया है जो उसके चरित्र के सामान्य स्वरूप के अनुरूप नहीं है। राजाओं को धीर शान्त नायक की कोटि से बाहर करने वाली निरर्थक रुढ़ि की उपेक्षा जीमूतवाहन को वस्तुतः बुद्ध के साथ ही धीरशान्त की श्रेणी में रखना चाहिये। धनिक ने बड़े प्रभावशाली ढंग से जीमूतवाहन के इस वर्गीकरण का समर्थन किया है।[47] उन्होंने दृढ़ता के साथ यह प्रतिपादित किया है कि जीमूतवाहन तो प्राणों का परित्याग करके भी दूसरे का काम बनाया। स्वार्थ की इच्छाओं का उसने त्याग किया। कालिदास ने भी कहा है -

स्वसुख निरभिलास खिद्यसे लोक हेतोः
प्रतिदिनमथवा ते सृष्टिरेवं विधैव।
अनुभवति हि सिरशा पादयस्तीर्णमुष्णं,
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्।। -कालिदास।

45· महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।। -दशरूपक 2/4
स्थिरोनिगूढ़ाहंकारो धीरोदात्तो दृढ़व्रतः।। वही

46· "औदात्यं हि नाम सर्वोत्कर्षेण वृत्ति।" वही, पृ0 79

47· दशरूपक, पृ0 82

मलयवती के प्रति वर्णित जीमूतवाहन का अनुराग शान्त रस के अनुरूप नहीं है। शान्तता का अर्थ है अहंकारशून्यता। जो ब्राह्मण इत्यादि में स्वभावसिद्ध होती है। बुद्ध और जीमूतवाहन दोनों में निर्विशेष करुण विद्यमान है। बुद्ध की करुणा निष्काम करुणा है इसके विपरीत जीमूतवाहन की करुणा सकाम करुणा है अतः जीमूतवाहन बुद्ध से सर्वथा भिन्न श्रेणी का धीरोदात्त नायक है।

"धीरोद्धत्त नायक" दर्प और मात्सर्य से युक्त, मायावी छद्मपरायण, अहंकारी, चञ्चल, क्रोध और आत्मश्लाघी होता है।[48] इस प्रकार के नायक का विशेषगुण उद्धतता है। धीरोद्धत्त नायक प्रतिनायक के रूप में भी चित्रित किया जा सकता है। रावण और परशुराम इसी कोटि के नायक हैं। अच्युत राम[49] तथा कीथ[50] उद्धत्त को नायक नहीं स्वीकार करते।

नाटक का प्रधान नायक उक्त चारों प्रकारों में से किसी एक प्रकार का होना चाहिये। कोई भी परिवर्तन नाटक के विकास की अन्विति के लिए हानिकारण है। गौड़ पात्रों में स्वभाव का परिवर्तन दिखाया जा सकता है। कहीं वह ललित, कहीं उदात्त, कहीं शान्त और कहीं उद्धत्त हो सकता है।

उक्त चार प्रकारों के भी चार भेद होते हैं - अनुकूल, दक्षिण शठ और धृष्ट।[51] यह भेद श्रृंगार की दृष्टि से किया गया है। अनुकूल नायक राम

48· दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाच्छद्मपरायणः।। दशरूपक 2/5
धीरोद्धत्तस्त्वहंकारी चलश्चण्डो विकत्थनः।

49· उदात्तो ललितः शान्तस्त्रिधा नेता प्रकीर्तितः।
सर्वोऽपि धीर एवायं विज्ञेयो नायकत्वतः।। साहित्यसार, 11/2

50. "It is obvious that here is difficulty in conceiving as a chief here one of the haughty type, and the theory does not provide with one, for Parasurama is only a Secondary here."
-A.B. Keith The Sanskrit Drama, Page - 306

51· स दक्षिणः शठोधृष्टः पूर्वं प्रत्यन्यया हृतः।। 2/6।। दशरूपक, 2/6

ही नायिका के प्रति अनुरक्त रहता है। वह एक पत्नीव्रती होता है जैसे उत्तररामचरित में "राम"। शेष तीन भेदों का आधार पूर्व नायिका के प्रति नायक की चित्तवृत्ति है। अनेक नायिकाओं अथवा पत्नियों से तुल्यानुराग रखने वाले नायक को "दक्षिणनायक" कहते हैं। वह दूसरी नायिका को प्राप्त करने के प्रयत्न में दूसरी के प्रति अनुराग में कमी नहीं लाता। नाटिका के नायक इसी कोटि में आते हैं। जैसे- "वत्स"। शठ नायक दिखाने के लिये तो एक ही पत्नी में अनुरक्त होता है, परन्तु चुपके-चुपके अन्य के साथ भी प्रेम करता है। धृष्ट नायक प्रत्यक्षतः दूसरी प्रेमिका के प्रति अनुरक्त रहता है। उसके शरीर पर अन्य नायिका के साथ सम्भोग के दन्तक्षतादि चिन्ह पाये जाते हैं। शठ और धृष्ट दोनों नायक अपनी पहली नायिका के प्रति अनुराग नहीं रखते और दक्षिण नायक से इस बात में भिन्न होते हैं कि उस नायिका के प्रति छल करते हैं[52]। ये चारो भेद एक ही नायक की उत्तरोत्तर वर्धमान अवस्थाओं के भी हो सकते हैं।

पूर्वोक्त धीरोदात्तादि नायकों के प्रत्येक के दक्षिण आदि चार भेद हो सकते हैं। इस प्रकार कुल सोलह प्रकार के नायक हो जाते हैं। ये सोलहों प्रकार के नायक उत्तम, मध्यम और अधम के भेद से अड़तालीस प्रकार के नायक हो सकते हैं। उक्त अड़तालीस मे से प्रत्येक को पुनः दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य तीन-तीन प्रकार और हो सकते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर नायक के एक सौ चौवालीस भेद हो जाते हैं।[53]

नाटक के क्रिया-व्यापार में जो पात्र नायक का विरोधी होता है उसे प्रतिनायक संज्ञा द्वारा अभिहित होता है। अपने दुष्टता पूर्ण स्वभाव के कारण

52· दक्षिणोऽस्यां सहृदयः, गूढ़ विप्रियकृच्छठः
व्यक्ताङ्गवैकृतोधृष्ट, अनुकूलस्त्वेक नायिकः।। दशरूपक, पृ0 84-86

53· अभिनवनाट्यशास्त्र, पृ0 209

इसे खलनायक एवं अंग्रेजी में विलेन भी कहते हैं। प्रतिनायक[54] नायक का शत्रु, धीरोद्धत, लालची, दुराग्रही घमण्डी, पापी तथा व्यसनी होता है। इसके अभाव में नायक का चारित्रिक विकास भली भाँति नहीं सम्भव है। नाटक में संघर्ष और रोचकता की दृष्टि से प्रतिनायक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय नाटकों में नायक और प्रतिनायक क्रमशः सत् और असत् प्रवृत्तियों के प्रतीक होते हैं। फलसिद्धि के अनुसार सत् की विजय और असत् की पराजय अभीष्ट हैं। राम और युधिष्ठिर के विरोधी क्रमशः रावण तथा दुर्योधन इसी प्रकार के पात्र हैं।

पीठमर्द, विट और विदूषक ये नायक के मुख्य सहायक होते हैं। पीठमर्द[55] नायक का अन्तरंग मित्र होता है। वह बुद्धि आदि गुणों में नायक से थोड़ा न्यून होता है। वह विचक्षण अनुचर एवं नायक का भक्त होता है। यह प्रासंगिक वस्तु का पताका नायक होता है उसका इतिवृत्त नायक की फलप्राप्ति में सहायक होता है। मालतीमाधव का मकरन्द इसका सुन्दर उदाहरण है।

विट[56] गीत, वाद्य नृत्य आदि विद्याओं का समधिक ज्ञान रखता है। यूनानी नाटक के परजीवी (पैरासाइट) में इसका कुछ सादृश्य देखा जा सकता है। यह वेश्योपचार कुशल होता है। यह भाण का अनिवार्य पात्र है। अन्य रूपकों में इसकी बहुत कम भूमिका रहती है। कालिदास और भवभूति ने विट की उपेक्षा कर दी है।

विदूषक[57] नायक का सहचर और मित्र होता है। यह नाटक का हास्यकारी पात्र होता है। विदूषक की परम्परा का पालन प्रायः सभी नाटककारों

---

54. (क) लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद्व्यसनी रिपुः।। -दशरूपक, 2/9।।
(ख) धीरोद्धतः पापकारी व्यसनी प्रतिनायकः। -साहित्यदर्पण, 3/131
(ग) लोभी धीरोद्धतः पापी व्यसनी प्रतिनायकः। मुख्य नायकस्य प्रतिपंथी नायकः प्रतिनायकः। यथा रामयुधिष्ठिरयो रावणदुर्योधनवदिति।
-नाट्यदर्पण, चतुर्थीविवेक।

55. "पताकानामकस्त्वन्यः पीठमर्दो विचक्षणः।
तस्यैवानुचरो भक्तः किंचिदूनश्च तद्गुणैः।।" -दशरूपक, 2/8

56-57. "एक विद्योविटश्चान्यो हास्यकृच्च विदूषकः।

ने किया है। भारतीय नाटकों में पेटू और हंसोड़ प्रकृति के रूप में इसका चित्रण किया गया है। इसकी वेष-भूष, बोलचाल, आहार-व्यवहार आदि सभी कुछ ऐसा होता है जिसे देखने मात्र से ही हंसी आ जाय। विट और चेट की अपेक्षा इसका महत्त्व अधिक है। यह एक बुद्धिमान ब्राह्मण होता है। मनोरंजनार्थ इसे सभी विकृत व्यापार करने पड़ते हैं। शाकुन्तल का माडव्य और रत्नावली का वसन्तक इसका सुन्दर उदाहरण हैं।

श्रृंगारी सहायकों में पीठमर्द, विट आदि की ही भांति धनञ्जय ने कामार्त नायिका का नायक के साथ समागम करने वाले सहायकों का भी उल्लेख किया है- दूतियाँ, दासी, सखी, नीच जाति की स्त्रियाँ धाय की वेटी, पड़ोसिनी, सन्यासिनी, चित्रकार आदि है।[58]

श्रृंगारी सहायकों के अतिरिक्त राजा अथवा धीरललित नायक के मंत्री आदि सहायक होते हैं। धीरललित नायक को अपनी कलाप्रियता एवं विलासी प्रकृति के कारण अन्य कार्यों के लिए अवकाश ही नहीं मिल पाता है ऐसी स्थिति में नायक या राज्य का सारा कार्य भार मंत्री आदि सहायकों को ही सिद्ध करना पड़ता है।[59] कुलीन, बुद्धिमान, श्रुति-नीति, विशारद और स्वदेश का शुभ-चिन्तक होता है।

ऋत्विक् {यज्ञ करने वाला} पुरोहित, तपस्वी तथा ब्रह्मवेत्ता[60] आदि नायक के धर्म सहायक भी होते हैं। इसके अतिरिक्त राज्य में अशान्ति फैलाने वाले अराजक तत्त्वों को दण्ड देने के लिए दण्ड-सहायकों की परिकल्पना की गयी है। इनमें मुख्य रूप से - सुहृद {मित्र}, युवराज, आटविक अर्थात् सीमारक्षक, सामन्त

58· इत्यो दासी सखी कारूर्धात्रेयी प्रतिवेशिका।
लिङ्गनी शिल्पिनी स्वं च नेतृमित्रगुणान्वितः।। वही 2/29

59· द्रष्टव्य, दशरूपक 2/42, 43

60· ऋत्विक पुरोहितौ धर्मे तपस्विब्रह्मवादिनः।। दशरूपक 2/43

तथा सैनिक आते हैं।[61] किरात, वर्षवट ﴾नपुंसक﴿, गूँग बौने, म्लेच्छ, आभीर, शकार ﴾राजा का शाला जो नीच जाति में उत्पन्न हो﴿ आदि पात्र राजा के अन्तःपुर के सहायक होते हैं।[62] इन सभी का नायक के लिए अपने-अपने कार्यो में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अपने प्रेम प्रसंगों को मूर्त रूप देने के लिए नायक की दूत की भी आवश्यकता पड़ती है।[63] इस प्रकार के पात्र में भक्ति, उत्साह, साहस, स्मृति, कुशलता आदि गुणों का होना अपेक्षित है। साहित्यदर्पणकार ने इसके तीन भेद स्वीकार किए हैं- निसृष्टार्थ वह है जिसे परिस्थिति अनुसार कार्य करने का पूरा अधिकार है, दूसरा मितार्थ दूत सीमित अधिकार वाला होता है। तीसरा सन्देशवाहक दूत मात्र सन्देश का आदान-प्रदान करता है। नायक के सहायकों में सेनापति भी कुलीन, आलस्यरहित, अर्थशास्त्र का ज्ञाता, प्रिय बोलने वाला, शत्रु की कमजोरी को समझने वाला तथा देश-काल-परिस्थियों का ज्ञाता एवं पैनी दृष्टि रखने वाला होता है। न्यायाधीश या दण्डाधिकारी न्यायिक प्रक्रिया का ज्ञाता, समदर्शी, धार्मिक प्रवृत्तिवाला, क्रोध न करने वाला अभिमान रहित शान्त और संयमी होता है। बुद्धिमत्ता, उत्साह, धार्मिकता आदि गुणों की अपेक्षा अन्य सहायकों में भी अपेक्षित होती है।

61· सुहृत्कुमारटविका दण्डे सामन्त सैनिकाः।। वही

62· ﴾धनिक﴿ शकारो राज्ञः स्यालो हीन जातिः
वाक्तःपुरे वर्षवरा किराता मूकवामनः।। वही 2/44
म्लेच्छाभरशकारायाः स्वस्वकार्योपयोगिनः। वही

63· द्रष्टव्य -साहित्यदर्पण षष्ट परिच्छेद।

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने भी व्यवसाय[64] के आधार पर इस प्रकार का वर्गीकरण किया है - {1} श्रृंगार सहाय, {2} अर्थ चिंता सहाय, {3} धर्म-सहाय, {4} दण्ड-सहाय, {5} अन्तःपुर सहाय, {6} सम्वाद-सहाय या दूत। श्रृंगार-सहायक के अन्तर्गत निम्नलिखित पात्र आते हैं - विट, चेट, विदूषक, मालाकार, रजक, तमोली और गंधी आदि।

धर्मसहायक के अन्तर्गत - ऋत्विक {यज्ञ करने वाले}, पुरोहित {कुलगुरु} तपस्वी और ब्रह्मवादी {आत्मज्ञानी} आदि पात्र आते हैं।

साहित्यदर्पणकार की पात्रयोजना सम्बन्धी मान्यताएं दशरूपककार जैसी हीं हैं। विश्वनाथ ने बातें वही कही है जो दशरूपककार धनञ्जय ने। धनञ्जय की तरह विश्वनाथ ने नायक के सामान्य गुणों की विवेचना विस्तारपूर्वक नहीं की है।[65] इन्होंने भी नायक के आठ सात्विक गुणों का विवेचन किया है।[66] उदात्त, उद्धत, ललित और प्रशान्त इन चारो नायकों के गुणों का उल्लेख दशरूपक की भांति ही हुआ है। दक्षिण, धृष्ट आदि नायकों के विवेचन में दशरूपककार

64· श्रृंगारेऽस्य सहाया विच्चेट विदूषकाद्याः स्युः।
भक्ता नर्मसु निपुणाः कुपित वधूपमानभञ्जनाः शुद्धाः।। सा0द0 3/40
संभोगहीनसम्पद्विटस्तु धूर्तः कलैकदेशज्ञः।
वेशोपचारकुशलो याग्मी मधुरोऽथ वहुमतो गोष्ठ्याम्।। सा0द0, 3/41
कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यै।
हास्यकारः कलहरतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः।। सा0द0, 3/42
मन्त्री स्यादर्थानां चिन्तायां तद्ददवरोधे।
वामनषण्ठकिरातम्लेच्छाभीशः शकारकुब्जाद्याः।। सा0द0 3/43
मदमूर्खताभिमानी दुष्कुलतैश्वर्य संयुक्तः।
सोडमनूढाभ्राता राज्ञः श्यालः शकार इत्युक्तः।। सा0द0 3/44
दंडे सुहृतकुमाराटविकाः सामन्तसैनिकाद्याश्च।
ऋत्विग्पुरोधसः स्युर्वह्मविदस्तापसास्तथा धर्मे।। सा0द0 3/45

65· द्रष्टव्य -सा0द0, 3/50

66· द्रष्टव्य -सा0द0,

का ही अनुसरण मात्र है।[67] कथावस्तु की दृष्टि से विश्वनाथ ने आधिकारिक नायक के अतिरिक्त पताका और प्रकरी नायकों का भी विवेचन किया है।[68] यहां वे धनञ्जय से प्रभावित नहीं हैं।

नाटकीय क्रिया-व्यापार में पताका एवं प्रकरी पात्रों का अपना विशिष्ट स्थान है। नायक को फलसिद्धि तक पहुँचाने में इनका विशिष्ट योगदान रहता है। इन दोनों में भी पताका पात्र का अधिक महत्त्व है। दोनों ही गौण प्रसंगों के पात्र हैं। "चेट" का उल्लेख दशरूपक में नहीं है। विश्वनाथ ने "चेटःप्रसिद्धेव" ही कहा है। इन्होंने विट[69] तथा विदूषक[70] के गुणों का विवेचन दशरूपककार की अपेक्षा अधिक विस्तार से किया है। भरत ने विट को "संभोगहीन-संपद" नहीं माना। विश्वनाथ ने नायक के अर्थ-चिन्तन के सहायक का उल्लेख करते समय दशरूपककार की आलोचना करते हुए कहा है कि "यत्वत्र सहायकथनप्रस्तावे" मन्त्री स्वं चोभयं वापि सखा तस्यार्थ चिन्तनें इति केनचिल्लक्षणं कृतम् तदपि र्थचिन्तनोपायलक्षणप्रकरणे लक्षयितव्यम्, न तु सहायकथनप्रकरणे।

"नायकस्यार्थचिन्तने मन्त्री सहायः" इत्युक्ते पि नायकस्यार्थत एव सिद्धत्वात्। यदप्युक्तम् "मन्त्रिणां ललितः शेषा मन्त्रिष्वायत्तसिद्धयः" इति, तदपि स्वलक्षणकथनेव लक्षितस्य धीरललितस्य मन्त्रिमात्रा पत्तार्थ चिन्तनोपत्तेर्गतार्थम्। न चार्थचिन्तने तस्य मन्त्री सहायः, किं तु स्वयमेव संपादकः, तस्यार्थचिन्तनाद्यभावात्।"[71]

67· द्रष्टव्य -सा0द0, 3/35-37

68· व्यापि प्रासंगिकं वृत्तं पताकेत्यभीधीयते।
पताकानायकस्य स्यान्न स्वधीयं फलान्तरम्।। सा0द0, 6/67
गर्भे सन्धो विमर्शे वा निर्वाहस्तस्य जायते।
प्रासंगिक प्रदेशस्थं चरितं प्रकरी मता।
प्रकरी नायकस्य स्यान्न स्वकीयं फलान्तरम्। -सा0द0, 6/68

69· द्रष्टव्य -सा0द0, 3/49
नाट्यशास्त्र, 35/55

70· सा0द0, 3/42

71· द्रष्टव्य -सा0द0, पृ0 147-148

डॉ0 सत्यव्रत सिंह ने साहित्यदर्पणकार के मतों का समर्थन करते हुए कहा है कि "यहाँ साहित्यदर्पणकार ने दशरूपककार की जो आलोचना की है वह वस्तुतः युक्तियुक्त है। नाट्यशास्त्रकारों के सामने नायक रूप में राजागण ही विशेषतया आते हैं। प्राचीन राजतन्त्र की गतिविधि का अवलोकन करते हुए नाट्यशास्त्रकारों ने नायक के धर्म सहायक, अर्थ सहायक, काम सहायक आदि-आदि का लक्षण निरूपण किया है। नाट्यशास्त्र में "धीरललित" नायक की कल्पना राजशास्त्र में "सचिवायत्तसिद्धि" राजगण की कल्पना पर अवलम्बित है। श्रृंगार रस का एक प्रकार का अभिव्यञ्जन "धीरललित" नायक के चरित चित्रण के आधार पर किया गया है। इस नायकचरित में "राज्यचिन्ता से निश्चिन्तता" की विशेषता स्वाभाविक है। इस दृष्टि से यहां विश्वनाथ कविराज ने जो आलोचना की है वह सर्वथा संगत है।[72]

विश्वनाथ ने सभी नायक सहायकों को ही श्रेणियों में विभाजित किया है। धनञ्जय नायक तथा उसके सहायकों की तीन श्रेणी मानते हैं। अतः विश्वनाथ का उत्तम आदि पात्र वर्गीकरण मात्र नायक सहायकों तक ही सीमित है।[73] नायक दूतों का उल्लेख दशरूपक में नहीं परिलक्षित होता है। साहित्यदर्पणकार ने राजशास्त्र में प्रतिपादित दूत भेद का निरूपण भी नायक सहायक प्रसंग में ही कर दिया है। डॉ0 सत्यव्रत सिंह ने विश्वनाथ के दूत प्रसंग के औचित्य पर विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि "नाट्यशास्त्र" में भी दूत और दूती का प्रसंग आया हैं किन्तु वहाँ काव्य-नाट्य में उपनिबद्ध अथा उपनिबन्धन योग्य "दूत" और "दूती" का निरूपण है। यहां विश्वनाथ ने राजशास्त्र में प्रतिपादित दूत स्वरूप का विवेचन किया है। संस्कृत के काव्य-नाट्य साहित्य में दूत और दूती का यत्र-तत्र चित्रण परिलक्षित होता है। इस चित्रण के आधार पर नाट्यशास्त्रकारों अथवा अलंकार

72· वहीं, पृ0 148

73· सा0द0, 3/46, दशरूपक, 2/45

शास्त्रकारों ने दूत और दूती के स्वरूप का निर्धारण किया है। काव्य-नाट्य में उपनिबद्ध दूत और दूती के कार्य राजशास्त्र में निर्दिष्ट दूतकर्म की ही भाँति है। इसलिए विश्वनाथ का यह दूत-निरूपण संगत है न कि असंगत।[74]

नाटक में नायिका की भूमिका भी नायक से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। नायिका में भी नायक के ही समान गुण पाये जाते हैं। इसके तीन भेद किये गये हैं - §1§ स्वकीया, §2§ परकीया और §3§ साधारण स्त्री।[75] स्वकीया नायिका सरल और शीलवान होती है।[76] इसके तीन भेद होते हैं - §1§ मुग्धा, §2§ मध्या और §3§ प्रगल्भा। मुग्धा[77] नायिका लज्जाशील, रति में प्रतिकूलता या क्रोध दिखाने पर भी शीघ्र ही कोमल हो जाती है। जिसका यौवन और काम दोनों वृद्धि को प्राप्त हो रहा हो उसे मध्या[78] नायिका कहते हैं। यदि वह धीरा हुई तो वक्रोक्तियों द्वारा नायक की निन्दा करती है अधीरा हुई तो कठोर वचनों का प्रयोग करती है और यदि धीरा अधीरा हुई तो आँसुओं की सहायता से नायक की भर्त्सना करती है।[79] प्रगल्भा नायिका यौवन के कारण कामोन्मत्त होती है। सुरत के आरम्भ में ही आनन्दातिरेक के कारण अचेत हो जाती है।[80] इसके भी तीन भेद होते है - धीरा, अधीरा और धीराधीरा। धीरा प्रगल्भा नायिका

74· सा0द0, पृ0 151

75· स्वान्या साधारण स्मीति तद्गुणानायिका त्रिधा।

76· मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीलार्जवादियुक्।। -दशरूपक, 2/15
द्रष्टव्य -सा0द0, 3/56

77· मुग्धानवयः कामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि।
मध्योद्यद्यौवनानङ्गा मोहान्त सुरत क्षमा।। वही, 2/16

78· द्रष्टव्य -सा0द0, 3/57, 58

79· "धीरा सोत्प्रासवक्रोक्त्या मध्या साश्रु कृतागसम्।
खेदयेछपितं कोपादधीरा परुषाक्षरम्।।" वही, 2/17
द्रष्टव्य -सा0द0, 3/61

80· "यौवनान्धा स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा दीपताङ्गके।
विलीयमानेवानन्दाद्रतारम्भेऽप्यचेतना।। वही, 2/18
द्रष्टव्य -सा0द0, 3/62

अवहित्था ‡भाव-गोपन‡ के साथ आदर प्रदर्शित करती है और रति में उदासीन बनी रहती है। अधीरा प्रगल्भा मध्याधीरा के समान नायक से बातचीत करती है अर्थात् वक्रोक्तिपूर्ण वचनों से नायक पर प्रहार करती है।[81] नायक सम्बन्धी प्रणय के क्रमानुसार उक्त तीनो नायिकाओं के ज्येष्ठा और कनिष्ठा दो सूक्ष्म उपभेद भी किये गये हैं।[82]

परकीया नायिका ‡अन्य स्त्री अथवा दूसरे की विवाहिता‡ के दो भेद किये गये हैं - ‡1‡ परोढा ‡2‡ कन्यका। परोढा नायिका कभी की अंगी रस का आवलम्बन नहीं हो सकती। अन्य नायक के प्रति अनुरक्त नायिका को ही परोढा नायिका कहते हैं, परन्तु कन्या नायिक मुख्य और गौण दोनों प्रकार के रसों का आलम्बन बन सकती है। कन्या को परकीया इसलिये कहा गया है कि वह पिता आदि के अधीन होती है। यदि कन्या नायिक के माता-पिता या अभिभावक नायक के साथ विवाह करना भी चाहें तो अन्य प्रकार के अनेकों विघ्न बाधायें उपस्थित हो जाती हैं।[83] ज़ैसे - माधव का मालती से और वत्सराज का सागरिका से [illegible]

साधारणी नायिका को [illegible] [illegible] से भी अभिहित किया जाता है। यह कला में निपुण, प्रगल्भ और धूर्तता से युक्त [illegible] है।[84] यह मूर्ख, स्वतन्त्र ‡निरंकुश‡ स्वार्थी और नपुंसक धनिकों से तब तक प्रेम-व्यवहार [illegible] [illegible] उनका धन पूर्ण रूपेण समाप्त न हो जाय क्योंकि वेश्या की प्रधान वृत्ति धन के [illegible] प्रेम प्रदर्शित करना होता है। धन समाप्ति पर कुट्टनी का काम करने वाले अपनी

81· सावाहित्थादरोदास्ते रतौ धीरेतरा कुधा।
संतर्ज्य ताडयेत् मध्या-मध्या धीरेवतं वदेत्।। वही, 2/19
द्रष्टव्य -सा0द0, 3/63, 64

82· "द्वेधा ज्येष्ठा कनिष्ठाचेत्यमुग्धाद्वादशोदिताः। वही 2/20 का पूर्वार्द्ध

83· अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढा ङ्गि रसे क्वचित्।। -दशरूपक, 2/20

84· साधारण स्त्री गणिका कलाप्रागल्भ्य धौर्त्ययुक्।। वही, 2/21

माँ से उनको बाहर निकलवा देती है।[85] नाटक आदि में यदि नायक दिव्य पुरुष या राजा हो तो इसे नायिका के रूप में नहीं लिया जा सकता है। प्रहसन में "हास्योत्पादनार्थ अपने प्रेमियों के साथ प्रवंचना करती हुई दिखलाई जा सकती है। यदि प्रहसन के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकरण इत्यादि में वह नायिका के रूप में चित्रित की जाय तो उसका चित्रण अनुरक्ता के रूप में ही होना चाहिए।[86]

नायक के साथ सम्बन्ध के आधार पर नायिका की आठ अवस्थाएँ निर्धारित की गयी हैं - (1) स्वाधीनपतिका, (2) वासकसज्जा, (3) विरहोत्काण्ठिता, (4) खण्डिता, (5) कलहांतरिता, (6) विप्रलब्धा, (7) प्रोषितप्रिय और (8) अभिसारिका।[87] स्वाधीनपतिका नायिका का पति उसके वश में रहता तथा प्रसन्नचित्त रहता है।[88] वासकसज्जा नायिका वेषभूषा से सुसज्जित होकर प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा करती है।[89] संयोगवश पति के न आने से या विलम्ब से आने से दुखाःर्त नायिका विरहोत्कण्ठिता नायिका है।[90] नायक के शरीर में किसी अन्य नायिका के सहवास के दंतक्षत आदि विकार के चिह्नों को देख लेने पर क्रुद्ध नायिका खण्डिता नायिका है।[91] जो क्रोधावेश में आकर नायक से कलह करके नियुक्त हो जाय तत्पश्चात् अपने किये पर पश्चाताप करे ऐसी नायिका को

85· छन्नकामसुखार्थाज्ञ स्वतन्त्राहंयुपण्डकान्।
रक्तेव रञ्जयेदाढ्यान निःस्वान् मात्रा विवासयेत्।। वही, पृ0 2/22

86· रक्तैव त्वप्रहसने नैषा दिव्य:नृपाश्रये। वही, पृ0 104

87· आसामष्टावस्थाः स्युः स्वाधीनपतिकायिकाः।। वही पूर्वार्द्ध 2/23

88· आसन्नायत्तरमणा दृष्टा स्वाधीनभर्तृका।। वही, 2/23
द्रष्टव्य -सा0दर्पण, 3/72 तथा नाट्यशास्त्र, 24/207

89· मुदावासकसज्जा स्वं मण्डयत्येष्यति प्रिये।। वही, 2/24

90· चिरयत्यव्यलीकेतु विरहोत्कण्ठितोन्मनाः। वही, पूर्वार्द्ध 2/25
द्रष्टव्य - सा0द0 3/73

91· ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेर्ष्याकषायिता।। वही, 2/25
द्रष्टव्य - सा0द0, 3/75

"कलहान्तरिता"[92] नायिका कहते हैं। निर्दिष्ट संकेत स्थल पर निश्चित समय पर प्रियतम के न आने से ऐसी अपमानित नायिका को "विप्रलब्धा" नायिका कहते हैं।[93] प्रोषितपतिका वह नायिका है जिसका प्रिय किसी कार्यवश परदेश में है।[94] कामपीड़ित होकर किसी निर्दिष्ट स्थल पर प्रियतम से मिलने के लिये गमन करने वाली अथवा उसे बुलाने वाली नायिका अभिसारिका नायिका है।[95] भग्न मन्दिर, उद्यान, दूती का घर, श्मशान, नदी का तट अथवा सामान्यतः कोई अंधेरा स्थान ये अभिसार करने के उचित स्थल हैं।[96] उपर्युक्त प्रथम दो प्रकार की नायिकाएँ - स्वाधीन पति का और वाकसज्जा उज्जवलता और हर्ष से युक्त होती हैं और अन्तिम छः विरहोत्कण्ठिता आदि नायिकाएँ चिन्ता, निश्वास, खेद, अश्रु वैवर्ण्य (चेहरे का फीका पड़ जाना) तथा ग्लानि से युक्त और आभूषणों से रहित होती है।[97] परकीया नायिका के सन्दर्भ में उपयुक्त सभी अवस्थाएं संभव नही हैं वह विरहोत्कण्ठिता, विप्रलब्धा अथवा अभिसारिका हो सकती है किन्तु स्वाधीन पतिका न होने के कारण खण्डिता आदि नहीं हो सकती।

92· कलहान्तरिताऽमर्षाद्वि धूतेऽनुशयार्तियुक्। -दशरूपक 2/26 का पूर्वार्द्ध
द्रष्टव्य -सा0द0, 3/82

93· विप्रलब्धोक्तसमयमप्राप्तेऽतिविमानिता।। वही, 2/26
द्रष्टव्य - नाट्यशास्त्र, 22/218 और सा0द0, 3/83

94· दूरदेशान्तरस्थेतु कार्यतः प्रेम्मिषित प्रिया। दशरूपक, 2/27 पूर्वार्द्ध नाट्यशास्त्र, 22/219 और सा0द0, 3/84

95· कामार्ताऽभिसरेतकान्तं सारयेदाभिसारिका। दशरूपक 2/26 नाट्यशास्त्र, 22/226-231 तथा सा0द0, 3/76

96· द्रष्टव्य -संस्कृत नाटक, भाषान्तरकार, डॉ0 उदयभानु सिंह, पृ0 330-331।

97· चिन्ता निश्वास खेदाश्रु वैवर्ण्यग्लान्याभूषणैः।
युक्ताःषडन्त्याः दे चाद्ये क्रीडोज्जवल्य प्रहर्षितेः।। दशरूपक, 2/28

नायक की अपेक्षा नायिका के अलंकारों ॥गुणों॥ के निरूपण में अधिक उदारता दिखाई पड़ती है दशरूपककार ने नायिका के बीस और साहित्यदर्पण ने अट्ठाईस अलंकारों का निरूपण किया है।[98] साहित्यदर्पण में इसकी भी विस्तृत विवेचना हुई है कि मुग्धा, कन्यका अथवा मध्या या प्रगल्भा गायिकाएँ अपने अनुराग की किन विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति करती है। विस्तृत एवं सूक्ष्म ज्ञान के लिये एतत् सम्बन्धी ग्रन्थ अवलोकनीय हैं। नायिका भेद का निरूपण करते समय सर्वप्रथम स्वकीया, परकीया और साधारणिका या गणिका के कुल सोलह भेद बतलाये गये हैं। पुनः प्रत्येक की स्वाधीन पति का आदि आठ अवस्थाएँ बतलाई गई हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर ॥16×8॥ = 128 भेद हुए। पुनः उत्तम, मध्यम, अधम के भेद से ॥128×3॥ = 384 भेद सिद्ध होते हैं। परिगणन की इतनी अधिक संख्या औचित्यपूर्ण नहीं प्रतीत होती है।

नाट्यशास्त्र में अन्य नारी पात्रों की परिगणना की गई है- महादेवी, देवी, स्वामिनी, आश्रिता, रखेली, शिल्पकारिणी, नाटकीया, नाचने की अंगरक्षिका, सेविका, राजारानी अथवा प्रेमी-प्रेयसी के बीच सन्धि कराने वाली सन्देशवाहिका, प्रधानसेविका, दाररक्षिका, कुमारी, वृद्धा और मन्त्रणा देने वाली आयुक्तिका।[99] महिमा की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका वाली महादेवी होती है। सुख-दुख में अपने पतिव्रता धर्म का पालन करती है, पति का हित चाहने वाली, रानियों में श्रेष्ठ, बड़े कुल और शीलयुक्त, सर्वगुण सम्पन्न पटरानी "महादेवी" कहलाती है। "देवी" भी राजपुत्री होती है किन्तु उसमें उदात्तता की अपेक्षा गर्व की अधिकता रहती है। सदा प्रेम और संभोग में रत, नित्य सजी-धजी रहने वाली, वय एवं रूप के गुणों से युक्त होती है। सेनापति, अमात्य या अन्य राज्यकर्मचारी

---

98. भावो हावश्च हेला च भयस्तत्र शरीरजाः।।
शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्यश्च प्रगल्भता।
औदार्य धैर्यमित्येते सप्तभावा अयत्नजाः।।
लीला विलासों विच्छित्तिर्विभ्रमः कित्मकिञ्चितम्।
मोहायितम कुट्टमितं विव्वोको ललितं तथा विहृतं चेति विज्ञेया दशभावाः स्वभावजाः।। दशरूपक 2/30-33 द्रष्टव्य -नाट्यशास्त्र, 22/4-26 तथा

की पुत्री जिसका सम्मान के साथ पालन-पोषण होता है यह रूप और गुण से सम्पन्न होती है। यह राजा की प्रिया हो जाती है और अपने गुणों से ऊँचा पद प्राप्त कर लेती है। उपपत्नी के अन्य प्रकार "स्थायिनी और भोगिनी" भी बतलाये गये हैं। शस्त्र धारण करने वाली विशेष रूप से भण्डार आदि का देख-रेख करने वाली "आयुक्तिकार्ये" होती हैं। सभी अवस्था में राजा के साथ रहने वाली को "अनुचारिका" कहते हैं। प्रसाधन आदि की व्यवस्था करने वाली छत्र को लेकर चलने वाली सेविका परिचारिका कहलाती है। जो यूनानी युवतियाँ राजा के अंगरक्षक का कार्य करती थी यवनी नाम से जानी जाती थी। जो स्त्रियाँ पूर्ववर्ती राजाओं की नीति और उपचार को जानती हों सबसे पहले राजा जिसकी पूजा करते हों, जो सबकी कथा जानती हो उसे "वृद्धा" कहा जाता है। रति-सम्भोग से अनभिज्ञ, लज्जाशील "कुमारियाँ" नाम से जानी जाती हैं। अन्तःपुर की रक्षा करने वाली, स्तुति और मंगल के कार्य की देखरेख करने वाली "महत्तरी" होती हैं। रूप-यौवन से पूर्ण, सम्भोग में अत्यन्त चतुर, शय्या, आसन भोजन के विषय में जानकारी रखने वाली, अपने मन की बात किसी को न बताने वाली "शिल्पकारिका" कही जाती है। स्वर-ताल और यति की ज्ञाता रूप यौवन सम्पन्न स्त्रियाँ "नाटकीया" कहलाती हैं। आई हुई अन्य नारियों में रूप, यौवन, कान्ति में जिसके समान कोई न हो वह "नर्तकी" होती है। नर्तकी का आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया गया है वह पूर्णतः सुशिक्षित स्त्रियों के सामान्य दोषों से मुक्त कोमल हृदय वाली, प्रवीण आलस्य रहित विलासवती आदि गुणों से सम्पन्न हो।

सभी प्रकार के स्त्री पात्रों में नायिका की सहायिकाओं में "दूती" की भूमिका विशेष महत्त्व रखती हैं। नायक के मित्र पीठमर्द इत्यादि के निसृष्टार्थत्व आदि गुणों से युक्त "दूती" होती हैं। अन्य सहायिकाओं में नायिका की सखी, दासी, धात्रेयी (धाय की लड़की), पड़ोसिन शिल्पिका अथवा कारु दूती का कार्य करने वाली हो सकती है।[100]

100· दूत्यो दासी सखी कारुर्धात्रेयी प्रतिवेशिका।
लिङ्गिनी शिल्पिनी स्वं च नेतृमित्र गुणान्विता।। दशरूपक 2/29

"प्रतिहारी" अन्तःपुर में सन्धि-विग्रह सम्बन्धी कार्यो का निवेदन राजा से करती है। पुंसत्वहीन, स्त्रीभोगवर्जित पुरुष "नपुसंक" प्रकृति के पात्रों की भूमिकाओं की पूर्ति करते हैं। अन्तःपुर में ऐसे ही नपुंसकों की नियुक्ति की जाती है।

वस्तु, नेता और रस नाटक के संघटक तत्त्व हैं। इसके अतिरिक्त कवि को नायक के प्रत्येक व्यापार के लिए उपयुक्त वृत्ति के प्रयोग में भी निपुण होना चाहिए। अर्थात् वृत्ति से तात्पर्य नेता §नायक§ के उस व्यापार अथवा स्वभाव से है जो उसे किसी विशेष कार्य में प्रवृत्त करता है।[101] वृत्ति नायक को उत्कृष्टता का एक अनिर्वचनीय तत्त्व प्रदान करती है जो आकृति अथवा वेषभूषा के उत्तम सौन्दर्य में विद्यमान है। नायक की ये चार वृत्तियाँ हैं- कैशिकी, सात्त्वती, आरभटी तथा भारती। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में वृत्ति का विशद एवं विस्तृत विवेचन मिलता है। उनका मन्तव्य है कि वेद चतुष्टय से अंगचतुष्टयात्मक नाट्यवेद की तरह वृत्ति चतुष्टय का भी विकास हुआ है-

"ऋग्वेदाद्भारती क्षिप्ता यजुर्वेदाच्च सात्त्वती।
कैशिकी सामवेदाच्च शेषा चाथर्वपादपि।।" नाट्यशास्त्र 20/25

इस वृत्ति चतुष्टय में भारती वृत्ति नायक के व्यापार पर न आश्रित होकर शब्दों पर आश्रित है। भरतमुनि ने स्पष्ट कहा है -"भाषतो वाक्यभूयिष्ठा भारतीयं भविष्यति।" भारती वृत्त शब्द वृत्ति है इस पर सभी नाट्याचार्यो का मतैक्य है। अभिनवभारतीकार भारती को "पाठ्यप्रधाना" अथवा "वाग्वृत्ति" कहा है।

101· दशरूपक - 2/47, सा0द0 6/122, 123

जहां नायक गीत, नृत्य, विलासादि मृदु श्रृंगार चेष्टाओं के कारण मृदुतापूर्ण आचरण करता है। उसे "कैशिकी" वृत्ति कहते हैं।[102] इसका प्रयोग श्रृंगार रस में उपयुक्त है। इसमें पुरुष-स्त्री दोनों प्रकार के पात्रों की योजना की जाती है और श्रृंगार, विलास कामोपभोग तथा हास्य का चित्रण किया जाता है। कैशिकी के चार भेद है - नर्म, नर्म-स्फिञ्ज, नर्म-स्फोट तथा नर्म गर्भ। कैशिकी पद की व्युत्पत्ति है - "अतिशायिनः केशाः सन्त्यासमिति केशिकाः स्त्रियः "स्तनकेशवहीत्वं" हि स्त्रीणां लक्षणमिति तत्प्रधानत्वात् तासामियं कैशिकी।" अतः अभिप्राय है कि जहां कहीं की लालित्य और माधुर्य है वह सब कैशिकी का ही क्षेत्र है। नर्म की भी तीन विधाएँ है - शुद्ध हास्य, श्रृंगार-मिश्रित तथा भयमिश्रित।

"नर्म" नायकों के वचन वेष तथा चेष्टा से उत्पन्न परिहास पर आधृत हो उस समय जब सागरिका से हँसी मजाक करती हुई सुसंगता कहती है कि यह चित्र की बात मैं रानी से जाकर कह दूँगी। श्रृंगार मिश्रित नर्म अनुराग निवेदन अथवा सम्भोगेच्छा प्रकाशन अथवा प्रिय पर दोषारोपड़ के कारण कई प्रकार का होता है। वेष नर्म का उदाहरण नागानन्द में वहां पाया जाता है। जहां वेष के कारण भ्रम वश विट विदूषक को स्त्री समझा लेता है। मालविकाग्निमित्र में चेष्टा नर्म का उदाहरण वहां पर पाया जाता है जहां निपुणिका विदूषक को दण्ड देने के लिए उस पर टेढ़ा-मेढ़ा लकड़ी का डंडा फेक देती है और वह भ्रमवश उसे साँप समझ बैठता है। कैशकी का दूसरा भेद नर्म स्फूर्ज है जिसमें प्रेमियों के प्रथम समागम के अवसर पर सुख किन्तु अन्त में भय होता है। जैसे - मालविकाग्निमित्र के चौथे अंक में राजा और मालविका का मिलन। नर्मस्फोट में अनुभावों के दारा नवीन अनुराग प्रकट होता है। चरम भेद नर्म गर्भ में नायक अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रछन्न रूप धारण करता है। जैसे- प्रियदर्शिका का वह स्थल जहां पर वत्स मनोरमा का वेष धारण करके आता है।

102· दशरूपक, 2/48, 49, 50, 51 सा0द0, 6/124-126, नाट्यशास्त्र, 20/57-61

जहां नायक का व्यापार शोकरहित सत्व, शौर्य, त्याग, दया तथा आजर्व आदि भावों से युक्त रहता है वहां "सात्वती वृत्ति" कहलाती है।[103] यह वृत्ति वीर, अद्भुत और रौद्र रसों के अनुकूल है। समधिक करूण और श्रृंगार के भी उपयुक्त है। कैशिकी की भांति इसके भी चार अंग है- संलाप, उत्थापक, सांघात्म और परिवर्तक।[104] जहां वाणी द्वारा शत्रु को उत्तेजित किया जाय उदाहरणार्थ-महावीरचरित के पांचवे अंक में वाली राम को चुनौती देता है। सांघात्य वह है जिससे शत्रु के संघ का भेदन किया जाता है। यह संघभेदन मंत्रशक्ति और अर्थशक्ति के द्वारा किया जाता है। जैसे मुद्राराक्षस में दैव शक्ति के द्वारा। प्रारब्ध कार्य का परित्याग करके अन्य कार्य का सम्पादन ही परिवर्तक है। जैसे महावीर चरित में राम को समूल नष्ट करने के लिए आये हुए परशुराम राम का आलिंगन करना चाहते हैं। वीरों का गंभीर संवाद ही संलाप है। महावीर चरित में ही राम-परशुराम संवाद।

जब नायक में माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, उद्भ्रान्तादि चेष्टायें पायी जायें तब वह "आरभटी वृत्ति" कहलाती है। यह वृत्ति रौद्र, वीभत्स और भयानक रसों के अनुरूप है। इसके भी चार अंग है - संक्षिप्तिका, सम्फेट, वस्तूत्थापन तथा अवपातन।[105] शिल्प के द्वारा किसी वस्तु की संक्षिप्त रचना "संक्षिप्ति" है। उदाहरणार्थ- उदयन के आदमियों को रोकने के लिए बनाया गया हाथी। परन्तु कुछ आचार्य नेता के परिवर्तन में भी संक्षिप्ति मानते हैं। वह परिवर्तन

103· विशोका सात्वती सत्त्वशौर्यत्यागदयार्जवैः।
संलापोत्थापकवस्यां साडाऽघात्यः परिवर्तकः।। दशरूपक, 2/53

104· सा0द0 6/128, 6/129-131, नाट्यदर्पण - तृतीय विवेक।
नाट्यशास्त्र, 20/41-50।

105· एभिरंगैश्चतुर्धेयं सात्त्वत्यारभटी पुनः।
मायेन्द्र जाल संग्राम क्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितै।। दशरूपक 2/56
संक्षिप्तिका स्यात्सम्फेटोवस्तूत्थानावपातने
नाट्यशास्त्र, 20/64-71। सा0द0, 6/132-136।

यथार्थ हो सकता है जैसे- वाली के स्थान पर सुग्रीव का ग्रहण, अथवा नायक की प्रवृत्ति मात्र का, जैसे - राम के प्रति परशुराम का आत्मनिवेदन। माया आदि के द्वारा किसी वस्तु की रचना "वस्तूत्थापन" है। आपस में प्रहार करने वाले दो क्रुद्ध व्यक्तियों का संघर्ष ही संफेट है। उदाहरणः मालतीमाधव में माधव और अघोरघंट के घात-प्रतिघात का वर्णन। कोलाहलपूर्ण खलबली "अवपात" है। जैसे- प्रियदर्शिका के पहले अंक में विन्ध्यकेतु पर आक्रमण।

आचार्य भरतमुनि ने आरभटी की व्याख्या करते हुए कहा है -"आरभटी" वृत्ति वस्तुतः क्रोधावेग आदि से संभत आंगिक, वाचिक और मानसिक व्यापार विशेष का नाम है। आरभट ऐसा योद्वा को कहा करते हैं जो हाथी के चलाने के अंकुश के समान हिंसन-समर्थ हो जहां भी ऐसे आरभट हों वहाँ आरकटी वृत्ति विद्यमान रहती है। आरभट और अनृत, द्वन्द्व, वञ्चना आदि के चित्र-विचित्र प्रकारों का जन्मजात सम्बन्ध है। इसलिए आरभटी में अनृत आदि-आदि के अनेकानेक विशेषताओं का समावेश रहा करता है। यह वृत्ति दीप्ति रसाभावों से समन्विति वृत्ति है - भयानके च वीभत्से रौद्रे चारभटी भवेत्"।[106]

वैसे तो अर्थ पर आश्रित वृत्तियाँ तीन ही होती है भारती वृत्ति तो शब्द पर आश्रित है। वाग्व्यापार ही इनकी अभिव्यञ्जना का एकमात्र साधन है। भारती वृत्ति का प्रयोग सभी रसों में रहता है। किन्तु नाट्यशास्त्र में केवल करूण और अद्भुत रसों का उल्लेख मिलता है।[107] यह वृत्ति स्त्रियों द्वारा अप्रयोजनीय है। पुरूषों को संस्कृत का व्यवहार करना चाहिए। भारती वृत्ति और वाचिकाभिनय का अटूट सम्बन्ध होता है। यह समस्त रूपक और समस्त रसों की वृत्ति है ऐसा नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र का स्पष्ट मत है।[108] शास्त्रीय रीति से इसके चार अंग बतलाये गये है - प्ररोचना, आमुख, वीथी और प्रहसन। प्रथम दो भेद तत्त्वतः नाटक के आमुख से सम्बद्ध हैं तथा अन्तिम वीथी और प्रहसन रूपक की दो विधाएँ हैं। जो हमारे शोध के विषय से परे की वस्तु हैं।

106· सा0द0, पृ0 466

नाटक की महत्ता का प्रधान कारण है इसका सर्वव्यापी स्वरूप जिसमें जीवन और जगत् के सभी भावों, रसों, कर्मों तथा विविध अवस्थाओं का समाहार हो जाता है।[109] आचार्य भरत ने नाटक को देवताओं ऋषियों व उत्कृष्ट बुद्धि वाले राजाओं का "पूर्ववृत्तानुचरित" कहा है।[110] भरत के अनुसार वस्तु और नायक दोनों प्रख्यात होते हैं। नाटक का नायक राजर्षि वंश का व्यक्ति होना चाहिये, क्योंकि "नृपतियों का सुख व दुःख से उत्पन्न तथा विविध रसों व भावों से युक्त चरित ही नाटक होता है।[111]

नाटक में वर्णित जिन चरित्रों के रूप धारण करके अभिनेतागण वाचिक, आंगिक, सात्विक तथा आहार्य अभिनय करते हैं उन्हें पात्र कहते हैं। भरत ने नाट्यशास्त्र के चौबीसवें अध्याय में पुरुषों एवं स्त्रियों के स्वभाव की मीमांसा की है। उन्होंने देवों और मनुष्यों तक ही अपने पात्रों को सीमित रखा है। नाटक की परिभाषा के प्रकरण में यह प्रोक्त हुआ है कि अभिनेता वे सब होते हैं जो नाटकीय अर्थ को दर्शकों तक प्रेषित करने में सहायक होते हैं। इसी प्रसंग में यह भी स्थापित हुआ है कि बहुत से नाटककारों ने अन्य जीवों को, भावों को तथा जड़ पदार्थों को भी पात्र के रूप में प्रकट किया है। प्रख्यात नाटक अभिज्ञान शाकुन्तल में मृग, भ्रमर, लता, वृक्ष, वनदेवता और कोकिल मानव पात्रों की तरह से प्रयुक्त हुए हैं। भरत मुनि ने नाटक में दिव्य चरित को मात्र सहायक के रूप में स्वीकार किया है, नायक के रूप में नहीं -

प्रख्यातवस्तुविषयं प्रख्योदात्तनायकम्।
राजर्षिवंश्यचरितं तथैव दिव्याश्रयोपेतम्1। ना0शा0 18/10

109· सार्वभावैः, सर्वरसैः सर्वकर्मप्रवृत्तिभिः।
नानावस्थान्तरोपेतं नाटकं संविधीयते।। ना0शा0 21/147

110· देवतानामृषीणां च राज्ञां चोत्कृष्टमेधसाम्।
पूर्ववृत्तानुचरितं नाटकं नाम तद्भवेत्।। ना0शा0 21/145

111· नृपतीनां यच्चरितं नानारसभावचेष्टितं बहुधा।
सुखदुःखोत्पत्तिकृतं भवति हि तन्नाटकं नाम्।। ना0शा0 18/12

अभिनव ने "दिव्यश्रयोपेत" की विशद व्याख्या करते हुए कहा है कि यद्यपि देवचरित भी प्रख्यात होता है पर देवों में वरदान देने की शक्ति तथा मन्त्रादि के प्रभाव की अधिकता होने से उनका चरित मनुष्यों को उपायों का उपदेश नहीं दे सकता इसलिये दिव्य चरित को नाटक में नायक नहीं बनाना चाहिये। नायक के सहायक के रूप में उसकी योजना में अनौचित्य नहीं है।[112] किन्तु नायिका दिव्य हो सकती है।[113] ऐसी नायिका का चरित नायक के चरित से ही आक्षिप्त हो जाता है। उदाहरणतः विक्रमोर्वशीय की "उर्वशी" दिव्य नायिका ही है।

दशरूपककार धनञ्जय नाटक में प्रख्यातवंशीय राजर्षि और दिव्य दोनों प्रकार के नायक स्वीकार किये हैं।[114] नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र व गुणचन्द्र भरत के मत का ही अनुसरण करते हैं।[115]

भरत ने विविध जाति के पात्रों के स्वभाव का उल्लेख करते हुए कहा है कि देवता लोग धीरोदत्त, राजा लोग धीर ललित, सेनापति व अमात्य धीरोदात्त तथा ब्राह्मण व वणिक् धीरप्रशान्त स्वभाव के होते है।[116] वस्तुतः भरत का यह कथन प्रधान नायक के लिए ही नहीं, अपितु सभी पात्रों के सम्बन्ध में सामान्य निर्देश है। अतः दिव्य पात्र सामान्यतः धीरोद्धत्त प्रकृति के होते हैं।

112· द्रष्टव्य ना0शा0 18/10 पर अभिनव भारती।
113· द्रष्टव्य ना0शा0 18/10 पर अभिनव भारती।
114· प्रख्यातवंशो राजर्षिर्दिव्यो वा यत्र नायकः।। दशरूपक 3/23
115· द्रष्टव्य ना0द0 1/5 की विवृति।
116· देवा धीरोद्धता ज्ञेयाः स्युर्धीरललिता नृपाः।
सेनापतिरमात्यश्च धीरोदात्तौ प्रकीर्तितौ।।
धीरप्रशान्ता विज्ञेयाः ब्राह्मणा वाणिजस्तथा।। ना0शा0 24/4

विश्वनाथ ने भी नाटक में तीन प्रकार के नायकों की कल्पना की है- प्रख्यात वंश राजर्षि, दिव्य तथा दिव्यादिव्य। आचार्य भरत ने नाटक में विविध पात्रों के प्रयोग का निर्देश किया है। भरत की दृष्टि में नाटकों की पात्रयोजना केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं है, अपितु उसमें धार्मिक व पौराणिक कथाओं के अतिप्राकृत अथवा अलौकिक पात्र मानव पात्रों की भाँति ही प्रयुक्त हो सकते हैं। भरत ने नाटक में पात्रों की दिव्या, दिव्य-मानुषी तथा मानुषी इन त्रिविध प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है।[117] आहार्याभिनय के अन्तर्गत नेपथ्य रचना के प्रकरण में उन्होंने देव, सिद्ध विद्याधर, गन्धर्व, नाग, दैत्य दानव भूत पिशाच, राक्षस आदि अतिमानवीय पुरुष वस्त्रों पात्रों के नेपथ्य विधान का विस्तृत वर्णन किया है जिससे स्पष्ट होता है कि भरत को नाटक में उक्त सभी प्रकार के पात्र अभीष्ट है।[118] भरत ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि श्रृंगार रस के प्रसंग में दिव्य पात्रों के सभी भाव न आंगिक चेष्टायें मानवीय भावों व चेष्टाओं पर आश्रित हों।[119] नाट्यशास्त्र में विभिन्न दिव्य पात्रों के आवास पर्वतों का भी उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार महर्षियों का आवास नीलगिरि है।[120]

संस्कृत नाटकों में नायक की फलप्राप्ति, शत्रु पर विजय, राज्यलाभ, स्त्रीलाभ आदि लौकिक लक्ष्यों से ही सम्बन्धित होती हैं। दिव्य अथवा अति प्राकृतिक तत्त्व प्रायः इन लक्ष्यों की प्राप्ति के साधन या सहायक के रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं।

117· अथ दिव्याः प्रकृतयो दिव्य मानुष्य एव च।
मानुष्य इति विज्ञेया नाट्यवृत्तिक्रियां प्रति।। ना0शा0 12/26

118· द्रष्टव्य ना0शा0, अध्याय 21

119· सर्वे भावाश्च दिव्यानां कार्या मानुषसंश्रयाः।।
तेषां चानिमेषत्वादि नैव कार्यं प्रयोक्तृभिः।। ना0श0 21/159
दिव्यानां दृष्यते पुंसां श्रृंगारे योषितां यथा।
ये च भावा मानुषाणां स्युर्यदंगं तच्च चेष्टितम्।।
सर्व तदेव कर्त्तव्यं दिव्यैर्मानुषसंगमे। ना0शा0 22/326-27

120· द्र0 ना0शा0 13/28-32

स्पष्ट है कि नाट्यग्रन्थों में जो भी पात्रों का वर्गीकरण उपलब्ध है वह नायक और नायिका के ही लक्ष्य करके हुआ हैं। आर्ष पात्रों का कोई पृथक वर्गीकरण आदि नहीं दृष्टिगोचर होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि ऋषिगण समाज में इतने समादृत थे कि उनके माध्यम से नाटकीय कथावस्तु को नया आयाम देने अथवा अलौकिक प्रभाव डालने के लिये ऋषियों को पात्र रूप में प्रयुक्त किया जाता है। उदाहरण के लिये अभिज्ञान शाकुन्तल में कण्वाश्रम में आश्रम मर्यादा के विपरीत दुष्यन्त-शकुन्तला का गान्धर्व विवाह होता है और आगे चलकर दुष्यन्त शकुन्तला को भूल जाते हैं। दोनों ही घटनाएँ भारतीय संस्कृति और मर्यादा के अनुकूल नहीं हैं अतएव इनका परिष्कार आवश्यक है, एतदर्थ शाप की घटना का आयोजन किया गया। चूँकि शाप तपः सिद्ध ऋषि ही दे सकता है। दुर्वासा शाप और सुलभ कोप की साक्षात् प्रतिमूर्ति के रूप में विख्यात हैं अतएव इस घटना के लिए उन्हें चित्रित किया गया हैं। इसी शाप के माध्यम से कालिदास ने महाभारतीय दुष्यन्त के चरित्र का कायाकल्प कर दिया है। इस प्रकार प्रमुख संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त अन्य प्रमुख आर्ष पात्रों का चित्रण अगले अध्यायों में सविस्तार किया जायेगा।

*****

तृतीय अध्याय

आर्ष पात्र

- ऋषि पद का निर्वचन
- ऋषि और मुनि में भेद
- ऋषियों का वर्गीकरण
- सप्तर्षि
- विभिन्न मन्वन्तरों के सप्तर्षि
- पञ्चधा ऋषि
- चार प्रकार के ऋषि
- सप्तविध ऋषि
- मत्स्य पुराणानुसार 92 श्रुतिर्षि

ऋषि

"प्रवरे ये समाख्याताः ते ऋषयः।" ब्रह्मज्ञान, विद्या, सत्य, तप और शास्त्रीय ज्ञान में पूर्ण निरत मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहलाता है। दीर्घजीवन मन्त्रसाक्षात्कार, शापानुग्रह, शक्ति, दिव्यदृष्टि प्रबुद्धता धर्मदर्शन एवं गोत्र आदि ऋषि के गुण तथा विशेषताएँ हैं।

हमारे संस्कृति, साहित्य, धर्म, दर्शन, इतिहास आदि के ज्ञान का मूल स्रोत वेद ही है। वेद और ज्ञान से सम्बन्धित ऋषियों का माहात्म्य सर्वविदित है। आर्य धर्म के जीवनदाता ऋषियों के उपदेशों से आर्य संस्कृति और सभ्यता का निर्माण हुआ। इन प्रत्यक्षधर्मा, सत्यवक्ता और सत्यनिष्ठ ऋषियों के शब्द प्रमाण माने जाते थे।

ऋषि पद का अर्थ और निर्वचन

"ऋष" गतौ धातु से "इन्" प्रत्यय के योग से "ऋषि" शब्द निष्पन्न हुआ जिसका अर्थ है - अन्तःस्फूर्त कवि अथवा मन्त्रद्रष्टा। भोजराज[1], हरदत्त[2], यादव प्रकाश[3] मेधातिथि[4] प्रभृति प्राचीन मनीषी इसे "वेद" का पर्यायवाची मानते हैं। ऋग्वेद के मन्त्र (1/1/2) में ऋषि शब्द का प्रयोग "शास्त्रकृत" आचार्य के लिये हुआ है - "अग्निः पूर्वेभिऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवा एह वक्ष्यति।" इसी प्रकार ऋग्वेद के अन्य स्थलों पर ऋषिपद "मन्त्रद्रष्टा" के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[5] ऋग्वेद (8/16/7) के सायण भाष्य में स्पष्ट उल्लेख है कि "द्रष्टा सर्वस्यार्थजातस्य" इति। ऋग्वेद के 1/48/1, 77/2/51/29, 54/7, 8/3/14 ऋषिपद "अतीन्द्रियद्रष्टा"

1· "ऋषिः वेदः"-भोजराजकृत 2/1/159 की वृत्ति में दण्डनाथ द्वारा लिखित।

2· ऋषिर्वेदः। तदुक्तमृषिणा इत्यादौ दर्शनात्। पाणिनीय सूत्र 1/1/18 की पदमञ्जरी व्याख्या।

3 ऋषिस्तुवेदे। वैजयन्तिकोश

4· मनुभाष्यकार मेधातिथि का ऋषिर्वेदः प्रमाण ऊपर लिखा गया है इसके अतिरिक्त शाश्वत कोश श्लोक 619 में उल्लिखित है -ऋषिर्वेदे।

5· ऋग्वेद 1/48/1, 66/2/51/29, 54/7, 8/3/14, 8/6/12, 4/8/8/8, 9/7, 10/23/7, 80:4, 10/7, 115/9, 130/7·

के अर्थ में भी ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है।[6] किन्तु ऋग्वेद 1/89/8 मन्त्र में ऋषि पद का "अतीन्द्रियार्थप्रकाशकेर्मन्त्रेःसाधने" ऐसा अर्थ किया है। एक अन्य स्थल {4/50/1} पर वेंकट के भाष्य में "ऋषयःमेधाविन" ऐसा अर्थ पाया जाता है। 10/73/11 के मनुभाष्य में "ऋषयः द्रष्टारः" के अर्थ में "ऋषिपद प्रयुक्त किया गया है। उद्गीथ महोदय ने अपना मत व्यक्त करते हुए "सर्वार्थानां द्रष्टारं लोकपालस्त्वात् कृताकृतस्य प्रत्यवेक्षितार" ऐसा कहा है। 10/81/1 में उद्गीथ द्वारा "उत्पत्ति स्थिति प्रलयकालानां द्रष्टा परमात्मा" यह अर्थ किया गया है। यहीं पर वेंकट महोदय ने ऋषिपद का अर्थ होता किया है। ऋग्वेद के 10/107/6 इस मन्त्र में सायण महोदय के द्वारा "अतीन्द्रियार्थदर्शिनं यदा सत्कर्मकरणेन ऋषिः" ऐसा अर्थ किया गया है।

ऋग्वेद के 6/14/2, 9/66/20, 106/6 स्थलों पर ऋषिपद "सर्वद्रष्टा" के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यहीं पर वेंकट के द्वारा "मेधावी विद्रष्टा" अर्थ दिया गया है। 10/13/4, 27/5 और 10/87/4 इन स्थलों पर वेंकट ने "ये ऋषयः सरणवजिते विस्तृते लोके निग्रहेण निश्चलमवस्थिते वर्तमानाः।" यह ऋषि पद का अर्थ किया है।

10/27/22, 30/10, 62/5 इन स्थलों पर ऋषि शब्द का अर्थ "कर्मद्रष्टा" के रूप में हुआ है। 1/164/15 यहां सायण के अनुसार ऋषि पद का अर्थ "गन्तार" हुआ है। "गम्भीर कर्मणि" के रूप में 10/67/5 प्राप्त होता है। 8/79/1 में ऋषि शब्द का अर्थ ज्ञानवान् किया गया है। यजुर्वेद 7/46 पर ऋषि पद की व्याख्या उवट ने लिखा है - "ऋषिर्मन्त्राणां व्याख्याता।" अर्थात् ऋषि मन्त्रों का व्याख्याता है।

---

6. ऋग्वेद 1/10/11, 162/7, 179/6, 3/21/3, 43/5, 53/9, 10/6, 34/1/8/3/4, 8/6, 70/19, 9/54/1, 87/3, 96/6, 10/33/4, 62/4 इति।

ब्राह्मण आदि ग्रंथों में भी ऋषि पद की अनेक प्रकार से व्याख्या की गयी है। जैसे शतपथ ब्राह्मण में §6/179/1§ "असद्वाऽ इदमग्रऽ आसीत। तदाहुः किं तदसदासीदित्पृषयो चावऽग्रे। सदासीत्तदाहुः के सऋषय इति प्राणा वाऋषयस्ते यत्पुरा। स्मात्सर्वस्मादिदमिच्छन्तः श्रमेण तपसा। रंषस्त स्मादृषयः इति।" सायण का "ऋषयः प्राप्ता वै....। सायण महोदय प्राण को लिङ्ग शरीर मानते हैं। ब्राह्मण के उक्त स्थल की व्याख्या करते हुए एगलिंग (Eggling) लिखते हैं-

> "who were those Rishis ? The Rishis doubtless, were the vital airs, inasmuch as before (the existence of) this universe, they desiring it, **wore** themselves out (rish) with toil and aisterity, therefore (they are called) Rishis."[7]

निरुक्तकार यास्क ने लिखा है - "मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवान्ब्रुवन्। को न ऋषिर्भविष्यतीति तेभ्यः एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन्। मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूलहम्। तस्मायदेव किञ्चानूचानोऽभ्यूहत्यार्थ तद्भवति। वेंकटमाधव के अनुसार उक्त वचन किसी प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थ का पाठ है। इससे प्रतीत होता है कि ब्राह्मणों में भी ऋषिपद मन्त्रार्थ द्रष्टा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। बोधायन धर्मसूत्र में गोविन्दस्वामी ने ऋषिपद की व्याख्या में लिखा है - "ऋषिर्मन्त्रार्थज्ञः।" अर्थात् ऋषि मन्त्रार्थ को जानने वाला होता है।[8]

पुराणों में ऋषि, मुनि, यति आदि शब्द प्रायः एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। वैदिक मान्यताओं की भाँति उनका श्रेणी विभाग नहीं मिलता। जैसा कि डांगे महोदय लिखते है कि -

---

7. SBE, Vol. XLI, Part III, P. 143
8. बोधायन धर्मसूत्र 2/6/36

The Puranas do not, generally, show any clear difference among these terms, and the term risi is often seen used for all these types."[9]

पुराणप्राप्त ऋषिस्वरूप एवं निर्वचन आदि इस प्रकार व्यक्त किये गये हैं - गत्यर्थक ऋष् धातु से "ऋषि" पद की व्युत्पत्ति अनेक पुराणों में ही दी गयी है।[10] अन्यत्र ब्रह्माण्ड0 में "यस्मादृषन्ति ते धीरा महान्तः···· तस्माद् महर्षयः" कहा गया है यह भी ऋषि धातु का बोधक है।[11] ब्रह्माण्ड0 में ही अन्य स्थल पर वैशेषिक आचार्यो के मतानुसार ऋषि स्वरूप के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किया गया है - जिनमें महान् तप का प्रकर्ष होता है, वे ही ऋषि हैं। मेधा और ऐश्वर्य अर्थात् ईश्वरता आदि का उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। साधारण मनुष्यों की अपेक्षा प्रज्ञा आदि का विशिष्ट उत्कर्ष ही ऋषित्व का ज्ञापक है। वैशेषिक आचार्य ऋषियों को आम्नायविधाता के रूप में भी स्वीकार करते हैं।[12] ब्रह्माण्ड0 तथा मत्स्य0 में मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के तारकाख्य ज्ञान का उल्लेख हुआ है।[13] पञ्चधा ऋषि जाति के विवेचन के साथ ऋषि में अहित ज्ञान की विशद व्याख्या अनेक पुराणों में हुई है।[14] इसका स्पष्ट वर्णन योगसूत्र और उसके भाष्य में पाया जाता है।[15] ऋषिदर्शनात की व्याख्या में दुर्गाचार्य ने भी तारकज्ञान का उल्लेख किया है- "तानसो

---

9. Encyclopeadia of Puramic beliefs and practices Vol. IV, P. 123
10. "निवृत्तिसमकालं तु बुदया व्यक्तमृषिः स्वयम्।
परं ह्यर्षयते यस्मात्परमर्षिस्त्वमस्य तत्।।" ब्रह्माण्ड0 1/32/86
गत्यार्थादृषेवर्धातोर्नाम निवृतिरादितः।
यस्मादेव स्वयंभूतात्माच्चयृषिता स्मृता।।
ईश्वरात्स्वयमुदभूता मानसा ब्रह्मः सुताः। बह्माण्ड0 1/32/87 अन्य द्रष्टव्य स्थल-वायु0 7/75, मत्स्य0 145/83
11. बह्माण्ड0 1/32/89
12. "तपः प्रकर्षः सुमहान्येषां ते ऋषयः स्मृताः।
बृहस्पतिश्च शुक्रश्च व्यासः सारस्वतस्तथा।।"-ब्रह्माण्ड 1/33/31-35
द्रष्टव्य-प्रशस्तपाद भाष्य, पृ0 128-129।
13. ब्रह्माण्ड0 1/32/69, मत्स्य0 145/64
14. वायु0 59/79-87, ब्रह्माण्ड0 1/32/86-95, मत्स्य0 145/64-89।
15. योगसूत्र पर भाष्य 3/54

तारकेन ज्ञानेन पश्यति।" वेदार्थ दीपिका में ऋषियों के विशेषण के रूप में अनागतातीतवर्तमानार्थवेदी शब्द को प्रयुक्त किया गया है यह भी तारक ज्ञान का द्योतक है। वायु पुराण में ऋष् धातु के कई अर्थ परिलक्षित होते हैं -

ऋषीत्येष गतौ धातुः श्रुतौ सत्ये तपस्यथ।

एतत्सन्नियतः तस्मिन् ब्रह्मणा स ऋषिः स्मृतः।[17]

उक्त श्लोक में गत्यर्थ के अतिरिक्त "श्रुति, सत्य, तप आदि अर्थ भी कहे गये हैं। ऋषि के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जिनमें सत्यादि विद्यमान है वे ऋषि कहे जाते हैं। कुछ पाठान्तर के साथ यह श्लोक मत्स्य0 145/81 पाया जाता है। यहां ऋषि धातु का एक अर्थ हिंसा भी किया गया हैं। मत्स्य0 में ही ऋषिपद "विद्या" के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है।

दुर्गाचार्य ने निरुक्त के "ऋषिदर्शनात्"[18] की व्याख्या करते समय "ऋषीगतौ" धातु से ही ऋषि पद की निरुक्ति की है। ये इसका "दर्शन" अर्थ भी स्वीकार करते हैं। तैत्तिरीय आरण्यक भी गमनार्थक "ऋष" धातु की सत्ता विद्यमान है।[19] ऋषिदर्शनात् यास्क के इस वचन पर आधृत पुराणों में ऋषियों द्वारा मन्त्रों का दर्शन हुआ, इस सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। वायु पुराण के "ऋषीणां··· दर्शनेन"[20] वाक्य मन्त्रदर्शन का सूचक है। तप करने वाले ऋषियों मन्त्रों के प्रादुर्भाव के विवरण में भी "दर्शन" पद परिलक्षित होता है।[21] गत्यर्थक "ऋषी" धातु से ऋषि शब्द की व्युत्पत्ति पूर्वाचार्यो को मान्य है। दुर्ग ने निरुक्त के "ऋषि दर्शनात्" वाक्य के विवेचन में - "ऋषी गतौ" धातु से ही ऋषि पद की निरुक्ति की है। उणादि सूत्र की व्याख्या में श्वेतवनवासी ने ऋषि पद की व्युत्पत्ति करते हुए कहा है - "गत्यर्थात् ऋषेर्ज्ञानार्थत्वात् मन्त्रं दृष्टवन्त ऋषयः।[22] गत्यर्थक धातु ज्ञानार्थक

17· वायु0 59/79

18· निरुक्त 1/12 ख0

19· "अजान्ह वै पृश्नीस्तपस्यमानान्ब्रह्म स्वयम्भवभ्यानर्वत्व ऋषयोऽभवन् तद् ऋषीणामृषित्वम्।"

20· वायु0 59/62

21· मत्स्य0 145/64, वायु0 59/62, ब्रह्माण्ड 1/32/69।

22· उणादि सूत्र 4/129 की व्याख्या।

होते हैं - "सर्वे गत्यर्थाज्ञानार्थः" यह मत पूर्वाचार्यो द्वारा अनुमोदित है।

मत्स्य पुराण में इन ऋषियों के जो मानस अथवा औरस पुत्र हुए वे ही ऋषि पद से रूढ़ है - "ईश्वराणां सुतास्वेषां मानसाश्चोरसाश्च ये। ऋषिस्तस्मात् परत्वेन भूतादिर्ऋषयस्ततः।[23]

"परं हि ऋषते", "ऋषन्ति महान्तम्" आदि पौराणिक वाक्यों से ऋषियों का तत्त्वदर्शन अथवा साक्षात्कृतधर्मता सिद्ध होता है। वायुपुराण में कहा गया है- यत् स्थावरजङ्गमान जीवान् ये पूर्वजाः तत्त्वार्थ दर्शयामासुप्त एवं ऋषिपदाभिधेयाः। एते बुद्धिपारद्रष्टारः स्थितधियं ओरसाः मानस्संकल्पेनोत्भूता वा ईश्वरपुत्राः त्यक्ताहंभावाः प्रमोषिताज्ञानध्वान्ताः ऋषित्वमुपगता आसन्। जैसा कि कहा गया है - "यस्माऽ दृषन्ति ये धीरा महान्तं सर्वतो गुणैः तस्मान्महर्षयः प्रोक्ता बुद्धेः परमदर्शिनः। ईश्वराणां शुभास्तेषां मानसा औरसाश्च ते। अहङ्कारं तपश्चैव त्यक्त्या च ऋषितां गताः। तस्मात्तुऋषयस्ते वै भूतादौ तत्त्वदर्शनाः।[24] यहां पर तत्त्वदर्शन रूप मत को स्पष्टतः स्वीकार किया गया है।

सामान्यतः कहा जा सकता है कि "यत् बुद्धयेश्वर्यबलेषु विप्रकृष्टाः तपसः प्रकर्षेण व्यक्तावपि सृष्टौ ये तत्त्वदर्शिनः ते ऋषयः।" तैत्तिरीय आरण्यक 2/9 पर भाष्यकार भट्टभाष्कर महोदय लिखते हैं - "अत्यानिति न कदाचिदीप जायन्तः इत्यजाः नित्याः पृश्नयः शुक्लाः निर्मलाः तपस्यामानान् तपश्चरतः ब्रह्मवेदः तत्स्वयंभुस्वेनरूपेण स्वयमेवभवति न कदाचिदपि भिधते, तत् अभ्यानर्सत् आभिमुख्येन प्रत्यक्षमागच्छत्।..... ततः प्रभृति तै ऋषयो भवन् सा ऋषिर्जातिरासीत्।"

सायण महोदय ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र की व्याख्या करते हुए लिखे है- "ईश्वरानुग्रहात् प्रथमतः ये अतीन्द्रियान् वेदान् साक्षात्कृतवन्तः ते ऋषयः इति विदधाहि अतीन्द्रियास्य वेदस्य परमेश्वरानुग्रहेण प्रथमतो दर्शनात् ऋषित्वम्।[25] वैदिक

---

23. मत्स्य0 145/85-86

24. वायु0 59/82-84

25. ऋग्वेद 1/1/1 सायण

परम्परा में मन्त्रद्रष्टा को ही "ऋषि" कहा जाता है। ऋषिकर्तृक मन्त्रदर्शन रूप मत प्राचीन है। मन्त्र, सूक्त आदि का दर्शन वैदिक ग्रन्थों में द्रष्टव्य है।[26]

निरुक्त 1/20 पर आधृत वाक्यपदीय 1/145 की स्वोपज्ञ टीका में "अत्राह..... प्रतिपेदिते" आदि कुछ कारिकाएं उद्धृत की गयी हैं जिनमें उक्त हुआ है कि आदि ऋषियों का ज्ञान प्रतिभा से ही उत्पन्न हुआ था। तदनन्तर उपदेश के द्वारा और उसके पश्चात् अभ्यास से वेदार्थ ज्ञान कराया जाता था।

कात्यायन श्रौतसूत्र[27] में प्रयुक्त "मन्त्रकृत" का अर्थ "मन्त्रदृक" किया गया है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार वेद के अनुवचन-प्रवचन करने वाले ऋषि है।[28] वेदार्थ दीपिका के आरम्भ में ही ऋषि पद की विलक्षण व्याख्या की गयी है -"अर्तेः सनोतिश्च ऋषि शब्दो निरूच्यते।" यह व्याख्या अन्यत्र परिलक्षित नहीं होती है। इस शब्द की एक अन्य प्रसिद्ध व्याख्या - "यस्य वाक्यं स ऋषिरित्यस्ति"।[29] मन्त्रब्राह्मणरूप वक्तारः ऋषयः" इस व्याख्या की पुष्टि ऋक्सर्वा से हो जाती है। यास्क तथा शौनक ने भी ऐसा ही निर्वचन अपने ग्रन्थों में किया है। "यस्य वाक्यं स ऋषिः"[30] इस वाक्य से मन्त्र का वक्ता ही ऋषि है इस बात की पुष्टि हो जाती है। कैयट ने अपनी टीका में लिखाहै कि - "ऋषयः संस्कारातिशयाद् वेदार्थ स्मृत्या शब्द रचनां विदधति।"[31]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जो देवताओं के स्तुति रूप मन्त्रों के द्रष्टा, प्रयोक्ता या वक्ता है वह ऋषि है।

---

26. तै0सं0 1/5/4, 2/6/8, 5/2/1, काण्वसंहिता 19/11, 10/5, 19/10, शतपथ0 9/2/2/38, 9/2/2/1, कौ0ब्रा0 12/1, ताण्ड्य ब्रा0 4/7/3 इनके अतिरिक्त ऋक्सर्वानुक्रमणी 2/1, 3/1, 3/36, 4/1, 7/1, 8/1, 8/42, बृहद्देवता 1/1, आर्षानुक्रमणी 1/1, अनुवाकानुक्रमणी 2 आदि में भी यह मत उपलब्ध है।
27. कात्यायन श्रौतसूत्र 3/2/9
28. "यो वै ज्ञातोऽनूचानः स ऋषिः।" शतपथ 4/3/4/19
29. ऋकसर्वा0 1/9/5
30. सर्वानुक्रमणी 2/4
31. 4/3/101 सूत्रीय महाभाष्य की कैटीय टीका प्रदीप में।

मैत्रायणी संहिता §4/1/2§ की उक्ति "ऋषयः कवयः" से स्पष्ट होता है कि ऋषियों में कवित्व शक्ति होती है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार कवि क्रान्तदर्शी होता है।[32] ऋषि केवल लोकद्रष्टा ही नहीं अपितु वस्तुद्रष्टा भी होता है। यही कारण है कि ऋषि काव्य में जो लौकिकालौकिक दृष्टि का सूक्ष्मवेक्षण पाया जाता है वह सामान्य कवि के काव्य में अदृष्ट है। सम्भवतः इसीलिए अभिनवगुप्त गुरु पादाचार्य भट्टतौत ने कहा है- "नानृषिः कविरित्युक्तम्" शतपथ ब्राह्मण में भी उल्लिखित है- ऋषि कव्योस्समानार्थकत्वम् श्रूयत एव एते वै कवयो यदृषयः इति।[33] नूतन गवेषक तथा वेदविधा के अध्येतागण भी पारम्परिक अर्थ की ही पुष्टि करते हैं। उनके अनुसार कालजयी रचना करने में ऋषि ही समर्थ हैं। जिस प्रकार से ऋषि वस्तुतः सुष्ठुरूपेण जीवन को जानता हैं उसी प्रकार दर्शन की शक्ति से कालजयी काव्यरचना में नैपुण्य होता है। उस प्रकार के काव्य रचना से वह लोक को सतपथ पर विनियोजित करता है। इस प्रकार चन्द्रशेखर आदि विद्वान् कहते हैं -

> "It is, therefore, perhaps that the saying goes that none but a Rishi conprehends life exactly and possesses the vision to guide mankind by his poetry. A Kavya to be model for all times must be from a Rishi and Rishi alone."[34]

काणो प्रभृति चिन्तक कवियों का ऋषित्व स्पष्टतः स्वीकार करते हैं-

> "A poet is one who is a seer, a Prophet who sees vision and possesses the additional gift of conveying to others less fortunate through the medium of language the vision he has or the dreams he dreams."[35]

32· शतपथ ब्रा0 1/4/2/8

33· शतपथ ब्रा0 1/4/2/8

34. Sanskrit Literature, K. Chandra Shekhar and Subramanya Sastri, P. 64

35. History of Sanskrit Poetics, P. 348-349.

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मन्त्रद्रष्टा की मूलतः मन्त्रदर्शन करने वालों को ऋषि कहा गया है। चूंकि मन्त्रदर्शन अनवरत तपश्चर्या साधना एवं चिन्तन के परिणामस्वरूप सम्भव है। इसलिए पुराणों आदि में ऋषि, यति, मुनि, प्रभृति शब्दों में एकार्थता स्वीकार की गयी है। साधना आदि में सदाचरण की अपरिहार्य होते है। फलतः ऋषि के लक्षणों में पवित्र आचरण का भी समावेश किया गया है जैसा कि मोनियर विलियम्स महोदय ने अपने शब्दकोश में ऋषि शब्द का अर्थ बताते हुए लिखा है कि-

> "A singer of sacred hymns an inspired poet or sage, any person who alone or with others invoper the deitier in rhythmical speech or song of a sacred character."[36]

ऋषियों के लक्षण

महाभारत में पुलस्त्य, वसिष्ठ, पुलह, अङ्गिरा, क्रतु और महानृषि को महायोगेश्वर और पितर कहे गये हैं।[37] इन वर्णनों में ऋषि शब्द का अनेकशः उल्लेख किया गया है। आयुर्वेद के मूल ग्रन्थों में भी आर्ष-अनार्ष का वर्णन तथा ऋषियों की प्रामाणिकता स्वीकार की गयी है। वाल्मीकि रामायण में भी ऋषियों के सम्बन्ध में आदि कवि ने लिखा कि विश्वामित्र भगवान् ब्रह्मा से प्रार्थना करते हुए कहते हैं - हे ब्रह्मन् यदि तप के बल से मै क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गया हूँ, तो वेद, ब्राह्मण और सत्य मुझे वरें। आठ सिद्धियाँ आदि मुझे प्राप्त हो।[38] विश्वामित्र उक्त गुणों को प्राप्त करके ब्रह्मर्षि बन गये।[39] ऋषियों का एक लक्षण मानवधर्मशास्त्र की भृगुप्रोक्त संहिता में दिया गया है - "ऋषि लोग लम्बी सन्धा करने के कारण

---

36. Sanskrit English Dictionary, P. 226
37. महा०, अनु० 139/29, 22
38. यदि प्राप्तं मया ब्रह्मन् ब्राह्मण्यं तपसो बलात्।
    ततो ब्रह्म च वेदाश्च सत्यं च वरयन्तु माम।।13।।
    सिद्धिधृर्तिः स्मृतिश्चैव विद्या मेधा यशः क्षमा।
    तपो दमश्च शान्तिश्च सर्वज्ञत्वं कृतज्ञता।।14।।
    असंमोह इति प्राहुर्ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः।
    अद्रोहः सर्वभूतानापकल्मषसंज्ञितः।।15।।
    तन्मा भजतु विप्रेश ब्रह्माव्ययमनुत्तमम्।

अर्थात् योगाभ्यास के द्वारा दीर्घ आयु को प्राप्त हुए।[40] सामशाखाकार उपमन्यु ऋषि जिनकी शाखा औपमन्यव नाम से प्रसिद्ध है। इनके निरुक्त के वचन को यास्कीय निरुक्त में उद्धृत करते हुए कहा गया है कि - "जिस पर स्तोम प्रकट हों वह ऋषि कहलाता है।[41] तैत्तिरीय शाखा के प्रवचनकर्त्ता तित्तिर मुनि अपने आरण्यक में लिखते हैं - "जिन तप करने वालों को स्वयंभू ब्रह्म ने देखा वे ऋषि हो गये। यही ऋषियों का ऋषित्व है।[42] उदारधी आचार्य यास्क के मतानुसार "ऋषि साक्षातकृतधर्मा थे उन्होंने अवरकाल के असाक्षात्कृतधर्मा ऋतुर्षियों को उपदेश द्वारा मन्त्र कहे। उपदेश ग्रहण करने में असमर्थ क्षीण शक्ति वालों के लिए विद्वानों ने निघण्टु, वेद तथा वेदाङ्गों को ग्रन्थ रूप में उपनिवद्ध किया।[43] उपर्युक्त आचार्यो {उपमन्यु तित्तिर, यास्क} के ऋषि पद के लक्षण में समानता परिलक्षित होती है।

वैशाम्पायन चटक, अग्निवेशतन्त्र के प्रति संस्कार में लिखते हैं - "ऋषि रजसतम युक्त, तपोज्ञान युक्त, त्रिकालज्ञ, अमल और अव्याहत ज्ञानयुक्त आप्त, शिष्ट परमज्ञानी थे। ऋषियों का ज्ञान तथा उपदेश निर्भ्रान्त और सत्य था।[44] एक अन्य स्थल आपस्तम्ब अपने धर्मसूत्र में लिखते हैं - "तस्मादृषयो वरेषु न जायन्ते नियमातिक्रमात्।"

....तन्मा भजतु विप्रेश ब्रह्माव्ययमनुत्तमम्।
तपसा च यदि प्राप्तं ब्राह्मणत्वं यथेप्सितम्।।16।।
तमेवं वादिनं ब्रह्मा प्रत्युवाच तपोनिधिम्।
प्रतिभास्यन्ति ते वेदा ब्रह्म चाव्ययमुत्तमम्।।17
अधिकस्त्वं मतो मेऽद्य सर्वब्रह्मविदां मुने।।18।।-वा0रा0 बाल 61वां सर्ग।

39· ब्रह्मर्षे विनिवर्तस्व तपसो ग्रयादितः परम्
ब्रह्मर्षित्वमनुप्राप्तस्तपसाऽह्मसि दुर्लभम्।। -वा0रा0, बाल0 61/10

40· ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुवन्।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च।। मानव धर्मशास्त्र की भृगुप्रोक्त संहिता अं0 4/94
ऋषयो नित्यसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुवन्। महा0, अनु0 161/18

41· स्तोमान्ददर्श इत्यौपमन्वयः।। निरुक्त 2/11

42· तपस्यमानान्ब्रह्म स्वयंभ्वभ्यानर्षत्त ऋषयो भवंस्तदृषीणामृषित्वम् इति।

43· साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो वभूवुस्तेऽवेरभ्यो साक्षात्कृतधर्मभ्य
उपदेशेन मन्त्रान्त्संप्रादुरुपदेशाय ग्लायन्तो वरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं

वायुपुराण के अनुसार ऋष् धातु गति श्रुति सत्य तथा तपर्थक है। इस धातु में ब्रह्मा ने ये अर्थ सन्निहित किये। जिनमें उक्त सभी गुण विद्यमान हो वे ऋषि कहलाते है।[45] न्याय दर्शन में गोतम मुनि के सूत्र - "आप्तोपदेशः शब्दः।" 1/1/7 वात्सायन मुनि ने लिखा है -

"आप्तः खलु साक्षात्कृतधर्मा।........ ऋष्यार्यम्लेच्छानां समान लक्षणम् अर्थात् ऋषि आर्य और म्लेक्षों में आप्त अर्थात् अपने-अपने विषय में साक्षातकृत धर्मा होते हैं। वात्सायन के युक्त वचन से कहा जा सकता है कि ऋषिगण विविध विद्याओं के साक्षातकृतधर्मा तथा अन्य अनेक गुणों से सम्पन्न थे। इससे ऋषि तथा आर्य ﴾मनुष्यादि﴿ का भेद भी सुस्पष्ट हो जाता है।

ऋषि और मुनि में भेद

वैदिक वाङ्मय में ऋषि शब्द का प्रयोग मन्त्रद्रष्टा अर्थ में हुआ है। मुनि शब्द के सम्बन्ध में भारद्वाज संहिता में कहा गया हैकि - "ऋषयोर्मन्त्रद्रष्टारो मुनिः संलीनमानसः।" ऋग्वेद के दसवें मण्डल के "केशिन" नाम से प्रसिद्ध जो सूक्त है वे मुनियों के द्वारा रचित बताये जाते हैं इससे पता चलता है कि कुछ मुनि भी ऋषिकल्प थे। ऐसा प्रतीत होता है कि मन्त्रद्रष्टा ऋषि संस्कार अग्निहोत्र यज्ञ आदि से युक्त होने पर भी गृहस्थ से रहते थे और मुनि गेरूआ वस्त्र धारण करने वाले वनवासी, विरागी हुआ करते थे। दोनो प्रकार के व्यक्ति लोक का उपकार करने वाले और संस्कृति के निर्माता हैं। प्राचीन साहित्य में सन्यासी, भिक्षु, परिव्राजक मन्त्रद्रष्टा के रूप में ही रूढ़ रहा है। पौराणिक साहित्य में किसी भी तपस्वी या विद्वान के लिये ऋषि-मुनि शब्द का प्रयोग निर्विशेष रूप से किया गया है।

44· रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तापोज्ञानबलेन ये।
येषां त्रिकालममलं ज्ञानमव्याहतं सदा।।18।।
आप्ताः शिष्टा विबुद्धास्ते, तेषां वाक्यमसंशयम्।
सत्यं, वक्ष्यन्ति ते कस्मादसत्यं नीरजस्तमाः।।19।। -अ0 11/18, 19

45· वायु0 59/79

वायु पुराण में "ऋषयः संशितात्मानः ऋजवः शान्ता।"[46] आदि प्रयोग मिलता है। ऋषि मुनि शब्द में प्रचुर साहचर्यता के कारण बाद में मन्त्रद्रष्टा के निर्देश में भी कहीं-कहीं मुनि शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। आर्षानुक्रमणी का "ऋग्वेदमखिलं ये हि द्रष्टारो मुनिपुङ्गवाः।"[47] वाक्य ऋषि मुनि साहचर्य का एक प्रमुख उदाहरण है। ऋकप्रातिशाख्य में "मुनिन्द्राः" शब्द का प्रयोग हुआ है। विष्णुमित्र ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है - "मुनिप्रधाना ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः।"[48]

मारकण्डेय पुराण में ऋषि-मुनि भेदज्ञापक प्रयोग पाया जाता है। उसके अनुसार सृष्टि काल में सप्तर्षियों ने वेदों का ग्रहण किया था और मुनियों ने पुराणों का ग्रहण किया था।[49] पुराण के इस वचन से तो यही कहा जा सकता है कि वेद का सम्बन्ध ऋषि परम्परा से और पुराण का सम्बन्ध मुनि परम्परा से है। तपस्वी आदि को ध्यान में रखकर "मुनि" शब्द अनेकशः प्राचीन ग्रन्थों में प्रयुक्त हुआ है।[50] वैखानस गृह्यसूत्र में कहा गया है कि "साङ्गचतुर्वेदः तपोयोगादृषिः नारायण-परायणो निर्द्वन्दो मुनिः।"[51] यहां पर ऋषि का सम्बन्ध वेद से तथा मुनि को भक्ति से सम्बन्धित दर्शाया गया है। आधुनिक काल में ऋषि को मनुष्य जाति से पृथक दर्शाया गया है। इसकी पुष्टि प्रशस्तपादकृत भाष्य से होती है।[52]

46· वायु0 1/13
47· आर्षानुक्रमणी 1/1
48· ऋक्प्रातिशाख्य, विष्णुमित्रकृत व्याख्या (वर्गदयवृत्ति पृ0 5)
49· मारकण्डेय0 45/23
50· "अनग्निरनिकेतः स्यादशर्मशरणो मुनिः।" आप0 धर्मसूत्र 2/9/21/10 "शून्यामारनिकेत स्याद् यत्रसायंगृहो मुनिः।" -शाङ्ख स्मृति 7/6, वनपर्व 12/11 भी द्रष्टव्य। वेदान्त सूत्र 3/4/47-49 का शारीरिक भाष्य (भामती आदि सहित)। यति, भिक्षु आदि शब्द मुनि के लिए भी प्रायेण प्रयुक्त होते हैं।
51· वैखानस गृह्य0 1/1
52· "अयोनिजम् अनपेक्ष्य शुक्रशोणितं देव-ऋषीणां शरीरं धर्मविशेषसहितेभ्यो णुभ्यो जायते।" योगभाष्य 4/33

शंकर मिश्र ने ऋषियों को आयोनिज बताया है।[53] वैखानस गृह्यसूत्र के व्याख्या की सम्पुष्टि गीता में भी हुई है।[54]

परम्परया ऋषि-मुनि शब्दों का जो प्रयोग पौराणिक साहित्य में हुआ है उसके सम्बन्ध में डांगे महोदय लिखते हैं -

> "Sage is a very general term. Actually tradition has different terms with their specific connatations, such as rsi, Muni (ascetic) yati and so on. The puranas do not not, generally show any clear difference among these terms, and the term rsi is often seen used for all these types. All and said to practice panance."[55]

रमाशंकर भट्टाचार्य लिखते हैं कि पुराणों में जो ऋषि शब्द का प्रयोग हुआ है वह सर्वत्र मन्त्रद्रष्टा वैदिक ऋषियों का अर्थबोध नहीं करवाता। वस्तुतः पौराणिक साहित्य में निर्विरोध रूप से तपस्वी अथवा विदान् के प्रति ऋषि-मुनि शब्द का प्रयोग हुआ है। वैदिक परम्परा के अनुसार जो मन्त्रद्रष्टा हैं वे ही ऋषि नाम से अभिहित किये जाते हैं।[56] डॉ० सर्वानन्द पाठक का विचार हैं कि पुराणों में जहाँ कहीं भी ऋषि-मुनि का लक्षण उल्लिखित है वहां इन दोनों में कोई भेद प्रदर्शित नहीं किया गया है भृगु, भव, मरीच वसिष्ठ आदि के सम्बोधन में दोनो ही शब्दों का प्रयोग किया गया है -

---

53· "अयोनिजं छेवानामृषीणां च ········।" उपस्कार 4/2/5

54· "दुःखेष्वनुदिग्नमना सुखेषु विगत स्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थिरधीर्मुनिरूचयते।।" -श्री मद्भगवद्गीता 2/56

55. Encyclopeadia of puranic beliefs and practices, S.S. Daunge, P. 1231.

56· पुराणगत वेद विषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन-डॉ० रमाशंकर भट्टाचार्या, पृ0 414।

भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चेवाङ्गिरामुनिः
पुलस्त्यः पुलहश्चेव कतुश्चर्षिवरस्तथा।।
अत्रिवसिष्ठो वह्निनश्च पितरश्च यथाक्रमम्
ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो मुनिसत्वमः।।[57]

इसी प्रकार विश्वामित्र, कण्व और नारद भी महर्षि तथा महामुनि दोनों शब्दों से सम्बोधित किये गये हैं। किन्तु मारकण्डेय पुराण के निम्नलिखित प्रयोग से

वेदान्सप्तर्षयस्तस्माज्जगृहुस्तस्यमानसाः
पुराणं जगृहुच्चाधामनुयस्तस्यमानसाः।। मारकण्डेय0 45/23

ऋषि-मुनि का श्रेणी भेद स्पष्ट हो जाता है।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों का अभिमत है कि मुनिवृत्ति के तीन प्रधान अधिकरण होते हैं - प्रथम में यह विश्वास किया जाता है कि कष्टसहिष्णुता और तपश्चर्या से मनुष्य पापों से छुटकारा पा जाता है। भारतीय जन इस प्रकार भी विश्वास करते हैं कि मुनिवृत्ति से अलौकिक सामर्थ्य प्राप्त होती है। द्वितीय अधिकरण के अनुसार तपश्चर्या में लीन मनुष्य को देखकर देवता भी दयालु होंगे। तृतीय में दैहिक तृष्णा आदि के दमन से पापकर्म में प्रवृत्ति विनष्ट होगी और ईश्वर की प्राप्ति भी सम्भव हो जायेगी।[58]

57· विष्णु पुराण 1/7/26-27

58. And the belief that atonement is possible in this way has prevailed among Mohammedaus, adherents of zoroastrianism, Hindus and others. The Brahmins believe further that asceticism can produce superhuman power. Another idea which sometimes operates in asceti cism is that the suffering will excite the compassion of the deity. Another aim in asceticism is the flesh to such an extent that the proneness to sin may be reduced, and communion with God be renderad possible. Associated with this is the idea that matter and material things are evil by nature." (An Encyclopaedia of Religions - M.A. Canney. P. 37),

"मन" अवबोधने धातु से मनेरुच्च §उणादि 4/125§ सूत्र से "इ" प्रत्यय के योग से "मुनि" शब्द व्युत्पन्न हुआ है। यहां मकारोत्तरवर्ती अकार का उत्वादेश होता है। इस प्रकार "मनुते जानाति यः स मुनिः" यह निरुक्ति होती है। अमरकोश में भी "मननात् मुनिरुच्यते" इति मननधर्मणामेन मुनित्वमुक्तम्।

बौद्धकाल में मुनि शब्द से किसी आध्यात्मिक ज्ञान सम्पन्न गृहस्थ थे। भगवान् बुद्ध का नाम "शाक्यमुनि" ऐसा अमरकोश में भी कहा गया है-

"सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः।

समन्तभद्रो भगवान्मारजिल्लोकजिज्जिनः।।§13§

षडभिज्ञो दशबलोऽदयवादी विनायकः।

मुनीन्द्रः क्रोधनः शास्ता मुनिः शाक्यमुनिस्तु यः।। §14§[59]

लौकिक संस्कृत साहित्य में प्रायः मुनि शब्द सन्यासी आदि का अर्थ प्रकट करता है। और इस प्रकार "मुनय" यह बहुवचन में प्रयुक्त होने से मुनि शब्द से साप्तर्षियों का ग्रहण होता है।[60]

श्री भगत महोदय ऋग्वेद में उद्धृत मुनि के दृश्यमान स्वरूप को प्रकट करते हैं -

"उन्मादितो मोनेयेन वातां आ सस्थिमा वयं

शरीरेदस्मा के यूयं मतासे अभि पश्यथ।।[61]

वातस्याश्वो वार्यो सखायो देवषितो मुनिः

उभो सन्द्रावा क्षेति यश्च पूर्ण उतापरः।।"[62]

वैदिक कालीन मुनि ब्राह्मण भी होते थे। इसकी पुष्टि बृहदारण्यकोपनिषद् के इस वचन से होती है -

---

59· अमरकोश 1/1/13-14

61· ऋग्वेद 10/136/3

62· ऋग्वेद 10/136/5

"..... स वा एष महानजात्मा यो यं विज्ञानमयः प्राणेषु य यशो न्तर्हृदय..... रामेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसा नाश्केनेतमेव विदित्वा मुनिर्भवति। एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति।"63

पालि भाषा में मुनि शब्द का अर्थ ज्ञाता अथवा प्रत्यभिज्ञापक होता है।64 शङ्खस्मृति में मुनि का स्वरूप इस प्रकार कहा गया है-

"शून्यागार निकेतः स्याद् यत्र सायं वृ गृहो मुनिः।"

प्राचीन काल में मुनि अनेक नामों द्वारा अभिहित किया जाता था। यथा- वानप्रस्थ, तापस, योगी, यति विरागी।

> "All these terms connected only relatives attitudes of varied cunducts of the asceticr detached existence."

सम्पूर्ण ऋग्वेद में मुनि शब्द पांच स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है। मरूद्गणों को सम्बोधित सूक्तों में कहा गया है - "शुभ्रो वः शुष्मः कुध्मी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः।"65 इसकी व्याख्या करते हुए सायण कहते हैं "मननात् मुनिः स्तोता। सयथा बहुविध शब्दमुत्पादयति एवं बहुविध शब्दस्योत्पादकः इत्यर्थ।" यहां पर मुनियों की अलौकिक शक्ति का वर्णन स्पष्ट ही है। शक्ति सम्पन्न देव इन्द्र, मुनि, मित्र ऐसा कहा गया है। यथा- "द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सधा।"66 यहां पर सायण ने मुनि शब्द से "ऋषि" अर्थ को ही ग्रहण किया है। उपर्युक्त दोनों स्थलों पर पाश्चात्य विद्वान् ग्रिफिथ महोदय मुनि शब्द का "सन्त" अर्थ दिये हैं। यद्यपि सायण महोदय "ऋषि" अर्थ को मानते अथवा स्वीकार करते है। ऋग्वेदीय मुनि सूक्त के भाष्य में कहा है -

---

63. बृहदारण्यकोपनिषद् 4/22

64. पालिभाषायां मुनिशब्दस्य "मोनेय्य" "मौन" इति रूपद्वयं उपलभ्यते मुनानीति शब्दस्य पालिभाषायां ज्ञाता प्रत्यभिज्ञापकः वा अर्थो भवति-
"Munati in Pali means fathoming, recognising, knowing," - Ancient Indian Asceticism, P. 9

65. ऋग्वेद 7/56/8

66. ऋग्वेद 8/17/14

"वातरशनाः वातरशनस्य वारश पुत्राः मुनयः अतीन्द्रियार्थदर्शिनो।"

ऋग्वेद के कोशिन् सूक्त[67] में मुनि साम्बन्धी जो उपलब्ध होती है वह इस प्रकार है-

केश्यग्निं केशी विषं केशी विभर्ति रोदसी
केशी विश्व स्वर्दृशे केशीदं ज्योति रूच्यते।। 1
मुनयोः वातरशनाः पिशंगा वसते मता।
वातस्यानु ध्राजिं यति यद्देवासो अविक्षत।। 2
उन्मादिता मोनेयेन वार्ता आ तस्थिमा वय
शरीरेदस्मा के यूयं मतांसो अभि पश्यथ।। 3
अंतरिक्षेण पतति विश्वा रूपावचाकशत्।
मुनिर्देतस्यदेवस्य सोकृत्याय सखा हितः।। 4
वातस्याश्वो वायोः सखायो देवेषितो मुनिः
उभो समुद्रावा क्षेति यच्च पूर्व उतापरः।। 5
अप्सारसां गंधर्वाणा मृगाणां वरणे चरन्।
केशी केतस्य विद्वान्त्सखा स्वादुर्मदितमः।। 6
वायु रस्मा उपामंथत्पिनष्टि स्मा कुननमा।
केशी विषयस्य पात्रेण यद्रुदेजापिवत्सह।। 7

मुनि लम्बे क्रेश वाले होते हैं। वे गेरूआ अथवा मलिनपिशङ्ग वस्त्र धारण करते हैं। मुनि को देवों का मित्र कहा गया है। मुनि ही वायु और अग्निरूप है। मुनि हिंस्र वन्य पशुओं के मार्ग में भी संचरण करता है। वह छिपे हुए रहस्यों को तथा अलौकिक विचारों को जानता है। मुनि रूद्र के साथ विषपात्र में विष भी पीता है।

67· ऋग्वेद 10/136

उपनिषदों में वर्णित है कि "मुनिः मौनेयः मौनव्रतारूढ़ व्यक्ति विशेषः अस्ति।"[68] मुनि संयत, यज्ञ, तप आदि से सम्पन्न व्यक्ति विशेष प्रतीत होता है। जैसा कि वृहदारण्यकोपनिषद में वर्णित है -

"अथ हेन कहोलः कौपीनकेय प्र पप्रचछ याज्ञवल्केति होवाच यदेव साक्षादपरोक्षदब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरस्तं में वाचक्ष्वेत्येव त आत्मा सर्वान्ततः। कतयौ याज्ञवल्क्य सर्वान्तरो योऽशयनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति। एवं चे तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैष्णायाश्च वित्तेषणा यास च लोकेषणायाश्च व्युत्थायाय भिक्षाचर्य चरन्ति या ह्येव पुत्रेषणा सा वित्तेषणा या वित्तैष्णा सा लोकेषणोभे ह्येते एषणे एव भवतस्तस्माद ब्राह्मणः पाण्डित्यंय बाल्यैन तिष्ठसंद्वाल्यं च पाण्डित्यं च निर्विद्याथ मुनिर मौनं च निर्विधाऽथ ब्राह्मणः स ब्राह्मणः।"[69]

मत्स्य पुराण तथा स्कन्द पुराण में मुनियों के जीवन मरण तथा उनकी तात्कालिक वृत्ति के सम्बन्ध में अत्यन्त सुन्दर ढंग से विवेचन किया गया है। तथा प्राचीन मुनि गृहत्यागी, अनिकेत थे। वे अग्निहोत्रार्थ अग्निप्रज्वलन नहीं करते थे। मुनियों का अभिधान गोत्र अथवा वर्ण से नहीं कर सकते थे। वे कौपीन धारण करते थे।[70]

पुराणों में कहीं-कहीं यह भी विकृत हुआ है तत्सम्बन्धी मुनि ऋतुविशेष में सूर्यमण्डल अथवा किरणों में निवास करते हैं। यथा- तुम्बरू चैत मास में तथा नारद वैशाख मास में सूर्य में निवास करते हैं।[71]

मत्स्य पुराण में मुनियों को दो प्रधान विभागों में वर्णित किया गया है। प्रथम विभाग का नाम "पौर्णमास" तथा द्वितीय पारण है। अगस्त्य पौर्णमास

68· वृहदारण्यकोपनिषद् 3/4/1 एवं 4/4/25
69· वही 4/4/25
70· मत्स्य0 40/9-16
71· "तुम्बरूर्नारदश्चेव गन्धर्वौ गायतां वरौ।" मत्स्य0 126/4

मुनि हैं और महातप पारण मुनि। दोनों पौर्णमास तथा पारण मुनि में परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होता है।[72]

महाभारत के आदि पर्व[73] में मुनि विषयक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विवरण उपलब्ध होता है। इस विवरण के अनुसार वहाँ मुनियों का कठोर तप पूर्ण जीवनचर्या का निदर्शन प्राप्त होता है। जो वन में निवास करते हैं वे ग्राम अथवा नगर की वस्तुओं का उपभोग नहीं करते और कुछ मुनि ग्राम में रहकर भी आरण्य जीवन व्यतीत करते हैं। केवल प्राणरक्षार्थ ही भोजन आदि ग्रहण करते हैं तथा जो इन्द्रियों को वश में किये हुए संयमपूर्वक सदा मौनव्रत को धारण किये रहते हैं।

महाभारत में वर्णित जीवन शैली के अनुसार ऋषि और मुनि में कतिपय भेद इस प्रकार परिलक्षित होते हैं - §1§ मुनि अरण्यवासी होते है मोनान्ने[74] स मुनिर्भवति नारण्यवसनान्मुनिः स्वलक्षणं तुयो बेदस मुनिः श्रेष्ठ उच्यते। मुनि अरण्यवासी जबकि ऋषि नगरवासी भी होता है जैसा कि जैगीषव्य मुनि के वर्णन में कहा गया है[75]-

---

72· मत्स्य0 99/33-35, 36-38

73· ग्रामे वा वसतोऽरण्यं स मुनिः स्याजनाधिपः
न ग्राम्यमुपयुन्जीत य आरण्यो मुनिर्भवेत्।।
तथास्य वसतो ऽण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः
अनतिरिनिकेतश्चाप्यगोत्रवरणो मुनिः।।
कोपीनाच्छादनं यावत् तावदिच्छेच्च चीवरम्।।
यावत् प्राणाभिसंधानं तावदिच्छेच्च भोजनम्
तदास्य वसतो ग्रामेऽरण्यं भवति पृष्ठतः।।
यस्तु कामाननूपरित्यज्य व्यक्तकर्मा जितेन्द्रियः
अतिष्ठेत मुनिर्मोनं स लोके सिद्धिमाप्नुवात्।।
धोतदनतं कृन्तनखं सदा स्नासभलङ्कृतम।
असितं सितकर्मस्थं कस्तं नार्चितुम।।
तपसा कर्शितः क्षामः क्षीणमांसास्थि शोणितः स च लोकमिमं जित्वा लोक विजयते परम्।।
यदा भवति निर्दन्दो मुनिर्मोन समास्थितः।
अथ लोकमिमं जित्वा लोकं विजयते परम्।।
आस्येन तु यदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः
अथास्य लोकः सर्वेऽयं सो मृतन्वाय कल्पते।। -महा0, आदिपर्व 91/11-

ततोऽभ्येत्य महाराज योगमास्थाय भिक्षुकः।

जेगीषव्यो मुनिर्धीमांस्तस्मिंस्तीर्थे समाहितः।।

देवतस्याश्रमें राजन्नयवसत्स महाश्रुतिः।

योगनित्यो महाराज सिद्धिं प्राप्तो महातपाः।।

ऋषियों के आश्रम वन में ही होते हैं किन्तु कुछ नगर निवासी भी होते हैं। यथा द्रोणाचार्य का स्वागत करते हुए भीष्म ने कहा[76]- "भुङ्क्ष्व भोगान् भृशं प्रीतः पूज्यमानः कुरूक्षयों पञ्चशिखः[77] ऋषिरपि चातुर्मास्यव्रतार्थ विदेहनगरी सेवितवान्-

तत्र पञ्चशिखो नाम कापिलेयो महामुनिः।

परिधावन्महीं कृत्स्नां जगाम मिथिलामपि।।

§2§ ऋषि आश्रमवासी होते हैं, मुनि का कोई निश्चित घर नहीं होता है[78] शान्ति पर्व में एक आख्यान में कहा गया है कि मुनि पर्वतों तथा वृक्षों के नीचे तपश्चर्या करता है-

कुर्यात्परिचर्य योगे त्रैकाल्यं नियतो मुनिः।

गिरिशृंगे तथा चेत्ये वृक्षाग्रेषु च योजयेत्।।

"शून्य गिरिगुहाश्चैव देवतायतनानिच।

शून्यागाराणि चेकाग्रो विसार्थमुक्रमेत्।।"[79]

"अनिकेतः परिपतन्वृक्षमूलाश्रयो मुनिः।

अपाचकः सदा योगी स त्यागी पार्थ भिक्षुकः।।"[80]

§3§ ऋषि अपने आश्रम में पत्नी के साथ निवास करता हुआ गृहस्थ आश्रम का निर्वाह करता है -

"गार्हस्थ्यं धर्ममास्थाय असितो देवलः पुरा।"[81]

मुनि मुक्ति मार्ग में लगा हुआ अकेले निवास करता है जैसा कि महाभारत में सुलभा

74· महा0, उद्योगपर्व 43/60

75· महा0, शल्य0 40/5-6

76· महा0, आदि0 130/77

77· महा0, शान्ति0 211/6

78· महा0, आदि0 86/12

79· महा0, शान्ति0 232/23-26

80· महा0, शानित0 12/9

के वर्णन से पता चलता है -

"साह तस्मिन्कुले जाता भर्तर्यस्ति मद्विधे।

विनीता मोक्षधर्मेषु चराम्येका मुनिक्रतम।"[82]

§4§ मुनि कृच्छब्रह्मचर्य व्रत धारण करते थे। जैसा कि महाभारत में अभिमन्यु की मृत्योपरान्त सुभद्रा के विलाप के वर्णन में मुनियों के कृच्छ व्रत का वर्णन हुआ है -

"ब्रह्मचर्येण यां यान्ति मुनयः संशितव्रताः।

एकपत्न्यश्च याः यान्तिवां गतिं व्रज पुत्रक।।"[83]

सुलभा भी कृच्छब्रह्मचर्यव्रत धारिणी थी[84]-

"विनीता मोक्षधर्मेषु चराम्भेका मुनिव्रतम्।।"

जो लोग विवाह के पश्चात् मुनिव्रत धारण करते थे वे भी मुनिव्रत के नियमों का अनुसरण करते हुए जाया का त्याग कर देते थे। उदाहरणार्थ नियमों का पाण्डु मुनिव्रत के पालनार्थ पत्नी त्यक्तकाम हुए[85]-

"तस्मादेको हमेकाहमेकेकस्मिन्वनस्यतो।

चरन्भेक्षं मुनिर्मुण्डश्चरिष्यामि महीमिभाम्।।

§5§ ऋषि जटा धारण करते थे। मुनि प्रायः मुण्डित केश होते थे-

तस्यकृष्णस्य कपिला जटा दीप्ते च लोचने। वभ्रूणि चैव श्मश्रूणि दृष्ट्वा देवो न्यमीलयत्। जैसा कि पाण्डु ने भी संकल्प किया था कि वह "मुण्डित केश" धारण कर, हाथमें भिक्षापात्र लेकर मुनि की भांति पृथ्वी पर इधर-उधर विचरण करेंगे। महाभारत युद्ध में बन्धु-बान्धवों की मृत्यु हो जाने के पश्चात् युधिष्ठिर

82· महा0, शान्ति0 308/184

83· महा0, द्रोण0 55/24

84· महा0, शान्ति0 308/184

85· महा0, शान्ति 110/7

ने भी "मुण्डितकेश" होकर मुनिव्रत धारण करने की प्रतिज्ञा की थी-

"अथ वेकोऽहमेके कस्मिन्वनस्पतौ
चरन्भेक्ष्यं मुनिर्मुण्डः क्षपयिष्ये कलेवरम्।"

परन्तु रामायण में जाटाधारी मुनियों का भी उल्लेख है[87]-

"स वल्कलजटाधारी मुनिवेषधरः प्रभुः।
नन्दिग्रामे वसद्धीरः ससैन्यो भरतस्तदा।।"[88]

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में इस प्रकार कहा है[88]-

ऋषीणां तापसानान्य ये च दीर्घव्रता नराः।
तथा च चीरबद्धानां रोमशं श्मश्रु कीर्तितम्।।

§6§ ऋषि मृगचर्म-निर्मित तथा वृक्षों की छाल से निर्मित वस्त्रों को धारण करते थे। मुनि गेरूआ वस्त्र को धारण करते थे। गैरिक वस्त्र का वर्णन ऋग्वेद[89] में "मलिनयिशङ्ग" इस शब्द के द्वारा बोधित हुआ है। जो बहुकाल पर्यन्त उपयोग में आने से मलिन अथवा धूसरित रूप से जाना जाता था। बौद्धों में भी पिशङ्ग वस्त्र प्रचलित था। महाभारत में भी कषाय वस्त्र सुलभ होता है।[90] यद्यपि ऋषियों एवं मुनियों की विचारधाराओं में समानता के कारण बल्कलधारी मुनियों का भी वर्णन महाभारत में हुआ है।[91] महर्षि वाल्मीकि ने भी अपने वर्णन में कहा है कि जब भरत ने मुनिवृत्ति ग्रहण किया जब वह बल्कल वस्त्रधारी थे।[92]

87· वा०रा०, अयोध्याकाण्ड 115/23
88· भरत-नाट्यशस्त्र 23/116
89· ऋग्वेद 10/136/2
90· "काषायसुलभं पश्चान्मुनीनां शममिच्छताम्।
साम्राज्यं तवेच्छन्तो वयं योत्सामहे परम्।।" -महा०, सभा० 15/16
91· अश्वत्थपलभक्षश्च तथा ह्युदकशायिनः।
चीरचमाम्बिरधरास्तथा वल्कलधारिणः।। महा०, अनु० 14/58
92· "स वल्कलजटाधारी मुनिवेषधरः प्रभु।" वा०रा० 2/115/23

§7§ भोजन के सम्बन्ध में भी ऋषि मुनिवृत्ति में पर्याप्त भेद देखा जाता है। वैदिक एवं पौराणिक आख्यानों से पता चलता है कि ऋषि सोमपायी तथा मांसभक्षी भी होते थे।[93] जबकि मुनि के लिए सात्विक भोजन पर विशेष बल दिया गया है याज्ञवल्क्य[94] के शब्दों में -

"गृहेऽपि निवसन्विप्रो मुनिमांस विवर्जनानात्।।"

रामायण[95] में भी कहा गया है कि मुनिवृत्तिधारी राम ने वनवास पर्यन्त मांसभक्षण नहीं किया -

"कन्दमूलफलेर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम्
स षट् चाष्टो च वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने
आसेवयानो अन्यानि फलमूलेश्च वर्तयन्।।"

§8§ महाभारत में नकुल की वार्ता से ज्ञात होता है कि मुनि लोग अग्नि से पकाये हुए भोजन स्वीकार नहीं करते थे।[96]

स्वभावतया ऋषि लोग दैनन्दिन जीवन के अंग के रूप में अग्निहोत्र आदि का सम्पादन करते थे। महाभारत आदि से विदित होता है कि यह कर्म मुनियों के लिये आवश्यक नहीं था।[97] मनुस्मृति[98] में व्यवस्था दी गयी है कि वानप्रस्थ आश्रम वाला मनुष्य मुनिवृत्ति के अभ्यसनकाल में अग्निहोत्र का त्याग करने के लिये समर्थ है।

93· सो हमन्तावसानानां हरमाणः परिग्रहात्।
न स्तेयदीर्थ पश्यामि हरिष्यामे तदाभियम्।। महा0, शान्ति0 139/39
न गन्तव्यमितः पुत्र तवाहरमहं तदा
दास्यामि मत्स्यप्रवरानुष्यतामिह भारत।।" महा0, शल्य0 51/39

94· याज्ञवल्क्य स्मृति, आचार0 181

95· वारा0, 2/20/29, 31

96· "अनिकेतः परिपतन्वृक्षमूलाश्रयो मुनिः।
अपावकः सदा योगी स त्यागी पार्थ भिक्षुकः।।"

97· महा0, आदि0 91/92

98· अग्निनात्मनि वेतानान्समारोप्य यथाविधि।
अनाग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः।। -मनुस्मृति 6/25

§10§ ऋषियों तथा मुनियों में चारित्रिक गुणों की दृष्टि से भी भेद परिलक्षित होता है। मुनि सत्यशील अथवा अमृषवादी होता था - "नेतस्ते सदृशं वीरं मुनेरिव मृषावचः।" यद्यपि ऋषि यथावयस्क मृषाभाषण करने में भी समर्थ हैं। महाभारत के वर्णनानुसार[99]

"न शुष्केण न चार्द्रेण नाश्मनान च दारुणा
न शस्त्रेण न चास्त्रेण न दिवा न तथा निशि
वध्यो भवेयु विप्रेन्द्राः शक्रस्य सह देवतेः
एवं मे रोचते सन्धिः शक्रेण सह नित्यदा।"
"बाढ़मित्येव ऋषयस्तमूदुर्भरतर्षभ।
एवंवृत्ते तु संधाने वृत्रः प्रमुदितो भवत्।।

§11§ मुनियों के कर्म में हिंसा का निषेध किया गया था। जैसा कि महाभारत में कहा गया है[100]-

"जङ्गमाजङ्गमं सर्वमविहिंसंश्चतुर्विधम्।
स्वासु प्रजास्विव सदा समः प्राणभृतां प्रति।।"

किन्तु ऋषियों के लिए ऐसा निषेध नहीं है। यज्ञादि में वे पशुवध करने के लिये समर्थ थे। यथा अगस्त्य ऋषि मृग का वध करके उसको मज्जा से आहुति प्रदान किये थे-

"अगस्त्यः सत्रमासोनश्चचार मृगयामृषिः
आरण्यान्सर्वदेवत्यान्मृगान्प्रोक्ष्य महावेने।।
"प्रमाणदृष्टधर्मेण कथमस्मान्विगर्हसे।
अगस्त्यस्याभिवारेण युष्माकं वे वपा हुता।।"

भारतीय जीवन पद्धति एवं विचारधाराओं का सम्यक् चिन्तन करने से ज्ञात होता है कि भारतीय संस्कृति के निर्माण एवं उसके विकास में मुनियों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यद्यपि प्राक्काल से ही ऋषि लोग भारतीय संस्कृति के आदि निर्माणकर्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं।

99· महा0, उद्योग0 10/29-31
100· महा0, आदि0 110/11

सप्तसिन्धु[104], सप्तरत्न[105], सप्तअहः §सात दिन अर्थात् एक सप्ताह§ सात तारों का समूह, सात दीप, सप्त धातु- शरीर के संघटक सात मूल तत्त्व अर्थात् अन्नरस, रुधिर, मांस, चर्बी, हड्डी, मज्जा, वीर्य। सप्त प्रकृति-राज्य के सात संघटक अंग §स्वाम्यमात्यसुहृतकोश राष्ट्र दुर्गबलानि च§ सप्तपदी-विवाह में दूल्हा-दुलहिन दारा मिलकर सात कदम चलना - इसके बाद विवाह सम्बन्ध अटूट हो जाता है इत्यादि। इस प्रकार वैदिक वाङ्मय में बहुत से ऋषियों में सप्तर्षि प्रसिद्ध है। ऋग्वेद[106], वा0सं0[107], अथर्ववेद[108] आदि में इनका उल्लेख हुआ है। सप्त संख्या के सम्बन्ध में राहुरकर महोदय का विचार है -

> "In the Rgveda the number seven, presumalty possesses a peculiar magic ritualistic significance. That number can hadrly be taken to have been employed in the Rgveda samihita to denote an arithmatically definitive sanse...... it would not be correct to lay any special stress on the number seven."[109]

इसी तरह का मत प्रकट करते हुए कीथ महोदय ने कहा है-

> "Possbly the number is, merely, the frequevt mystic number seven, or again it may be derived from the the seven priests of the ritual (R.V. 2) 1/2, 3/7/7, 9/1/12, 6/22/2, 10/35/10.[110]

---

104. ऋग्वेद 3/12/126
105. ऋग्वेद 5/1/5, मत्स्य 142/6
106. ऋग्वेद 4/42/8, 10/82/2, 10/1/4, 130/7
107. वा0स0 14/29
108. अथर्व0 11/1/1, 3/24, 12/1/39
109. The surs of the R.V.P. XVIII.
110. Religion and philosophy of the veda and Upanisada. P.226

उपर्युक्त भेद प्रदर्शन के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वस्तुतः वैदिक काल में ऋषि मुनि का जो भेद था कालान्तर में उसकी सीमा रेखा इतनी सूक्ष्म हो गई प्रतीत होती है कि उनमें भेद कर पाना बहुत सरल नहीं रह गया।

ऋषियों का वर्गीकरणः

ऋषियों के प्रायः आठ वर्ग स्वीकार किये जाते है जो निम्नलिखित है:-

1· सप्तर्षि
2· ब्रह्मर्षि
3· देवर्षि
4· महर्षि
5· परमर्षि
6· काण्डर्षि
7· श्रुतर्षि
8· राजर्षि

उपर्युक्त क्रम उत्तरोत्तर अवर कहा गया है। अब प्रत्येक का अलग-अलग संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है :-

सप्तर्षि

भारतीय परम्परानुसार सप्त संख्या का महत्त्व विविध स्थलों पर वर्णित हुआ है। भारतीय वाङ्मय में अनेक महनीय वस्तुएँ सात की संख्या में अभिव्यक्त की गई हैं। यथा- सप्तर्षि[101] सप्तसमुद्र[102], सप्तसूत्र, सप्तकुलपर्वत[103],

---

101· महाभारत में कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वशिष्ठ को सप्तर्षि कहा गया है।

102· सप्तामी समुद्राश्च ते पि चान्तरजलोद्भवाः।
लवणेक्षु क्षुरायाख्य नानारत्नसमुद्भवाः।। मत्स्य0 2/34

103· मत्स्य0 114/17-18

वेदो तथा पुराणों में सात ऋषियों के समूह को सप्तर्षि कहा गया है। उपलब्ध आख्यानों के अनुसार प्रत्येक मन्वन्तर में एक-एक सप्तर्षिमण्डल बना। पुराणों में चौदह मन्वन्तरों के 98 सप्तर्षियों की नामावली दी गई है। महाभारत में सप्तवर्षियों को दिशाओं का स्वामी बताया गया है। सामाजिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से ऋषियों के भारतीय आर्यो का नेता माना गया है।[111] इसी प्रकार का विवेचन शतपथ ब्राह्मण में भी पाया जाता है।[112] शतपथ ब्राह्मण में सप्तर्षियों की नक्षत्रों के रूप में कल्पना की गई है।[113] शामशास्त्री महोदय ने अपने ग्रन्थ में ऋषियों की कल्पना ग्रह के रूप में की है। उनका लेखांश इस प्रकार है -

> "The seven R.S. are also identified with seven plants - Kasyap, Satum, Bhardvaja, Mercury, Guatama, Venus, Kisvamitra, Moon, Jamadagini, Jupiter Atri-Sum, Vasıtha-Mars."[114]

ऋग्वेद के द्वितीय एवं सप्तम मण्डल में भी ये ऋषि दृष्टिगत होते है। प्रतीत होता है कि इन मण्डलों के द्रष्टा ऋषि तात्कालिक समाज व्यवस्था के प्रमुख थे। ऋषि गोत्र ऋषि नाम से विख्यात थे। सप्तर्षि हमारे पितर है ऐसा ऋग्वेद में कहा गया है।[115] सप्तर्षियों को दिव्य भी कहा गया है।[116]

चारो दिशाओं के सात-सात ऋषियों की गणना की गयी है। ऋग्वेद की सर्वानुक्रमणी में सप्तऋषियों की गणना इस प्रकार की गई है - वृहस्पति, कश्यप, गोतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि और वसिष्ट। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार

111· रिलीजन एण्ड फिलासफी आफ वेद एण्ड उपनिषद, पृ0 226

112· "इमावेव गोतमभरद्वाजो। अयमेव गोतमो यं भरद्वाज इमामेव विश्वामित्र जमदग्नि अयमेव विश्वामित्रो यं जमदग्निरिमावेव वसिष्ठकश्यपावमयेव वसिष्ठोऽयं कश्यपो वागेवात्रिः इति। -शतपथ ब्राह्मण

113· शतपथ0 2/1/2/4

114· दि अर्थ आफ पञ्चजनाज - शामशास्त्री (1-2)

115· ऋग्वेद 4/42/8

116· ऋग्वेद 10/130/7

गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, कश्यप औरअत्रि। महाभारत में सप्तर्षियों की गणना दो स्थलो पर भिन्न रूप से प्राप्त होती है- §क§ कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वसिष्ठ §ख§ मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह ऋतु और वसिष्ठ। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार- गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, कश्यप और अत्रि। "ऋषियों में जो दीर्घायु, मन्त्रकर्ता, ऐश्वर्यवान्, दिव्यदृष्टि वाले गुण, विद्या और आयु में वृद्ध धर्म का साक्षात्कार करने वाले और गोत्र चलाने वाले ऐसे सात गुणों से युक्त सात महर्षियों को "सप्तर्षि" की संज्ञा द्वारा अभिहित किया गया। ये ब्रह्मचारियों को पढ़ाने के लिए अपने आश्रम में गुरुकुल रखने वाले तथा प्रजा की उत्पत्ति के लिए ही स्त्री और अग्नि को ग्रहण करने वाले हैं।[117]

अथर्ववेद में सप्तर्षियों की कल्पना सर्वथा भिन्न रूप से की गई है[118] वहां सप्तर्षि हैं - "कर्णनासिकानेत्र मुखक्षिरात्मकाः।" इसी प्रकार की कल्पना यजुर्वेद में भी की गई है।[119] ये ऋषिगण सदा शरीर की रक्षा करते हैं। सप्तर्षियों के लिए शुभ विचारों से हविष्य प्रदान करने से जीवन को अभय प्राप्त होता है।[120] सप्तर्षियो के प्रसाद से ऐश्वर्य, तेज, दीर्घायु आदि की प्राप्ति होती है।[121] अथर्ववेद में एक अन्य स्थल पर कहा गया है - "हे विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, वामदेव, अत्रि ऋषि ने हमारे घर का संरक्षण किया था। हे हमारे प्रशंसनीय संरक्षकों उत्तम अन्नों से हमें सुखी करो।[122]

117· डॉ0 हरदेव बाहरीः प्राचीन भारतीय संस्कृति कोश, पृ0 409-410
118· कः सप्त तानि वितवर्द शीषणि कर्णाविभो नासिके चक्षाणीमुखम् येषां पुरुषाः विजयस्य महनानि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम्। - अथर्व0 10/2/6
119· यजुर्वेद 34/55
120· अथर्व0 10/5/39, 7/53/4
121· अथर्व0 10/5/39, 7/53/4
122· विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव। शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुखं शासः पितरो मृडता नः।। अथर्व0 18/3/16

वैदिक परम्परा के साथ सप्तर्षि का सम्बन्ध मार्कण्डेय पुराण में भी कहा गया है।[123] सप्तर्षियों के साथ श्रौतधर्म का अच्छेद्य सम्बन्ध है।[124] सप्तर्षियों ने ऋम् यजुष् साम रूप श्रौत धर्म का प्रवचन किया -

तत्र त्रेता युगस्यादौ मनुः सप्तर्षयश्च वै।
श्रौतं स्मार्त च धर्म च ब्रह्मणा च प्रचोदितम्। वायु0 57/39
दाराग्निहोत्रसंयोग ऋग्यजुः सामंसक्षितम्।।
कत्यादिलक्षणं श्रौतं धर्म सप्तषयोऽब्रुवन्।।

एवं हि- स्मर्तो वर्णाश्रमावारेर्यनेः सनियमेः स्मृतः
पूर्वेभ्यो वेदयिस्वेह श्रौतं सप्तर्षयो ब्रुवन।। -ब्रह्माण्ड 1/32/34

पौराणिक साहित्य में पन्चधा ऋषि जाति के वर्णन में सप्तर्षियों का उल्लेख मिलता हैं। यहां कौन-कौन ऋषि विवक्षित है यह नहीं बताया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि पन्चधा ऋषि जाति के अन्तर्गत जो ऋषि नामक भेद है उसमें सप्तर्षि का अन्तभार्व हो गया है।

सप्तर्षि ब्रह्मा के मानस पुत्र माने जाते हैं। इन मानस पुत्रों की संख्या कहीं-कहीं भिन्न-भिन्न भी मिलती है। वायु पुराण और मत्स्यपुराण में इनकी संख्या दस बताई गई है। महाभारत में इनकी संख्या 6 बताई गई है। इन्हें प्रजापति और पितरि भी कहा गया है।[125] वायुपुराण में सप्तर्षियों के अन्तर्हित गुणों का

123· मार0 45/33
124· मत्स्य0 145/32, ब्रह्माण्ड 1/32/34, वायु0 57/50
125· "लोकस्य सन्तानकरा येरिमा वर्दिताः प्रजाः। प्रजापतय इत्येव पठ्यते ब्रह्मणः सुताः। अपरे पितरो नाम एतेरेव महर्षिभिः। उत्पादिता देवगणाः सप्तलोकेषु विश्रुताः। अग्नेयाश्च गण संप्तलोकेषु विश्रुताः। पौलस्त्याः वसिष्ठाश्चेव विश्रुताः। मारीचा भार्गवाश्चैव तथैवांगिरसोऽपरे। आत्रेयाश्च गणाः प्रोक्ता पितृणां लोकवर्धनाः। -ब्रह्माण्ड0 3/1/47-50

परिचय दिया गया है। उससे ज्ञात होता है कि सप्तर्षि गोत्र प्रवर्तक धर्मसम्पन्न दीर्घायु और मन्त्रद्रष्टा है। वे सुख-दुःख में समभाव रहते हैं। ये गृहस्थ होते हैं।[126]

पौराणिकों का विचार है कि प्रत्येक मन्वन्तर के सप्तर्षि अलग-अलग हैं। "मारकण्डेय पुराण" में इन सप्तर्षियों की विस्तृत सूची दी गई है। तद्नुसार-

स्वायम्भुव मन्वन्तर के सप्तर्षि

भृगु, अंगिरस, मरीचि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ ये सप्तर्षि इस शब्द के वाचक है जो संख्या में आठ हैं।[127]

स्वारोचिष मन्वन्तर में सप्तर्षि

उर्जस्तम्बस्तथा प्रायोदत्वो लिर्ऋषभस्तपा।
निश्चरश्चर्ववीरश्च तत्र सप्तर्षयो भवन्।।64/4
वायु पुराणे मन्वन्तरस्य सप्तर्षीणां नामानि सन्ति –
ऊर्जः स्तम्भः, द्रोणः, ऋषभः, दत्तात्रिः, निश्चलः, धवायनश्चेति।

ब्रह्माण्ड पुराणे द्रोणस्य स्थाये प्राणः, दत्तात्रेः स्थाने दत्तः तथा धावानस्य स्थाने अर्वरीवान् इति नामानि लभ्यन्ते[128] शिष्टानि नामानि वायुपुराणदेव सन्ति।

126· सप्तेते सप्तभिश्चैव गुणैः सप्तर्षयः स्मृताः
दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दिव्यचक्षुषः।।
बुद्धाः प्रतयक्षधर्माणो गोत्रप्रावर्तकाश्च मे।।
षट्कर्माभिरता नित्यं शालिनो गृहमेधिनः
तुल्यैर्व्यवहरन्ति स्म आदृष्टै कर्महेतुभिः।।
अग्राम्यैर्वर्तयन्ति स्म रसैश्चैव स्वयंकृतैः
कुटुम्बिन ऋद्धिमन्तो वाड्यान्तरनिवासिनः।।
कृतादिषु युगाख्येषु सर्वेष्वेव पुनः पुनः
वर्णाश्रमव्यवस्थानां क्रियन्ते प्रथमं तु वै।। -वायु0 61/93-97

127· वायु0 31/16/17 ब्रह्माण्ड0 2/13/1-3

128· वायु0 62/16/17, ब्रह्माण्ड0 2/36/17-18

औत्तमि मन्वन्तर में सप्तर्षि

स्वतेजसा हि तपसो परिष्ठस्य महात्मनः।
तनयारयान्तरे तस्मिन्साप्त सप्तर्ष्योऽभवन्।। 60/13

वसिष्ठस्य सप्तपुत्राः ये वासिष्ठाः उक्ताः ते सर्वेऽपि अस्य मन्वन्तरस्य सप्तर्षयः सन्ति। किन्तु वायुपुराणे तेषामुल्लेखो नास्ति। विष्णु पुराणे एषां नामानि सन्ति- रजस् §इति§ गोत्रः ऊर्ध्वबन्धुः, सवनः, अनघः, सुतपस् इति शुक्रः।[129]

तामस मन्वन्तर में सप्तर्षि

ज्योतिर्धर्मा पृथु काव्यश्चेतोऽग्निर्बलकस्तथा।
पीवरश्च तथा ब्रह्मन्साप्त सप्तर्षयो भवन्।। 71/59

वायु पुराणे एषां सप्तर्षीणां नामानि सन्ति कविः §काव्यः§ पृथुः, अग्निः, ज्योतिर्धामा वनपीठः गोत्र वसिष्ठः, चैत्रः। ब्रह्माण्डपुराणे वनपीठस्यस्याने पीवरः इति नाम लभ्यते।[130] शिष्टानि नामानि वायुपुराणदेव सन्ति।

रैवत मन्वन्तर के सप्तर्षि

हिरण्यलोमा वेद श्री रुर्ध्वषरदुस्त थापरः।
वेदबाहुः सुधामा च पर्जन्यश्च महामुनिः।। 72/73
वसिष्ठश्च महाभागो वेदवेदांगपारगः।
एते सप्तर्षय रचा सन्वेतस्यान्तरे मनोः। 74

वायुपुराणे-वेदबाहुः, यजुः हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊध्र्वबाहुः, पर्जन्यः, सत्यनेत्रः।

ब्रह्माण्डपुराणे - देवाबाहुः सुधामन् §इति§ हिरण्यरोमा, वेदश्रीः, उर्ध्वबाहुः पर्जन्यः, सत्येन्द्रः।[131]

129· विष्ण0 1/1
130· वायु0 62/41, ब्रह्माण्ड0 2/36/47-48
131· वायु0 62/55, ब्रह्माण्ड0 2/36/61-63

चाक्षुष मन्वन्तर में ऋषि

सुमेधा विरजाश्चैव हविवमानुन्नतो मधुः।
अतिनाम्ना सहिष्णुश्च सप्तासन्निति चर्चयः।। 63/55

वायु पुराणे उन्नतः हविध्मान्, सुधामा, विरजः, अतिमानः, सहिष्णुः, मधुः।

ब्रह्माण्ड पुराणे - उत्तमः हविषमानः, सुधामान् ﴾इति﴿, विराजाः, अतिनामा, सहिष्णुः, मधुः।[132]

वैवस्वत मन्वन्तर में सप्तर्षि

विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाजः, शरदान, अत्रिः, वसुमानः, वत्सारश्च एते सप्तमो पि ऋषयः वैवस्वतमन्वन्तरस्य सिद्धाः सप्तर्षयः सन्ति।[133]

सावर्णि मन्वन्तर के सप्तर्षि

रामो व्यासो गालवश्च दीप्तिमान्तृपं एव च।
ऋष्यश्रृङ्गस्तया द्रोणास्तत्र सप्तर्षयो भवन्।। 77/4

उभयपुराणानुसारेण सावर्णि मन्वतरस्य सप्तर्षीणां नामानि सन्ति। यथा- गालवः, जामदग्नयः ﴾भागर्वः﴿ द्वैपायनः, कृपः, दीप्तिमानः, ऋष्यश्रृंङ्ग, अश्वत्थामा।[134]

दक्ष सावर्णि मन्वन्तर में सप्तर्षि

मेधातिथि र्वसुः सत्यो ज्योतिष्मान्द्युतिमांस्थथा।
सप्तर्षयो न्यः सबलस्तयान्यो हव्यवाहनः।। 91/8

इस मन्वन्तर को मेरूसावर्णि नाम से भी जाना जाता है।

वायु पुराणे - मेधातिथिः वसुः, ज्योतिष्मानः, द्युतिमान्, वसिनः, हव्यवाहनः, सुतपा।

ब्रह्माण्ड पुराणे - मेधातिथिः, वसुः, ज्योतष्मान, द्युतिमान्, वसिनः, हव्यवाहनः, सुतपस् इति।

132· वायु0 62/65/66, ब्रह्माण्ड 2/36/77-78

133· वायु0 64//25-28, ब्रह्माण्ड0 2/38/26-29

ब्रह्म सावर्णि मन्वन्तर के सप्तर्षि

इसे द्वितीय सावर्णि मन्वन्तर भी कहा जाता है।

आपोमूर्तिर्हविष्मांश्च सुकृती सत्य एव च।

नाभागोऽप्रतिमश्चैव वसिष्ठश्चैव सप्तम।।91/14

वायु पुराणे - हविष्यमान् सुकीर्ति, आपोमूर्तिः, प्रतिपः नाभागः, अभिमन्युः।

ब्रह्माण्ड पुराणे - हविष्मान्, सुकीर्तिः, आयोमूर्तिः, आयवः, अप्रतिमः नाभागः अभिमन्युः।

धर्म सावर्णि मन्वन्तर के सप्तर्षि

इसे तृतीय सावर्णि मन्वन्तर भी कहा गया है।[135]

हविष्मांश्च वरिष्ठश्च ऋष्टिरन्यस्तथारुणिः।

निश्चाश्चानधश्चैव विशिष्टश्चान्यो महामुनः ।।19।।

सप्तर्षयोऽन्तरे तस्मिन्नतिनतेजाश्च सप्तमः।।20।।

वायु पुराणे - हविष्मान्, वपुष्मान्, वारुणिः, भगः, पुष्टिः, निश्चयः, अग्नितेजाः। ब्रह्माण्ड पुराणे - हविष्मानः, वपुष्मानः, आरुणिः, नागः, पुष्टिः, निश्चरः, अतितेजान् इति।

रुद्र सावर्णि मन्वन्तर में सप्तर्षि

द्युतिस्तपस्तवो सुतपास्तयोमूर्तिस्तपोनिधिः।

तपोरतिस्तथैवान्यः सप्तमस्तु तपोधृतिः ।।91/25

वायु पुराणे - कृतः, सुतया, तपोमूर्तिः, तपस्वी, तपोऽशयान् तपोरतिः, तपोमतिः।

ब्रह्माण्ड पुराणे - द्युतिः, सुतपस्, तपोमूर्तिः, तपस्वी, तपोधनः, तपोरतिः, तपोधृतिः।[136]

134· वायु0 100/12/12, ब्रह्माण्ड 4/1/10-12

135· वायु0 100/82-83, ब्रह्माण्ड0 4/1/78-80

136· वायु0 100/96-97, ब्रह्माण्ड 4/1/112-113

रोच्य मन्वन्तर में सप्तर्षि

धृतिमानव्ययश्चैव तत्वदर्शी निरुत्सुकः।

निर्मोहः सुतपाश्वान्यो निष्प्रकम्यश्च सप्तमः।। 91:30

वायु पुराणे - धृतिमान्, पथ्यवान्, स्वदर्शी, निरुत्सकः, निष्प्रकम्प्यः, निर्मोहः, स्वरूपः।

ब्रह्माण्ड पुराणे - धृतिमान्, अव्ययः, तत्वदर्शी, निरुत्सकः निष्प्रकम्प्य, निर्मोह सुतपस् इति।[137]

भौत्य ﴾इन्द्र﴿ मन्वन्तर में सप्तर्षि

आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च शुचिभुर्क्तोऽथ माधवः।

शुक्रोऽजितश्च सप्तेतेतदा सप्तर्षयः स्मृताः।।

वायु पुराणे - आग्नीध्रः, मागधः, अग्निबाहुः, शुचिः।

ब्रह्माण्ड पुराणे - अग्नीध्र, मागधः, अग्निबाहुः, शुचिः, शुक्रः, भुक्तः, स्वजितः।[138]

त्रिकाण्डशेष कोश ﴾2/7/15-17﴿ में ऋषियों के सोपान भेद का वर्णन किया गया है यथा -

सप्त ब्रह्मर्षि-देवर्षि-महर्षि-परमर्षयः।

काण्डर्षिश्च श्रुतर्षिश्च राजर्षिश्च क्रमावराः।।

ब्रह्मर्षि

"यस्मात ऋषन्ति ब्राह्मणं ततो ब्रह्मर्षयः।" इस पुराण वचन से ब्रह्मर्षि का अर्थ स्पष्ट हो जाता है।[139] प्रजापति ब्रह्मा के दस मानसपुत्र ही ब्रह्मर्षि कहे जाते हैं। वे वेदज्ञान-सम्पन्न, तपोमूर्ति, अलौकिक शक्ति सम्पन्न माने जाते हैं। वे अपने तपस्या के प्रभाव से असम्भव को भी संभव करने में समर्थ हैं तथा

137· वायु0 100/106-108, ब्रह्माण्ड0 4/1/102-103

138· वायु0 100/116, ब्रह्माण्ड 4/1×112-113

139· वायु0 61/91

ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित है -

"ब्रह्मलोके प्रतिष्ठास्तु स्मृता ब्रह्मर्षयोऽमलाः।"[140]

वायु पुराण में भी वर्णित है - "ब्रह्म प्राप्नुवन्ति इति ब्रह्मर्षयः।"[141]

कश्यप, वसिष्ठ, भृगु अङ्गिरा, अत्रि - इन पांच गोत्रों में उत्पन्न ब्रह्मवादी ब्रह्मर्षि कहलाते हैं।[142]

देवर्षि

"ऋषवन्ति देवान् (वेदान्) यस्मात्वे तस्माद्देवर्षयः स्मृताः।" (वायु0 61/85) ये देवर्षि देवलोक प्रतिष्ठित हैं। ब्रह्मर्षि के बाद देवर्षि का स्थान आता है।[143] कुछ ऋषियों - धर्म, पुलस्त्य, क्रतु पुलह आदि के पुत्र देवर्षि नाम से सुशोभित होते हैं।[144] यथा - नरनारायण बालखिल्य कर्दम कुबेर नारद पर्वत आदि देवर्षि हैं।[145] "ऋषि" यह शब्द अपत्यार्थक रिष् धातु से व्युत्पन्न हुआ है।[146]

महर्षि

महर्षि का निर्वचन है "ऋषन्ति महानतम्" भृगु, मरीचि आदि ब्रह्मा के दस मानस पुत्र हैं। ये परमैश्वर्यशाली ऋषिगण स्वयं उद्भुत हुए हैं और उनकी निवृत्ति बुद्धि द्वारा उस परम महान् में आश्रित होती है। ये उस परमतत्त्व के ज्ञानी थे इसलिए उन्हें महर्षि कहा गया। ये महत्तत्व के ज्ञाता और बुद्धि के पारदर्शी हैं।[147] ब्रह्माण्ड पुराण के वचन के अनुसार -

---

140. ब्रह्माण्ड0 2/35/97

141. वायु0 61/81

142. "काश्यपेषु वासिष्ठेषु तथा भृग्वंगिरो त्रिषु।
पंचस्वेतेषु जायन्ते गोत्रेषु ब्रह्मवादिनः।।" ब्रह्माण्ड 2/35/90

143. "ज्ञेया ब्रह्मर्षयः पूर्व तेभ्यो देवर्षयः पुनः।" वायु0 61/80 ब्रह्माण्ड0 2/35/89

144. धर्मस्याय पुलस्त्यस्य प्रतोश्च पुलहस्य च।
प्रत्युपस्यस्य प्रभातस्य कश्यस्य तथा पुनः।।
देवर्षयः सुतास्तेषां नामस्तान्निबोधत······।।वायु0 61/82-83

145. "देवर्षी धर्मपुत्रो तु नर नारायणावुभौ।।
बालखिल्यः कृतोः पुत्राः कर्दमः पुलहस्य तु।।

"ईश्वरात्स्वयमुद्भूता मनसा ब्रह्मणः सुताः।
यस्मादुत्पवमानेस्तेर्महान्परिगतः पर ।।
यस्मादृषन्ति ते धीरा महान्तं सर्वतो गुणैः ।
तस्मान्महर्षयः प्रोक्ता बुद्धेः परमदर्शिना ।।[148]

जब ऋषि परमपद की प्राप्ति करता है तब वह परमपुरुष की आकृत से महर्षि पद को प्राप्त करता है।[149] ब्रह्मा के दस मानस पुत्र ईश्वर हैं और ये ही ईश्वर महर्षि कहलाते हैं -

भृगुर्मरीचिरत्रिश्च ह्यङ्गिराः पुलहः क्रतुः।
मनुर्दक्षो वसिष्ठश्चपुलस्त्यश्चेति ते दश ।।96।।
ब्रह्मणो मनसा ह्येते उद्भूताः स्वयमीश्वराः।
परत्वेनर्षयो यस्मात्-स्मृतास्तस्मान्महर्षयः।।97।।

प्रथम दस महर्षि हैं। इसी प्रकार महाभारत, शान्ति पर्व 207/3-5 तथा 349/67-68 में भी देखा जा सकता है। परत्व एवं ऋषित्व दोनो ऋषि धर्मो से युक्त होने के कारण महर्षि कहे जाते हैं।

परमर्षि

"परं हि ऋषते यस्मात् परमर्षिः ततः स्मृतः।" यह वायुपुराण (59/80) का वचन है। ब्रह्माण्ड0 1:32/86 और मत्स्य0 145/82 में भी ऐसा ही कहा गया है। उन परमैश्वर्यशालियों के मानस तथा और सत पुत्र हुए, जो परम तत्त्व के आश्रय से परमर्षि कहे गये।

कुबेरश्चैव पौलस्त्यः प्रत्यूषस्याचलः स्मृतः (84)
पर्वतो नारदश्चैव कश्यस्यात्मजावुभौ।। (85) वायु0 61/83-85 तथा ब्रह्माण्ड0 2/35/93-95

146· ब्रह्माण्ड0 2/32/86

147· "यस्मान्न हन्यते मानेर्महान्परिगतः पुरः यस्मा दृषन्ति ये धीरा महान्तं सर्वतो गुणैः तस्मान्महर्षयः प्रोक्ता बुद्धेः परमदर्शिनः। वायु0 59/82

148· ब्रह्माण्ड0 2/32/88-89

149· "निवर्तमानेस्तैर्बुद्धया महान् परिगतः परः।।

श्रुतर्षि

"श्रुत्वा ऋषं परत्वेन श्रुतास्तस्यात् श्रुतर्षयः।"[150] ऐसा कहा गया है कि जो ऋषि दूसरे के प्रवचनों को सुनते हुए ज्ञानयुक्त होते हैं वे श्रुतर्षि कहलाते हैं। निरुक्त के टीकाकार दुर्ग का कथन है कि -

ये साक्षात्कृतधर्माणिः ऋषयः अवरेभ्यः मन्त्रान् ददुः, ते श्रुतर्षय आसन्। श्रुतस्य परिदर्शनात् ते श्रुतर्षयः भवन्ति-ऋषीणां च सुतास्ते तु विज्ञेया ऋषिपुत्रकाः। ऋषन्ति वै कृतं तस्मादिशेषां चैव तत्वतः। तस्माद्दुवर्षयस्तेऽपि श्रुतस्य परिदर्शनात्। निरुक्त 1/20 ऋषिकों के पुत्रों को ऋषि पुत्रक कहते हैं। क्योंकि वे महत्तत्व को सुनकर परवर्ती हुए अतः उन्हें श्रुतर्षि कहा गया।[151] मत्स्य0 में ज्ञान के पांच भेद स्वीकार किये गये हैं -

"अव्यक्तात्मा महात्मा वाहङ्कारात्मा तथैव च
भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च तेषां तज्ज्ञानमुच्यते...।[152]

श्रुतर्षियों द्वारा विहित कार्यो का भी उल्लेख प्राप्त होता है वे ब्राह्मणों का प्रवचन करते थे।[155] द्वापर युग में संहिताओं का विभाग श्रुतर्षियों द्वारा किया गया।[154] विभिन्न स्थलों पर पाठभेद दिखाई देता है। यथा - वायु0 58/13, ब्रह्माण्ड 1/31/13 मत्स्य0 144/12 "महर्षिभिः पाठ है। लिंग पुराण में 1/39/59 मनीषिभिः, कूर्म0 में 1/29/45 "परमर्षिभिः" ऐसा पाठ उपलब्ध होता है।

150· मत्स्य0 145/22
151· "ऋषिकाणां सुता ये तु विज्ञेया ऋषिपुत्रकाः।। मत्स्य0 145/87 तथा ब्रह्माण्ड0 1/33/1
152· मत्स्य0 145/87-88
153· "ऋषिपुत्राः प्रवक्तारः काव्यानां ब्राह्मणस्य तु।" ब्रह्माण्ड0 2/33/22 एवं 1/33/1
154· "ऋग्यजुः साम्नां संहिताः ऋुतर्षिभिः संहन्यते।" वायु0 61/122/24,
155· वायु0 61/122-124

श्रुतर्षि-सम्बन्धी एक विशिष्ट विवरण वायु पुराण में प्राप्त होता है। यहां पर अष्टाशिति सहस्त्र श्रुतर्षि और उतनी ही संहिताओं का उल्लेख किया गया है तद्यथा[155]

"अष्टाशीति सहस्त्राणि श्रुतर्षीणां स्मृतानि वै
ता एवं संहिता ह्येत आवर्तन्ते पुनः पुनः
श्रिता दक्षिणपन्थानं ये श्मशानानि भेजिरे।
युगे-युगे तु ताः शास्ता व्यस्यन्ते ते पुनः पुनः
द्वापरेश्विह सर्वेषु संहिताश्च श्रुतर्षिभिः
तेषां गोत्रेष्विना शाखा भवन्तीह युगक्षयात्

ब्रह्माण्ड पुराण {1/33/1-23} में श्रुतर्षियों की एक सूची प्राप्त होती है।

राजर्षि

ऋषयन्ति रञ्जनादिति निर्वचनात्। मानववंशीयाः ये नृपाः ते राजार्षि पदभाजाः। मानववंश और ऐलवंश जो राजा हैं वे राजर्षि हैं।[156] राजर्षि इन्द्रलोक में प्रतिष्ठित होते हैं।[157] वायुपुराणानुसार -

"ब्रह्मणः दशमानसपुत्राएवईश्वरा।"[158]

एते ईश्वराः महर्षयः अपि सन्ति।"[159]

अर्थात् ब्रह्मा के दस मानस पुत्र ही ईश्वर हैं और ये ही ईश्वर महर्षि भी होते हैं।

विष्णु0 3/6/30 में महर्षि, देवर्षि, और राजर्षि नामक त्रिविध ऋषि प्रकृति कही गई है। {ऋषिप्रकृतयस्त्रयः}। वायु0 61/80 और ब्रह्माण्ड0 1/35/89-90 में भी ये तीन प्रकृतियाँ कही गई हैं -

---

155· वायु0 61/122-124

156· मानवे वंशे ऐलवंशे च ये नृपाः
ऐडा ऐक्ष्वाकनाभागा ज्ञेया राजर्षयस्तुते। वायु0 61/86

157· इन्द्रलोकप्रतिष्ठास्तु सर्वे राजर्षयो मताः। वायुः 61/88

158· वायु0 57/88, ब्रह्माण्ड0 1/32/96-98

159· वायु0 59/89, विष्णु0 3/6/30

ज्ञेया ब्रह्मर्षयः पूर्वं तेभ्यो देवर्षयः पुनः।
राजर्षयः पुनस्तेभ्यः ऋषिप्रकृतयस्त्रयः।[160]

वैदिक ग्रन्थों में राजर्षि के लिए "राजन्यर्षि" पद भी प्रयुक्त हुआ है।[161]

काण्डर्षि

पुराणों में काण्डर्षि-सम्बन्धी कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता है। काण्डर्षि सम्बन्धी विशद विवेचन तैत्तिरीय संहिता की भूमिका में उपलब्ध होता है।[162] और उत्सर्जन में काण्डर्षि-स्मरण प्रमुख है। इसके लिये आपस्तम्बगृह्यसूत्र 8/1-2 और उसकी सुदर्शनाचार्य कृत टीका विशेष रूप से द्रष्टव्य है। त्रिकाण्डशेष कोशानुसार जैमिन्यादि काण्डर्षि हैं।

पञ्चधाऋषि जाति

श्री वासुदेव शरण अग्रवाल महोदय ने मत्स्यपुराण को अधिकृत करके अपने ग्रन्थ में पाँच प्रकार की ऋषि जातियों की सूची दी है। मत्स्य पुराणानुसार आत्मा पञ्चभागात्मक है। अवयक्तात्मा महात्मा, अहङ्कारात्मा, भूतात्मा और इन्द्रियात्मा ये पाँच प्रकार की ऋषि जातियाँ हैं। एकर्षि अथवा परमर्षि के दस ऋषि प्राण है। ब्रह्मा के दश मानस पुत्र महर्षि कहलाते हैं। ब्रह्मा के मानसपुत्रों के पुत्र ऋषि हैं। इस प्रकार चतुर्थ ऋषिवर्ण ऋषिक नाम से जाना जाता है। पञ्चम वर्ग में सप्तर्षियों के वंश में गर्भ से उत्पन्न ऋषि ऋषिपुत्र अभियान से अभिहित किये जाते हैं। ये 92 ऋषि वेद मंत्रों के द्रष्टा हैं -

---

160· वायु0 61/80, ब्रह्माण्ड0 1/35/89-90
161· तैत्तिरीयसंहिता की भूमिका, स्वाध्यायमण्डल पृ0 41-47 द्रष्टव्य है।
162· पञ्चविंश - ब्राह्मण 12/12/6

	ऋषि श्रेणी	नामान्तर	स्वरूप	लोक
1.	परमर्षि	स्वयमुद्भूत अथवा एकर्षि	अव्यक्तामा महान्वात्मा	स्वयम्भू
2.	महर्षि	ईश्वर, श्रेष्ठेश्वर, ब्रह्मा के दश मानसपुत्र	महात्मा-विज्ञान बुद्धि	परमेष्ठी
3.	ऋषि	दशमानसपुत्र	अहङ्कारात्मा प्रज्ञान मनस्	सूर्य
4.	ऋषीक, ऋषीका अथवा ऋषिका	सप्तर्षि गर्भोत्पन्न	इन्द्रियात्मा प्राणात्मा	चन्द्र
5.	ऋषिपुत्र	दूवात्मा भूतकृत मन्त्रकृत, श्रुतर्षक	भूतात्मा शरीर	पृथ्वी

काव्यमीमांसा के सप्तम अध्याय में "ब्राह्मं वचः पञ्चधा" कहकर स्वायम्भुव, ऐश्वर्य, आर्ष, आर्षीक, आर्षिपुत्रक - ये पांच प्रकार बताये गये हैं। राजशेखर ने इनकी व्याख्या करते हुए कहा है[163]

1. स्वायम्भुव — स्वयम्भू ब्रह्मा से प्रोक्त
2. ऐश्वर्य — तज्जन्मा भृगु आदि ईश्वरो के सुतो के वात्य
3. आर्षीक — ऋषिपुत्र ऋषिकों के वाक्य
4. आर्षिपुत्रक — ऋषीकों के पुत्रों के वाक्य
5. आर्ष — ईश्वरों के पुत्र ऋषि है, उनका वचन आर्ष है।

चार प्रकार के ऋषि

चरकतन्त्र सूत्र स्थान 1/7 की व्याख्या में भट्टदार हरिश्चन्द्र ने चार प्रकार के मुनियों का उल्लेख किया है - "मुनीनां चतुर्विधो भेदः ऋषयः ऋषिकाः

---

163. राजशेखर-काव्यमीमांसा अनु० पं० केदार नाथ शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना सप्तम अध्याय, पृ० 72-73

ऋषिपुत्रा महर्षयश्च।" यहाँ वस्तुतः "मुनि" पद का अर्थ ऋषि से ही है। चक्रपाणि ने सूत्रस्थान की टीका में - "चतुर्विधा अपि ऋषयः" कहकर ऋषिक, ऋषिपुत्र, देवर्षि और महर्षि ये नाम गिनाये हैं। आर्यविद्यासुधाकर में पृ० 31 पर "ऋषीणां चातुर्विध्यम् उक्तं पूर्वाचार्यैः" कहकर स्वयम्भू, ऋषि, ऋषिपुत्र और ऋषिक नामोल्लेख हुआ है। ऋषि-विश्वामित्र आदि। ऋषिपुत्र-मधुच्छन्दाः प्रभृति। राजन्य वैश्य स्त्री ऋषि- यथाक्रम त्रसदस्यु, वसुकर्ण, विश्ववारा। देवासुरादि ऋषि स्वयम्भू हैं जैसे- देवसुनी सरमा आदि।

सप्तविध ऋषि

अमरकोश की टीका में भानुजि दीक्षित ऋषियों के सात भेद बतलाये है - महर्षि, देवर्षि, ब्रह्मर्षि, परमर्षि, राजर्षि, काण्डर्षि और श्रुतर्षि। अमरकोश के टीकाकार मुकुट का भी यही मत है। त्रिकाण्डशेष कोश में इनके उदाहरण इस प्रकार है - महर्षि (व्यासादि), श्रुतर्षि (सुश्रुतादि), राजर्षि (श्रुतुपर्णादि) और काण्डर्षि (जैमिन्यादि)।

मत्स्यपुराण के अनुसार 92 श्रुतर्षि निम्नलिखित है

1· **परमर्षि** - (एकर्षि स्वयम्भू)

2· **दशमहर्षि**

भृगु, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, मनु, दक्ष, वसिष्ठ, पुलस्त्य। ये ब्रह्मा के दश मानस पुत्र हैं। निम्नलिखित श्लोक भी द्रष्टव्य हैं -

भृगुर्मरीचिरत्रिश्च ह्यङ्गिराः पुलहः क्रतुः।
मनुर्दक्षो वसिष्ठश्चपुलस्त्यश्चेति ते दश ।।96।।
ब्रह्मणो मानसा ह्येते उद्भूताः स्वयमीश्वराः ।
परत्वेनर्षयों यस्मात् समृतास्तस्मान्यहर्षयः ।।97।।

इन्हें महर्षि भी कहा जाता है।

3· ऋषियों के औरस पुत्र

ऐश्वर्यशाली महर्षियों के पुत्र-शुक्र, वृहस्पति कश्यप, च्यवन, उतथ्य, वामदेव, अगस्त्य कौशिक, कर्दम वालखिल्य, विश्रवा और शक्तिवर्धन - ये भी ऋषि कहे जाते हैं जो तप के बल से ऋषित्व को प्राप्त हुए हैं।

4· ऋषीक

वत्सर, नग्नहू, भरद्वाज, दीर्घतमा, वृहद्दक्षा, शरदान, वाजिश्रवा सुचिन्त, शाव, पराशर, श्रृंगी ऋषि, शंखपाद, वैश्रवण और राजा। ये सभी ऋषियों के पुत्र है जो, सत्य बल से ऋषित्व को प्राप्त हुए हैं। निम्नलिखित पौराणिक श्लोक में भी स्पष्ट है-

ऋषिपुत्रानृषीकांस्तु गर्भोत्पन्नान्निबोधत ।।100।।
वत्सरो नग्नहूश्चैव भरद्वाजस्थैव च
ऋषिदीर्घतमाश्चैव वृहदुभ्यः शरद्वतः ।।101।।
वाजश्रवाः सुवित्तश्च वश्याश्वश्च पराशरः ।
दधीचः शंशयाश्चैव राजा वैश्रवणस्तथा ।।102।।

उन्नीस भृगु

भृगु, काश्यप, प्रचेता, दधीचि, आत्मवान्, उर्व, जमदग्नि, वेद, सारस्वत, आर्ष्टिषेण, च्यवन, व्रेधस, वेण्य पृथु, दिवोदास, ब्रह्मवान्, गृत्स, शौनक। ये उन्नीस मन्त्रकर्ता ऋषि भृगुवंश में उत्पन्न कहे जाते हैं। अधोलिखित श्लोक भी द्रष्टव्य है-

एते मन्त्रकृतः सर्वे कृत्स्नशस्तान्निबोधत।
भृगुः काव्यः प्रचेताश्च दधीचो ह्याप्नवानपि ।।104।।
और्वोऽथ जमदग्निश्च विदः सारस्वतस्तथा।
आर्ष्टिषेणश्च्यवनश्च वीतहव्यः सुमेधसः ।।105।।
वैन्य पृथुर्दिवोदासो वाध्रयश्वो गृत्सशौनकौ।
एकोनविंशतिर्ह्येते भृगवो मन्त्रवादिनः ।।106।।

ये उन्नीस मन्त्रकर्ता ऋषि भृगुवंश में उत्पन्न कहे जाते है। इस कुल का सर्वोत्तम वृत्तान्त महाभारत के आदि पर्व में उपलब्ध है। महाभारत के अनुसार भृगु का पुत्र कवि था, कवि का पुत्र शुक्र जो योगाचार्य और दैत्यों का गुरु था। भृगु का एक पुत्र च्यवन था। च्यवन का पुत्र और्व था। और्व पुत्र ऋचीक था और ऋचीक से जमदग्नि उत्पन्न हुआ। पुराणों के अनुसार च्यवन और सुकन्या के दो पुत्र - आप्नवान् और दधीच अथवा वध्यङ· था। आप्नवान् का पुत्र और्व था। और्वो का स्थान मध्यदेश था। यहीं पर भार्गवों और कार्तवीर्य अर्जुन के मध्य युद्ध आरम्भ हुआ। यहीं पर अर्जुन के पुत्रों ने जमदग्नि का वध किया था। वीतहव्य पहले क्षत्रिय था जो बाद में भार्गव ऋषि के वचन से ब्राह्मण हो गया। उसी के कुल में गृत्समद शौनक उत्पन्न हुए थे। गृत्समद दाशरथि राम का समकालिक था।

आङि·्गरस कुल के तैंतीस ऋषि

अङि·्गरा, त्रित, भरद्वाज, लक्ष्मण, कृतवाच गर्ग, स्मृति, संकृति, गुरुवीत, मान्धाता, अम्बरीष, युवनाश्व, पुरुकुत्स, स्वश्रव, सदस्यवान, अजमीढ़, स्वहार्य, उत्कल, कवि पृषदश्व, विरूप, काव्य, मुद्गल, उतथ्य, शरदान, वाजिश्रवा, अपस्योष, सुचित, वामदेव, ऋषिज वृहच्छुल्क, दीर्घतमा ऋषि तथा कक्षीवान्। अङि·्गरा कुल के इन मन्त्रद्रष्टाओं में मान्धाता, अम्बरीष और युवनाश्व आदि क्षत्रिय कुलोत्पन्न थे।

छः ब्रह्मवादी ऋषि काश्यप

कश्यप, वत्सार, नैध्रुव, रेभ्य, असित और देवल ये छः ब्रह्मवादी ऋषि कश्यम के वंश में उत्पन्न हुए थे।

छः आत्रेय ऋषि

अत्रि, अर्धस्वन्, श्यावाश्व, गविष्ठिर, कर्णक और पूर्वातिथि। ये छः अत्रिगोत्रीय मन्त्रकर्ता ऋषि कहे जाते हैं।

वसिष्ठ ऋषि

वसिष्ठ, शक्ति, पराशर, इन्द्रप्रतिम, भरद्वाज, मित्रावरूण, कुण्डिन। वसिष्ठ कुल में ये सात ब्रह्मवादी उत्पन्न हुए।

कौशिक ऋषि

विश्वामित्र, गाधेय, देवरात, दक्ष, मधुच्छन्दा, अघमर्षण, लोहित, मृतकील, अम्बुधि, देवाश्रया, धनञ्जय, शिशिर और शालड·कायन ये तेरह ब्रह्मनिष्ठ ऋषि कौशिक वंश में उत्पन्न हुए। वायुपुराण 91/93 के अनुसार देवरात के कृत्रिम पिता विश्वामित्र का अपना नाम विश्वरथ था। विश्वरथ के पिता गाधी थे। गाधी के पश्चात विश्वरथ ने राज्य संभाला। कुछ दिन पश्चात् राज्य त्यागकर 12 वर्ष तक घोर तप किया इन्हीं विश्वरथ का वसिष्ठ से शत्रुता हो गई। त्रिशंकु की इन्होंने सहायता की। त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चन्द्र और पौत्र रोहित थे। विश्वरथ तपोवल से क्षत्रिय से ब्राह्मण ही नहीं ऋषि वन गये। तब इनका नाम विश्वामित्र पड़ गया। विश्वामित्र ने ही हरिश्चन्द्र के यज्ञ में शुनशेप देवरात को अपना पुत्र बना लिया। मधुच्छन्दा और अघमर्षणा धर्म सुविख्यात विद्वान थे।

तीन आगस्त्य ऋषि

अगस्त्य, दृढ़द्युम्न ≬दृढ़ायु≬ इन्द्रबाहु ये तीनो अगस्त्य के गोत्र में उत्पन्न होने वाले परम यशस्वी तथा ब्रह्मनिष्ठ ऋषि हुए हैं।

क्षत्रिय ऋषि

वैनस्वत मनु तथा इल के पुत्र राजा पुरूरवा - ये दो क्षत्रिय कुलश्रेष्ठ मन्त्रवादी ऋषि थे।

वैश्य ऋषि

भलन्दक, वासाश्व और संकील। तीन वैश्य कुलोत्पन्न मन्त्रकर्ता ऋषि हुए। ये वैश्यों में श्रेष्ठ थे। इस प्रकार कुल 92 ऋषि थे उनका स्पष्ट विवरण निम्नलिखित है -

भृगु	19
आङि·गूरस	11
काश्यप	6
आत्रेय	6
वासिष्ठ	7
कौशिक	13
आगस्त्य	3
क्षत्रिय	2
वैश्व	3
	92

इस प्रकार ब्राह्मण तथा वैश्य इन तीनों जातियों के कुल बानवे ऋषि हुए हैं, जिनके द्वारा मन्त्रों का प्रकाशन हुआ है। ये ऋषियों के पुत्र जो श्रुतर्षि कहे जाते हैं उन्हीं ऋषीको के पुत्र हैं। ब्रह्माण्ड में इनकी संख्या 90 पाई जाती है।

सामान्यतः ऋषि गण गृहस्थ आश्रम ही धारण किये रहते थे। वनों में निवास करते हुए भी अपने परिजनों सहित आश्रमों में निवास करते थे। वैदिक काल में वेदाध्ययन, वेदाभ्यास, वेद विद्या का दान ये ऋषियों के प्रमुख कर्म थे तथा सब कुछ त्यागकर अन्यत्र निवास करना वैदिक काल में प्रचलित था।[164] वनवासी महर्षियों का कौटुम्बिक जीवन भी तप तथा साधना फलसमायुक्त परिलक्षित होता था। वसिष्ठ की पत्नी अरुन्धती थी। उनकी पुत्रवधु दृष्यन्ती हुई। वसिष्ठ को सौ पुत्र हुए।[165] रघुवंश में ऋषिपत्नी, ऋषिबालक तथा मुनि कन्याओं का उल्लेख हुआ है।[166] ऋग्वेद में लोपामुद्रा का उल्लेख हुआ है।[167] अगस्त्य पितरों के उद्धार

164· अथर्व0 11/8/90

165· महा0, शल्य0 47/46

166· रघुवंश 1/50-51

167· ऋग्वेद 1/179/4

के लिए निवेशार्थी हुए।[168] विश्वामित्र मेनका से गान्धर्व विवाह करके शकुन्तला को उत्पन्न किया। माध्वी के गर्भ से भी पुत्र प्राप्त हुआ।

विश्वामित्र को सौ पुत्र हुए। महाभारत में वर्णित है कि "विश्वामित्रात्मजाः सर्वे मुनया ब्रह्मवादिनः"[169] ऋषि च्यवन की पत्नी सुकन्या थी।[170] उनके पुत्र प्रमति हुए। जमदग्नि के पुत्र परशुराम हुए।[170] अत्रि की पत्नी अनुसूया तपस्विनी थी। विभाण्डक ऋषि को ऋष्यश्रृंग नामक पुत्र हुआ।[172] पिता के साथ निवास करते हुए वेश्या पर प्रलोभित ऋष्यश्रृंग चम्पा गये जहाँ लोमपादराज की कन्या शान्ता से पुत्र उत्पन्न हुआ था।[173] कहोडो नाम नाम के ऋषि हुए। उनका पुत्र अष्टावक्र महर्षि जिसकी पत्नी सुजाता थी जो कौटुम्बिक निवास करते थे।[174] पुलस्त्य को सन्तति राक्षस, वानर, किन्नर और यक्ष आदि है। उनकी पत्नी का नाम गौरी था।[175] उनके पुत्र कुबेर हुए।[176] गौतम की पत्नी अहिल्या थी।[177] याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ मैत्रेयी और कात्यायनी हुई। महर्षि मित्रवस को कई पत्नियाँ थी जिनसे रावण आदि पुत्र उत्पन्न हुए। कुछ मुनि भी तप और साधना के साथ-साथ कौटुम्बिक सम्बर्धन भी करते थे।[178] रुचि देव शर्मणि की पत्नी प्रसिद्ध ही है।[179] उक्त विवेचनोपरान्त निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रायः ऋषि-मुनि गृहस्थ होकर भी तप साधना किये हैं।

168· महा0, अरण्य0 95/1-2, 97/23, वन0 95/7

169· महा0, अनु0 4/58

170· महा0, आख्यक0 115/17
171· महा0, आर0 116/4
172· वा0रा0, अरण्यकाण्ड 10/23
173· वा0रा0, अर0 113/6/21
174· महा0, आर0 132/7/9
175· महा0, आदि0 60/7
176· महा0 आर0 274/12
177· महा0, शान्ति 258/7
178· महा0, आदि0 43/5
179· महा0, अनु0 51/17

कुछ ऋषि अविवाहित रहकर ऊर्ध्वरेतस पद से अभिषिक्त थे।[180] आजीव ब्रह्मचारी[181], अखण्डब्रह्मचारी[182], कुमार ब्रह्मचारी[183] आदि आदि विशेषणों से सुभोभित थे।

इस प्रकार के ब्रह्मचारी ऋषि मुनि मन से भी स्त्रीचिन्तन नहीं करते थे।[184] प्राचीन काल में 88050 हुए थे। उनमें से 88000 ऊर्ध्वरेतस थे। महाभारत में भी प्रसिद्ध है-

"अष्टाशीति सहस्त्राणि यतीनानूर्ध्वरेतसाम्।
प्रजावतां च पंच्यशदृशीषामपि पाण्डवः।।"

-महा0 सभा0 11/34

शुकदेव तो जन्म से ही स्थितप्रज्ञ विरक्त थे -

"न त्वस्य रमते बुद्धिराश्रमेषु नराधिपः।" शान्ति0 311/2
भट्टकणक ऋषि रूपां ब्रह्मचर्य चकार - शल्य 37/29

इस प्रकार अधिकांश ऋषि आजीवन ब्रह्मचर्यव्रतधारी रहकर तप-साधनारत थे।

कुछ ऋषि आश्रम बनाकर रहते थे। विश्वामित्र का आश्रम तो प्रसिद्ध ही है।[185] गौतम ऋषि सपरिवारों के साथ मिथिला के निकट आश्रम में निवास करते थे।[186] गंगा-यमुना के संगम पर भरद्वाज ऋषि का आश्रम प्रसिद्ध ही है।[187] इसी प्रकार अत्रि का आश्रम चित्रकूट में[188] अगस्त्य का आश्रम गोदावरी के उद्गम

180· महा0, आदि0 65/17
181· महा0, शल्य0 51/87
182· महा0, शल्य0 49/8
183· महा0, आदि0 154/4
184· महा0, आदि0 36/1
185· वारा0 1/33/10
186· महा0, आश्व0 55/6
187· वा0रा0 2/109/6
188· वा0रा0 2/7/7

स्थल पञ्चवटी प्रदेश में निर्मित था।[189] कण्व का आश्रम मालिनी के तट पर तो प्रसिद्ध ही है।[190] निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ये सभी प्रमाण ऋषियों के आश्रम निवासी होने की पुष्टि करते हैं।

अथ कुछ ऋषि यायावर जीवन व्यतीत करते थे। ये परिव्रज्याशील ऋषि अपना आश्रम एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में स्थानान्तरित करते रहते थे। इन भ्रमणशील महामानव ऋषियों में नारद भी एक थे जो कभी भी एक ही प्रदेश में निवास नहीं किये।[191] इसी प्रकार दुर्वासा[192], लोमश[193] आदि ऋषि भ्रमणशील थे।

कुछ ऋषि एक प्रदेश में कुछ दिनो तक निवास करने के पश्चात् अन्य प्रद्रेश में अपना आश्रम बना लेते थे। विश्वामित्र प्रथमतः दक्षिण देश में निवास करने के पश्चात् पशिचम दिशा में स्थित पुष्कर चले गये। तदनन्तर पूर्व दिशा में और अन्त में उत्तर दिशा में स्थित कोशिका के तट पर निवास करने लगे।[194] गौतम का आश्रम तो मिथिला में था किन्तु तप वे हिमगिरि में किये। अगस्त्य का आश्रम पञ्चवटी में उक्त है, किन्तु दूसरा आश्रम मलय पर्वत पर तीसरा गंगा के द्वार हिमालय में था।[196] वेदव्यास का प्रथम आश्रम कुरूक्षेत्र[197] में मलयाचल पर ऋषिक वन[198] में स्थित था। वसिष्ठ का भी तीन क्षेत्रों में आश्रम विद्यमान था प्रथम स्थाणुतीर्थ[199] में, द्वितीय वदरपायन तीर्थ[200] में तृतीय मेरू पर्वत[201] पर ऐसा वर्णन मिलता है।

189· वा0रा0 3/22/1
190· महा0, आदि0 68/29
191· महा0, शल्य0 53/15
192· महा0, द्रोण0 10/9
193· महा0, वन0 45/9
194· वा0रा0 1/50/1
195· वा0रा0 1/47/11
196· महा0, वन0 95/11
197· महा0, स्त्री0 10/21
198· महा0, शान्ति 310/13
199· महा0, कर्ण 41/4

ऋषिगण अध्यापक का कार्य भी करते थे। कुछ शास्त्राध्यापक थे तो कुछ शस्त्राध्यापक भी थे। ऋषियों का मन्त्रदृष्टत्व संहिताओं में वर्णित है। पौराणिक साहित्य में शिक्षकों का स्वरूपवर्णन प्रमुखता से किया गया है। महाभारत[202] में वर्णित है कि वेदव्यास ने अपने शिष्यों जैमिनि-पेल-वैशम्पायन-सुमन्त आदि को वेद विद्या की शिक्षा दी थी। अयोदधौम्य ने अपने शिष्य उपमन्यु आदि को वेद वेदाङ्ग पढ़ाया।[203] तथा धर्मशास्त्र की भी शिक्षा प्रदान की थी।[204] इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ऋषि ने शतपथ ब्राह्मण का संग्रह कर सौ शिष्यों को पढ़ाया-

ततः शतपथं कृत्स्नं सरहस्यसंग्रहम×
चक्रे स परिशेयं च हर्षेण परमेण इ
कृत्वा चाध्ययने तेषां शिष्याणां शतमुन्तमम्।।

बहुत से पुराणों को ऋषियों ने पढ़ाया था। उदाहरणतः ब्रह्माण्ड पुराण को ब्रह्मा ने वसिष्ठ को और वह अपने पोते पराशर को दिये। भगवान् शुकदेव ने पारिवेत को दिया।[205] कूर्म पुराण को नारायण नारद ने गौतम तथापराशर को पढ़ाया।[106] पद्मपुराण को ब्राह्मण पुलत्स्य ने ग्रहण कर भीष्म को समर्पित किया।[207] वामन पुराण को पुलत्स्य ने नारद को पढ़ाया।[208] इस प्रकार अनेक ऋषियों ने एक दूसरे को पुराणों की शिक्षा ग्रहण करवायी।

कुछ ऋषि धनुर्वेद में निष्णात थे। महर्षि भरद्वाज[209] ने धनुर्वेद के

200· महा0, शल्य0 347/27
201· महा0, आदि0 93/11
202· महा0, शान्ति 3/4/23
203· महा0, आदि0 3/20
204· महा0, आदि0 3/77
205· भाग0 3/8/9 206· कूर्म0 1/1
207· पद्म0 5/2/46-47 208· वामन0 1/1
209· ·121/6

साथ ही अन्य शस्त्रास्त्रों का शिक्षण यथायोग्य शिष्यों को प्रदान किया था। उन्होंने आयुर्वेद का ज्ञान काशिराज को भी दिया था।[210] परशुराम ने द्रोण[211] भीष्म और कर्ण[212] को धनुर्विद्या प्रदान की थी। आचार्य द्रोण के गृह धनुष के डोरी के टंकार के साथ-साथ अन्य ध्वनियाँ भी सुनायी पड़ती थी।

ज्याधीशो ब्रह्मघोषस्य तोमरासिरथध्वनिः।

द्रोणस्यासीदविरतो गृहे तन्न श्रृणोम्यहम्।।[213]

अग्निवेश भी शसत्राध्यापक थे[214] शरद्वान वेदमन्त्रों के उच्चारण से अधिक शस्त्राभ्यास में रुचि रखते थे।[215] शस्त्रविद्या में निपुण महर्षि जमदग्नि ने भी अनेक शिष्यों को प्रशिक्षित किया।[216]

कुछ ऋषियों ने पौरोहित्य कर्म में निरत रहकर राजाओं के लिए यात्रादि का सम्पादन किया था। कुछ ऋषियों ने स्वकल्याणार्थ सभा आदि का सम्पादन किया था।

महर्षि वसिष्ठ राजा सुदास के पुरोहित थे। सुदास के कल्याण के लिये यज्ञ करवाये थे।[217] वसिष्ठ ने ही ऋष्यश्रृंग के साथ मिलकरमहाराज दशरथ के लिये अश्वमेध यज्ञ का सम्पादन किया था।[218] वृहस्पति भी कुलपुरोहित थे।[219] हिरयण्कशिपु भी पुरोहित थे।[220] उनको दक्षिणा के रूप में पशु आदि प्राप्त हुए थे-

"याजयित्वा ततो याज्याल्लिव्ध्वा च सुवहून् पशून्।"[221]

---

210. ब्रह्म0 11/77/38
211. आदि0 121/12
212. कर्ण0 22/39
213. महा0 द्रोण 61/29
214. आदि0 121/7
215. आदि0 120/3
216. वन0 115/3
217. विष्णु 4/41
218. वा0रा0 1/18/12
219. आश्व0 5/16
220. म0भा0 शान्ति 313/2
221. शल्य0 36/17

कुछ ऋषि स्वेच्छा से अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए यज्ञ किये वेदव्यास ने भी अरिणमन्थन को विहित किया -

"अरणी त्वय संगृह्य ममन्थाग्निचिकीर्षया।[222]

परशुराम ने भी अश्वमेघ यज्ञ सम्पादित करवाया था।[223] भरद्वाज अपनी तृविधा के प्राप्ति के लिए भ्रमणा नही किये थे।

"महर्षिस्तु भरद्वाजे हविर्धाने चरन्पुरा।" इति वचनात्[224]

कूर्मपुराण[225] में कहा गया है कि यज्ञ से तप श्रेष्ठ है। सप्तर्षियों ने त्रिधा तप की चर्चा की है - वेदाध्ययन, यज्ञ और तीर्थयात्रा।[226] वायुपुराण में सप्तर्षियुग को दिव्य युग कहा गया है। यहाँ व्यास परम्परा विस्तार से प्राप्त होती है। वायु0 में स्मरणीय है -

सप्तविंशति पर्यन्ते कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले
सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम्
सप्तर्षिणां युगं ह्येतांदिव्यया संख्यास्मृतम्।।[226]

सप्तर्षि युगपरप्परायाः सम्यक् अध्ययनेन भारतीय इतिहासस्यनेकानि तिथि निर्धारणानि पुष्टानि भविष्यन्ति इति।

कुछ प्राचीनकोशों में ऋषि सम्बन्धी जानकारी उपलब्ध होती है। प्राचीन भारतीय संस्कृति कोश में ऋषियों के कुछ गुण बताये गये है जैसे ऋषि दीर्घायु होते हैं। मन्त्रद्रष्टा, शापानुग्रह, शक्ति तथा दिव्य दृष्टि वाले होते है इसके अतिरिक्त प्रबुद्धता, धर्मदर्शन एवं गोत्र से युक्त होते है। यहीं पर **ऋषि चिकित्सा** के अन्तर्गत बताया गया है कि - भरद्वाज (ऋतु परक आहार विहार), कश्यप (प्राणायाम) गौतम (हवन) अत्रि (मानस), विश्वामित्र (प्रार्थना चिकित्सा) जमदग्नि (जल) वसिष्ठ (स्पर्श चिकित्सा) पर बल देते थे। **ऋषि तर्पण** का अभिप्राय है ऋषियों के तृप्ति निमित्त किया जाने वाला जलदान। एक और अर्थ दिया गया है ऋषियों को संतुष्टि के लिये अथवा ऋषि ऋणि उतारने के लिया जाने वाला विद्यादान।

222· म0भा0 शान्ति 311/11
223· शल्य0 46/7/8
224· म0भा0 आदि0 121/3
225· कूर्म0 1/19/31-44
226· म0भा0 अनु0 16/1

ऋषि पञ्चमीव्रत - यह व्रत भाद्र शुक्ल पंचमी को मनाया जाता है। एक अन्य चरित्र कोश के अनुसार ऋषि बड़े विद्वान होते है सप्तर्षि जो प्रजापति के समान समझे जाते है। एक ऋषि, आदित्य, गन्धर्व और अप्सरा प्रतिमास सूर्य के साथ रहते हैं।

ऋषिकस - मनुष्यों की एक जाति होती है रामायण मे लिखा है कि यह जाति भारत के पश्चिम तथा दक्षिण प्रान्त में पायी जाती है। इसी जाति से अर्जुनने आठ घोड़े लिये थे।[228]

ऋषिक - उत्तर दिशा में काम्भोज देश के समीप का देश अर्थात् रूस देश। **ऋषिका** - एक नदी का नाम है जो महेन्द्र पर्वत से निकलकर समुद्र में गिरती है।

इस अध्याय में ऋषि शब्द का निर्वचन, अर्थ स्वरूप लक्षण ऋषियों के ईश्वरादि भेद विविध वर्गीकरण तथा ऋषियों की गणना प्रस्तुत की गयी है। अगल अध्याय में वेदोक्त तथा पुरोणोक्त दोनो प्रकार के ऋषियों का पृथक-पृथक जन्म, परिवार, कृत्य तत्वज्ञानोपदेश , मन्त्रद्रष्टत्व, प्रजापतित्व आदि विषयों में उपलब्ध विस्तृत एवं विशद विवरण प्रस्तुत किया जायेगा। साथ है ऋषियों सम्बद्ध विविध आख्यान, स्थान, तीर्थ वंशवृक्ष आदि विवरण यथामति यथास्थान दिया जायेगा। सभी ऋषियों का विवरण प्रस्तुत करना शोध प्रबन्ध की पृथुलता के भय से सम्भव नहीं है। हमारे अध्ययन के विषय वही प्रमुख ऋषि है जो संस्कृत प्रमुख नाटकों के पात्र के रूप में प्रयुक्त है।

अतः अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से ऋषियों को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है - प्रथम मन्त्रद्रष्टा ऋषि, द्वितीय अन्य ऋषि

228· म0भा0, सभा0 27/24-27

मन्त्रद्रष्टा ऋषि	कश्यप
	वसिष्ठ
	विश्वामित्र
	कण्व
	गौतम
	गालव
	च्यवन
अन्य ऋषि	दुर्वासा
	परशुराम
	नारद
	वाल्मीकि

---000---

चतुर्थ अध्याय

मन्त्रद्रष्टा ऋषि

- कश्यप
- वसिष्ठ
- विश्वामित्र
- कण्व
- गौतम
- गालव
- च्यवन

मन्त्रद्रष्टा ऋषि

कश्यप

§कश्य + पा + क§ एक ऋषि अदिति और दिति के पति, अतः देवता और राक्षस दोनों के पिता। §ब्रह्मा के पुत्र मरीचि थे, मरीचि के पुत्र कश्यप हुए, सृष्टि के कार्य में कश्यप ने बड़ा योगदान किया। महाभारत तथा दूसरे ग्रन्थों के अनुसार उनका विवाह अदिति तथा दक्ष की अन्य तेरह पुत्रियों के साथ हुआ। अदिति से उसके द्वारा बारह आदित्यों का जन्म हुआ - अपनी अन्य बारह पत्नियों से उसके अनन्त और विविध प्रकार की सन्तानें हुई - साँप रेंगने वाले जन्तु, पक्षी, राक्षस चन्द्रलोक का नक्षत्रपुञ्ज तथा परियाँ। इस प्रकार वह देव, असुर, मनुष्य पशु, पक्षी और सारीसृप आदिको का वस्तुतः सभी जीवधारी प्राणिमात्र का पिता था। इसीलिए उसे बहुधा प्रजापति कहा जाता है§।[1]

ऋक्सर्वानुक्रमणी में ऋग्वेद 1/99 के सम्बन्ध में उल्लेख प्राप्त है कि कश्यप एक सहस्त्र ऋक् सूक्तों के द्रष्टा थे।[2] ऋग्वेद में कश्यप मारीच[3] कहते हैं कि पवमान सोम देवता ने दस्यु से मनु की रक्षा की। मारीचि पुत्र कश्यप वासी §वसूले§ का उल्लेख करते हुए कहते है- देवों में निश्चल वह एक आपसी §ताँबे की§ वासी §वसूला§ हाथ में धारण करता है।[4] ऋग्वेद में अन्यत्र कश्यप के अनुसार "एक §देव§ हाथ में रखे वज्र को धारण करता है उससे वृत्तों §शत्रुओं§ का नाश करता है।[5] कश्यप मारीच ऋषि स्वर्ग को सदा ज्योतिमान्, सुखयुक्त अमृतलोक कहते

---

1. संस्कृत हिन्दी कोश वी0एस0 आप्टे, पृ0 260
2. जातवेदस एका जातवेदस्यमेतदादीन्येक भूयांसि सूक्त सहस्रमेतकश्यपार्षम्।
   -ऋग्वेद 1/99 के विषय में।
3. तन्नु सत्यं पवमानस्यास्तु यत्र विश्वे कारवः सन्नसन्त।
   ज्योतिर्यदह् ने अकृणोद लोकं प्रावन्मनु दस्यवे करभीकम्।। ऋ0 9/92/5
4. वाशीमेको विभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निर्धुविः।। ऋग्वेद 8/29/3
5. वज्रमेको विभर्ति हस्त आहितं तेन वृत्राणि जिहनते।। वही 8/29/4

कहते हैं[6] और वहाँ आनन्द, मोद, प्रमोदका होना बतलाते है। इस प्रकार ऋग्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद में कश्यप ऋषि का उल्लेख हुआ है।[7] शतपथ ब्राह्मण में सप्तर्षियों में कश्यप ऋषि की गणना की गयी है। कश्यप प्रजापतियों में श्रेष्ठ माने जाते हैं। क्योंकि इनसे असुर, देव, दानव, विद्याधर आदि नाना कुल उत्पन्न हुए। कश्यप ऋषि का उल्लेख संहिताओं में अनेकशः हुआ है। कश्यप कुल के ऋषियों में कुल 48 सूक्त एवं 5 ऋचाएँ है। कश्यप की कुल तेरह स्त्रियाँ थीं। अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, मुनि, क्रोधा, विश्वा, वरिष्ठा, सुरभि, विनता, कद्रू। ये दक्ष की पुत्रियाँ थी और कश्यप के साथ विवाहित हुई थी। अदिति से बारह आदित्य उत्पन्न हुए भग, अर्यमा, अंश, मित्र, वरूणा, धाता, विधाता, विवस्वान, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र, विष्णु। कश्यप को सर्वत्र प्राचीनकाल का बतलाया गया है। इन्होंने विश्वकर्मन भौवन राजा का राज्याभिषेक का बतलाया गया है। उपनिषदों में इन्हें ऋषि कहा गया है। कश्यप का उल्लेख जनमेजय के संदर्भ में भी आया है। ऋग्वेद के अन्तर्गत कश्यप कुल के जिन ऋषियों का अन्तर्भाव हुआ है वे इस प्रकार है - कश्यप मारीच, अरिष्टनेमि, तार्क्ष्य, सुपर्ण (तार्क्ष्यपुत्र), अवत्सार काश्यप, असित काश्यप, आर्वुद काद्रवेय, ऊर्ध्वग्रावा आर्वुदि, ऋष्यश्रृंग वातम्य, पारत्कर्ण सर्प ऐरावत, भूयांश कश्यप, रेभ काश्यप, रेभसून (काश्यपो)। कश्यप के नाम से प्रारम्भ होने वाली कश्यपस्य त्र्यायुषम प्रार्थना से आयु में वृद्धि होती है।

कश्यप के लिए "काश्यप" शब्द भी प्रयुक्त हुआ है - "कश्यपस्त्स्य पुत्राऽभवद् काश्यपो नाम नामतः।[10] काश्यप = कश्यप का वंशज। यह एक सामान्य

6· यत्र ज्योतिरजस्त्रं यस्मिन्ल्लोके स्वर्हितं।
तस्मिन् मां धेहि पवमानमृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परिस्रव।।14/28/7
दत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुदः आसते।
कामस्य यत्राप्तः कामास्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव।।ऋ0 9/113/711

7· ऋग्वेद 9/114/2, सामवेद 1/1/2, 4/10, 1/4,23 2, अथर्ववेद 1/14/4, 2/33/7, 4/20/7, 4/29/3, 4/37/1
यो कश्यपमवथो यो वसिष्ठं तो नो मुञ्चतमंहसः।। अथर्व0 4/29/3

8· ऐ0ब्रा0 8/21, शत0 ब्रा0 13/7/1/15

9· तु0 ओल्डेनवर्ग 42/235 टि0

10· मारकण्डेय0 104/3

यह एक सामान्य पैतृक नाम है। ऋष्यशृंग देवरतस् यावसायन शूष वाह्नेय के साथ जोड़ा जाता है।[11]

कश्यप के वंश वृक्ष

मरीचि

कश्यप

अवत्सर — असित

रेभ — निध्रुव — देवल

"कश्यप" शब्द की विविध प्रकार की व्युत्पत्तियाँ उपलब्ध होती है। उदाहरणतः तैत्तिरीय आरण्यक में - "कश्यपः पश्यकों भवति यत्सर्व परिपश्यणर्तीति सोक्ष्म्यात्।[12]

वायुपुराण में भी स्मरणीय है कि दक्ष कन्याओं द्वारा बनाये गये कश्य (मद्यविशेष) के पीने से "कश्यप" नाम से जाना गया। तद्यथा-

कन्यानिमिलमित्युक्ते दक्षोणे कुपिताः प्रजाः
अपिवत्स वदा कश्यं कश्यं महामिरोच्यते।।
हाश्चेकसा हि विज्ञेया वाऽमनः कश्य उच्यते।
कश्यं मयं स्मृतं विप्रैः कश्यपानास्तु कश्यपः।।
करोति नाम यद्वाचो वाचं क्रूरगुदाहृतम्।
दक्षाभिशप्तः कुपितः कश्यस्तेन सोऽभवत् एवं ब्रह्मांड।।[13]

उक्त मत ब्रह्माण्ड पुराण (3/1/120-122) में भी द्रष्टव्य है।

स्वयं अपने नाम की व्याख्या करते हुए कहा है कि -"कश्यः शरीरं तस्य पालकः कश्यपः।" में सूक्ष्मता से सभी कुलों मे प्रविष्ट होकर रक्षा करता हूँ इसलिये मै कश्यप हूँ तथा कुवम भी मैं ही हूँ। काश्य की तरह मैं उज्जवल वर्ण का हूँ इसलिये "काश्य" इस नाम से प्रसिद्द है। उदाहरणतः -

---

11· द्रष्टव्य शत0ब्रा0 7/5/1/5, तै0आर0 2/18, 10/1, 8 आदि
12· तै0आ0 1/8/8
13· वायु0 पु0 6/5/115-118

कुलं कुलं च कुवमः कुवमः कश्यपो द्विजः।
काश्यः कांसानिकाशत्वादेतन्मे नाम धारय।।[14]

मारकण्डेय पुराण में भी कश्यप की व्युत्पत्ति में कहा गया है "कश्यपस्तस्य पुरोऽभूत कश्यपानात् स कश्यपः।" यहाँ पर पृ0 119 पर डॉ0 फतेह सिंह का मत भी द्रष्टव्य है।

कश्यप की गणना प्रजापतियों में की गई है। जैसा कि कहा गया है - "अपरे प्रजानांपतयस्तान्छणुध्वमतन्द्रिता।"[15] इनकी गणना वैवस्वत मन्वन्तर के सप्तर्षियों में की गई है -

कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गोतमः।
जमदग्निर्भारद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः।।[17]

अनेक मन्त्रों के द्रष्टा परमर्षि कश्यप प्रजापति थे। इन्होंने देवराज इन्द्र के जन्म से पूर्व "जातवेदस्" और इन्द्र नाम से अग्नि की स्तुति की थी। कश्यप के पुरातन ऋग्वेद (प्राजापत्यश्रुति) में 1000 सूक्त और 500499 मन्त्र थे।[18] इन मन्त्रों में विशेष रूप से जातवेदस् नाम से अग्नि की स्तुति थी। इसका प्रमाण अचार्य शौनक ने वृहद्देवता वेदभाष्यकार स्कन्द के ऋग भाष्य और षड्गुरुशिष्यकृत सर्वानुक्रमणीवृत्ति से दिया है -

जातवेदस्य सूक्त सहस्त्रमेकमैन्द्रात्पूर्वं कश्यपस्यार्ष वदन्ति।
जातवेदसे सूक्तमाद्यं तु तेषाम् एक भूपस्त्वं मन्यते शाकपूणिः।[19]

14· महा0 अनु0 13/86
15· 15· वायु0 65/52
16· वायु0 65/53
17· भागवत् 4/13/5 तथा ब्रह्माण्ड 2/38/28, विष्णु0 3/1/32
18· पूर्वात्पूर्वाः सहस्त्रस्य सूक्तानामेक भूयसाम्
जातवेदस्य इत्याद्यं कश्यपार्षस्य शुश्रुम्।।
ऋचस्तु पञ्चलक्षाः स्युः सैकोन शतं पञ्चकम्। वृहद्देवता, अ0 3
19· वृहद्देवता 3/130

महाभारत के अनुसार ब्रह्मा के मानस पुत्रों में एक मरीचि भी थे और मरीचि के मानस पुत्र प्रजापति कश्यप हुए। आयुर्वेदीय "काश्यप संहिता" में भी कश्यप को मारीच तथा प्रजापति कहा गया है। मारीच कश्यप का एक नाम अरिष्टनेमि भी है।[20] मत्स्यपुराण में कश्यप तथा अरिष्टनेमि को अलग-अलग उद्धृत किया गया है।[21] अरिष्टनेमि कश्यप का गौण नाम ही है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार कश्यप ऋषि का वंश अति विस्तृत था।[22] आज भी कश्यप गोत्र बहुत प्रसिद्ध है।

कश्यप ऋषि का आश्रम सम्भवतः हिमावान् के उत्तर पार्श्वस्थ चम्पकवन में था जहाँ कश्यप के पुत्र इन्द्र ने 101 वर्ष तक रहकर ब्रह्मचर्य व्रत पूर्ण किया था। प्रजापति कश्यप कृतयुग के आरम्भ से जामदग्न्य परशुराम द्वारा इक्कीस बार क्षात्र नाश के अन्त तक जीवित थे। परशुराम ने उन्हें समस्त पृथ्वी का दान कर दिया था। शांखायन श्रौतसूत्र में उल्लिखित है कि जल मे डूबी हुई भूमि को कश्यप ने जल से बाहर निकाला।[23] इस घटना का संकेत शतपथ ब्राह्मण में भी पाया जाता है।[24] नीलमत पुराण में भी एक पुरातन ऐतिहासिक घटना परिलक्षित होती है जिसमें कहा गया है कि कश्यप ने काश्मीर की भूमि को जल से बाहर किया।

ग्रन्थ

काश्यपेन प्रोक्तं कल्पमधीते काश्यपिनः {काशिकावृत्ति 4/3/103} के इस उदाहरण से प्रतीत होता है कि ऋषि काश्यपप्रोक्त एक कल्पसूत्र था। इसकी पुष्टि के लिए व्याकरण महाभाष्य 4/2/66 भी दर्शनीय है। कश्यप का धर्मसूत्र प्रसिद्ध है। इसकी एक हस्तलिपि होशियारपुर में उपलब्ध है। इस धर्मसूत्र के अनेक

20· मारीचमृषिमासीनं सूर्यवैश्वानरद्युतिम। आयुर्वेदीय काश्यप संहिता पृ0 148
प्रजापतिं समासीनमृषिभिः पुण्यकर्मभिः
पप्रच्छ विनयाविदान् कश्यपं वृद्धजीवकः।।3।।

21· मारीचेः कश्यपः पुत्रस्तस्य द्वे नामनी श्रुते। आ0का0सं0 पृ0 62
अरिष्टनेमि रित्येकं कश्यपेत्यपरं विदुः।। महाशान्तिपर्व 201/8

22· प्रादात्स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश
सप्तविंशति सोमाय चतस्त्रोऽरिष्टनेमये।। मत्स्यपुराण 6/13

23· विश्वकर्मा ह भोवनो अन्तत ईजे। तं ह भूमिरूवाच
न मां मर्त्यः कश्चन दातुमर्हति विश्वकर्मन भोवन मां दिदासिथ
उप मंक्ष्येऽहं सलिलस्य मध्ये मृषैव ते संगरः कश्यपाय इति।।
शांखायन श्रौतसूत्र 16/16/2-4

24· द्रष्टव्य शतपथ ब्राह्मण 13/7/1/15

वचन विश्वरूप आदि प्राचीन टीकाकारों ने उद्धृत किये है। बौधायन धर्मसूत्र में भी कश्यप के वचन उल्लिखित है।[25] कुछ विद्वान कश्यप के कल्पसूत्र के अन्तिम भाग को ही कश्यप का धर्मसूत्र मानते हैं।[26] महाभारत आश्वमेधिक पर्व 96 अध्याय के सोलहवें श्लोक में काश्यप के धर्मशास्त्र का नाम पाया जाता है। वाजसनेय प्रातिशाख्य में भी काश्यप उद्धृत है।[27] प्रजापति कश्यप निघण्टु के आदि प्रणेता बताये जाते है। महाभारत में भी उल्लिखित है[28]

ऐसा ज्ञात होता है कि प्रजापति कश्यप निघण्टु के प्रणेता हैं। आदिकाल में (दक्ष प्रजापति के काल) आद्य त्रेता युग में सर्वप्रथम प्रजापति कश्यप ने मूलश्रुति का संग्रह किया था जिसे पुराणों में "प्राजापत्यश्रुति" कहा गया है।[29] अतः कहा जा सकता है कि आद्यश्रुति के प्रणेता कश्यप ने सर्वप्रथम "निघण्टु कोश" की रचना की थी, जिसमें "वृषाकपि" पद भी है। कश्यप स्मृति के दो हस्तलेख भाण्डरकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट में है जो गद्य में है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद से सम्बन्धित काश्यप संहिता भी प्रकाशित है। कश्यप ने अपने पुत्र इन्द्र से आयुर्वेद ज्ञान उपलब्ध करके उसका उपदेश "कौमारभृत्य" तन्त्र के रूप में अपने प्रिय शिष्य वृद्धजीनक को किया। वह उपदेशामृत काश्यपसंहिता अथवा वृद्धजीवकीयतन्त्र के नाम से उपलब्ध है। ज्ञानचक्षु तथा तप द्वारा रचित काश्यप संहिता कल्पस्थान में उद्धृत हैं कि - ततो हितार्थं लोकजां काश्यपेन महर्षिणा (18) पितामहनियोगाच्च

दृष्ट्वा च ज्ञान चक्षुषा, तपसा निर्मितं तन्त्रं ऋषयः प्रतिपेदिरे।।19।।

संसार के कल्याणार्थ कश्यप ने ब्रह्म की आज्ञानुसार ज्ञान चक्षु से देखकर तप द्वारा काश्यप तन्त्र की रचना की। इस ग्रन्थ में सिद्ध प्रयोग बताया गया है।[30] भूतप्रेतादि

25· द्रष्टव्य0 बौधायन धर्मसूत्र 1/21/4

26· वैदिक वाङ्मय का इतिहास, पृ0 260

27· द्रष्टव्य वाजसनेय प्रातिशाख्य 4/5

28· द्रष्टव्य महाभारत, शांतिपर्व कुम्भघोष संस्करण 352 श्लोक सं0 23-24

29· "प्राजापत्या श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पास्तित्विमे स्मृताः।। वायु0पु0 61/75

30· इति शूलचिकित्सा ते विस्तरेण प्रकीर्तिता।

सिद्धैः प्रयोगैर्विविधैः प्राणिनां हितकाम्यया।।67।।

-काश्यप संहिता अष्टज्वर चिकित्साध्याय पृ0 321 पर उद्धृत

पर भी कुछ मंत्र पाये जाते है इनके नाम पर कुछ ग्रन्थ इस प्रकार है - कश्यपसंहिता ﴾वैद्यकीय﴿ कश्यपोत्तर संहिता, कश्यप स्मृति, जिसका उल्लेख हेमाद्रि विज्ञानेश्वर तथा माधवाचार्य ने किया है। कश्यप सिद्धान्त इसका उल्लेख नारद संहिता में हुआ है। कश्यप शिल्पज्ञ रूप में भी प्रख्यात है। इस कला के सर्वप्रथम प्रणेता इन्हीं को बताया जाता है जिसकी पुष्टि आनन्दाश्रम से प्रकाशित काश्यप शिल्पम् भी उपलब्ध है। कश्यप तथा पराशरकृत ज्योत संहिताओं में इनका नाम अष्टादश ज्योतिः शास्त्र प्रवर्तकों में है वराहमिहिर की वृहत्संहिता में कश्यप का नाम उल्लिखित है।

उक्त विवेचनों से प्रतीत होता है कि कश्यप धर्मशास्त्र ज्योतिष शिल्प, आयुर्वेद दर्शन आदि शास्त्रों के ज्ञाता नहीं अपितु सर्वशास्त्रज्ञ थे। तपसा ऋषितां गताः।[31] अर्थात् काव्य, वृहस्पति, कश्यप, च्यवन, वामदेव, अगस्त्य आदि तप से ऋषि बने। आयुर्वेदीय काश्यप संहिता में कश्यप का व्यक्तित्व करने वाले कुछ विशेषण इस प्रकार दिये गये है - हुताग्निहोत्रम्[32], ज्वलनाकतुल्यम[33] तपोदम् तपोनिधि[34] लोकपूजितम[35] सर्वशास्त्रज्ञम्[36] वेदवेदाङ्गपारगम्[37] वदतांवर[38] सर्वशास्त्रविदावरम्[39] भिषजांश्रेष्ठम[40]।

वाल्मीकि रामायण में कश्यप के सम्बन्ध में जो विवरण प्राप्त होता है उसके अनुसार - अपने पुत्रों के मारे जाने पर दिति को बड़ा दुःख हुआ[41] वे अपने पति कश्यप से कहीं -

हत पुत्रास्मि भगवंस्तव पुत्रैर्महाबलैः
शक्रहन्तारमिच्छामि पुत्रं दीर्घत्पोर्जितम्।।2।।

31· मत्स्यपुराण 145/92-94

32· आयुर्वेदीय काश्यप संहिता पृ0 16

33· वही, पृ0 168　　34· वही, पृ0 168

35· वही, पृ0 176　　36· वही, पृ0 192

37· वही, पृ0 199　　38· वही, पृ0 103

39· वही, पृ0 206　　40· वही, पृ0 294

41· हतेषु तेषु पुत्रेषु दितिः परमदुःखिता।
मारीचं काश्यपं राम भर्तारमिदमब्रवीत।। वा0रा0, बाल0 दाक्षिणात्य पाठ 46/1

दिति के ऐसे कहने पर मरीचिनन्दन कश्यप ने कहा - "तपोधने ऐसा ही हो। तुम शौचाचारका पालन करो। तुमसे ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा जो युद्ध में इन्द्र को मार सकेगा। यदि पूरे एक सहस्त्र वर्ष तक शुचिता पूर्वक रह सकोगी तो तुम मुझसे त्रिलोकीनाथ इन्द्र का वध करने में समर्थ पुत्र को प्राप्त कर लोगी। इस प्रकार समझाकर महातेजस्वी कश्यप ने दिति के शरीर पर हाथ फेरकर उसका स्पर्श करके बोले - तुम्हारा कल्याण हो ऐसा कहकर तप करने के लिए चले गये।[42]

पुराणों में "कश्यपाय त्रयोदश इत्यादि वचनों द्वारा कश्यप की तेरह पत्नियों का नामोल्लेख किया गया है। किन्तु रामायण में जिस सन्तान परम्परा का वर्णन किया गया है उसमें इन आठों का ही उपयोग है।

आठ सुन्दरी कन्याओं को प्रजापति कश्यप ने जिसे ग्रहण किया उनके नाम इस प्रकार है - अदिति, दिति, दनु, ताम्रा, क्रोधवशा, मनु, और अनला। कश्यप ने अपनी स्त्रियों से कहा - हे देवियों तुम लोग ऐसे पुत्रों को जन्म दोगी जो त्रैलोक्य का भरण पोषण करने में समर्थ और मेरे समान तेजस्वी होगे। इनमें से अदिति, दिति, दनु और कालका इन चारों ने कश्यप की कही हुई बात को मन से ग्रहण किया परन्तु शेष स्त्रियों ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। अदिति के गर्भ से तैंतीस देवता उत्पन्न हुए - बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, और दो अश्विनीकुमार। दिति ने दैत्य नाम से प्रसिद्ध यशस्वी पुत्रों को जन्म दिया। दनु ने अश्वग्रीक नामक पुत्र को तथा कालका ने नरक और कालक नामक दो पुत्रों को जन्म दिया।

ताम्रा ने क्रौञ्ची भासी, श्येनी, धृतराष्ट्री तथा शुकी इन पाँच विश्वविख्यात कन्याओं को उत्पन्न किया।[44] क्रोधवशा ने दस कन्याओं को जन्म दिया - मृगी

42· वा0रा0 47वां सर्ग
43· वही, अरण्यकाण्ड, 14/10/33
44· वही, अरण्यकाण्ड, 14/10/33

मृगमन्दा, हरी, भद्रमदा, मातङ्·गी, शार्दूली श्वेता, सुरभी, सर्वलक्षणसम्पन्ना सुरसा और कद्रुका। महात्मा कश्यप की पत्नी मनु ने ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्र जाति वाले मनुष्यों को जन्म दिया।

एक बार परशुराम ने समस्त पृथ्वी को जीतकर उसे कश्यप मुनि को दान में दे दी। कश्यप मुनि ने कहा - "अब तुम मेरे देश में मत रहो अतः गुरु का आज्ञा का पालन करते हुए हुए परशुराम ने रात को पृथ्वी पर न रहने का संकल्प किया। वे प्रत्येक रात्रि में मन के समान तीव्र गमन शक्ति से महेन्द्र पर्वत पर जाने लगे।[43]

महाभारत में कश्यप से सम्बन्धित अनेक कथाएँ प्रचलित है उनमें से कुछ को उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा। इन्द्रियों का अधिष्ठान जो शरीर उसका पालन करने वाला जीव ही कश्यप है।[46] कश्यप ब्रह्मा का मानस पुत्र है। मरीचि की पत्नी कर्दम की कन्या कला को कश्यप तथा पूर्णिमा नामक दो पुत्र हुए। उनमें से कश्यप ज्येष्ठ है।[47] इनके तार्क्ष्य तथा अरिष्टनेमि नामान्तर प्राप्त है। इनका नामोल्लेख प्रजापतियों तथा सप्तर्षियों में हुआ है।[48] किन्तु सप्तर्षियों की सूची में कश्यप के स्थान पर भृगु तथा मरीचि नाम भी पाया जाता है।

इक्कीस बार पृथ्वी से क्षत्रियों का नाश करने के पश्चात् परशुराम ने सरस्वती के तट पर अश्वमेघ यज्ञ किये। उस समय कश्यप अध्वर्यु थे। परशुराम ने सम्पूर्ण पृथ्वी को दक्षिणा के रूप में कश्यप को दे दिया। क्षत्रियों को नष्ट होने से बचाने के लिए कश्यप ने परशुराम को अपनी सीमा से बाहर चले जाने को कहा। इस कथनानुसार परशुराम समुद्र द्वारा उत्पन्न शूर्पारक देश में जाकर रहने लगे। महाभारत में इसे कोंकण कहा गया है। इसी से मिलता जुलता बम्बई के पास एक सोपारा नामक ग्राम भी है।[49] तदनन्तर कश्यप ने पृथ्वी को ब्राह्मणों को सौंपकर वन में रहने के लिए चले गये।

45· वा0रा0 बाल0सर्ग 76, श्लोक 11-16

46· महा0 अनु0 142

एक बार कश्यप ने पुत्रोत्पत्ति की इच्छा से यज्ञ किया। इस यज्ञ में देव, ऋषि तथा गन्धर्व आदि सभी ने सहायता पहुँचाई। इसी प्रकार बालखिल्य भी सहायता में लगे हुए थे। उस समय इन्द्र ने बालखिल्यों को अपमानित किया। इस अपमान से बालखिल्यों ने उग्र क्रोध धारण कर लिया। इस क्रोध से बचने के लिये इन्द्र कश्यप के पास गये। उस समय बड़ी कुशलता पूर्वक कश्यप ने बालखिल्यों को प्रसन्न किया। अनेक कृपाप्रसाद से इनहें गरूण तथा अरूण नामक दो पुत्र प्राप्त हुए। नये इन्द्र के लिये किया गया तप बालिखल्यों ने इसे दिया तथा इन्द्र निर्भय हो गये।

कद्रू और विनता दक्ष प्रजापति की ये दो कन्याएँ शुभ लक्षणो से युक्त अत्यन्त नयनाभिराम थी। इनका विवाह प्रजापति कश्यप के साथ हुआ था। पितामह ब्रह्मा के समान तेजस्वी कश्यप ने एक दिन प्रसन्न होकर अपनी दोनों पत्नियों से वर मांगने को कहा। कद्रू ने एक सहस्त्र नागों को पुत्र के रूप में मांगा। विनता ने अत्यन्त शक्तिशाली एवं तेजस्वी केवल दो पुत्रों की याचना की। दोनों को इच्छित वर प्रदान कर कश्यप तप करने के लिये वन को चले गये। महर्षि कश्यप की अन्य दो पत्नियाँ दिति और अदिति भी थी। दिति से हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु आदि बड़े-बड़े दैत्य उत्पन्न हुए। इन्द्र आदि समस्त देवता अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुए। कश्यप से वरदान पाकर नागमाता कद्रू ने एक हजार वासुकि, तक्षक, शेष आदि सर्पो को उत्पन्न किया। कालान्तर में कद्रू और विनता दोनों बहनों में इस बात की शर्त लगी कि उच्चैश्रवा घोड़े की पूँछ काली है या सफेद। कद्रू ने काली तथा विनता ने सफेद बताया यद्यपि घोड़े के पूंछ सफेद थी। कद्रू ने अपने पुत्रों द्वारा छल-कपटपूर्वक घोड़े की पूँछ पर काले बालों को लिपटा दिया। फलस्वरूप विनता को कद्रू की दासी बनना पड़ा। जब गरूण उत्पन्न हुआ तो वह स्वर्ग से अमृत लाकर और सर्पो को सौंपकर अपनी माता विनता को दासीत्व से मुक्त करवा लिया। उसने कुशासन पर अमृत कलश रख दिया जब तक सर्प स्नान करके लौटे इन्द्र ने अमृत चुरा लिया था इन्द्र की चतुराई से सर्प अमृतपान से वंचित ही रहे। सर्पो ने कुशा को ही चाटा जिससे उनकी जीभ के दो भाग हो गये, अतः वे द्विजिह्व

कहलाने लगे।[50]

अंग नामक नरेश ने ब्राह्मणों को पृथ्वी दान करने का निश्चय किया। जब यह बात ब्रह्मा की पुत्री पृथ्वी को ज्ञात हुई तो उसने भूमित्व त्याग कर ब्रह्मलोक को जाने का निश्चय कर लिया। महर्षि कश्यप ने पृथ्वी को जाते हुए देखा तो शरीर त्यागकर योग का आश्रय लेकर भूमि के स्थूल विग्रह में प्रविष्ट हो गये। पृथ्वी पहले से भी अधिक समृद्धिशालीनी हो गयी तथा धर्म का अधिकाधिक प्रचार प्रसार होने लगे। महर्षि कश्यप तीस हजार दिव्य वर्ष तक पृथ्वी के रूप में स्थित रहे। तदनन्तर पृथ्वी ब्रह्मलोक से वापस आयी तथा कश्यप को प्रणाम कर उसकी पुत्री के रूप में रहने लगी। इसी कारण वह "काश्यपी" कहलाती है।[51]

भागवत की एक कथानुसार सान्ध्यवेला में जब कश्यप यज्ञ में क्षीर की आहुतियाँ दे रहे थे, उसी समय उनकी पत्नी दिति कामासक्त थी। कश्यप के समझाने पर भी कि यह भूतभ्रमण काल है दिति समागम का आग्रह करती रही। कश्यप ने पत्नी की बात मान ली। तदनन्तर काममुक्त होकर दिति ने लज्जा तथा खेद का अनुभव करती हुई पति के पास गई। कश्यप ने कहा असमय सम्भोग के कारण उसके पुत्र दैत्य होंगे जो भगवान् के हाथों पर जायेंगे। दिति को आशंका थी कि उसके पुत्र देवताओं के कष्ट का कारण बनेगें फलस्वरूप सौ वर्ष तक शिशुओं को गर्भ में ही रखा। तत्पश्चात सभी दिशाओं में अन्धकार फैल गया। इसके निराकरण के लिए देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की। सृष्टि में भयानक उत्पात् के उपरान्त दिति के गर्भ से हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष का जन्म हुआ। हिरण्याक्ष के हनन के समय दिति के स्तन से रुधिर प्रवाहित होने लगा।[52]

50· महा0 आदिपर्व0 अ0 16, 20, 23, श्लोक 1-3, दे0भा0 2/11/12 तथा द्रष्टव्य महा0 आदिपर्व अध्याय 28, 29 श्लोक 1-14, अ0 30 श्लोक 32-52 तक, अध्याय 32, 33, 34

51· महा0 दानधर्म पर्व, अध्याय 154 श्लोक 1-7

52· श्रीमदभा0 तृतीय स्कन्ध अ0 14-18

विश्वकर्मा के पुत्र विश्वरूप के पौत्र भौवन ने एक साथ ही दस अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। कश्यप ने यज्ञ प्रारम्भ करवाये बार-बार बाधओं से घिर जाने के कारण यज्ञ बीच में ही रोक देनी पड़ी। दुःखी होकर राजा और कश्यप वृहस्पति के बड़े भाई सम्वर्त तथा पुनः ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने गोमती के किनारे यज्ञ करने को कहा। वहाँ दसो यज्ञ कुशलतापूर्वक सफल हो गया। तदनन्तर राजा कश्यप को भूदान करना चाहता था पर पृथ्वी ने कहा कि उसका बार-बार दान करने से वह जल में डूब जाते हैं अतः राजा ने अन्नदान किया।[53]

एक बार परीक्षित को सर्प दंश कर लिया। मन्त्रवेत्ता कश्यप सर्पदंशन का निराकरण कर सकते थे किन्तु तक्षक ने राजा को बचाने जाते हुए मुनि को बीच ही में रोककर उनका परिचय पूछने लगा। परिचय जानकर तक्षक ने अपना भी परिचय देकर कश्यप को परीक्षा देने को कहा। तक्षक ने न्यग्रोध (बड़) के वृक्ष को डँस लिया। कश्यप ने जल छिड़ककर वृक्ष को पुनः हरा भरा कर दिया। तक्षक ने पर्याप्त धन देकर मुनि से लौट जाने को कहा। कश्यप भी योग बल से राजा की आयु समाप्त जानकर धन लेकर लौट गये।[54]

महाभारत के अनुसार वेद विधिवत यज्ञ करके सूर्य ने कश्यप को दक्षिणा के रूप में दक्षिण दिशा का दान कर दिया था, इसी कारण यह दक्षिण दिशा कहलाई।[55]

कश्यप के पुत्रों में विप्रचित्त नामक पुत्र अत्यन्त वीर था। उसके पुत्र दंभा ने तप बल से विष्णु को प्रसन्न करके एक वीर पुत्र प्राप्त करने का वर मांगा। उसकी पत्नी के गर्भ से जिस पुत्र का जन्म हुआ वह पूर्व जन्म में "सुदामा" नामक कृष्ण का भक्त था।[56]

---

53. ब्र0पु0 83
54. दे0भा0 2/10-12
55. महा0 उद्योग0 109/1, 7, 13
56. शिव0पु0 5/25-38

मारकण्डेय पुराण की कथानुसार - ब्रह्मा के मानस पुत्र मारीच के पुत्र कश्यप थे। कश्यप का विवाह दक्ष की तेरह कन्याओं से हुआ था। प्रत्येक कन्या की सन्तति विशिष्ट वर्ग की हुई। उदाहरण के लिये अदिति से देवता तथा दिति से दैत्य उत्पन्न हुए। इसी प्रकार दनु से दानव, विनता से गरूण और अरूण, कद्रू से नागमुनि तथा गन्धर्व, रवसा से यक्ष और राक्षस, क्रोध से कुल्मायें अरिष्टा से अप्सरायें इरा से ऐरावत और हाथी, श्येनी से श्येन तथा भास, शुक आदि पक्षी उत्पन्न हुए। दैत्य दानव और राक्षस निमाता पुत्र देवताओं से ईर्ष्या का अनुभव करते थे। इसलिए उन लोगों परस्पर संघर्ष होता रहता था। इस प्रकार पारस्परिक युद में एक बार देवता पराजित हो गये। दुखी होकर अदिति ने सूर्य की प्रार्थना की। सूर्य प्रसन्न होकर अदिति के गर्भ से जन्म लेकर असुरों को पराजित कर देवताओं को पुनः त्रैलोक्य का राज्य देने का आश्वासन दिया। अदिति गर्भ काल में भी पूजा पाठ व्रत में लगी रहती थी। एक बार कश्यप ने क्रुद होकर कहा "व्रत रहकर तुम गर्भस्थ शिशु को मार डालोगी इस कारण सूर्य मार्तण्ड कहलाया। कालान्तर मे सूर्य अदिति के गर्भ से जन्म लिया। इसलिये आदित्य कहलाया। सूर्य की क्रूर दृष्टि से असुर भस्म हो गये।[57]

ब्र0 पु0 के अनुसार दक्ष की साठ कन्याओं में से अदिति ने तीनों भुवनों के स्वामी देवों को जन्म दिया। उसकी बहन दिति ने दानवों को जन्म दिया। दानवों द्वारा त्रस्त अदिति ने सूर्य की प्रार्थना की और वर रूप में त्रस्त बेटों के एक अंश से भाई रूप में जन्म लेने को कही जिससे दैत्यों का नाश हो सके। गर्भावस्था में भी उपवासादि व्रत का ध्यान रखती थी। उसकी कठोर दिनचर्या को देखकर कश्यप ने कहा - "क्यों अपना गर्भस्थ अण्डा मार रही हो ? अदिति ने कहा - यह मरा नही है यह तो शत्रुघाती होगा। जन्म के उपरान्त बालक का नाम मार्तण्ड पड़ गया।[58]

57· मा0पु0 99/102

58· ब्र0 पु0 30-32

काश्यप §कश्यपपुत्र§ वासिष्ठ §वसिष्ठ पुत्र§ प्राणक §प्राणपुत्र§ च्यवन तथा त्रिवर्चा §दोनों अंगिरा के पुत्र है§ ये पाँचों अग्नियाँ है। इन पाँचों ने पुत्र की प्राप्ति के लिए चिरकाल तक तपस्या की। फलस्वरूपव उन्हें एक पुत्र प्राप्त हुआ। जो पाञ्चजन्य कहलाया।[59]

एक बार विष्णु ने इन्द्र का पक्ष लेकर कश्यप और दिति के दोनो पुत्रों §हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु§ को मार डाला तो कश्यप को प्रसन्न कर दिति ने वर माँगा कि उसे इन्द्रहन्ता पुत्र प्राप्त हो। कश्यप ने इसके लिए एक वर्ष तक व्रत धारण करने को कहा और यह भी कहा कि यदि व्रत का ठीक से निर्वाह हुआ तो इन्द्रद्वेषी अथवा इन्द्रप्रिय की प्राप्ति होगी। दिति निष्ठापूर्वक व्रत का पालन करती रही। एक रात दिति बिना हाथ मुंह धोए सो गयी। अवसर पाकर इन्द्र ने दिति के गर्भस्थ शिशु के उनचास टुकड़े कर डाले। उन टुकड़ो ने इन्द्र को उसके भाई होने का आश्वासन दिया तो इन्द्र ने उन्हें जीवित छोड़ दिया। जागने पर दिति से इन्द्र अपने कृत्यों के लिए क्षमायाचना की। वे बालकों के टुकड़े बाद में मरुद्गणों के नाम से प्रसिद्ध हुए।[60]

इसी कथा को ब्र0 पु0 में कहा गया है - दिति ने अपने दैत्य पुत्रों के मारे जाने पर कश्यप को प्रसन्न कर यह बर मांगा कि उसके गर्भ से इन्द्रघातक पुत्र का जन्म हो। कश्यप ने इन्द्रहन्ता पुत्रोत्पत्ति के निमित्त अपने तेज को उसके गर्भ में स्थापित किया तथा स्वयं तपस्या के लिए चले गये।[61]

यहीं एक अन्य स्थल पर दिति ने अपने पुत्रों का विनाश और अपनी सौत अदिति के पुत्रों का विकास देखा तो पति कश्यप से एक तेजस्वी पुत्र की

59· म0भा0 वनपर्व अ0 220 श्लोक 1-5 तक

60· श्रीमद्भा0 षष्ट स्कन्ध अ0 18 तथा वि0पु0 1/21, शि0पु0 3/31

61· ब्र0पु0 3/109-122

कामना की। कश्यप उसकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर उसे वैसे ही पुत्र का गर्भ प्रदान किया। यह बात जब इन्द्र को ज्ञात हुई तो उसने उसके निवारण का उपाय पूछा मय ने इन्द्र को माया विद्या दिया और कहा कि अवसर पाकर दिति के गर्भ में प्रवेश करके गर्भस्थ शिशु को वज्र से काट डालो। इन्द्र ने दिति के गर्भ में प्रवेश करके बच्चे पर प्रहार करना चाहा तो वह बोला - मुझे निकलने दो इस प्रकार प्रहार करना पाप है। इन्द्र नही माना और वज्र से उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाला। शिशु मरा नही अपितु उनचास बच्चों का रूप धारण कर रोने लगा। तब इन्द्र ने कहा "मारुत" {रो मत} तभी से वे मरुत कहलाये। गर्भस्थ होते हुए ही शिशुओ ने अगस्त्य मुनि से शिकायत की, मुनि ने इन्द्र को रणभूमि में सदैव पीठ दिखाने का शाप दिया। कश्यप ने इन्द्र को गर्भ से बाहर निकलकर अपने कुकृत्य का कारण बताने के लिए कहा। उसे धिक्कारा पुनः ब्रह्मा ने विचार विमर्श करके कश्यप ने सभी को गौतमी स्नान तथा शिवाराधना से पापमुक्त होने को कहा। शिव ने दिति से कहा कि मरुत नामक उसके उनचास पुत्र होंगे। वे सभी यशस्वी पुत्र इन्द्र से पूर्व यज्ञ भाग प्राप्त करेंगे। गौतमी स्नान का वह स्थल पुत्रतीर्थ कहलाया तथा शिव ने वहाँ के स्नान को पुत्रदायी स्वीकार किया।[62] आकाशस्वरूप ब्रह्म से अविनाशी ब्रह्मा का जन्म हुआ। ब्रह्मा से मारीचि, मारीचि से कश्यप, कश्यप से विवस्वान् मनु का जन्म हुआ। मनु सबसे पहले प्रजापति थे।[63]

दिति ने देवताओं द्वारा अवध्य पुत्र प्रप्ति की कामना से कश्यप की प्रार्थना की कश्यप ने कहा कि शिव पर मेरा वश नही चलता अन्य कोई देवता उसे नही मार पायेगा। ऐसा कहकर कश्यप ने उँगली में दिति के उदर का स्पर्श किया जिससे अन्धक का जन्म हुआ। अन्धा न होने पर भी अंधे की भांति चलता था इसलिये अंधक कहलाया। नारद के उपाय से वह मन्दार वन में गया जहाँ शिव ने उसे मार डाला।[64]

---

62. ब्र0पु0 3/134
63. वा0रा0 अयोध्याकाण्ड, सर्ग 110
64. हरि0 पु0 विष्णु पर्व, 86-87

यही कथा शि0पु0 में भी वर्णित है। यहां पर कश्यप ने प्रसन्न होकर दिति की दस हजार सिर दो हजार आँखे हाथो और पैरों वाला पुत्र प्रदान किया। जो अन्धों की तरह झूमता हुआ चलता था इसलिये अन्धक कहलाया। कश्यप ने दिति से कहा कि अन्धक को समझा दे कि वह शिव को अप्रसन्न न करे। शिव से वर प्राप्त कर अन्धक शिवेतर देवताओं द्वारा अवध्य हो गया। उससे सभी देवता त्रस्त हो गये। शिव ने स्वयं त्रिशूल से बन्धक को मार डाले।[65]

हरिवंश पुराण में बताया गया है कि - पारिजात वृक्ष की सृष्टि कश्यप ने अदिति के पुण्यकर्मो से प्रसन्न होकर की थी। इन्द्र ने इसे शची के उद्यान में लगाने के लिये शिव से प्रार्थना की थी। कृष्ण ने मालिनी सत्यभामा को पारिजात वृक्ष देने का वचन दिया था। कृष्ण ने इसके लिये इन्द्र पर चढ़ाई कर दी थी। ब्रह्मा ने कश्यप तथा अदिति को इन दोनों के बीच समझौता करवाने के लिये भेजा। अदिति ने कृष्ण से पारिजात वृक्ष द्वारका ले जाने को कही।[66]

मत्स्यमहापुराण में कश्यपवंशज ऋषियों के नाम, गोत्र, वंश प्रवर वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया गया है -

मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपस्य तथा कुले।
गोत्रकारान् ऋषीन् वक्ष्ये तेषां नामानि मे श्रणु ॥1॥
आश्रायणि र्ऋसिगणां मेषकीरिटकायनाः
उदग्रजामाठराश्च भोजा विनयलक्षणाः ॥2॥
शालाहलेयाः कौरिष्टाः कन्यकाश्चासुरायणाः
मन्दाकिन्यां वै मृगयाः श्रुतया भोजयापना ॥3॥
देवयाना गोमयानहयधश्चछायां भयाश्च ये
कात्यायनाः शाक्याणाः वहियोगगदायनाः ॥4॥

---

65. शि0पु0 पूर्वार्द्ध 5/40-48
66. हरि0 पु0 विष्णु पर्व 65-76

भवनन्दि महाचक्रि दाक्षपायन एव च
गोधयानाः कातिथ्यो हस्तिदानास्तथैव ॥5॥
वात्स्यायनानि कृतजा हयाश्वलायनिनस्तथा
प्रागायणः पौलमो लिराश्ववातायनस्तथा ॥6॥
कौवेरकाश्च श्याकारा अग्निशर्मायणश्च ये
मेषपाः कैकरसपास्तथा चैव तु वभ्रवः ॥7॥
प्राचेयो ज्ञानसंज्ञेया आग्ना प्रासेव्य एव च
श्यामोदरा वैवशपास्तथा चैवोद्वलायनाः ॥8॥
काष्ठाहारिणमारीचाआजिहायनहास्तिकाः
वैकर्णेयाः काश्यपेयाः सासिसाहारिवायनाः ॥9॥
मान्तगिनश्च भृगवस्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिता
वत्सरः कश्यपश्चैव निध्रवश्चमहातपाः ॥10॥
परस्परमवैाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः
अतः पर प्रवक्ष्यामि द्वयामुष्यायणगोजान् ॥11॥
अनसूयो नाकुरयः स्नातपो राजवतपः
शैशिरोदवहिश्चैव सैरन्ध्रीरोपसेवकिः ॥12॥
मा मुनिः कादुपिड·गाक्षिः सजातम्विस्थैव च
दिवावष्टाश्व इत्येते भक्त्या ज्ञेयाश्च काश्यपाः ॥13॥
त्र्यार्षेयाश्चा तथैवैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः
वत्सरः काश्यपश्चैव वसिष्ठश्चमहातपाः ॥14॥
परम्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः
संयातिश्च नभश्चोभौ पिप्पल्योऽथ जलन्धरः ॥15॥
भुजातपुरः पूर्यञ्चकर्दमो गर्द्दभीमुखः
हिरण्यबाहुकैरा तावुभौ काश्यपगोभिलौ ॥16॥
कुलहो वृषकण्डश्च मृगकेतुस्तथोत्तरः
निदाघमसृणौ भत्स्या महान्तः केवलाश्च ये ॥17॥
शाण्डिल्यो दानवश्चैव तथा वदेवजातयः
पैत्पलादित्स प्रवरा ऋषयः परिकीर्तिताः ॥18॥

त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः
असितो देवलश्चैव कश्यपश्च महातपाः
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥19॥
ऋषिप्रधानस्य च कश्यपस्य दाक्षायणीभ्यः सकलं प्रसूतम्
जगत्समग्रं मनुसिंह पुण्यं किं ते प्रवक्ष्याम्यहमन्तेरण ॥20॥

महामहर्षि मरीचि के पुत्र कश्यप हुए थे तथा कश्यप कुल में जो गोत्रकार ऋषिगण हुए थे उनकी शुभ नामावली ऊपर वर्णित है।

मत्स्यपुराणनुसार कश्यप ऋषि की स्त्रियों से उत्पन्न होने वाले पुत्र पौत्रादि का वर्णन निम्न है - महर्षि कश्यप की अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू, विश्वा, और मुनि नामक तेरह स्त्रियाँ थी। उनके पुत्रों का वर्णन निम्न है चाक्षुष मुनि के समय में जो देवगण थे वे वैवस्वत मनु के समय में बारह आदित्यों के नाम से विख्यात हैं। इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, विवस्वान्, वरूण, यम, सविता, पूषा, अंशुमान और विष्णु नामक सहस्त्र किरणों वाले ये बारह आदित्य कहे जाते हैं, इन्हें अदिति ने मरीचिनन्दन कश्यप के संयोग से उत्पन्न किया था। महर्षि कृशाश्व के पुत्र देवप्रहरण के नाम से विख्यात है, जो प्रत्येक मन्वन्तर एवं कल्पों में उत्पन्न और विलीन होते हैं। कश्यप की स्त्री दिति ने उनके संयोग से हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्रो को उत्पन्न किया। हिरण्यकशिपु के उसी के समान तेजस्वी एवं पराक्रमी प्रहलाद अनुहलाद, संहलाद, तथा हलाद नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। जिनमे से प्रहलाद के आयुष्मान, शिवि, वाष्कल और विरोचन नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें से चतुर्थ पुत्र विरोचन से महापराक्रमी बलि नामक एक पुत्र उत्पन हुआ बलि के सौ पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें से बाण सबसे ज्येष्ठ था। उसके अतिरिक्त धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्र, चन्द्रांशुतायन, निकुम्भनाभ, गुर्वक्ष, कुक्षिभीम, विभीषण तथा इसी प्रकार के अन्यान्य पराक्रमी पुत्रों की भी उत्पत्ति हुई, जो सब ही श्रेष्ठ गुणों वाले थे। किन्तु इन सबमें ज्येष्ठ तथा सहस्त्रबाहु बाण सब प्रकार की अस्त्र शस्त्र विद्याओ में निपुण था, उसकी घोर तपस्या से संतुष्ट होकर महादेव सर्वदा उसी नगर में निवास करते थे, जहाँ वह रहता

था। बाण ने अपनी उग्र तपस्या के प्रभाव से महाकाल पद की प्राप्ति कर ली थी।

विनता और कद्रू का सापत्न्यद्वेष तो प्रसिद्ध ही है। जिस कारण से विनता को कद्रू की दासी बनना पड़ा। महाभारत (20-34 अध्याय) तथा (दे0भाग0 2/11/12) में यह कथा सविस्तार प्रतिपादित की गई है। कश्यप ने गोत्रकार पुत्र के लिए तप किया। तप के प्रभाव से वत्सर और असित प्राप्त हुए। वे दोनों गोत्रकार हुए। जैसा कि लिङ्गपुराण में वर्णित है[67]

कश्यपो गोत्रकामस्तु चचार स पुनस्तपः।
पुत्रो गोत्रकरो मध्यं भवतदिति चिन्तयन्।
तस्यैव ध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मनः
ब्रह्मयोगात्सुतेः पश्चात्प्रादुर्भूतो महौजहसो।
वत्सरश्चासितश्चैव तादृभौ ब्रह्मवादिनौ
वत्सयन्नेधुवोजज्ञे रैभ्यश्च समुहायशाः।
रैभ्यस्य रैभ्या विज्ञेया वैधुवस्य वदामि वः।
यवनस्य तु कन्यायां सुमेधाः समपद्यत।
नैधुवस्य तु सा पत्नी माता वै कुण्डपायिनाम्।
असितस्यैकपर्याणां ब्रह्मिष्ठः समपद्यत।
शाण्डिल्यानां नेधुवा रैभ्यास्त्रयः पक्षास्तु काश्यपाः

वायुपुराणानुसार कश्यप को ऋषित्व की प्राप्ति ज्ञान के बल से हुई थी यथा -

"काव्यो वृहस्पतिश्चैव कश्यपश्योशनास्तया।
इत्येते ऋषयः प्रोक्ता ज्ञानतो ऋषितां गताः।।

तथा अन्यत्र मत्स्यपुराण 145/91-94 ब्रह्माण्ड पुराण 2/32/98-100 भी द्रष्टव्य है।

67· लिङ्·ग0 1/63/49-54
68· वायु0 59/90-91

कश्यपवंशीय लोग ब्राह्मण, यज्ञकर्ता, गौरवर्णयुक्त तथा गुरुभक्ति परायण आदि गुणों से युक्त थे। जैसा कि स्कन्दपुराण[69] में वर्णित है -

कश्यपा ब्राह्मण राजप्रवर त्रयसंयुक्ताः §46§
काश्यपाश्यापवत्सारो नैधृवश्च तृतीयकः।
वेदसा गौरवर्णाश्च नैष्ठिका यज्ञकारकाः §47§
प्रिय वासा महादक्षा गुरुभक्ति रताः सदा
प्रतिष्ठायनवन्तश्च सर्वभूतहितेरताः।।§48§
मजन्ते च महायज्ञा काम्यपेमादिजातय ।। §49§

विश्वचक्रदान में कश्यप का स्थान है।[70] कश्यप "अतिराजन" पद को सुशोभित किये।[71] ब्रह्माण्ड में वर्णित है -

कश्यपस्याश्वमेधोऽभूत्पुण्ये वैपुष्करे तदा।
ऋषिभिर्देवताभिश्च गन्धर्वैस्यशोभितः।।

कश्यप ब्रह्मा के अंश थे।[72]

राजस्या ब्राह्मणोऽंशेन मारीचः कश्यपोऽभवत् अपि च
पुरुषः कश्यपस्त्वासीददितिस्त्प्रित्या तथा
कश्यपो ब्रह्मणेऽशश्च पृथिव्या अदितिस्तथा।।[73]

कश्यप ने शिव से भस्मस्नावधि ग्रहण की[74]

भस्मस्नानं च नग्नत्वं वामत्वं प्रतिलोमता
सैव्यासैव्यत्वं तु विभो एतदिच्छाम वेदितुम।।

---

69. स्कन्द 3/2/9/46-49
70. मत्स्य0 285/3
71. ब्रह्माण्ड0 3/5/7
72. ब्रह्माण्ड0 3/3/105
73. ब्रह्माण्ड 36/71/238
74. ब्रह्माण्ड0 2/27/105

तीर्थनिर्माता कश्यप

कश्यप ऋषि ने अर्नुदाचल में भगवान् शंकर की कृपा से गंगा को ले आये थे। वही तीर्थ कश्यप तीर्थ के नाम से अभिहित किया जाता है जैसा कि पद्मपुराण[75] में कहा गया है -

यथा काशी तथा येयं नगरी ऋषिनिर्मिता।
कश्ययेन यवश्वाच तप्तं बहुतरं तपः।
गंगा वै तपसा येन आनीते राजरोद्भया।
नः गंगा काश्पीदेषि महापातक नाशिनी।।

पृथ्वी प्रतिग्रहण

राम तीर्थ में परशुराम ने कश्यप को सम्पूर्ण पृथ्वी का दान कर दिया।[76] महाभारत में उल्लेख आया है -

यत्र रामो महाभागो भागर्वः सुभहातपाः
असकृतप्तपृथ्वीं जित्वा हतक्षत्रिय पुड्·गवाम।
उपाध्याय पुरस्कृत्य कश्यपं मुनिसत्वमम्।
अमजद् वाजयेयेन सोऽश्वमेधशतेन च
प्रददौ दक्षिणां चैव पृथिवी वै ससागराम्।।

महाभारत में एक कथा आई है कि एक बार ब्रह्मा ने वैतरिणी नदी के तट पर यज्ञ का आयोजन किया। उस यज्ञ में वह वनपर्व सहित सम्पूर्ण पृथ्वी को कश्यप को दक्षिणा के रूपमें समर्पित कर दिये। एक व्यक्ति को दे दिये जाने पर पृथ्वी बहुत दुःखी हुई। अतः वह रसातल को चली गई। कश्यप ने उसे प्रसन्न किया ओर तदनन्तर पृथ्वी को जल से बाहर निकाला।[77]

काश्यप के द्वारा पृथ्वी संरक्षण सम्बन्धी कथा अनुशासन पर्व में विस्तार से कही गई है। अंग नाम के राजा ने पृथ्वी का ब्राह्मणों को दान कर दी थी।

75· पद्म0 3/6/164/4-6
76· महा0 शल्य0 49/7-9
77· म॰ा0, वनपर्व 114/18/286

यह जानकर पृथ्वी शोकाकुल हो गयी। इसलिये भूमि को छोड़कर ब्रह्मलोक को प्रस्थान कर गयी। कश्यप ने बीस हजार वर्ष तक पृथ्वी को लाने मे प्रयत्नशील रहे। पृथ्वी में प्रवेशकर उसके विग्रह को स्थिर किये। तदनन्तर ब्रह्मलोक से आकर पृथ्वी उनकी पुत्री होकर रहने लगी।[78]

कश्यप द्वारा शपथ ग्रहण

वृषादर्भिण के राज्य में कमल नामाहरण हो जाने पर कश्यप ऋषि ने किया था। ऐसा महाभारत में कहा गया है।[79]

ब्रह्मसरोवर में अगस्त्य का भी कमलहरण हो जाने पर जैसः शपथ अगस्त्य ने लिया था उसी प्रकार का शपथ कश्यप के द्वारा भी लिया गया। यथा महाभारत में ही[80]

सर्वत्र सर्वं पणतु न्यासे लोभं करोतु च

कूटनाक्षि त्वमभ्येतु यस्ते हरति ह पुष्करम्।

कश्यप उन प्रमुख महर्षियो में से है जो स्कन्द के अभिषेकावसर पर उपस्थित[81] थे। द्रोण शस्त्रग्रहण के लिये जिन ऋषियो ने प्रेरित किया था उनमें कश्यप भी मुख्य थे।[82]

निवास

कश्यप ऋषि का निवास उत्तर दिशा में था इसकी पुष्टि महाभारत के अधोलिखित श्लोक द्वारा होती है -[83]

आत्रेयश्च वसिष्ठश्च कश्यपश्च महाऋषि

जमदग्निश्च सप्तेते उदीषी माश्रिता दिशम्।

यदुकुल संहारार्थ कश्यप ने भी शाप दिया था ऐसा भागवत में कहा गया है[84] महापातक नाशक विश्वचक्र महादान में कश्यप का पाँचवा स्थान है ऐसा मत्स्यपुराण में कहा गया है[85]

79· महा0 अनु0 93/116-117

80· महा0 अनु0 94/18

81· महा0, शल्य 45/22-23 शल्य 45/10 भी द्रष्टव्य है।

82· महा0द्रोण0 10/32-33 83· महा0शांति0 208/32 33

उत्तराश्रित कश्यप कुबेर का गुरू था ऐसा महाभारत में कहा गया है।[86] तिलदान के माहात्म्य के सम्बन्ध में कश्यप ने तिलों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए कहा है।[87]

महर्षेः कश्यपस्येते गोत्रेभ्यः प्रसृतास्तिला।
ततो दिव्यं गता भावं प्रदानेषु तिलाः प्रथो।।

महाभारत में ही अप्रतिग्रहार्थ उपदेश में कहा गया है[88]

यतप्तथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः
सर्व तन्नालनेकस्य तस्माद् विद्वांछनं चरेत्।।

अतः उपर्युक्त विवेचनोपरान्त निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ब्रह्मा के मानसपुत्र मरीचि के पुत्र कश्यप थे। विद्वान लोग इनकी प्रसिद्धि के अनेक कारणों मे से एक कारण इनके द्वारा संसार में की गई विविध मनुष्यों एवं प्राणियों की सृष्टि स्वीकार करते हैं। पुराणों में यह प्रजापति के रूप में ही विख्यात है। दिति-अदिति इनकी पत्नियाँ थी उनसे विनाशशील एवं सृजनशील संताने उत्पन्न हुई।[89] यद्यपि कश्यप कुल में भार्गवाङ्गिरा के कुल की भाँति सूक्तद्रष्टा नहीं थे किन्तु कश्यप द्वारा दृष्ट सूक्त ऋग्वेद में उपलब्ध होते हैं।[90] ऋग्वेद में §9/114/2§ कश्यप का नामोल्लेख हुआ है। यहाँ ऋषि उसके सोमयाग के अनुष्ठान में सम्मिलित होने का वर्णन प्राप्त होता है। अन्य संहिताओं में भी कश्यप का नामोल्लेख प्राप्त होता है।[91] ब्राह्मण के अनुसार राजा विश्वकर्मन् भौवन का अनुलेप किया था।[92] ऐतरेय ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि कश्यप जनमेजय का पुरोहित था। कश्यप की गणना प्रजापतियों में की गई है।

86· महा0अनु0 150/38-39
87· वही, 66/10
88· वही, 93/40
89· वैदिक एटीमोलाजीज पृ0 119
90· ऋग्वेद 1/99-8, 29/9-64, 67/4-6, 91/92, 173, 114/10/137
91· अथर्व0 1/14/4, 2/33/4, 20/7, 29/3, 37/1, मैत्रा0 4/2/9 वाज0सं0 3/62
92· द्र0शत0 13/7/1/15, ऐ0ब्रा0 8/21

वायु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण लिङ्ग् तथा कूर्म इन चार पुराणों में कश्यप का वर्णन सविस्तार किया गया है। चारों में ही कश्यप का वंशवर्णन समान रूप से किया गया है। मत्स्यपुराण §199अ0§ में कश्यप के गोत्र का वर्णन हुआ है। वंशवर्णनानुसार कश्यप के वत्सार तथा असित नामक दो पुत्र थे। वत्सार के निधुव तथारैभय दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। निधुव की पत्नी सुमेधा च्यवन की पुत्री थी। इन निधुव के कुण्ड पायिन नाम के पूर्वज थे। और रैभ्य के रैभ्य पूर्वज थे। असित एक वर्ण को उद्वाहित किया। उनके पुत्र देवल थे। अवत्सार प्रस्रवण का पुत्र था।[93] पुराणों में वर्णन के आधार पर कश्यप, वत्सार, नैधुव, रैभ्य, वसित तथा देवल में छः काश्यप ब्रह्मवादिन थे।[94]

सर्वप्रथम जिस कश्यप का उल्लेख प्राप्त होता है वह जामदग्न्य राम का समकालीक था। राम के यज्ञ में कश्यप उपाध्याय थे।

महर्षि काश्यपं द्रष्टुमयं काण्वं तपोधनम[95]। शकुन्तला दुष्यन्त की पत्नी तथा भरत की माता थी।[96] कण्व ही भरत के यज्ञ में प्रधन पुरोहित थे।[97]

याजयामासा ने कण्वो विधिवद् भुरिदक्षिणाम्
श्रीमान् गोपिततं नाम वाजिमेधमवाय सः
यस्मिन् सहस्रं पद्यानां कण्वाय भरतो ददौ।।

एक अन्य शाण्डिल्य नाम के आदि पुरुष थे।[98] इनसे कश्यप के कालविषयक सूचना नहीं उपलब्ध होती है। यद्यपि वह अयोध्या के राम, दिलीप §द्वितीय§ समकालीन थे। ऐसा वर्णन मिलता है जैसा कि पुराणों में कहा गया है कि शाण्डिल्य ही उसके यज्ञ में याजक थे।[99] इसके लिए वायुपुराण 73/14-42 भी द्रष्टव्य है। शाण्डिल्योदतः प्राग्भूतोऽपि स्यात्। महाभारत में उल्लिखित है कि भूमन्युः कस्मोचित् शाण्डिल्यादारे[100] दत्तवान। इस प्रकार शाण्डिल्य के प्रभाव से असित से देवल उत्पन्न हुए। ऐसा पार्जिटर महोदय का मत है।[101]

93· ऐत0ब्रा0 2/3/29

94· ब्रह्माण्ड0 2/32/112-113, मत्स्य0 145/106-107, वायु0 59/103 अथ चैतेषां स्थितिः सप्तर्षिषु वर्णितम्-वायु0 64/28, ब्रह्माण्ड 2/38/29

95· आदि0 71/31 96· आदि 1/73,74 14/3, भागवत0 1/20/8 22 शत0 13/5/4/13

एक अन्य विभाण्डक नामक कश्यप कौशिक के तट पर आश्रम बनाकर रहते थे। उनके पुत्र ऋष्यशृङ्ग का पाणिग्रहण संस्कार राजा लोमपाद की पुत्री शान्ता के साथ हुआ था। जैसा कि रामायण में भी कहा गया है।

"कश्यपस्य च पुत्रोऽस्ति विभाण्डक इति कुलः"

अपि च[103]

ऋष्यशृङ्ग इति ख्यातस्यस्य पुत्रो भविष्यति
स बने नित्यसंबद्धो मुनिर्वनवरः सदा।।

वह भी उनके राज्य में निवास करते थे। लोमपाद् अंग देश का अधिपति था।[104] महाराज दशरथ ने ऋष्यशृङ्ग को पुत्रेष्टि याग में आमन्त्रित किया था।[105] पौराणिक मतानुसार दक्ष की तेरह कन्याएँ कश्यप की पत्नियाँ थी इनसे देवासुर आदि उत्पन्न हुए।

कश्यप को वत्सार तथा असित नामक दो पुत्र थे। वत्सार को निध्रुव तथा रेभ नामक दो पुत्र हुए। निध्रुव को सुमेधा से अनेक पुत्र हुए। रेभ से रैभ्य उत्पन्न हुए। इसी प्रकार की वंशावली अन्यत्र भी प्राप्त है।[106]

पौराणिक साहित्य में कश्यप ऋषि का ही प्रतिरूप माना गया है एवं उसकी अदिति एवं दिति नामक जो दो पत्नियाँ दी गयी है वे क्रमशः दिन और रात का प्रतिनिधित्व करती है। इन दोनों का पुत्र अग्नि है जो पृथ्वी में सूर्य का प्रतिनिधित्व करता है।

97· महा0 आदि0 74/130 98· मत्स्य0 199/18
99· ब्रह्माण्ड0 3/10/91 तथा वायु0 73/14-42
100· महा0 111/137
101· पार्जिटर पृ0 234
102· वा0रा0, 1/9/3 103· वा0रा0 1/9/4
103· वही, 1/9/10
105· वही, 1/11/19
106· ब्रह्माण्ड0 3/8/29-33, वायु0 70/24-25, लिङ्ग 1/63 कूर्म0 1/19

अतः ऋग्वेद में अधिकांशतः कश्यप, मारीच, वसिष्ठ, अगस्त्य तथा विश्वामित्र ये चारो ऋषि परस्पर सम्बन्धित है। कश्यप को पूर्णिमा नामक सगा भाई भी था तथं छः सापत्न बन्धु थे इसकी सापत्न माता कानाम ऊर्णा था। अग्निष्वात्त नामक पितर भी इनके ही भाई थे। इसे सुरूपा नामक एक बहन भी थी, जो वैवस्वत मन्वन्तर के अंगिरा नामक ब्रह्मा के मानसपुत्र को दी थी।[107]

अभिज्ञानशकुन्तलम्

अभिज्ञानशाकुन्तल के सप्तम अंक में मारीच ऋषि का चित्रण हुआ है। उनका आश्रम हेमकूट नामक किम्पुरूष पर्वत पर है। वे स्वायंभुव मरीचि के पुत्र है तथा देवों और राक्षसों सबके पिता है।[108] उनके आश्रम में सभी उग्र तपस्या में लीन दिखायी पड़ते है।[109] उनका आश्रम स्वर्ग से भी अधिक सुख शान्तिप्रद है।[110] उनके आश्रम में वे सभी अलौकिक पदार्थ विद्यमान है जिनकी प्राप्ति के लिए लोग तपस्या करते है। फिर भी मारीचाश्रम के तपस्वी उनसे सर्वथा अनासक्त है।[111] मारीच इन्द्रादि देवताओं के पिता है, भगवान विष्णु भी वामनावतार में उनसे ही जन्म ग्रहण करते हैं -

> प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य मुनयो यत्तेजसः कारणं
> भर्तारं भुवनत्रयस्य सुषुवे यद्यज्ञभागेश्वरम्।
> यस्मिन्तात्मभवः परोऽपि पुरूषश्चक्रे भवायास्पदं
> द्वन्द्वं दक्षमरीचिसंभवमिदं तत्स्त्रष्टुरेकान्तरम्[112]

वे पूर्णकाम है तथापि लोकहित की कामना से तपोनिप्त हैं। मारीच वीतराग ऋषि हैं। मारीच का नाम कश्यप भी है। मारीच ऋषि के आश्रम में ही शकुन्तला और पुत्र भरत से राजा का मिलन होता है। मारीच ऋषि उन दोनों को आशीर्वाद देते है।[113] महर्षि मारीच ने ही उसके पुत्र के सभी जातकर्मादि संस्कार सम्पन्न किए गये और उसे चक्रवर्ती होने का आशीर्वाद दिया।[114]

107· वायु0 65-98
108· अभि0शा0 7/9
109· वही, 7/11
110· वही, 405/25
11· वही, 7/12
112·अभि0शा0 7/27
113· अभि0शा0 7/26
114· वही, 7/33

मारीच को सबका पिता माना गया है। पिता अपनी सन्तान के लिए सदैव मंगल कामना ही करता है। अपने अमर्यादित आचरण के लिए नायक-नायिका को शाप द्वारा दण्ड दिया गया। ये व्यवस्था उनकी वासना को प्रेम में परिवर्तित करने के लिए अथवा सुधरात्मक थी। जिस प्रकार नायक-नायिका का मिलन तपोवन की पवित्र भूमि में हुआ ऋषि द्वारा शाप के रूप में दण्ड विधान किया गया उसी प्रकार उनकी शाप की निवृत्ति ही तपः यूत भूमि में होनी उचित है। सन्तान का कल्याण माता-पिता से अधिक कौन चाह सकता है ? इसलिए मारीच आश्रम से अच्छा सन्तान और उनसे अच्छा दूसरा पात्र नहीं हो सकता। इसीलिए मारीचाश्रम में भरत शकुन्तला तथा दुष्यन्त तीनों के मिलन का एक अद्‌भुत संगम बना दिया गया है।[115]

115· दिष्टया शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिदं भवान्

श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितय तत् समागतम्।। वही, 7/29

वसिष्ठ

वसिष्ठ वैदिक परम्परा के प्रख्यात ऋषि है। ये सातवें मण्डल के समस्त 104 सूक्तों के द्रष्टा हैं।[1] अन्य मण्डलों की अपेक्षा इस मण्डल में अधिक बार वसिष्ठ और वासिष्ठों का प्रयोग हुआ है। समस्त स्थलों पर प्रयुक्त वसिष्ठ से एक ही वसिष्ठ का तात्पर्य नहीं लगाया जा सकता हैं क्योंकि वसिष्ठ द्वारा दृष्ट मन्त्रों में वहुवचनान्त वसिष्ठ का प्रयोग हुआ है। वसिष्ठ कुल में निम्नलिखित मन्त्रद्रष्टा ऋषियों का उल्लेख हुआ है - वसिष्ठ, इन्द्रप्रमति वासिष्ठ, उपमन्यु वासिष्ठ, कर्णश्रुत वासिष्ठ, गौरिवीति शाक्त्य, चित्रमंहस् वासिष्ठ, द्युम्नीक वासिष्ठ, पराशर-शाक्त्यप्रथ वासिष्ठ, बन्धु (विप्रबन्धु, श्रुतबन्धु, सुबधु आदि) गोपायन (मन्युवासिष्ठ, मृलीक वासिष्ठ, वसुक वासिष्ठ वृषगण वासिष्ठ, शक्ति वासिष्ठ) वसिष्ठ के पुत्र शक्ति की रचना बत्तीसवां और कुमार ऋषि के 101-102 में सूक्त सन्दिग्ध रूप से बतलाए जाते हैं। वसिष्ठ के मन्त्रों के द्वारा तत्कालीन इतिहास, भूगोल पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। "यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः" (तुम स्वस्ति के साथ सदा हमारी रक्षा करो) इस वाक्य को वसिष्ठ ने अपने मन्त्रों में एक दर्जन से अधिक बार दोहराया है। वसिष्ठ के सबसे महत्वपूर्ण एवं आराध्य इष्ट देव इन्द्र थे। इसके बाद मित्र, सूर्य अग्नि, विश्वेदेव, वरुण, अश्विनिकुमार, उषा, सरस्वती आदि आते हैं।

ऋग्वेद में वसिष्ठ ऋषि को मित्रावरुण एवं उर्वशी अप्सरा का पुत्र कहा गया है - "हे ब्राह्मण वसिष्ठ, तुम मित्रावरुण पुत्र हो और उर्वशी के मन से उत्पन्न हो। गिरे बूंद की तरह दिव्य मनत्र द्वारा सारे देवों ने तुम्हें कमल में धारण किया।"[2] कहा गया है कि एक बार मित्र और वरुण ने उर्वशी अप्सरा को देखा जिसे देखते ही उनका रेत स्खलित हो गया। उन्होंने उस स्खलित रेत को उठाकर

---

1. ऋग्वेद 7/18/33
2. विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा पद पश्यतां त्वा।
   तत्ते जन्मोतेकं वसिष्ठाऽगस्त्यो यत्त्वाविश आजभार।।10।।
   उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधिजातः।
   द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वेदेवा पुष्करे त्वाददन्त।।11।। ऋग्वेद 7/33

एक घड़े मे रख दिया। जिसके द्वारा वसिष्ठ और अगस्त्य ऋषि उत्पन्न हुए।[3] इसी कारण इन दोनों को "कुम्भयोनि" उपाधि प्राप्त हुई। और उनके वंशजो को "कुण्डिन", "कुण्डिनेय" एवं कौण्डिन्य" ऐसा अभिधान प्राप्त हुआ।[4] ऋग्वेद में ही अन्यत्र यह उल्लिखित है कि वसिष्ठ का जन्म कुम्भ से नहीं बल्कि उर्वशी के गर्भ में हुआ है।[5]

वसिष्ठ की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वृहद्देवता नामक ग्रन्थ में इस प्रकार वर्णित है -

"तयोरादित्पयोः सत्रे दृष्ट्वाप्सरअमुर्वशीम्।
रेतश्चस्कंद तत्कुम्भे न्यपतद्दासीवरे।।
तेनैव तु मुहुर्तेन वीर्यन्तो तपस्विनो।
अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च तत्रर्षी संवभूवतुः।।
बहुधा पतितं रेतः कलशे च जले स्थले।
स्थले वसिष्ठस्तु मुनिः संभूत ऋषिसप्तमः।।
कुम्भ त्वगस्त्यः संभूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः।
उदियाय यतोऽगस्त्यः शम्यामात्रो महातपाः।।
मानेन संमितो यस्मात तस्मान्मान्य इहोच्यते।
यदा कुम्भादृषिर्जातः कुम्भेनापि हि गीयते।।
कुम्भ इत्यभिधानं च परिमाणाय लक्ष्यते।
ततोऽप्सु गृह्ममाणासु वसिष्ठः पुष्करे स्थितः।।
सवर्तः पुष्करें तं हि विश्वे देवा अधरयन।।"

-वृहद्देवता 5/783-789

नियक्त में भी कहा गया है -

तस्या दर्शनाम्मित्रावरुणयो रेतश्चस्कन्द। -निरुक्त 5/13

3· स केत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदानः।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परिजज्ञे वसिष्ठः ।।12।।
सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भ रेतः सिषिचतुः समानम्।।
ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम्।।13।।ऋग्वेद 7/33

4· ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी 1/166, नि0 5/13

5· ऋग्वेद 7/33/12

इसी प्रकार सर्वानुक्रमणी में द्रष्टव्य है -

मित्रावरुणायोर्दीक्षितयोरुर्वशीमप्सरसं दृष्टवा वासतीवरे कुम्भे
रेतोऽपतत्ततोऽगस्त्यवसिष्ठावजायेताम्। -सर्वानुक्रमणी 1/166

मित्रावरुण यज्ञ कर रहे थे। उन्होंने यज्ञ की दीक्षा ली थी और। इतने में ही अप्सरा उर्वशी यज्ञस्थल में पहुँच आई। उसे देखकर मित्र और वरुण का मन विचलित हो गया जिससे उनका वीर्य वासतीवर नामक यज्ञपात्र में पतित हुआ। वहाँ वह वीर्य कुछ समय तक पड़ा रहा जिससे अगस्त्य और वसिष्ठ उत्पन्न हुए। ये बड़े तपस्वी तथा समर्थ्यवान थे। जो वीर्य भूमि पर पतित हुआ था उससे महामुनि वसिष्ठ का जन्म हुआ। जो वीर्य कुम्भ में गिरा उससे अगस्त्य ऋषि उत्पन्न हुए और जो जल में गिरा उससे तेजस्वी मत्स्य उत्पन्न हुआ।

वसिष्ठ के पूर्वज

वसिष्ठ के पूर्वज अधोलिखित है -

प्रजापति

मरीचि

कश्यप §कश्यप की तेरह स्त्रियाँ थी - अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, मुनि क्रोधा, विश्वा, वरिष्ठा, सुरभि, विनता, काद्रू§ ये दक्ष की पुत्रियाँ थीं और कश्यप के साथ विवाहित हुई थी§।

कश्यप × अदिति

बारह आदित्य §भग - अर्यमा-अंश "मित्र वरुण"-धाता-विधाता-विवस्वान-त्वष्टा पूषा इन्द्र-विष्णु§

अर्थात् मित्रावरुण कश्यप के पुत्र थे। इन्हीं मित्रावरुणों से अगस्त्य और वसिष्ठ का जन्म उर्वशी नामक अप्सरा के कारण हुआ। उक्त विवेचन से मित्रावरुण देव थे, आदित्य थे किन्तु कुछ स्थलों पर इन्हें राजा कहा गया है -

दक्षस्य वाऽदिते जन्मनि व्रते राजाना मित्रावरुणा विवाससि
ऋग्वेद 10/64/5

जन्मनि व्रते कर्मणि राजानौ मित्रावरुणौ परिचरसि। -निरुक्तम्

इन मन्त्रों के आधार पर निरुक्तकार ने मित्रावरुण को राजा कहा है।

अगस्त्य वसिष्ठ के भाई थे। चित्रमह और मृलीक नाम से वसिष्ठ के दो और पुत्रों का उल्लेख मिलता है। इनके नाम की ऋचाएँ भी उपलब्ध है। पर इनके ज्येष्ठ एवं प्रधान पुत्र का नाम शक्ति ही था। शक्ति के दो पुत्र पराशर और गौरवीति भी ऋग्वेद के ऋषि है। वसिष्ठ के वंश वृक्ष को इस प्रकार समझा जा सकता है -

मित्रावरुण

वसिष्ठ अगस्त्य

शक्ति

पराशर गौरवीति

ऋग्वेद में वसिष्ठ और विश्वामित्र की परस्पर शत्रुता सर्वविदित है। विश्वामित्र के प्रति शत्रुता की भावना वसिष्ठ के जीवन की विशेषता है। ऐसा परिलक्षित होता है कि वसिष्ठ के पूर्व निश्चित रूप से सुदास के पुरोहित विश्वामित्र थे।[6] किन्तु उसके इस पद से अपदस्त हो जाने पश्चात् विश्वामित्र ने सुदास के विरोधियों के साथ मिलकर सुदास के विरूद्ध दाशराज्ञयुद्ध में भाग लिया था। क्योंकि जिन सूक्तों में सुदास की विजय का वर्णन उपलब्ध है उन सूक्तों में विश्वामित्र द्वारा अपने मित्रों पर लाये गये संकट का भी स्पष्ट उल्लेख हुआ है। फिर भी ओल्डेन वर्ग को ऋग्वेद में वसिष्ठ और विश्वामित्र के बीच किसी कलह का कोई चिन्ह नहीं दिखाइ देता है। वहीं गेल्डनर के अनुसार ऋग्वेद में वसिष्ठ एवं विश्वामित्र के बीच शत्रुता न होकर वसिष्ठ के पुत्र शक्ति और विश्वामित्र के बीच शत्रुता का निर्देश प्राप्त होता है। ऋग्वेद के तृतीय मण्डल में में "वसिष्ठ द्वेषिणः" नामक वसिष्ठ विरोधी नामक मन्त्र उपलब्ध है जो शक्ति को ही निर्दिष्ट कर रचे गये थे।[7] यहाँ शक्ति एवं विश्वामित्र के साथ संघर्ष, विश्वामित्र के द्वारा वाक्शक्ति में विशेष निपुणता प्राप्त करने तथा विश्वामित्र द्वारा प्रतिशोध लेने की भावना का विवरण प्राप्त होता है। शक्ति से प्रतिशोध लेने के लिए उसने राजा सुदास के सेवकों के माध्यम से उसका वध करवाया।[8]

6· ऋग्वेद, 3/33/53

7· ऋग्वेद, 3/53/21-24

8· तै0सं0 7/4, 7/1 पं0 ब्रा0 4/7/3, ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी, 7/32

उपर्युक्त विवरण का षडगुरुशिष्य द्वारा जो कि शाट्यायनक के अन्तर्गत आता है विस्तार के साथ उल्लेख प्राप्त होता है जिसका संक्षिप्त संकेत तैत्तिरीय संहिता और पञ्चविंश में प्राप्त होता है यही पर शक्ति का वध कराये जाने और सौदासों पर वसिष्ठ की विजय का उल्लेख मिलता है किन्तु उक्त समस्त कथाओं में वसिष्ठ का राजा सुदास के साथ विरोध होने का कोई उल्लेख नहीं है। जबकि ऐतरेय ब्राह्मण में वसिष्ठ को सुदास का पुरोहित एवं अभिषेककर्ता के रूप में दिखाया गया है।[9] महर्षि यास्क ने विश्वामित्र को सुदास का पुरोहित स्वीकार किया है।[10] ऐसा प्रतीत होता है कि सुदास के मृत्योपरान्त ही सुदास के वंशज सौदासों का विश्वामित्र ने पुनः पौरोहित्य पद प्राप्त किया। इसके बाद वसिष्ठ ने अपने पुत्र के प्रतिशोध स्वरूप सौदासों को पराजित कर एक बार पुनः अपनी श्रेष्ठता को पुजवाया।

सौदासों और वसिष्ठों की शत्रुता स्थायी रूप से विद्यमान हो चुकी थी। भरतों के वंश में वंशपरम्परागत पुरोहित का पद वसिष्ठ कुल में ही विद्यमान था। इस बात से बहुशः प्रमाण उपलब्ध होते हैं।[11] ब्राह्मण ग्रन्थों मे एक यज्ञकर्ता आचार्य के रूप में वसिष्ठ का नाम अनेक स्थलों पर आया है। सर्वप्रथम वसिष्ठ के द्वारा ही इस सिद्धान्त की प्रतिस्थापना हुई थी कि - "यज्ञ के समय यज्ञकर्ता पुराहित को "ब्राह्मण के रूप में कार्य करना चाहिए"। शुनःशेप के यज्ञ में वसिष्ठ ब्राह्मण बने थे।[12] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार एक समय ऐसा था जब केवल वसिष्ठगण ही "ब्रह्मन" के रूप में पुरोहित का कार्य करने वाले थे। किन्तु कुछ समय पश्चात कोई भी पुरोहित "ब्रह्मन" के रूप में कार्य कर सकता था।

ऐतरेय ब्राह्मण में अनेकशः वसिष्ठ का नामोल्लेख हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक यज्ञ में विश्वामित्र होता, जमदग्नि अध्वर्यु, वसिष्ठ ब्रह्मा और अयास्य उद्गाता थे। इसी यज्ञ में सुयवस का पुत्र अजीगर्त भी एक पुरोहित था।

9· ऐ0ब्रा0 7/34/9

10· निरुक्त, 2/24, सां0श्रौ0 26/12/13

11· पं0ब्रा0, 15/4/24, तै0सं0 3·5·2·1

12· ऐ0ब्रा0 7/3/16, सां0 श्रौ0 15/21/4

अजीगर्त बड़ा लालची था। लोभ के कारण ही अजीगर्त ने तीन सौ गायों के बदले अपने पुत्र शुनःशेप को तलवार से काटकर बलि देना स्वीकार कर लिया था। शुनःशेप ने ऐसे लालची पिता को त्यागकर विश्वामित्र को अपना पिता मानकर उनकी गोद में जाकर बैठ गया। अजीगर्त ने विश्वामित्र से कहा - "ऋषि मेरे पुत्र को मुझे दे दो। विश्वामित्र ने कहा मुझे देवों ने दिया है। विश्वामित्र ने उसका नाम बदलकर देवरात विश्वामित्र रख दिया। अजीगर्त ने पुत्र से प्रार्थना की कि "हम दोनों {माता-पिता} तुझे बुलाते है। तुम आंगिरस् गोत्री अजीगर्त का पुत्र ऋषि है। हे ऋषि तुम अपने बाप दादों के घर को मत छोड़ो हमारे पास चले आओ।" शुनःशेप ने उत्तर दिया कि मैने तुम्हारे हाथ में वह चीज {तलवार} देखी है जो शूद्र भी नहीं लेता। हे आंगिरस आप ने तीन सौ गायों को मुझसे बढ़कर जाना। अजीगर्त ने अपने किए पर दुःख प्रकट किया और कहा कि मै सौ गायों को तुम्हें देता हूँ। शुनःशेप ने कहा जो एक बार पाप किया है वह दूसरी बार भी कर सकता है। अतः तुम शूद्रता से मुक्त नहीं हो।" जो पाप तुमने कर दिया है वह किसी प्रकार निवारित नहीं हो सकता।" विश्वामित्र ने बीच में कहा - "हाँ निवारित नहीं हो सकता। यह सुवयस का पुत्र जब हाथ में तलवार लिए था तो बड़ा भयानक लग रहा था इसलिए तुम अपने को उसका पुत्र मत समझ मेरा पुत्र हो जाओं।"[14]

ऐतरेय ब्राह्मण के उक्त उद्धरण से प्रतीत होता है कि विश्वामित्र जमदग्नि, अयास्य, अजीगर्त तथा शुनःशेप एक काल में विद्यमान थे। यह भी विदित होता है कि यज्ञविधि की जानकारी महर्षि वसिष्ठ ने सुदास पैजवन को दी थी।[15] अन्यत्र भी कहा गया है कि -"इन्द्र के इसी महाभिषेक से वसिष्ठ ने पैजवन सुदास का महाभिषेक किया और उसने समस्त पृथ्वी पर विजय प्राप्त की और अश्वमेघ यज्ञ किया।"[16] दिवोदास के सम्मानित पुरोहित भारद्वाज ने सुदास अभिषेक क्यों नही किया ? वसिष्ठ ने क्यों किया ? अपने पुरोहित को छोड़कर अन्य पुरोहित को

13· शतपथ ब्रा0 12·6·1·41
14· ऋग्वेदिक आर्य -राहुलसांकृत्यायन, पृ0 63-64
15· ऐ0ब्रा0, 7/5/34
16· ऐ0ब्रा0, 8/4/21

स्वीकार करना यही संकेत देता है कि पिता के सिंहासन को प्राप्त करने के लिये दोनो भाइयों में प्रतिद्वन्दिता थी। दिवोदास का एक पुत्र प्रतर्दन भी था। संभवतः यह उसका ज्येष्ठ पुत्र था। पिता के सिंहासन पर भरद्वाज ने प्रतर्दन को ही अभिषिक्त किया। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार - "गुप्तवंशी चन्द्रगुप्त की भांति सुदास अपने पिता का योग्यतर अधिकारी था। दोनों भाइयों में संघर्ष हुआ। भरद्वाज ने प्रतर्दन का पक्ष लिया पर सुदास की पीठ पर वसिष्ठ जैसा चतुर और बहुवंश वाला पुरुष था। ऐतरेय ब्राह्मण में स्पष्ट कहा गया है कि इस ऋषि ने "इन्द्र के महाभिषेक से पैजवन सुदास का महाभिषेक किया।" यद्यपि स्वयं ऋग्वेद में प्रतर्दन और वसिष्ठ के संघर्ष का वर्णन नहीं है और न यही बतलाया गया है कि सुदास को गद्दी पाने में अपने भाई से मुकाबला करना पड़ा। पर ऐतरेय ब्राह्मण के कथन का वहाँ कोई विरोध नही दिखाई देता बल्कि वसिष्ठ का सुदास का पुरोहित बनकर दाशराज युद्ध में सफलता प्राप्त करने के लिए सब कुछ करना इसकी पुष्टि कर देता है।[17]

वसिष्ठ ने सुदास पैजवन राजा को सोम के विशेष साम्प्रदाय की दीक्षा दी जिस कारण सुदास को सम्पूर्ण राजर्षियों में उच्च पद प्राप्त हुआ। कहा जाता है कि एक बार यह तीन दिनों तक भूखा रहा। चौथे दिन अपनी क्षुधा को शान्त करने के लिए, इसने वरुण के रसोई घर में प्रवेश करने का प्रयत्न किया किन्तु भोजन गृह के द्वार पर कुत्ते थे जिनके कारण ये अन्दर प्रवेश नहीं कर पाये। उन्हीं कुत्तों को सुलाने के लिए वसिष्ठ ने कुछ ऋचाएँ कहीं। ऋग्वेद की यही ऋचाएँ "निद्रासूक्त" नाम से अभिहित की जाती है।[18] प्रख्यात "महामृत्युञ्जय" मंत्रों की रचना वसिष्ठ द्वारा की गयी है।[19]

---

17. द्रष्टव्य - ऋग्वेदिक आर्य -पं0 राहुल सांकृत्यायन पृ0 64
18. यदर्जुन सारमेय दतः पिशंग यच्छसे।
    वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु वप्सतो नि षु स्वप। ऋग्वेद 7/55/2
19. त्रयम्बकम्यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
    उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।। ऋग्वेद 7/59/12

मित्रावरूणों से उत्पन्न होने के कारण इनका अपना कोई गोत्र नहीं था। फलस्वरूप इन्होंने पैजवन सुदास राजा के "तृत्सु" गोत्र को ही अपना लिया। इसी कारण ऋग्वेद में बहुशः इन्हें "तृत्सु" कहा गया है। गेल्डनर महोदय ने भी यही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वसिष्ठ वरूण और अप्सरा उर्वशी के पुत्र है जिसका स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है। संभवतः यह सिद्ध हो जाता है कि ऋग्वेद में वसिष्ठों को "तृत्सु" कहा गया है।[20] क्योंकि विचित्र ढंग से जन्म लेने के कारण उनका कोई गोत्र नहीं था। जिसकी उन्हें आवश्यकता थी, फलतः उन्होंने अपने उन प्रतिपालक राजाओं का गोत्र धारण कर लिया जिनसे अगस्त्य ने इनका परिचय करवाया था। ऐसे अनेकों सन्दर्भ प्राप्त होते हैं जिनसे एक ऋषि के रूप में वसिष्ठ और विश्वामित्र की प्रतिद्वन्दिता का उल्लेख हुआ है।

सुदास के पिता दिवोदास ने वसिष्ठ के अनुसार सौ पत्थर की पुरियों को विनष्ट किया था।[21] वसिष्ठ को इस बात का अभिमान था कि भरतों के कीर्ति बढ़ाने में मेरा सबसे अधिक योगदान है - "दण्ड से पिटती गोओं की भांति लोग अनाथ शिशुओं की तरह अस्त व्यस्त थे, पर वसिष्ठ जब उनके पुरोहित बने तो तृत्सुओं की प्रजायें वृद्धि हो प्राप्त होने लगीं।[22] वसिष्ठ ने भरतों का सफलताओं का उल्लेख ऋग्वेद के सप्तम मण्डल में कई स्थलों पर किया है - " जब यह भरत की अग्नि अति प्रसिद्ध सूर्य की भांति अत्यन्त प्रकाशवान होकर चमका जिसने युद्ध में पुरू लोगों को पराजित किया वह दीप्तिमान दिव्य अतिथि प्रज्जवलित हुआ।[23] सुदास के साथ विवाद में द्रुह्यवों और अणुवों के 66 हजार आदमी मारे गये।[24] तृत्सुओं ने जमुना के परे भेद, अज, शिग्रु और यक्षु लोगों को पराजित किया।[25]

20· ऋग्वेद 7/63/8

21· यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्म होभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्निपाहि।। ऋग्वेद 7/3/7

22· दण्डा इवेद् गो अजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः।
अभवच्च पुर एता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त।। वही, 7/33/6

23· प्रप्रायमग्निर्भरतस्य श्रृण्वे वियत्सूर्यो न रोचते वृहद्भाः।
अभि यः पुरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच।। वही, 7/8/4

24· वही, 7/18/14

25· आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्रभेदं सर्वताता मुषा यत्।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि।। वही, 7/18/19

ये अनार्य लोग प्रतीत होते हैं। वसिष्ठ ने अनार्य लोगों को "शिश्नदेव" लिंग की पूजा करने वाला कहा है।[26] वसिष्ठ के इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि दाशराज्ञयुद्ध सिन्धु के तट पर हुआ था, जहाँ पर इन्द्र ने सुदास की रक्षा की अर्थात् सुदास ने विजय को प्राप्त किया।[27]

पौराणिक काल में वसिष्ठ को वेश्यापुत्र बतलाया गया है। देवयुगीन कन्यायें सदा कुमारियाँ रहती हैं, उनका प्रणय-व्यापार स्थायी नहीं होता है, इसीलिये उन्हें देवगणिका भी कहा जाता है। वसिष्ठ को मित्रावरूण का पुत्र बतलाया गया है। और उर्वशी उनकी माता है।[28] वसिष्ठ अप्सरा से उत्पन्न हुए ऐसा कहा गया है।[29] ऋग्वेद में "राक्षोघ्न सूक्त" नामक सूक्त के प्रणयन का श्रेय वसिष्ठ को ही दिया गया है।[30] इस सूक्त में वसिष्ठ पर आक्षेप करने वालों का भला-बुरा कहा गया है। ऐसी इस सूक्त की परिकल्पना है। वृहद्देवता के अनुसार इस सूक्त का सन्दर्भ वसिष्ठ और विश्वामित्र के संघर्ष से सम्बद्ध करने का प्रयत्न किया गया है।[31] यातुधान, यातुभावान जिसका अर्थ होता है जादूगर। इनका प्रयोग वसिष्ठ ने किया है।[32] उनके अनुसार - "यदि मैं जादूगर हूँ या यदि मैने पुरूष की आयु नष्ट की है तो आज ही मैं मर जाऊँ नहीं तो जिसने मुझे व्यर्थ यातुधान कहा वह अपने दस-बीस {पुत्रों} से वंचित हो जाय।" झूठ शब्द के लिए वसिष्ठ ने द्रोधवाच शब्द का प्रयोग किया है। वसिष्ठ और अगस्त्य भाई बताये गये हैं।[33] वसिष्ठ के जीवन की सबसे बड़ी घटना दाशराज्ञयुद्ध में सुदास की विजय है। जिसमें दस राजाओं ने मिलकर सुदास से लड़ाई लड़ी थी।[34] तृत्सुओं

26· न यावत इन्द्र जूजुवर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपिगुऋतं नः।। वही, 7/21/5

27· एवेन्नु कं सिन्धु मेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्ज्जघान।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः।। वही, 7/33/3

28· ऋग्वेद 7/33/11

29· स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदा नः।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः।। वही 7/33/12

30· ऋग्वेद 7/104 31· वृहद्देवता 6/28/34

32· अद्यामुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पुरूषस्य
अधा स वीरैर्दशभिर्वियूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह।। ऋग्वेद 7/104/15

के देश में दाशरज्ञयुद्ध में सुदास के लड़ने का उल्लेख हुआ है।[35]

तैत्तिरीय संहिता में उपलब्ध "एकोनपञ्चाशाद्रत्रयाग" का जनक वसिष्ठ को ही माना जाता है।[36] उसी संहिता में उपलब्ध "स्तोमभाग" नामक मन्त्रों का प्रवर्तक वसिष्ठ ऋषि को ही माना गया है।[37]

दाशराज्ञयुद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् वसिष्ठ का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया। वे अपने को भरतों ᳲसुदास जनᳲ का भाग्य विधाता मानने लगे। उनके अनुसार - "दण्डे से भयभीत गायों एवं अनाथ बच्चों की भाँति ये भरत लोग भयभीत थे किन्तु बाद में जब वसिष्ठ उनके पुरोहित हुए तो तृत्सुओं ᳲभरतोंᳲ की प्रजा खूब बढ़ने लगी।[38] इन्द्र द्वारा प्रतीड़ित ये तृत्सु छोड़े हुए जल की भाँति नीचे की ओर भागे। दुष्ट मित्रों वाले विकल बुद्धि उन्होंने वाधित हो सारे भोजन अथवा धन-सम्पत्ति सुदास के लिए छोड़ गये।[39] वसिष्ठ के लोग खुलकर सुदास की सहायता किये थे।[40] वसिष्ठ के कुल के लोग सिर के दाहिनी ओर सिखा बाँधते थे इसलिये उन्हें "दक्षिणतः कपर्दा ᳲदाहिने जुड़ा वालेᳲ कहा गया है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का विचार है कि "ईसवी सन आरम्भ होने के आस पास स्त्रियाँ भी पगड़ी बांधतीथी। वैदिक नारियाँ भी बांधती रही होगी। ऐसा होने पर वसिष्ठ के कुल की स्त्रियाँ दक्षिणतः कपर्दा रही होगी। कुमारियाँ चार-चार कपर्द बांधती थी।[41] इसलिए उन्हें चतुष्कपर्दा कहते थे।

33· यदि वाहमनृतदेव आस मोघं वा देवां अप्यूहे अग्ने।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोधवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम्।। वही0 ᳲ/104/14

34· दशराजानः समिता अयज्वयः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधः।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु।। वही 7/83/7

35· दाशराज्ञेः परियत्ताय विश्वतः इन्द्रावरुणावशिक्षतं।
श्वित्यंचो यत्र तमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः।। वही 7/83/8

36· तैत्तिरीय संहिता, 7/4/7

37· तै0सं0, 3/5/2

38· ऋग्वेद, 7/33/6 इंद्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवत नीचीः।
दुर्मिन्नासः प्रकलविन् विमानाजहुर्विश्वानि . . भोजना
सुदासे।। ऋग्वेद 7/18/14

39· वही, 7/33/1-3

सुदास ने वसिष्ठ को दान दिया था जिसका उल्लेख वसिष्ठ ने स्वयं किया है।

वैदिकोत्तर साहित्य में भी वसिष्ठ सम्बन्धी प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। अन्य ऋषियों की भाँति इनका भी धर्मशास्त्र विषयक "वसिष्ठ स्मृति" नामक स्मृति ग्रन्थ आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज से प्रकाशित स्मृति समुच्चय में उपलब्ध है। इसमें कुल तीस अध्याय है किन्तु वेंकटेश्वर से प्रकाशित स्मृति में इक्कीस अध्याय ही हैं। आचार, प्रायश्चित, संस्कार रजस्वला, सन्यासी, आततायि आदि के लिए नियम निर्धारित किए गये हैं। उसी प्रकार दत्त प्रकरण, साक्षि प्रकरण प्रायश्चित आदि विषयों का भी विस्तृत विवेचन किया गया है। वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित स्मृति तथा जीवानन्द संग्रह के प्रति एक ही है। दोनों प्रतियों में प्रायः एक जैसा ही श्लोक है। इसकी एक स्मृति और उपलब्ध है जिसमें नौ-दस अध्याय है। इसमें बैष्णवों के दैनिक कर्तव्यों का विवरण उपलब्ध होता है। वसिष्ठधर्मसूत्र गोतमधर्मसूत्र के सूत्रों से अनेक विषयों में साम्य दिखाई पड़ता है। उसी तरह से बोधायनधर्मसूत्रों के अनेक सूत्रों की समानता वसिष्ठ धर्मसूत्रों में परिलक्षित होती है। वसिष्ठधर्मसूत्र ऋग्वेद का है। तन्त्रवार्तिक में भी पुरातन गृह्यसूत्रकार के रूप में वसिष्ठ को विवरण प्राप्त होता है।[43]

वसिष्ठ के धर्मशास्त्र के बहुत से उद्धरण मिताक्षरादि ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होते हैं। ठीक उसी प्रकार वृहदारण्यकोपनिषद के शंकराचार्य भाष्य में भी वसिष्ठ के धर्मसूत्र के अनेकों सूत्र लिये गये हैं। वसिष्ठ के ग्रन्थों में वेद तथा संहिता में

40· श्वित्यंचो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियं जिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नृन्न मे दूरादविहने वसिष्ठाः।। वही, 7/33/1

41· ऋग्वेद, 10/114/3

42· वही, 7/18/22-23

43· प्राचीन चरित्रकोश पृ0 सं0 807

बहुत से उद्धरण लिये गये हैं। निदान सूत्रों की एक गाथा भी वसिष्ठ ने अपने स्मृति ग्रन्थों में उद्धृत की गयी है। इसके अतिरिक्त मनु, हारीत, मनु एवं गौतम आदि धर्मशास्त्रकारों के विचार भी अनेक बार उद्धृत किये गये हैं। वसिष्ठ स्मृति का उल्लेख मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति में भी हुआ है। "वृद्ध वसिष्ठ"नामक एक और ग्रन्थ की सर्जना इसने की थी जिसका उल्लेख विश्व रूप[44] एवं मिताक्षरा[45] में परिलक्षित होता है। वसिष्ठ द्वारा विरचित "ज्योति वसिष्ठ" नामक ग्रन्थ के कतिपय उद्धरण "स्मृति चन्द्रिका" में लिए गये हैं। उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त काटालोगुप्त कायलोगोरूम में वसिष्ठ के नाम पर निम्नलिखित ग्रन्थों का समावेश हुआ है - §1§ वसिष्ठ कल्प §2§ वसिष्ठ तन्त्र §3§ वसिष्ठ पुराण §4§ वसिष्ठ लिंगपुराण §5§ वसिष्ठ शिक्षा §6§ वसिष्ठ श्राद्ध कल्प §7§ वसिष्ठ संहिता 78§ वसिष्ठ होम प्रकार।

वसिष्ठ का घनिष्ठ सम्बन्ध आयुर्वेद से भी था। इनके पौत्र पराशर भी आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित थे।[46] हेमाद्रि के लक्षण प्रकाश में उद्धृत शालिहोत्र के वचन से भी प्रतीत होता है कि आयुर्वेद के कर्ता अनेक ऋषि हुए है उनमें से एक प्रमुख नाम महर्षि वसिष्ठ का भी है।

चरक संहिता में लिखा गया है कि ब्राह्मरसायन के सेवन से वसिष्ठ आदि ऋषियों को दीर्घ जीवन की प्राप्ति हुई थी।[47]

महाभारत में मैत्रावरुण, वसिष्ठ और कराल जनक का सम्बाद उल्लिखित है।[48] सांख्यज्ञान से युक्त इस संवाद में शीर्षरोग, अक्षिरोग, दन्तशूल, गलग्रह,

---

44· विश्वरूप, 1/19

45· मिताक्षरा 2/91

46· अष्टांङ·गृहृदय कासचिकित्सा 3/140

47· एतद्रसायनं पूर्व वसिष्ठः कश्यपोऽङि·गराः।
जमदग्निर्भरद्वाजो भृगुरन्ये च तद्विधाः।।4।।
प्रयुज्य प्रयता मुक्ताः श्रमव्याधिजराभयात्
यावदैच्छंस्तपस्तेपुस्तत्प्रभावान्महाबलाः।।5।।
इदं रसायनं चक्रे ब्रह्मा वार्षसहस्त्रिकम्। चरकसंहिता चि0 1/3

48· महाभारत शान्तिपर्व अध्याय 308/8

ज्वलोदर, वृषारोग, स्वरगण्ड, विषूचक, श्वित्रकुष्ठ, अग्निदग्ध, सिध्म तथा अपस्मार नामों का स्मरण वसिष्ठ ने किया है। मत्स्य पुराण में वसिष्ठ को वास्तुशास्त्रोपदेशक कहा गया है।[49] गवकतरडि·गृणी के आरम्भ में कश्यप आदि की वचनानुसार अनेक ज्योतिषशास्त्र के सर्जकों को उद्धृत किया गया है उसमें वसिष्ठ का नाम भी है। वसिष्ठ का सिद्धान्तग्रन्थ प्रसिद्ध है हो पराशर के निम्नलिखित वचन से सिद्ध होता है कि वसिष्ठ ने माण्डव्य तथा वामदेव को ज्योतिष विद्या का उपदेश दिया था -

नारदाय यथा ब्रह्मा शौनकाय सुधाकरः।
माण्डव्यवामदेवाभ्यां वसिष्ठो यत्पुरातनम।।

महर्षि वसिष्ठ शाख्यशास्त्र के भी ज्ञाता थे। उनको यह ज्ञान हिरण्यगर्भ द्वारा प्राप्त हुआ था।[50] वसिष्ठ को पुराणों का उपदेश इन्द्र द्वारा प्राप्त हुआ था ऐसा वायुपुराण में कहा गया है। पुराणों के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थों का उपदेश इन्द्र द्वारा ही प्राप्त हुआ था। तैत्तिरीय संहिता से ज्ञात होता है कि इन्द्र ने वसिष्ठ से कहा कि मै तेरे लिए ब्राह्मण कहूँगा।[51]

रामायण के बालकाण्ड एवं अयोध्याकाण्ड मेंमहर्षि वसिष्ठ पूर्णरूप से परिव्याप्त हैं। प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्यो में उन्हीं की सम्मति ली जाती थी और वह स्वीकार्य होती थी। महर्षि वसिष्ठ ने प्रसन्तापूर्वक सभी के नामकरण संस्कार किये थे। समय-समय पर राजा से उन बालकों के जात कर्म आदि संस्कार करवाये थे।[52] उत्तम वृत्त का सदा अनुसरण करने वाले धीर एवं शान्त चित्त महर्षि वसिष्ठ ने राजा सक कहा -

इक्ष्वाकूणां कुले जातः साक्षात् धर्म द्वापरः
धृतिमान् सुव्रतः श्रीमान् न धर्म हातुमर्हसि।।6।।
एष विग्रहवान् धर्म एषं वीर्यवतां वरः
एष विधाधिको लोके तपसश्च परायणम्।।10।। बालकाण्ड

49· मत्स्य पुराण 252/2 50· महाभारत शांतिपर्व 313/45
51· तैत्तिरीय संहिता, 3/5/2
52· अतीत्यैकादशाहं तुनामकर्म तयाकरोत्
ज्येष्ठं रामं महात्मानं भरतं केकयीसुतम्।।21।।
सौमित्र लक्ष्मणमिति शत्रुघ्नंपरं तथा
वसिष्ठः परममप्रीतो नामानि कुरुते सदा।।22।।

महर्षि वसिष्ठ के आज्ञा से ही राजा दशरथ ने राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ जाने दिया। वसिष्ठ ने स्वास्ति वाचन करने के पश्चात् उनका यात्रा सम्बन्धी मंगल कार्य सम्पन्न करवाया। महर्षि वसिष्ठ ने विश्वामित्र को बैठने के लिए आसन दिया और उनके स्वागतार्थ फल मूल का उपहार समर्पित किया। धीरचित्त वसिष्ठ ने विश्वामित्र से निमन्त्रण स्वीकार करने का आग्रह किया -

वाढ़मित्येव गाधेयो वसिष्ठं प्रत्युवाचं ह।

यथाप्रियं अवतस्तथास्तु मुनिपुड•गृवः।।19।। बालकाण्ड

प्रसन्नतापूर्वक महर्षि वसिष्ठ ने कामधेनु को बुलाकर कहा कि राजर्षि विश्वामित्र का महाराजाओं के योग्य उत्तम भोजन आदि के द्वारा आतिथ्य सत्कार करने का निश्चय किया है। राजसी स्वागत सत्कार को देखकर विश्वामित्र आश्चर्यचकित हो उठे और वसिष्ठ से उस गाय को अपने लिए माँगी तो धर्मात्मा वसिष्ठ ने उसे इन्कार कर दिया और कहा कि मैं एक लाख या सौ करोड़ या चाँदी के खजाना लेकर भी इस शवला को मैं नहीं दे सकता। यह मुझसे अलग नहीं हो सकती -

शाश्वती शबला मह्यं कीर्तिरात्मवतो यथा।

अस्यां हव्यं च कव्यं व प्राणपाता तथैव च।।13।। बालकाण्ड

विश्वामित्र द्वारा बहुत प्रलोभन देने के बाद भी वसिष्ठ ने उस गाय को देने से मना कर दिया और कहा कि -

एतदेव हि मे रत्नमेतदेव हि मे धनम्

एतदेव हि सर्वस्वमेतदेव हि जीवितम्।।23।। बालकाण्ड सर्ग53

वसिष्ठ के नकारात्मक उत्तर देने पर मुनि विश्वामित्र ने जब उस कामधेनु को बलपूर्वक घसीटकर ले जाने लगे तब वह धेनु दौड़ती हुई वेग पूर्वक महर्षि वसिष्ठ के पास आयी और बोली क्या आपने मुझे त्याग दिया है ? तब वसिष्ठ दुःख एवं शोक से सन्तप्त हृदय वाली पीड़ित वहन के समान उस धेनु नन्दिनी से कहा

न त्वां त्यजामि शबले नापि येऽकृतं त्वया

एवं त्वां नयते राजा बलान्मत्तो महाबल।।10।। बालकाण्ड

नहि तुल्यं बलं मह्यं राजा त्वद्य विशेषतः।

बली राजा क्षत्रियश्च पृथिव्याः पतिरेव च।।11।। वही

वसिष्ठ की उक्त वचन के कहने पर बात-चीत के रहस्य को समझने वाली उस गाय ने उन अनुपम तेजस्वी वसिष्ठ से यह विनययुक्त बात कही -

न बलं क्षत्रियस्याहुर्ब्रह्मणा बलवत्तयः
ब्रह्मन् ब्रह्मबलं दिव्यं क्षात्राच्च बलवत्तरम्।।14।।
अप्रमेयं बलं तुभ्यं नत्वया बलवत्तरः।
विश्वामित्रो महावीर्यस्तेजस्तव दुरासंम्।।15।। बालकाण्ड

महर्षि वसिष्ठ से कामधेनु ने कही कि यदि आप की आज्ञा हो तो मैं इस पुरात्मा राजा के बल, प्रयत्न और अभिमान को अभी चूर्ण कर देती हूँ। तब ऋषि ने कहा कि इस शत्रु सेना को नष्ट करने वाले सैनिको की सृष्टि करो। विश्वामित्र के अस्त्रों से घायल वसिष्ठ ने कामधेनु को आज्ञा दी कि अब योगबल से अन्य सैनिकों की सृष्टि करो। ऐसा करने के बाद कामधेनु ने विश्वामित्र की समस्त सेना को नष्ट कर दिया।

विश्वामित्र के बढ़ते हुए अस्त्र के प्रभाव को देखकर सभी लोग भयभीत होकर इधर उधर भागने लगे। वसिष्ठ का आश्रम भी खाली हो गया और तब वसिष्ठ ने कहा -

वदतो वै वसिष्ठस्य मा भैरीति मुहर्मुहः
नाशयाम्यद्य गाधेयं नीहारमिव भास्करः।।25।।

वसिष्ठ जी ने कहा डरो मत, जैसे सूर्य कुहासे को नष्ट कर देता है उसी तरह मै भी इस गाधि पुत्र को नष्ट कर देता हूँ। जप करने वालों में श्रेष्ठ तेजस्वी वसिष्ठं ने उस समय विश्वामित्र जी से कहे -

आश्रमं चिरसम्बृदं यद् विनासितवानसि
दुराचारो हि यन्यूढस्तस्मात त्वं न भविस्यति।।27।।
इत्युक्त्वा परमक्रुद्धो दण्डमुद्यम्य सत्वरः
विधूम इव कालाग्नि यमदण्डमिवापरम्।।28।। बाल0 55वांसर्ग

ऐसा कहकर अत्यन्त क्रोधयुक्त होकर वसिष्ठ जी धूम्र रहित कालाग्नि के तुल्य (उद्दीप्त हो गये और एक दूसरे यमदण्ड की भांति भयंकर डंडा लेकर शीघ्र ही विश्वामित्र का सामना करने के लिए तैयार हो गये।

एवमुक्तो वसिष्ठेन विश्वामित्रो महाबलः

आग्नेयमस्त्रतुद्दिश्य तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत।।1।।

ब्रह्मदण्डं समुद्यम्य कालदण्डमिवापरम्

वसिष्ठो भगवान् क्रोधादिदं वचनमब्रवीत।।2।। बालकाण्ड

मुनि वसिष्ठ ने विश्वामित्र को ललकारा कि मै यहाँ खड़ा हूँ, तुम्हारे पास जितनी शक्ति है उसका अब प्रदर्शन करो। आज तेरे अस्त्र-शस्त्र का घमण्ड मैं धूल धूसरित कर दूँगा। मेरे दिव्य ब्रह्मबल को देख लो।

गाधिपुत्र विश्वामित्र का श्रेष्ठ एवं भयंकर आग्नेयास्त्र महर्षि वसिष्ठ के ब्रह्मदण्ड से उसी प्रकार शान्त हो गया जैसे पानी पड़ने से अग्नि का वेग शान्त हो जाता है।[53] विश्वामित्र जी ने महर्षि वसिष्ठ के ऊपर विविध अस्त्रों से प्रहार किया लेकिन उनके ऊपर इनका कोई भी प्रभाव नहीं दृष्टिगोचर हुआ। वसिष्ठ के ऊपर इतने अस्त्रों से प्रहार एक अनोखी घटना थी किन्तु ब्रह्मापुत्र वसिष्ठ ने उन समस्त शस्त्रों को अपने एक डंडे मात्र से ही नष्ट कर डाला।[54] वसिष्ठ जी ने अपने ब्रह्मतेज के बल से उस महाविनाशकारी विश्वामित्र के ब्रह्मशस्त्र को भी ब्रह्म दण्ड द्वारा ही शान्त कर दिया। उस ब्रह्मास्त्र को शान्त करते समय महात्मा वसिष्ठ का वह विकराल रौद्र रूप त्रैलोक्य को मोहित कर लेने वाला और अत्यन्त भयंकर प्रतीत होता था।[55] महर्षि वसिष्ठ के समस्त रोमकूपों में से किरणों की तरह धूमयुक्त आग की लपटें प्रस्फुटित होने लगी। महर्षि के हाथ में उठा हुआ द्वितीय यमदण्ड की भाँति वह ब्रह्मदण्ड धूमरहित कालाग्नि प्रज्जवलित हो रहा था।[56]

ऐसा देखकर समस्त मुनिगण तेजस्वी वसिष्ठ ऋषि से प्रार्थना पूर्वक बोले- ब्राह्मण आपकी शक्ति अमोघ है आप अपने तेज को अपनी ही शक्ति से अपने

---

53. तस्यास्त्रं गाधि पुत्रस्य घोरमाग्नेयमुत्तमम्।
ब्रह्मदण्डेन तच्छान्तमग्नेर्वेग इवाम्भसा।।5।। बालकाण्ड

54. वसिष्ठे जपतां श्रेष्ठ तदद्भुतमिवाभवत्।
तानिसर्वाणि दण्डेन ग्रसते ब्राह्मणः सुतः।।13।।बालकाण्ड

55. ब्रह्मास्त्रं ग्रसमानस्य वसिष्ठस्य महात्मनः
त्रैलोक्यमोहनं रौद्रं रूपमासीत् सुदारुणम्।।17।। बालकाण्ड

56. प्रज्वलद् ब्रह्मदण्डश्च वसिष्ठस्य करोधतः।
विधूम इव कालाग्नेर्यमदण्ड इवापरा।।19।। बालकाण्ड

में समेट लीजिये।[57] समस्त इक्ष्वाकुवंशियों के पुरोहित वसिष्ठ जी ही परमगति है।[58] इस प्रकार के अपमान से पीड़ित विश्वामित्र ने ब्रह्मबल प्राप्त करने की प्रतिज्ञा से घोर तप करने के लिये निकल पड़े। सौ पुत्रों वाले महर्षि वसिष्ठ जी ही त्रैलोक्य के यज्ञकर्ता हैं। बाद में महर्षि वसिष्ठ ने विश्वामित्र का "ब्रह्मर्षि" होना भी स्वीकार कर लिया और उनसे मित्रता स्थापित कर ली।

एक बार राजा दशरथ देखा कि पक्षी आकाश में भंयकर शब्द कर रहे हैं। दूसरी ओर मृग दाहिनी ओर करके जा रहे हैं। इस शुभ और अशुभ दो प्रकार के शकुन के बारे में राजा दशरथ ने वसिष्ठ से पूछा तब महर्षि ने उनसे फल के बारे में कहाकि आकाश के पक्षियों के मुख से जो आवाज निकल रही है उसके अनुसार इस समय घोर भय उपस्थित होने वाला है, किन्तु हमें दाहिने रखकर जाने वाले ये मृग उस भय के शांत हो जाने की सूचना दे रहें हैं इसलिए आप किसी प्रकार की चिन्ता मत करिये। महर्षि वसिष्ठ, दशरथ तथा पुरोहित आदि आंधी उठने से चेतनावस्था में थे पर अन्य लोग अचेतावस्था को प्राप्त हो गये थे। महर्षि वसिष्ठ ने मन्त्रोच्चारपूर्वक सीता सहित श्रीराम को उस समय उपवास व्रत की दीक्षा दी।[59]

महर्षि वसिष्ठ के जन्म की कथा वाल्मीकि रामायण में भी प्राप्त होती है। निमि के शाप से वसिष्ठ वायु रूप से ब्रह्मदेव के पास गये वहाँ ब्रह्मदेव की इच्छानुसार मित्रावरुण के वीर्य से कुम्भ में उत्पन्न हुए। जैसे -

यस्तु कुम्भो रघुश्रेष्ठ तेजः पूर्णो महात्मनोः।
तस्मिंस्तेजोमयौ विप्रौ संभूतावृषि सत्तमौ।।4।।
पूर्वं समभवत्तत्र ह्यगस्त्यो भगवानृषिः।
नाहं सुतस्तवेत्युक्त्वा मित्रं तस्मादपाक्रमत्।।5।।
तद्धि तेजस्तु मित्रस्य उर्वश्याः पूर्वमाहितम्।
तस्मिन्समभवत्कुम्भे तत्तेजो मत्र वारुणम्।।6।।

---

57. ततोऽस्तुवन् मुनिगण वसिष्ठं जपतां वरम्।
अमोघं ते बलं ब्रह्मस्तेजो धारय तेजसा।।20।। बालकाण्ड

58. निगृहीतस्त्वया ब्रह्मन् विश्वामित्रो महाबलः।
अमोघं ते बलं श्रेष्ठं लोकाः सन्तु गतव्यया।।21।। बालकाण्ड

कस्यचित्त्वथ कालस्य मित्रावरुणसम्भवः।
वसिष्ठस्तेजसा युक्तो जज्ञे चेक्ष्वाकुदैवतम्।।7।।
तमिक्ष्वाकुर्महातेजा जातमात्रमनिन्दितम्।
वव्रे पुरोहितं सौम्य वंशस्यास्य भवाय नः।।8।।
एवं त्वपूर्वदेहस्य वसिष्ठस्य महात्मनः।
कथितो निर्गमः सोम्य ....।9।। वा0रा0उ0का0 57/49

अर्थात् उस कुम्भ में दो तेजस्वी ब्राह्मण उत्पन्न हुए। उनमें प्रथम अगस्त्य और दूसरे वसिष्ठ उत्पन्न हुए। उत्पन्न होते ही राजा इक्ष्वाकु ने वसिष्ठ को अपना पुरोहित बनाया जिससे वंश का यश बढ़ गया। यह वसिष्ठ की उत्पत्ति का अपूर्व वृत्तान्त राम ने लक्ष्मण से कहा था। इसी प्रकार की कथा मत्स्यपुराण में भी पायी जाती है।

भुशुण्डि रामायण में उपलब्ध तथ्यों से प्रतीत होता है कि राजा दशरथ की अन्त्येष्टि वेदमन्त्रोच्चारपूर्वक महर्षि वसिष्ठ द्वारा करायी गयी थी। पिता की मृत्यु के पश्चात वसिष्ठ ने राम से कहा था कि राम, माता-पिता और गुरु के वचन मान्य होते है इसलिए मेरे कहने से तुम अयोध्या लौट चलो। लेकिन राम ने ऐसा नहीं किया तब वसिष्ठ जी ने व्यवस्था दी कि राम अपनी चरणपादुका भरत को दे दो यही अपने प्रभाव से त्रैलोक्य का पालन करेगी। अतः वसिष्ठ की ही आज्ञा से वैशाख शुक्ला सप्तमी राम का राज्याभिषेक हुआ।

भारतीय ऋषिकोश में उद्धृत एक अन्य घटना के अनुसार महर्षि वसिष्ठ ने सीता के वल्कल धारण करने के प्रसंग को लेकर कैकेयी को डांटा था। राम और लक्ष्मण ने वल्कल वस्त्र धारण कर जाने के लिए तैयार थे। परन्तु सीता को यह नहीं मालूम था कि वल्कल कैसे पहना जाता है ? इसलिये वह उसे हाथ मे लेकर

59· इत्युक्त्वा स तदा राममुपवासं यतव्रतः
मन्त्रवत् कारयामास वैदेह्या सहितं शुचिः।।11।। अयोध्याकाण्ड, प्रथम सर्ग

खड़ी थी। इस हृदयविदारक अवस्था को देखकर वसिष्ठ ऐसे बीत राग महापुरूष का हृदय भी करूणा से द्रवित हो उठा। उन्होंने कैकेयी को डाँटते हुए कहा था "कुल को मलिन करने वाली दुष्ट बुद्धि कैकेयी राजा को वञ्चित कर तुमने अपने स्वत्व को खो दिया है। तेरी प्रतिष्ठा अब धूमिल हो चुकी है। सीता अब वन को नहीं जायेगी। राम के वन चले जाने पर वह राज्य का कार्य देखेगी क्योंकि पत्नी पति की आत्मा होती है। राम के वन चले जाने पर यह सीता उनकी अनुपस्थिति में सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन करेगी। यदि सीता बलपूर्वक राम के साथ चली जायेगी तो हम उनके साथ वन को प्रस्थान कर देंगे साथ ही समस्त अयोध्यावासी वन को प्रस्थान कर देंगे। भरत शत्रुघ्न दोनों भाई भी वल्कल वस्त्र धारण कर वन में राम के साथ निवास करेंगे। तब मानव विहीन मात्र वनस्पतियों के साथ तुम अकेले इस पृथ्वी का पालन करना। अरे प्रजाओं का अहित करने वाली, कुलनाशिनि क्या वह राष्ट्र कभी राष्ट्र हो सकता है जहाँ राम राजा न हो ? जहाँ राम निवास करेंगे वही राष्ट्र बन जायेगा। यदि भरत सचमुच में राजा दशरथ से उत्पन्न हुए होंगे तो पिता द्वारा अदत्त राज्य को कदापि स्वीकार नहीं करेंगे। तुम चाहे जितना प्रयन्त करो, चाहो तो आकाश पाताल एक कर दो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अपने वंश की मर्यादा को समझने वाले भरत कभी भी तुम्हारीं अभिलाषा की पूर्ति नहीं करेंगे। इस प्रकार पुत्र मोह में पड़कर तुमने अपने पुत्र की मर्यादा के प्रतिकूल आचरण किया। क्या इस संसार में एक भी व्यक्ति है जो राम के प्रतिकूल हो ? हे कैकेयी मनुष्य की तो बात ही नही अभी देखना कि राम के वनगमन पर पशु-पक्षी, समस्त जीव-जन्तु भी राम के साथ कदम से कदम मिलाकर उनका अनुसरण करेंगे। इसलिए इन वल्कल वस्त्रों को लेकर उन्हें दूर फेंक दो और शीघ्र ही उत्तम वस्त्र प्रदान करो। हे कैकेयि तुमने तो केवल राम का वनवास चाहा है, सीता का तो नहीं। अतएव यह सीता सुन्दर वस्त्रों में सुशोभित होकर राम के साथ वन में निवास करें।[60]

महाभारत में एक आख्यान में महर्षि वसिष्ठ के विषय में कहा गया है कि एक बार गाधि पुत्र विश्वामित्र शिकार करते हुए अपने सैन्य बल के साथ

60· वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, अध्याय 36

महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में पहुँचे। उसने नन्दिनी की कामना की। पर वसिष्ठ ने स्पष्ट इन्कार कर दिया। महर्षि वसिष्ठ ने कहा कि हे राजन देवता, अतिथि तथा पितरों का पूजन तथा यज्ञ की हविधा आदि के लिए यह दुधारू गाय नन्दिनी इस आश्रम में रहती हैं। तुम्हारे सम्पूर्ण राज्य के बदले भी यह नहीं दी जा सकती हैं, ऐसी वाणी सुनकर क्रुद्ध विश्वामित्र ने बलपूर्वक नन्दिनी को अपहृत कर लिया। इस प्रकार अपमानित नन्दिनी करूण क्रन्दन कर रही थी तो भी दृढवती महर्षि वसिष्ठ न क्षुब्ध हुए और न क्रोध से विचलित हुए। उन्होंने शान्त चित्त होकर नन्दिनी से कहा - "हे कल्याणि क्षत्रियों का बल उनका तेज है, ब्राह्मणों का बल उनकी क्षमा है चूँकि मै क्षमा के अधीन हूँ, अतः तुम्हारी रूचि हो तो जा सकती हो। भद्रे। मैं तुम्हारा त्याग नहीं कर रहा हूँ तुम यदि रह सको तो यहीं रहो। यह तुम्हारा बछड़ा रस्सी से बांधकर ले जाया जा रहा है।

"यदि रह सकती हो तो यहीं रहो" महर्षि के ऐसे वचनों को सुनकर तथा आश्वस्त होकर अपना बड़ा ही भयंकर एवं विकराल रूप धारण कर लिया। विश्वामित्र की सेनाओं को खदेड़ना प्रारम्भ कर दिया। क्रोध से सूर्य के समान प्रदीप्त नन्दिनी ने अपनी पूँछ से बार-बार अग्नि की वर्षा कर रही थी। उसने अपने शरीरांगों से पह्लवों, द्रविणों, शको तथा यवनों को उत्पन्न किया। इन सैनिकों ने अपने असीमित बल से शीघ्र ही विश्वामित्र की सेना को तहस नहस कर दिया। वसिष्ठ ने विश्वामित्र को सम्बोधित करते हुए कहा - "दुरात्मा गाधिनन्दन अब तुम परास्त हो चुके हो तुम्हारे पास यदि कोई पराक्रम अवशिष्ट हो तो उसका भी प्रयोग कर लो।[61]

एक बार इक्ष्वाकुवंशी राजा सौदास ने वैदिक विद्वान, सिद्ध सनातन अपने गुरू महर्षि वसिष्ठ से प्रश्न किया कि त्रैलोक्य में ऐसी कौन सी पवित्र वस्तु है जिसके कीर्तन मात्र से उत्तम लोगों की प्राप्ति होती है तब महर्षि वसिष्ठ ने विनयावनत महाराज सौदास से गौओं को प्रणाम कर उनके माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहा - राजन् गौवें इस संसार के समस्त प्राणियों का आधार हैं। ये महान्

61· महाभारत आदिपर्व, अध्याय 174

कल्याणकारिणी है, गौवों ही भूत-भविष्य हैं। ये ही सनातन पुष्टि का कारण और लक्ष्मी की जड़ है। गायों के निमित्त से जो कुछ भी दिया जाता है वह नष्ट नहीं होता। ये परम अन्न का कारण हैं तथा देवताओं को अर्पित हवि गौ द्वारा ही प्राप्त होती है। देवयज्ञ और इन्द्रयाग ये दोनों यज्ञ गाओं पर ही अवलम्बित हैं। गौवें ही यज्ञफल प्रदान करने वाली हैं। गाओं में ही यज्ञ प्रतिष्ठित हैं, सांय-प्रातः हवन काल में गौवें ही सदा मुनिजनों को हविष्य प्रदान करती हैं जो व्यक्ति गोदान करते हैं वें समस्त संकटों दुष्कर्मों और पापो को तर जाते हैं। जो सौ गायों को रखकर भी अग्निहोत्र नहीं करता हजार गायें रखकर भी यज्ञ नहीं करता तथा जो धनधान्य से सम्पन्न होकर भी कृपण है। ये तीनों मनुष्य सम्मान पाने के अधिकारी नहीं है।[62]

महाभारत में मैत्रावरुणि वसिष्ठ और कराल जनक का संवाद उल्लिखित है। यह संवाद सांख्यदर्शन से संपूरित है, किन्तु वृषारोग ज्वर, गण्ड, विषूचक, सिध्म अपस्मार आदि नामों का कथन हुआ है। पुनः ज्योतिष सम्बन्धी इनका वसिष्ठ सिद्वान्त नामक छोटा सा ग्रन्थ प्रकाशित है।

"पौराणिक कोश" के अनुसार वसिष्ठ का अर्थ §1§ एक प्राचीन ऋषि वेदों से लेकर रामायण, महाभारत, पुराणादि सब ग्रन्थों में इनका उल्लेख मिलता है। वेदों के अनुसार काबुल, गान्धर की तरफ राज्य करने वाले राजा दिवोदास के यह पुरोहित थे। पुराणानुसार सृष्टि के प्रथम कल्प में यह ब्रह्मा के मानस पुत्र ठहरते हैं। इनकी अनेक पत्नियाँ थी जिनमें से कर्दम की पुत्री अरून्धती को वसिष्ठ अधिक चाहते थे। विश्वामित्र तथा राजा निमि से इनका जो झगड़ा हुआ वह अधिक प्रसिद्व है। ब्रह्मा के कहने से यह सूर्यवंश के पुरोहित हुए पर निमि से विवाद के कारण सूर्यवंश की दूसरी शाखाओं का पुरोहित कर्म छोड़कर "अयोध्या के समीप आश्रम बनाकर रहने लगे और अब यह इक्ष्वाकुवंश के पुरोहित रह गये। इन्हीं के कारण विश्वामित्र ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के लिए तप करने लगे थे। कहते हैं विश्वामित्र के सौ पुत्रों को वसिष्ठ ने केवल हुंकार से भस्म कर दिया था। यह ऋग्वेद के अनेक

62· महाभारत अनुशासन पर्व, अध्याय 78

मन्त्रों के द्रष्टा थे। वसिष्ठ पुत्र अत्र स्वारोचिष युग के प्रजापति थे §मत्स्य0 9/9§ और शक्ति नामक इनके पुत्र एक गोत्रकार ऋषि थे §योग वाशिष्ठ, वशिष्ठ संहिता§ वसिष्ठ नामक सुविख्यात ब्राह्मणवंश सदियों तक अयोध्या के इक्ष्वाकुराजवंश पौरोहित्य करता था।[63] यह ब्रह्मा के प्राण वायु §समान§ से उत्पन्न हुए थे।[64]

महर्षि वसिष्ठ की दो पत्नियाँ - अर्जा जो दक्ष प्रजापति की कन्या थी, तथा दूसरी अरुन्धती जो कर्दम प्रजापति के नौ कन्याओं में से आठवीं कन्या थी। इन दोनों के अतिरिक्त शतरूपा नाम की एक अन्य पत्नी भी थी जो स्वयं इनकी ही अयोनिसंभवा कन्या थी।

अर्जा से पुण्डरीका नाम की एक कन्या एवं सप्तर्षि संज्ञक सात पुत्र उत्पन्न हुए थे - दक्ष §रत्न§, गर्त, ऊर्ध्ववाहु, सवन, पवन, सुतपस, एवं शंकु। भागवत में ऊर्जा के पुत्रों के नाम चित्रकेतु आदि बताये गये हैं।[65] इनकी कन्या पुण्डरीका का विवाह प्राण से हुआ था जिसकी वह पटरानी थी। प्राण से उसे द्युतिमान नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। इनके पुत्र "रत्न" का विवाह मार्कण्डेयी से हुआ था। जिससे उसे पश्चिम दिशा का अधिपति केतुभत - प्रजापति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।[66] इसके अतिरिक्त इन्हें हवीन्द्र आदि सात पुत्र उत्पन्न हुए थे। सुकात आदि पितर भी इनके ही पुत्र कहलाते हैं।

इनकी "अयोनिसंभवा" कन्या शतरूपा से इन्हें वीर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। वीर का विवाह कर्दम प्रजापति की कन्या काम्या से हुआ था। जिससे प्रियव्रत एवं उत्तानपाद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनमें से प्रियव्रत को अपनी माता काम्या से ही सम्राट, कुक्षि, विराट एवं प्रभु नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। उत्तानपाद को अत्रि ऋषि ने गोद लिया था।[67]

---

63. वायु0, 59/89, ब्रह्माण्ड0 1/32/96-98
64. भागवत् 3/12/23
65. भागवत, 4/1/41
66. ब्रह्माण्ड0 2/12/29-43
67. ह0व0 1/2

मत्स्य महापुराण में वशिष्ठ वंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन इस प्रकार किया गया है -

वसिष्ठवंशजान् विप्रान् निबोध वदतो मम
एकार्षेयस्तु प्रवरो वासिष्ठानां प्रकीर्तितः ‖1‖
वसिष्ठा एवं वासिष्ठा अविवाह्या वसिष्ठजैः
व्याघ्रपादाऔपगवावैक्लवाः शाद्वलायनाः ‖2‖
कपिष्ठला औपलोमा अलब्धाश्चषठाः कठाः
गोपयानाबोधपाश्चदाकव्याह्यथवाह्यकाः ‖3‖
वालिशयाः पालिश्यास्ततोवाग्ग्रन्थयश्चये
आपस्थूणाः शीतवृत्तास्तथाब्राह्मपुरेयकाः ‖4‖
लोमायनाः स्वस्तिकराः शाण्डिलिगौडिनिस्तथा
वाऽोहलिश्च सुनाश्चोपावृद्धिस्तथैव च ‖5‖
चौलिवौलिर्ब्रह्मबलः पौलिः श्रवस एव च
पौड्वो याज्ञवल्क्यश्च एकार्षेयामहर्षयः ‖6‖
वसिष्ठ एषां प्रवर अवैवाह्याः परस्परम्
शैलालयो महाकर्णः कौरव्यः क्रोधिनस्तथा ‖7‖
कपिञ्जला बालखिल्याभागवित्तायनाश्चये
कौलायनः कालशिखः कोरकृष्णाः सुरायणा ‖8‖
शाकाहार्याः शाकधियः काण्वा उपलपाश्चये
शाकायना उग्रकाश्चअथमाषशरावयः ‖9‖
दाकायनावालवयोवाकयो गोरथास्तथा
लम्बायनाः श्यामवयो ये चकोडोदरायणाः ‖10‖
प्रलम्बायनाश्च ऋषय औपमन्यव एव च
साङ्ख्यायनाश्चऋषयस्तथावै वेदशेरकाः ‖11‖
पालङ्कायन उद्गाहा ऋषयश्च बलेक्षवः
मतिया ब्रह्मबलिनः वर्णागारिस्तथैव च ‖12‖
त्यार्षेयोऽपिमतश्चैषां सर्वेषां प्रवरस्तथा
भिगीवसुर्वसिष्ठश्च इन्द्रप्रमदिरवेच ‖13‖
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिता
औपस्थलास्वस्थलयो पालोहाला हलाश्च ये ‖14‖

माध्यन्दिनो माक्षतयः पैपलादिविचक्षुषः
त्रैश्रृड·ग्ायन सेवल्काः कुण्डिनश्च नरोत्तमः ॥15॥
त्र्यार्षेयाभिमताश्चेषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः
परस्परमवेवाह्मा ऋषयः परिकीर्तिताः ॥16॥
शिवकर्णो वयश्चेव पादंपश्च तथैव च
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चेषं सर्वेषां प्रवरस्तथा ॥17॥
जातृकर्ण्योवसिष्ठश्च तथैवात्रिश्च पार्थिवः
परस्परमवेवाह्मा ऋषयः परिकीर्तिताः ॥18॥

वसिष्ठ गोत्र में उत्पन्न होने वाले ऋषियों का प्रवर एक मात्र वसिष्ठ ही है। इन वसिष्ठ वंशजों का विवाह वसिष्ठ गोत्रजों में निषिद्व है। व्याघ्रपाद, औपगव, वैल्कव, शादलायन, कपिष्ठल, औपलोम, अलब्ध, शठ, कठ, गोपायन, बोधय, दाकव्य, वाह्मक, वालिशय, पालिशय, वाग्ग्रन्थ, आपस्थथूण शीतव्रत, ब्राह्मपुरेण्यक, लोमायन, स्वस्तिकर, शाण्डिलि, गौडिनि, वाडोहलि, सुमना, उपावृदि, चौलि, बौलि, ब्रह्मबल, पौलि, श्रवस, पौडव तथा याज्ञवल्क्य - ये सभी महर्षि एक ऋषि प्रवर वाले हैं। इन सबों के प्रवर एक मात्र वसिष्ठ जी है। इसके वंशधर परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं स्थापित करते।

शैलालय, महाकर्ण, कोरव्य, क्रोधिन, कपिञ्जल, बालखिल्य, भागवित्तायन, कौलायन, कालशिख, कोरकृष्ण, सुरायण, शाकाहार्य, शाकधिय, काण्व, उपलय, शाकायन, उहाक, माषशरावय, दाकायन, वालवय, वाकय, गोरथ, लम्बायन, श्यामवय, क्रोडोदरायण, प्रलंबायन, औपमन्यव, सांख्यायन, वेदशेरक, पालंकायन, उद्गाह, बलेक्षण, मातेय, ब्रह्ममलिन, तथा पन्तगिरि इन सभी ऋषियों के तीन प्रवर कहे जाते हैं। भगीवसु, वसिष्ठ तथा इन्द्रप्रमटि। इनसे परस्पर विवाह निषिद्व है। औपस्थल, स्वस्थलय, वाल, हाल, हल, माध्यन्दिन, माक्षतय, पैप्पलादि, विचक्षुण, त्रैश्रृंगायण, सेवल्क तथा कुण्डिन - इन सभी ऋषियों के तीन प्रवर कहे है, वसिष्ठ, मित्रावरुण तथा महातपस्वी कुण्डिन। दानकाम, महावीर्य, नागेय, परम आलम्ब, वायन तथा चक्रोडादि - इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्व है। शिवकर्ण वय तथा पादन - इन सभी के तीन

प्रवर कहे गये हैं। जातू कर्ण, वसिष्ठ तथा अत्रि। इनमें परस्पर विवाह नहीं होते।

वसिष्ठ कुल में अनेक महत्वपूर्ण व्यक्ति उत्पन्न हुए हैं पार्जिटर के अनुसार कालानुक्रम से वशिष्ठ के वंश में उत्पन्न व्यक्ति प्राचीन भारतीय इतिहास में अपना विशेष महत्व रखते हैं। उनमें से प्रथम है वसिष्ठ देवराज जो अयोध्या के त्रय्यारुण, त्रिशंकु एवं हरिश्चन्द्र राजाओं के समकालीन थे। दूसरे वसिष्ठ आपव जो हैहय राजा कार्तवीर्य अर्जुन के समकालीन थे। तीसरे वसिष्ठ अथर्वनिधि प्रथम हुए जो अयोध्या के बाहु राजा के समकालीन थे। चौथे वसिष्ठ श्रेष्ठभाज जो अयोध्या के मित्रसह कल्मासपाद, सौदास राजा के समकालीन थे। पाँचवे वसिष्ठ अथर्वनिधि द्वितीय जो अयोध्या के दिलीप खट्वांग राजा के समकालीन थे। छठां वसिष्ठ हुए जो अयोध्या के दशरथ एवं राम के समकालीन थे। इसके बाद वसिष्ठ मैत्रावरुण जो उत्तर पाञ्चाल देश के पैजवन सुदास राजा के समकालीन थे। इनका निर्देश ऋग्वेद आदि वैदिक ग्रन्थों में पाया जाता है। वसिष्ठ शक्ति जो वसिष्ठ मैत्रावरुण का पुत्र था। वसिष्ठ सुवर्चस् जो हस्तिनापुर के संवरण राजा के समकालीन थे। दसवां वसिष्ठ हुए जो अयोध्या के मुचकुन्द राजा के समकालीन थे। पुनः एक वसिष्ठ हुए जो हस्तिनापुर के राजा हस्तिन् के समकालीन थे। बारहवां वसिष्ठ धर्मशास्त्रकार हुए जो "वसिष्ठस्मृति" संज्ञक धर्मशास्त्र विषयक ग्रन्थ के सर्जक माने जाते हैं।[68]

महाभारत एवं पुराणों में वसिष्ठ के तीन भिन्न-भिन्न वंशानुक्रम प्राप्त होते है (1) अरुन्धती शाखा (2) घृताची शाखा (3) व्याघ्री शाखा इनमें से अरुन्धती ब्रह्ममानस पुत्र वसिष्ठ ऋषि की पत्नी एवं घृताची मैत्रावरुण ऋषि की पत्नी थी।

अरुन्धती शाखा के अन्तर्गत वसिष्ठ (अरुन्धती) से शक्ति (स्वागरज अथवा सागर) - पराशर (काली) -कृष्णद्वैपायन (अरणी) - शुक (पीवरी) भूरिश्रवस - प्रभु, शंभु, कृष्ण, गौर एवं कीर्तिमती जो ब्रह्मदत्त की पत्नी थी।

---

68. प्राचीन चरित्रकोश पृ०सं० 804-805

घृताची शाखा के अन्तर्गत वसिष्ठ मैत्रावरुण की पत्नी घृताची से - इन्द्रप्रमति अथवा कुणीति अथवा कुशीति - वसु (पृथुसुता) - उपमन्यु[69] व्याघ्री शाखा के अन्तर्गत वसिष्ठ और व्याघ्री से व्याघ्रपाद, मन्थ, वादलीप, जावालि, मन्यु, उपमन्यु, सेतुकर्ण आदि कुल उन्नीस गोत्रकार पुत्र उत्पन्न हुए।[70]

वसिष्ठ के गोत्रकारों में प्रमुख दो प्रकार के गोत्रकार पाये जाते है- (1) एक प्रवरात्मक (एक प्रवर वाले) (2) और त्रिप्रवरात्मक (तीन प्रवरों वाले) इस प्रकार ये दो प्रमुख प्रकार है।

वसिष्ठ गोत्रीय लोगों में "जातुकर्ण" पैतृक नाम धारण करने वाले लोग प्रमुख थे। इसी नाम के एक ऋषि ने व्यास को वेद एवं पुराणों की शिक्षा प्रदान की थी। इसीलिए जातुकर्ण को अट्ठाईस द्वापरों में से एक युग का व्यास कहा गया है।[71]

वसिष्ठ वंश के मन्त्रकारों की नामावली, वायु मत्स्य एवं ब्रह्माण्ड0 पुराणों में उपलब्ध है।[72] इनमें से वायु पुराण में प्राप्त नामावलि मत्स्य0 एवं ब्रह्माण्ड0 में प्राप्त पाठान्तरों के सहित इस प्रकार है - इन्द्रप्रमति (इन्द्र प्रतिम) कुण्डिन, पराशर, वृहस्पति, भरद्वसु, भरद्वाज, मैत्रावरुण (मैत्रावरुणि) वसिष्ठ, शक्ति, सुद्युम्न।

महर्षि वसिष्ठ जो अयोध्या के मांधातृ राजा के पुत्र मुचकुंद राजा के पुरोहित थे।[73] तथा एक ऐसे ऋषि जो रंतिदेव सांकृत्य के पुरोहित थे। राजा रंतिदेव हस्तिनापुर के राजा हस्तिन् के समकालीन थे। उसने इन्हें ब्रह्मर्षि मानकर अर्घ्य प्रदान किया था।[74] इसके अतिरिक्त इनका उल्लेख रैवतक मन्वन्तर के एक ऋषि के रूप में भी पाया जाता है तथा सावर्णि मन्वन्तर के एक ऋषि, ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तर के एक ऋषि, धर्मनारायण नामक शिवावतार का एक शिष्य के रूप में जाना जाता जाता है।

69· म0अनु0 53/30-32

70· ब्रह्माण्ड0 3/80/90-100, वायु0 71/83-90, लिङ्ग 1/63/78-92, कूर्म0 1/19, मत्स्य0 200

71· वायु0 23/115/219

72· वायु0 59/105-106, मत्स्य0 145/109-110, ब्र0 2/32/115-116

73· महाभारत, 75/7

74· महाभारत, 2617/ अनु0 200/6

एक समय जब महर्षि वसिष्ठ श्राद्ध देव के पुरोहित थे, श्राद्धदेव को कोई सन्तान न थी। जिस हेतु उसने मित्रावरुणों को उद्देश्य कर एक यज्ञ का आयोजन किया। श्राद्धदेव की पत्नी श्रद्धा की उत्कृष्ट इच्छा थी कि उसे कन्या पैदा हो। इस इच्छानुसार यज्ञ से उसे "इला" नामक कन्या उत्पन्न हुई। किन्तु इसके विपरीत श्राद्धदेव पुत्राकांक्षी था जिस कारण इस कन्या का पुत्र रूप में रूपान्तर किया।[75] राजा अम्बरीष के यज्ञ में भी यह उपस्थित थे।[76] इन्हें आठवें वेदव्यास के रूप में भी जाना जाता है। जिसे इन्द्र ने ब्रह्माण्ड पुराण की शिक्षा दी थी। आगे चलकर यही पुराण इन्होंने सारस्वत ऋषि को सिखाया।[77] इनका आश्रम उर्ज्जन्त पर्वत पर था।[78] एक ऐसा ऋषि वारुणि यज्ञ के "वसुमध्य" से उत्पन्न हुआ था। इसी कारण इसे वसुमत कहते थे। आगे चलकर इसी से ही सुकात नामक पितर उत्पन्न हुए।[79] वृहत्कथा के राजा धर्ममूर्ति का पुरोहित[80] जिसका नाम वसिष्ठ था। इसी ने त्रिपुरदहन के हेतु शिव की स्तुति की थी।[81] वसिष्ठ संज्ञक एक शिल्पशास्त्र[82] थे। एक ऐसा ऋषि जो शरशय्या पर पड़े भीष्म पितामह से मिलने के लिए गया था।[83] युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय भी यह उपस्थित था।[84] अगस्त्य ऋषि का छोटा भाई जो विदेह देश के निमि राजा का पुरोहित था।

भगवान् शंकर के शाप से ब्रह्मा के दसों मानस पुत्र जलकर नष्ट हो गये थे। वर्तमान मन्वन्तर के प्रारम्भ में ब्रह्माजी ने उन्हें पुनः जीवित किया उनमें से एक वसिष्ठ भी थे। यह अग्नि के मध्यम भाग से उत्पन्न हुए थे। इनकी पत्नी का नाम अक्षमाला था।[85] एक बार राजा निमि से इनका झगड़ा हो गया दोनों ने परस्पर एक दूसरे को विदेह {देह रहित} हो जाने का शाप दिया उसी शाप से इन दोनों की मृत्यु हो गयी।

भागवत महापुराण में वसिष्ठ का जो उल्लेख प्राप्त होता है उसके अनुसार सन्तानहीन वैवस्वत मनु को सन्तान प्राप्ति हेतु वसिष्ठ ने मित्रावरुण का यज्ञ कराया

75· भागवत, 9/1/13-22
76· मत्स्य0 245/86
77· ब्रह्माण्ड0 2/35/118
78· ब्रह्माण्ड 3/13/53
79· 3/1/21, मत्स्य0 195/11
80· मत्स्य0 92/21
81· मत्स्य0 133/67
82· मत्स्य0 252/2
83· भागवत0 1/9/7
84· भागवत, 10/74/7

था। मनु की धर्मपत्नी श्रद्धा ने होता से कन्या की याचना की। ब्राह्मण ने श्रद्धा के कथन का स्मरण करते हुए यज्ञ कुण्ड में आहुति प्रदान की जिससे इला नामक कन्या उत्पन्न हुई जिसे देखकर मनु अप्रसन्न हुआ। उन्होंने वसिष्ठ मुनि से कहा कि आप तो ब्रह्मवादी है, आपका कर्म इस प्रकार विपरीत फल देने वाला कैसे हो गया। आप जितेन्द्रिय हैं, आप का मन्त्र ज्ञान पूर्ण है फिर भी यह विपरीत परिणाम कैसे हुआ ? ऐसासुनकर वसिष्ठ को ज्ञात हो गया और वसिष्ठ ने कहा कि तुम्हारे होता के विपरीत संकल्प के कारण ही हमारा संकल्प पूरा नहीं हुआ। अतः मै अपने तप की महिमा से तुम्हें श्रेष्ठ पुत्र दूँगा। परम यशस्वी भगवान् वसिष्ठ ने ऐसा संकल्प करके उस इला नाम की कन्या को ही पुत्र रूप में परिवर्तित कर दिया। अतः श्रीनारायण की प्रभाव से वह कन्या ही सुद्युम्न नामक पुत्र हुआ। सुद्युम्न की दशा को देखकर वसिष्ठ से दया से द्रवित हो गये। उन्होंने सुद्युम्न को पुनः पुरूष बनाने के लिए आराधना से भगवान शंकर को प्रसन्न किया। प्रसन्नतापूर्वक भगवान शंकर ने वसिष्ठ की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए कहा कि वसिष्ठ तुम्हारा यह यजमान एक महीने तक पुरूष और एक महीने तक स्त्री रहेगा। इसी व्यवस्था से पृथ्वी का पालन करे। वसिष्ठ की कृपा से व्यवस्थापूर्वक अभीष्ट पुरूषत्व प्राप्त करके सुद्युम्न पृथ्वी का पालन करने लगा।[86]

एक अन्य आख्यान के अनुसार एक बार मनु-पुत्र पृषध्र को वसिष्ठ ने गायों की रक्षा के लिये नियुक्त किया था। इस कार्य को वह रात भर जगकर बड़ी सावधानी से करने लगा। किसी दिन वरसात की अंधेरी रात में गायों के मध्य एक बाघ घुस आया और एक गाय को पकड़ लिया। गाय के क्रन्दन को सुनकर पृषध्र दौड़कर गोशाला में गया। अनजान में बाघ समझकर गाय के गरदन को ही काट दिया। अंधेरी रात में बाघ को मरा हुआ समझकर लौट आया और जब सुबह हुई तो देखा कि गाय मरी पड़ी है। ऐसा दृश्य देखकर बड़ा दुःखी हुआ। बाघ का केवल कान काटा था जिससे भयभीत होकर खून गिराता हुआ भाग गया था। इस अनजान अपराध के लिए कुल पुरोहित वसिष्ठ ने शाप दिया कि तुम इस कर्म से क्षत्रिय न होकर शूद्र हो जाओं। पृषध्र ने अपने गुरू के आदेश को भज्जलि बाँध कर स्वीकार कर

85· म0उ0, 115/11

86· भागवतमहापुराण, नवम स्कन्ध प्रथम अध्याय पृ0 15

लिया। इसके बाद सदा के लिये मुनियों को प्रिय नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया।

इसी प्रकार राजा सौदास भी वसिष्ठ के शाप से राक्षस हो गया था।

एकदा राजा निमि ने अपनी एक यज्ञ के लिये महर्षि वसिष्ठ को ऋत्विज बनाना चाहा। महर्षि वसिष्ठ ने कहा कि इन्द्र अपनी यज्ञ के लिए मुझे पहले ही वरण कर चुके हैं ॥1॥ उनका यज्ञ करवाकर मै तुम्हारी यज्ञ में ऋत्विज बनूँगा। तब तक मेरी प्रतीक्षा करो। यह बात सुनकर राजा निमि चुप रहे। वसिष्ठ इन्द्र के यज्ञ में भाग लेने चले गये। राजा निमि ने विचार किया कि जीवन क्षणभंगुर है इसलिये विलम्ब करना अच्छा नहीं होगा, अतः अन्य ऋत्विज का वरण कर लेना चाहिए। जब वसिष्ठ इन्द्र का यज्ञ सम्पन्न कराकर वापस आये तो देखा कि निमि उनकी बात का अनादर करके यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। तब वसिष्ठ ने इन्द्र को शाप दे दिया कि निमि को अपनी विचारशीलता और पाण्डित्य का बड़ा घमण्ड है इसलिये इसका शरीर पात हो जाय। निमि के विचार से गुरु वसिष्ठ का शाप धर्म के अनुकूल न हो का प्रतिकूल है। इसलिये राजा निमि ने भी गुरु वसिष्ठ को शाप दिया कि आप ने लोभ के कारण अपने धर्म का अनादर किया है इसलिये आप का शरीर पात हो जाय। ऐसा कहकर आत्मविद्या मे निपुण निमि ने अपना शरीर त्याग दिया। वसिष्ठ ने भी अपना शरीर त्याग कर मित्रावरुण के द्वारा उर्वशी के गर्भ से जन्म ग्रहण किया।[87]

एक अन्य आख्यान के अनुसार छोटा भाई इक्ष्वाकु अपने बड़े भाई इल के स्त्री हो जाने पर राजधानी न लौटने पर उन्हें ढूढ़ते-ढूढ़ते शरवण नामक विशाल उपवन के पास पहुँचे। वहाँ देखा कि अग्रज इल का श्रेष्ठ घोड़ा चन्द्रप्रभ घोड़ी रूप में परिवर्तित हो गया है। ऐसी विचित्र बात कैसे घटित हो गयी ? इसका समाधान जानने के लिये सारा वृत्तान्त वसिष्ठ को कह सुनाया। वसिष्ठ ने अपनी

---

87. श्रीमद्भागवतमहापुराण, नवम स्कन्ध पृ0सं0 284-285, विष्णु0 4/5/1-5, भा0 9/13/1-6, वा0रा0 उ0 55-56, पद्म0 पा0 5/22, मत्स्य0 201/17-22, पद्म0 पा022/37-40

योग दृष्टि से सभी बाते जानकर इक्ष्वाकु आदि से कहा - बहुत दिन पहले शरवण नाम श्रेष्ठ उपवन में पार्वती के विहार में कोई विघ्न उपस्थित नहो इस विचार से प्रतिज्ञा की थी कि इस क्षेत्र में जो कोई पुरूष जीव प्रवेश करेगा वह स्त्री हो जायेगा। यह अश्व भी राजा इल के साथ इस उपवन में प्रवेश करने के कारण स्त्री योनि में परिणत हो गया है।

वसिष्ठ अथर्वनिधि एक ऐसा ऋषि था जो अयोध्या के राजा हरिश्चन्द्र की आठवीं पीढ़ी में उत्पन्न हुए राजा "बाहु" के राजपुरोहित थे। हैहय तालजंघ राजाओं ने कांबोज, यवन, पारद, पह्लव आदि उत्तर पश्चिमी प्रदेश में निवास करने वाले लोगों की सहायता से राजा बाहु को राज्यच्युत कर दिया। पुनः आगे चलकर राजा बाहु के पुत्र सगर ने समस्त शत्रुओं को पराजित कर पुनः राज्य प्राप्त कर लिया। राजा सगर इन लोगों का ही संहार करने वाला था कि महर्षि वसिष्ठ ने इस पाप कर्म से उसे रोक दिया। वसिष्ठ ने ही सगर परशुराम की कथा सुनायी थी, तथा इन्होंने ही सगर-पुत्र अंशुमत् का यौव राज्याभिषेक किया।[88] ब्रह्माण्ड एवं वृहन्तारदीय पुराणों में इन्हें क्रमशः "आपव" एवं "अथर्वनिधि" कहा गया है।[89] महाभारत में इसके नन्दिनी गाय के द्वारा शक, काम्बोज, पारद आदि म्लेच्छ जाति के निर्माण होने का एवं उनकी सहायता से इसके द्वारा विश्वामित्र को पराजित करने का उल्लेख मिलता है।[90] किन्तु वहां पर वसिष्ठ अथर्वनिधि को वसिष्ठ देवरात कहा गया है जो संदेहास्पद प्रतीत होता है क्योंकि विश्वामित्र के समकालीन वसिष्ठ देवरात थे। वसिष्ठ अथर्वनिधि तो उनसे बहुत पहले के थे। ये दिलीप खट्वांग राजा के पुरोहित थे जिनकी सलाह से राजा दिलीप ने नन्दिनी नामक कामधेनु की उपासना की थी जिसकी प्रसाद से उन्हें रघु नामक प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ।[91]

88· ब्रह्मपुराण 3/31/1, 47/99

89· ब्रह्माण्ड0 3/49/43, वृहन्तारदीय 8/63

90· महाभारत 165, वा0रा0 बालकाण्ड 54/18/55

91· रघु, 1/3, पद्म पु0 202/203

वसिष्ठ आपव एक ऐसे ऋषि थे जिनका आश्रम पर हिमालय पर्वत पर स्थित था। हैहय राजा कार्तवीर्य अर्जुन ने इनका आश्रम जला दिया था। फलतः इसने उन्हें शाप दे दिया।[92] ब्रह्माण्डपुराण में इनकी "मध्यमा" भक्ति का उल्लेख हुआ है।[93] मत्स्यपुराण में इन्हें ब्रह्मवादिन बतलाया गया है।[94] वायुपुराण में इन्हें "वारुणि" कहा गया है[95] इनका पैतृक नाम आपव था। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि अप् (जल) के पुत्र थे। अतः इनके "आपव" और "वारुणि" ये दोनों पैतृक अभिधान समानार्थी प्रतीत होते हैं।

वसिष्ठ चैकितानेय एक आचार्य थे। जो स्थिरक गार्ग्य नामक आचार्य के शिष्य थे।[96] गोतमी आरुणि नामक आचार्य से वाद-विवाद करने वाले चैकितानेय वासिष्ठ एवं यह दोनो सम्भवतः एक ही रहे होंगे।[97]

वसिष्ठ देवराज एक ऋषि थे जो अयोध्या के त्रैय्यारुण, सत्यव्रत, त्रिशंकु एवं हरिश्चन्द्र आदि राजाओं के पुरोहित थे। हरिश्चन्द्र के यज्ञ में यही ब्रह्मा थे। इनका राजा त्रिशंकु से हुआ संघर्ष एवं उसी के कारण इनका विश्वामित्र ऋषि से भयानक संघर्ष हुआ था। जो प्राचीन इतिहास की एक प्रख्यात घटना है। यह संघर्ष सत्यव्रत त्रिशंकु के राज्यकाल में प्रारम्भ हुआ था और रोहित के राज्यकाल तक चलता रहा। सत्यव्रत के सदेह स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके पुत्र हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र को अपना पौरोहित्य पद पुनः प्राप्त किया। हरिश्चन्द्र के ही राज्यकाल में उसके पौरोहित्य के बदले विश्वामित्र के सम्बन्धी शुनःशेप की यज्ञ में बलि देने का षड्यन्त्र देवराज वसिष्ठ के द्वारा किया गया किन्तु विश्वामित्र ने शुनःशेप की रक्षा कर उसे अपना पुत्र स्वीकार कर लिया।

अग्निपुराण में वसिष्ठ के बारे में कहा गया है -

---

92. वायु0 94/39/47, ह0व0 33/18/84
93. ब्रह्माण्ड0 3/30/70, 34/40/41
94. मत्स्य0 145/90
95. वायु0 94/42-43
96. वं0बा0 2
97. जै0उ0ब्रा0 1/4/2/1

"मृधे सहस्त्रं वाहूनाहेमतालवनयथा।

यवसिष्ठस्तुसंक्रुद्धोह्मर्जुनशप्तवान्विभुः ।।84।।

यस्मादनं प्रदग्धं ते विश्रुतं मम हैहय।

तस्मास्ते दुष्कृतं कर्मककृतमन्योहनिष्यति।।85।।

दित्याबाहुसहस्त्रंते प्रभस्याल्प्सावली।

तपर्स्व ब्राह्मणस्त्वावेवधिष्यतिभार्गवः।।86।।

अर्थात् महर्षि वसिष्ठ ने क्रोधित होकर सहात्रार्जुन को शाप दे दिया कि हे हैहय। तुमने मेरा परम प्रसिद्ध हेमताल वनदग्ध कर दिया है। अतः इस दुष्कृत से तुम्हें ऐसा परिणाम भोगना होगा कि कोई दूसरा बली तेरा हनन कर देगा। तुम्हारी इन सहस्त्रों बाहुओं का छेदन करके बलपूर्वक तुम्हारा प्रमथन कर बलवान् परम तपस्वी ब्राह्मण परशुराम तेरा वध कर देगा।

इस प्रकार ब्रह्मपुराण में भी कहा गया है कि-

अयोध्या चेव राज्यं च तथैवान्त पुरं मुनिः

याज्योपाध्यामसंयोगाद्वसिष्ठः ययर्यरक्षत्।।

सत्यव्रतस्तु वाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वैवलात्

वसिष्टेभ्यधिकं मन्युं धारयापास नित्यशः।

पित्रा हि तं तदा राष्ट्रत्यज्यमान प्रिय सुतम्।

निवारयामास मुनिर्बहुना कारणेन च।"

अर्थात् अयोध्या सम्पूर्ण राज्य तथा अन्तःपुर को महर्षि वसिष्ठ ने याज्योपाध्याय के संयोग से परिरक्षित किया था। सत्यव्रत वचपन से और भावी अर्थ के वल से वसिष्ठ मुनि में नित्य ही अधिक मन्यु अर्थात् क्रोध को धारण करता था। उस समय में पिता के द्वारा त्यागे हुए उस प्रिय पुत्र को अनेक कारणों से मुनि को निवारण किया था। देश धर्म में जाने वाले राजा सत्यव्रत ने उस धेनु का वध करके उसके मांस को स्वयं तथा विश्वामित्र के पुत्रों को खिला दिया था। ऐसा जानकर वसिष्ठ

मुनि अत्यन्त क्रोधित हो गये थे। महर्षि वसिष्ठ ने कहा बिना किसी संशय के तेरे इस शंकु को गिरा देता यदि पुनः कृति ने तुम्हारे ये दो शंकु न होते। पिताजी के असन्तोष से और गुरु की धेनु का हनन करने से तथा अप्रोक्षितोप के योग से तुम्हारा तीन प्रकार का व्यतिक्रम है। इस प्रकार से उस महान् तपस्वी ने उसके उस तीन शंकुओं को देखकर उससे "त्रिशंकु" इस अभिधान से जाना गया। इसी तरह का आख्यान हरिवंश पुराण में भी पाया जाता है। उसी में बताया गया है कि वसिष्ठ सातवें मन्वन्तर में ऋषि है §वसुमध्यात् समूत्पन्नो वसिष्ठस्तु तपोधनः§ वामनपुराण में भी वसिष्ठ का उल्लेख हुआ है।[98]

सरस्वती ने विनम्रतापूर्वक वसिष्ठ को विश्वामित्र के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। वसिष्ठ को देखकर क्रुद्ध विश्वामित्र उनका वध करने के लिए शस्त्र ढूढ़ने लगे। उन्हें अति क्रुद्ध देख ब्रह्महत्या के भय से भयाकुल सरिता गाधिपुत्र विश्वामित्र को वञ्चित करती हुई वसिष्ठ को जल मे प्रवाहित कर दी । वसिष्ठ को बहाया गया देखकर क्रुद्ध विश्वामित्र ने सरस्वती को शाप दिया कि "तुम श्रेष्ठ राक्षसों से संयुक्त होकर शोणित का वहन करो।[99]

वसिष्ठ एवं विश्वामित्र के प्रतिस्पर्धा की कथा तो वैदिकोत्तर साहित्य में सर्वविदित है। वृहद्देवता के अनुसार वसिष्ठ वारुणि के सो पुत्रों का सौदासस् §सुदास§ ने वध किया जिससे क्रुद्द होकरइसने उसे राक्षस बनने की शाप दे दिया।[100] लिड·ग्पुराण के अनुसार विश्वामित्र के द्वारा निर्मित्त राक्षसों ने कल्माषपाद सौदास के राजा को गिरा लिया, एवं उसके द्वारा शक्ति आदि वसिष्ठ के सौ पुत्रों का हनन किया। शक्ति की मृत्योपरान्त उसकी पत्नी अदृश्यन्ती को पराशर नामक पुत्रोत्पत्ति हुई।[101] किन्तु पार्जिटर के अनुसार "अयोध्या के कल्माषपाद

98· वामनपुराण पृ0 सं0 106-108
99· वसिष्ठापवाह उन्नीसवाँ अध्याय
100· वृहद्देवता 5/28/33-34
101· लिड·ग्0, 1/63/83

सौदास के द्वारा मारे गये वसिष्ठ पुत्रों का पिता वसिष्ठ मैत्रावरुणि न होकर इससे काफी उत्तरकालीन वसिष्ठ श्रेष्ठभाज् नामक वसिष्ठ कुलोत्पन्न अन्य ऋषि था। एवं अयोध्या के सुदास राजा द्वारा वसिष्ठ मैत्रावरुणि के शक्ति नामक मात्र एक ही पुत्र का वध किया गया था।[102]

पुराणों के अनुसार निमि राजा द्वारा शाप दिये जाने पर वायु रूप में वसिष्ठ ब्रह्मा के पास गये तथा ब्रह्मा की इच्छा से उर्वशी को देखकर स्खलित हुए मित्रवरुणों के वीर्य से यह कुम्भ से उत्पन्न हुआ।[103]

क्रोध से विश्वामित्र ने वसिष्ठ के सौ पुत्रों को राक्षसों के द्वारा भक्षण करवायें इससे वसिष्ठ जीवन से विरक्त होकर नदी में प्राण त्याग देने गये किन्तु बच गये। इसीलिए उस नदी की विपाशा नाम दिया गया।[104] क्योंकि उस नदी ने वसिष्ठ को पासमुक्त करके उसे बचाया था। उसे "शतद्रु" नाम दिया गया। उसे इस नाम से क्यों जाना जाता है ? सम्भवतः इसका कारण यही हो सकता है कि जब जय शतद्रु (आधुनिक सतलज) नदी में व्याकुल होकर कूद पड़े तब यह नदी इसे अग्नि के समान तेजस्वी जानकर सैकड़ो धाराओं में फूटकर इधर-उधर बहनेलगी अर्थात् भाग चली। शतधा विद्रुत होने से उसका नाम "शतद्रु" हुआ।[105]

वसिष्ठ ने जब विश्वामित्र पर यह आरोप लगाया कि उसने मेरे सौ पुत्रों को समाप्त कर दिया। तब पैजवन के समक्ष शपथपूर्वक उसने इस बात को अमान्य कर दिया।[106] काल दृष्टि से यह असंगत प्रतीत होता है।

महर्षि वसिष्ठ को कक्षसेन ने अपनी सम्पत्ति प्रदान की थी।[107] वसिष्ठ ने पक्षवर्धिनी एकदशी का व्रत किया था।[108] इसने वकुला-संगम पर परमेश्वर की सेवा की थी।[109] इन्द्रप्रस्थ के सप्ततीर्थ की महिमा से इनको महापवित्र पुत्र

102· पार्जिटर, पृ0 209
103· वा0रा0 उ0 57 मत्स्य0 60/20-40, 200
104· म0व0, 130/8-9
105· म0भा0 167-9
106· मनु0 8/10
108· पद्म0 उ0 36

उत्पन्न हुए थे।[110] ब्रह्मदेव के पुष्कर क्षेत्र के यज्ञ में होतृगणों के ऋत्विज थे। इन्होंने भीष्मपञ्चक व्रत भी धारण किया था।[111] तथा यह एक व्यास भी थे।

पुराणों से विदित होता है कि वसिष्ठ के पुत्र का नाम शक्ति एवं पौत्र का नाम पराशर शाक्त्य था, जो कृष्ण द्वैपायन व्यास का पिता था। इन्हीं ग्रन्थों में वसिष्ठ की पत्नी का नाम कपिञ्जली घृताची बताया गया है जिससे इसे इन्द्र प्रमति कुणि अथवा कुणोति, नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। इन्द्र प्रमति को राजा पृथु की कन्या से वसु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसके पुत्र का नाम उपमन्यु था। इस प्रकार वसिष्ठ-शक्ति-वसु-उपमन्यु एवं अन्य छः वसिष्ठ के वंशजो से "वसिष्ठववंश का प्रारम्भ हुआ।

वसिष्ठ वैडव नाम से एक ऐसे आचार्य का उल्लेख प्राप्त है जिसने "वसिष्ठ साम" नामक साम की सृष्टि कर सुख-समृद्धि एवं ऐश्वर्य को प्राप्त किया।[112] वीड का पुत्र होने के कारण इसे वैडव पैतृक नाम प्राप्त हुआ था।

वसिष्ठ श्रेष्ठभाज् एक ऋषि थे जो अयोध्या के मित्रसद् राजा कल्माषपाद के पुरोहित थे।[113] महाभारत में अन्यत्र इसे "ब्रह्मकोश" उपाधि से विभूषित किया गया है। कल्माषपाद राजा ने दुष्टबुद्धि राक्षस के वश में आकर इसे नरमांस युक्त भोजन खिलाया जिस कारण उसने इसे नर मांस भक्षक हो जाने का शाप दे दिया। बार वर्षो के बाद यह शाप मुक्त हुआ। तदुपरान्त इसने उसकी पत्नी मदवन्ती को अश्मक नामक पुत्र उत्पन्न होने का वरदान दिया।[114]

110· पद्म0 उ0 222
111· पद्म0 उ0 124
112· पं0ब्रा0, 11/8/14
113· म0भा0, 167/15, 168/10
114· ब्रह्माण्ड 3/63/15, वा0रा0 सु0 24/12

वसिष्ठ सुवर्चस् नाम का एक ऋषि जो हस्तिनापुर के राजा सम्वरण का पुरोहित था।[115] यह राजा सुदास के पुरोहित वसिष्ठ का पुत्र था, इसके भाई शक्ति था। पान्चाल नरेश सुदास ने राजा सम्वरण को राज्यच्युत कर दिया था। वसिष्ठ के सहायता से सम्वरण ने पुनः अपना राज्य प्राप्त करने में सफल हो गया। इन्हीं की सहायता से सूर्य की पुत्री तपती से उसका विवाह को हो गया।[116] कालान्तर मे सम्वरण के राज्य में घोर अकाल पड़ गया जिस समय उसके न होते हुए भी इसने बारह वर्षो तक हस्तिनापुर के राज्य का कारोबार कुशलतापूर्वक चलाया।[117] तारकामय युद्ध के बाद सृष्टि में महा अकाल आ गया। उस समय इसने फल-फूल आदि औषधि का निर्माण कर मनुष्य एवं पशु पक्षी सभी के प्राणों की रक्षा की।[118]

वसिष्ठ हिरण्यनाभ कौशल एक ऐसे आचार्य का नाम है जो आचार्य जैमिनि के शिष्य थे। आचार्य जैमिनि ने इन्हें वेदों की पाँच सौ संहिताओं की शिक्षा प्रदान की थी। वसिष्ठ हिरण्यनाभ कोशल ने भी आगे चलकर अपने शिष्य याज्ञवल्क्य को इसकी शिक्षा दी। वसिष्ठपुत्र वसिष्ठ ऋषि के ऊर्ज नामक पुत्र का नामान्तर है जो सप्तर्षियों में से एक था।

महर्षि वसिष्ठ द्वारा क्रुद्ध होकर शाप देने का उल्लेख कई बार हुआ है। एक बार क्रुद्ध होकर उन्होंने राजा कल्माषपाद को शाप दिया था। उनके इस क्रोध का कारण "नरमांस" था इसके सम्बन्ध भिन्न-भिन्न मत प्राप्त होते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार है - जब कल्माषपाद ने अश्वमेधयज्ञ का आयोजन किया तो महर्षि वसिष्ठ यज्ञ पर्यन्त उसके साथ रहे जिस दिन यज्ञ समाप्त होने वाली थी उसी दिन वसिष्ठ मुनि जब सन्ध्या स्नान के लिये निकले थे, तो उसी समय

115· म0भा0, 89/36/40

116· म0भा0 180

117· म0भा0 160-164

118· ब्रह्माण्ड, 3/8/89-90, म0भा0 226-27, अनु0 137/13

एक राक्षस रूपी बाघ ने वसिष्ठ का रूप धारण करके राजा कल्माषपाद से कहा कि आज यज्ञ समाप्त हो गया है अतः तुम मुझे शीघ्र मांसयुक्त भोजन दो राजा ने रसोइयों को बुलवाकर मांसयुक्त भोजन बनाने की आज्ञा दी। परन्तु पुनः उसी राक्षस ने आचारी का रूप धारण कर मानुष मांस तैयार कर राजा को दिया। तत्पश्चात् राजा ने उसी अन्न को पत्नी मदयन्ती सहित गुरु वसिष्ठ को भी अर्पण किया। भोजनार्थ आया हुआ मांस मनुष्य का है ऐसा अपने तपोबल से जानकर वसिष्ठ क्रोध से उदिगन्नहो गये। फलतः उसने राजा को नरमांस भक्षक राक्षस हो जाने का शाप दे दिया। तब राजा ने कहा आप ही ने तो मुझे ऐसा करने की आज्ञा दी थी। यह सुनते ही वसिष्ठ ने मन्त्रदृष्टि से देखा तो विदित हुआ कि यह दुष्कृत्य उस {बाघ} राक्षस दारा किया गया है। तत्पश्चात् गुरु वसिष्ठ ने कहा कि मेरा शाप असत्य नहीं हो सकता। तुम केवल बारह वर्षो तक ही नरमांस भक्षक रहोगे।

दूसरे मत के अनुसार इसके राक्षस होने का कारण भिन्न है। एक बार जब राजा शिकार खेलकर वापस लौट रहे थे तब एक अत्यन्त संकरे मार्ग में वसिष्ठ पुत्र शक्ति से राजा की मुलाकात हो गयी। मार्ग संकरा होने के कारण केवल एक बार में एक ही व्यक्ति निकल सकता था। राजा ने शक्ति से पीछे हटने को कहा। परन्तु शक्ति ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। शक्ति ने राजा से कहा कि यह मार्ग ब्राह्मणों का है। अतः धर्मानुसार राजा ब्राह्मण के लिए मार्ग खाली कर दे। अन्त में इस वाद-विवाद से क्रुद्ध राजा ने ब्राह्मण को चाबुक से खूब पीटा तब वसिष्ठ पुत्र शक्ति ने कल्माषपाद को शाप दिया कि आज से तुम नरभक्षक राक्षस हो जाओगे। यहीं राजा जब यज्ञ करने को तैयार हुआ तो विश्वामित्र ने इसका अङ्गीकार किया। इसी से विश्वामित्र और वसिष्ठ के बीच शत्रुता का आविर्भाव हुआ। विश्वामित्र ने कहा तुमने जिसे मारा है वह वसिष्ठ पुत्र शक्ति था ऐसा जानकर राजा दुःख से द्रवीभूत हो गया तदनन्तर जब वह शक्ति के पास उश्शाप मांगने गया तब विश्वामित्र ने इसके शरीर में रुधिर नामक राक्षस को प्रवेश करने

की आज्ञा दी।[119] राक्षस द्वारा त्रस्त यह राजा एक दिन वन में भ्रमण कर रहे थे उसी समय क्षुधा पीड़ित ब्राह्मण ने इसे देखा। उस ब्राह्मण ने इसके निकट जाकर मांसयुक्त भोजन की याचना की। उसे कुछ समय तक स्वस्थ रहने की आज्ञा देकर वह घर आया तथा अन्तःपुर में आराम से सो गया। मध्य रात्रि में जब उसकी नींद खुलीं तो इसे उस ब्राह्मण को दिये हुए वचन का स्मरण हुआ। तभी उसने आचारी को मांसयुक्त भोजन बनाने की आज्ञ दी। वहां मांस नही था तो राजा ने आज्ञ दी कि नरमांस ही बना दो। आचारी ने राजा की आज्ञा का पालन करते हुए उस तपस्वी ब्राह्मण को वह अन्न दिया। उस अन्न को अभक्ष्य जानकर उस तपस्वी ने राजा को नरमांस भक्षक राक्षस होने का श्राप दिया।[120]

राजा कल्माषपाद ने कहा कि चूंकि तुमने मुझे अयोग्य शाप दिया है, मै तुमसे ही मनुष्य भक्षण प्रारम्भ करना चाहता हूँ। ऐसा कहकर उसने उसे खा डाला। इसके बाद आगे चलकर राजा के शरीर में प्रविष्ट राक्षस को विश्वामित्र के बार-बार उपदेश करने के कारण इसने वसिष्ठ के सौ पुत्रों को खा डाला। वसिष्ठ ने पुत्रशोक में प्राण त्याग देने का संकल्प किया परन्तु वह सफल नही हुए।[121]

महर्षि वसिष्ठ अनेक ऋषिं राजाओं के राजनीतिक अथवा अन्य सार्वजनिक कार्यों में अपना प्रमुख योगदान देते हुए परिलक्षित होते हैं। वसिष्ठ तथा विश्वामित्र का सम्बन्ध अनेक राजाओं के साथ स्थापित किया गया है। पार्जिटर ने एक ही वसिष्ठ का अनेक राजाओं के साथ सम्बन्ध को असम्भव मानकर एक से अधिक वसिष्ठ की कल्पना की है।[122] जो उचित प्रतीत होता है। वसिष्ठ तथा विश्वामित्र के परस्पर विरोध दिखाते हुए श्री वी0के घोष ने भी एक से अधिक वसिष्ठो की स्थिति को स्वीकार किया है।[123] हरिवंश पुराण में सप्तर्षियों की गणना के प्रसंग में वसिष्ठ

119· लिङ्गपुराण 1/64   120· वायु पुराण 1/2

121· म0भा0 166-167, अनु0 3, ब्रह्माण्ड0 1/12

122. Pargiter JRAS 1910 P. 15

123. "Visvamitra however was dismissed later by Sudas, who appointed Vasistha as his priest, probably on account of the superier Brahmanical knowledge of the Vasisthas."
-B.K. Ghosh. Vedic age. P. 245.

का नामोल्लेख दो बार हुआ है। वसिष्ठ का प्रथम नामोल्लेख प्रथम मन्वन्तर की गणना में और दूसरा नामोल्लेख सप्तम मन्वन्तर की गणना में हुआ है।[124] अतः हरिवंश के आधार पर कहा जा सकता है कि वसिष्ठों की संख्या एक से अधिक है।

इक्ष्वाकुवंश में रोहित के बाद सगर के प्रसंग में वसिष्ठ का पुनः उल्लेख हुआ है। वसिष्ठ यहाँ पर सगर के कुलपुरोहित के रूप में नही माने गये है। सगर के द्वारा हैहय तथा तालजंघों के विनाश का वृत्तान्त वसिष्ठ से सम्बन्ध है। सगर के पराक्रम से त्रस्त होकर शरणार्थी तालजंघ और हैहय वसिष्ठ के आश्रम में जाते हैं। वसिष्ठ ने हैहय और तालजंघों को अभयदान प्राप्त किया।[125] यहां पर वसिष्ठ के व्यक्तित्व से पौरोहित्य का संकेत नहीं मिलता है। सगर के संस्कार आदि महत्वपूर्ण कार्यो का सम्पादन और्व भार्गव के द्वारा होता है किन्तु सगर को वसिष्ठ के प्रति गुरू के रूप में सम्बोधित करते हुए कहा गया है।[126] प्रतीत होता है कि सगर के पौरोहित्य का प्रमुख स्थान और्व भागर्य को प्राप्त था। किन्तु वसिष्ठ का पारम्परिक गुरू पद अक्षुण्ण था। सगर के राज्यकाल में जिस वसिष्ठ का उल्लेख मिलता है, वे त्रैय्यारूण कालीन वसिष्ठ ज्ञात होते है। इक्ष्वाकुवंश में वसिष्ठ के समकालीन त्रैय्यारूण त्रिशंकु, हरिश्चन्द्र तथा रोहित ये चारों राजा अत्यन्त प्रतापी माने गयें है। सगर कालीन वसिष्ठ तथा त्रैय्यारूण कालीन वसिष्ठ एक ही प्रतीत होते है।

इक्ष्वाकुवंश में सुदास के पुत्र सौदास कल्माषपाद (मित्रसह) के वृत्तान्त में भी वसिष्ठ का नामोल्लेख प्राप्त होता है।[127] हरिवंश में सौदास कल्माषपाद का उल्लेख मात्र हुआ है। सौदास के कल्माषपाद नाम के विवेचन के लिए हरिवंश में कोई वृत्तान्त नहीं है। सौदास के लिए यज्ञ कराने वाले वसिष्ठ यहाँ पर ऋत्विज

124· मरीचिरत्रिर्भगवानाङि·ग्राः पुलहः क्रतुः।
पुलस्त्यश्च वसिष्ठश्च सप्तेते ब्रह्मणः सुताः।। -हरि0 1/7/8
एतत् ते प्रथमं राजन्मन्वन्तरमुदाहृतम्। -हरि0 1/7/11
ऽअत्रिर्वसिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महानृषिः।
गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च।। -हरि0 1/7/34

पद पर अभिषिक्त थे। इक्ष्वाकुवंशी राम के राज्य में वसिष्ठ का पौरोहित्य तो सर्वमान्य है। राम का नामकरण राजा दशरथ के कुलगुरु वसिष्ठ के द्वारा हुआ जिसने "रामस्य लोकरामस्य" कहकर इनका नाम "राम" रखा।[128] नामकरण एवं उपनयन के पश्चात् वसिष्ठ से इसे शस्त्र एवं शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त हुई।[129] राम के पूर्वज दिलीप के कुलपुरोहित के रूप में वसिष्ठ का उल्लेख रघुवंश में मिलता है।[130] यहां पर वसिष्ठ को "अथर्वनिधि" कहा गया है।[131] अतः यह वसिष्ठ से दिलीप से राम तक के पौरोहित्य पद पर सम्मानपूर्वक अधिष्ठित रहे। दिलीप से राम तक के वसिष्ठ के व्यक्तित्व में कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ता इससे सिद्ध होता है कि दिलीप से राम तक पौरोहित्य पद पर अभिषिक्त वसिष्ठ एक थे। रामायण में वसिष्ठ को एक व्यस्क ऋषि के रूप में चित्रित किया गया है।[132] पूर्वोक्त विवेचनोपरान्त प्रतीत होता है कि सौदास कल्माषपाद के समकालीन वसिष्ठ के लिये सौदास के पश्चात् पाँच पीढ़ी तक के राजाओं के काल का अतिक्रमण करके दिलीप, रघु, अज, दशरथ और राम के पौरोहित्य को सम्पादित करना सम्भव नहीं है। दिलीप से रामराज्य तक के राजाओं के प्रतापी होने के कारण उनका राज्यकाल पर्याप्त लम्बा रहा होगा। अतः इक्ष्वाकुवंशी राजाओं के समकालीन वसिष्ठ, त्रैय्यारुण तथा कल्माषपाद के समकालीन वसिष्ठ के पूर्णतः भिन्न प्रतीत होते हैं।[133]

125· ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना।
वसिष्ठं शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम्।।
वशीष्ठस्त्वथ तान् दृष्टवा समयेन महाद्युतिः।
सगरं वारयामासा तेषां दत्वाऽभयं तदा।। हरि0 1/14/13-14

126· सगरः स्वां प्रतिज्ञां च गुरोर्वाक्यं निशम्य च।
धर्म जघान तेषां वै वेषान्यत्वं चकार ह।। हरि0 1/14/15

127· भाग0 9/18-36 128· वा0रा0, बा0 18/29

129· वा0रा0 ब0 18/36-37

130· तस्मान्मुच्ये यथा तात संविधातुं तथार्हसि।
इक्ष्वाकुणां दुरापेऽर्थे त्वदधीना हि सिद्धयः।। -रघु0 1/72

131· अथामर्वनिधेस्तस्य विजितारिपुरस्सरः।
अर्घ्यमर्घ्यमितिर्वाचमाददे वततां बरः।। - रघु0 1/59

132· रामा0 2/31/37, 2/32/1-10, 2/38/3, 3/3/4

133· हरिवंशपुराण का सांस्कृतिक विवेचन - वीणापाणि पाण्डेय, पृ0 238-240

राम के मन में उत्पन्न विलक्षण वैराग्यवृत्ति को देखकर महर्षि वसिष्ठ ने "योगवासिष्ठ" नामक ग्रन्थ में राम को शिक्षा देते हुए कहा - "आत्मज्ञान एवं मोक्ष प्राप्ति के लिए अपना दैनन्दिन व्यवहार एवं कर्तव्य त्यागने की आवश्यकता नहीं है। जीवन सफल बनाने के लिये कर्तव्य निभाने की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी आत्म ज्ञान की।[134]

गोपथ ब्राह्मण में वसिष्ठ के आश्रम का उल्लेख प्राप्त होता है। विपाश नदी के किनारे "वसिष्ठशिला" नामक आश्रम विद्यमान था। इनका "कृष्णशिला" नामक एक अन्य आश्रम भी था। जहाँ इन्होंने तप किया था।[135] इसी तपस्या के कारण वसिष्ठ समस्त पृथ्वी के पुरोहित बन गये।[136] इक्ष्वाकुवंश के राजपुरोहित के पद पर अभिषिक्त वसिष्ठ वंश की विस्तृत जानकारी पौराणिक साहित्य में उपलब्ध है।[137]

वसिष्ठ की कुछ अन्य विशेषताएँ जिसे यहाँ अन्त में दे देना असमीचीन न होगा। ऋग्वेद में वसिष्ठ का चित्रण सभी के हित कर्ता के रूप में किया गया है।[138] अग्नि, अत्रि, भरद्वाज, गविष्ठिर, कण्व, और त्रसदस्यु का युद्ध में संरक्षण करते हैं। उस अग्नि का गुणगान जनता के हित कर्ता वसिष्ठ करते है।

यहाँ वसिष्ठ को पुरोहित अर्थात् पहले से हित करने वाला कहा है। अतः वसिष्ठ ऐसे कार्य करते हैं जिससे सबका हित सिद्ध होता है। महर्षि वसिष्ठ अमरदेवों का वन्दन करते हुए कहते है कि जो देव सभी भुवनों में जाते है वे हमे प्रशंसनीय धन देवें तथा हे देवों तुम हमारा संरक्षण उत्तम साधनों से

134· उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गीतः। तथैव ज्ञानकर्मभ्यां जायते परमं पदम्
केवलात्कर्मणो ज्ञानान्नहि मोक्षोऽभिजायते।
किन्तूभाभ्यां भवेन्मोक्ष साधनंतूभयं विदुः।। - यो0वा0 1/1/7-8

135· गोपथ ब्राह्मण 1/2/8

136· गो0ब्रा0 1/2/13

137· वायु0 70/79/90, ब्रह्माण्ड 3/8/86-100, लिंग0 1/63/78-92 मत्स्य0 200/201

करो।[139] एक अन्य मन्त्र में वसिष्ठ को राक्षसों का नाशक कहा गया है। कुछ मन्त्रों में "वसिष्ठाः" इस बहुवचन का प्रयोग हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि अनेक वसिष्ठ थे। ये वसिष्ठ कुल के रहे होंगे।[140] वसिष्ठ तथा वसिष्ठ गोत्रियों का वर्णन दक्षिणतः कपर्दाः ऐसा किया गया है। वसिष्ठ गोत्र के ऋषि सिर में दक्षिण की ओर सिखा रखते थे। हरिश्चन्द्र के राजसूय यज्ञ में विश्वामित्र होता, जमदग्नि अध्वर्यु, वसिष्ठ ब्रह्मा तथा अयास्य उद्गाता थो।[141]. सर्वप्रथम वसिष्ठ कुल के ब्राह्मण ही यज्ञ के लिए योग्य समझे जाते थे।[142] बाद सभी ब्राह्मण यज्ञ के लिए योग्य समझे गये। अभिप्राय यह है कि एक ऐसा समय था जब वसिष्ठ कुल के पास ही यज्ञ की विद्या थी। वह विद्या इन्होंने अन्य ब्राह्मणो को दी ये ऋषि परस्पर स्पर्धा भी करते थे।[143] वसिष्ठ के सूक्त में दत्तक पुत्र की निन्दा प्राप्त होती है।[144] "त्र्यंबकं यजामहे" {ऋ0 7/59/12} यह मन्त्र महामृत्युञ्जय के नाम से प्रसिद्ध है। यह वसिष्ठ ऋषि का देखा हुआ मन्त्र है। इसके जप से अपमृत्यु दूर होता है। इस विषय में यह प्रसिद्ध है कि -

वसिष्ठो हतपुत्रोऽकामयत विन्देयं प्रजामभि
सौदासान अयेयमिति स एतमेकस्यान्न
पञ्चाशमपश्यत्तमाहरत्तेनायजत ततो वै
सोऽविन्दत प्रजामभि सौदासानमत्। तै0सं0 7/4/7

इससे सम्बन्धित तै0सं0 3/5/2 भी दर्शनीय है।

विपाश नदी में वसिष्ठ शिला और कृष्णशिला इस नाम से दो आश्रम स्थल है जहाँ वसिष्ठ ने तप किया था।[145] इन्द्र की कृपा से वसिष्ठ सभी लोको

138· अग्निरत्रिं भरद्वाजं गविष्ठरं प्रावन्नः कण्वं त्रसदस्युमाहवे।
अग्निं वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृडीकाय पुरोहितः।। ऋ0 10/150/5

139· देवान् विसिष्ठो अमृतान् ववन्दे ये विश्वा भुवनानि प्रतस्थुः।
ते नो रासन्तामुरुणायमद्य मूर्य पात स्वस्तिभिः सदानः।। ऋ0 10/65/15, 10/66/17

140· ऋ0 7/7/7, 7/12/3, तथा 7/37/4

141· तस्य ह विश्वामित्रो होतासीत् जमदग्नि रध्वर्युर्वसिष्ठो ब्रह्माऽयास्य उद्गाता। ऐ0ब्रा0 7/16

142· षड्विंश ब्राह्मण 1/5

के पुरोहित थे ऐसा गोपथ ब्राह्मण में उल्लिखित है।[146]

वसिष्ठ मर्यादा पुरूषोत्तम राम के कुलगुरू है फलतः जहां कहीं राम की कथा का प्रसंग होगा वहां वसिष्ठ का होना अपरिहार्य होगा। फलतः राम कथा आश्रित नाटकों में वसिष्ठ का उल्लेख सर्वत्र मिलता है। इनके चारित्रिक विशेषताओं का महावीर चरित, उत्तर रामचरित हनुमन्नाटक, अनर्घ राघव आदि में विशद चित्रण हुआ है।

महाबीर चरितम

तृतीय, चतुर्थ तथा सप्तम अंक में वसिष्ठ का उल्लेख हुआ है। वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, परमादरणीय महर्षि वसिष्ठ का स्थान माहात्म्य की दृष्टि से इस नाटक में सर्वोपरि है। वे अत्यन्त शान्त प्रकृति के ब्रह्मनिष्ठ तपस्वी है। तथा ऋषि और महर्षि राजा और प्रजा सभी के पूज्य है। विश्वामित्र के हृदय में उनके प्रति बहुत सम्मान है। गौरवशाली सूर्यवंश का गौरव और अधिक बढ़ गया है कि उसके गुरू वसिष्ठ है।

उन्हें यह देखकर खेद होता है कि शतानन्द और जनक के समझाने पर भी परशुराम का क्रोध शान्त नहीं हो रहा है। वे अपने पद और स्वभाव के अनुरूप ज्ञान गरिमा से ओत-प्रोत उपदेश देते हुए कहते है "वत्स" जीवन भर इस आयुध पिशाचिका से क्या लाभ ? तुम श्रोत्रिय हो, पवित्र मार्ग अपनाओं तुम अरण्यवासी हो, मन को निर्मल करने वाली मैत्री, करूणा, मुदिता, और उपेक्षा इन चार भावनाओं का अवलम्बन करो। शीघ्र ही सत्य का उद्रेक करने वाली ज्योतिष्मती योगवृत्ति तुम्हें सिद्ध हो जायगी, जो तुम्हे शोक से रहित कर देगी और फिर

143· विश्वामित्र जमदग्नि वसिष्ठेनास्पर्धेतां स एतज्जमदग्निर्विहव्यम-पश्यत्तेन वै स वसिष्ठस्येन्द्रियं वीर्यमंवृक्त। तै0सं0 3/1/7/3

144· अन्य जातं शेषः नास्ति। ऋ0 7/4/7
अन्योदर्य मनसा मन्तवै नहि। ऋ0 7/4/8

145· गो0ब्रा0 1/2/8

146· गो0 ब्रा0 1/2/93

ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा तुम्हें अन्तर्ज्योति के दर्शन होने पर सब प्रकार के सामर्थ्य की उपलब्धि होगी, विघ्न नष्ट हो जायेंगे और तेज की वृद्धि होगी। ब्राह्मण को वही करना चाहिए जिससे आत्म ज्ञान की प्राप्ति हो। उसी के द्वारा पाप से मुक्ति मिलती है, परन्तु तुम तो दूसरी ओर अभिनिविष्ट हो।[147]

इस सदुपदेश का भी जब परशुराम पर कोई प्रभाव नहीं हुआ प्रत्युत उनका दुराग्रह बढ़ता ही गया तब वसिष्ठ को यह निश्चय हो गया कि यह गुणों में महान् होते हुए भी स्वभाव से असुर हैं। परन्तु अपने इस विचार को वे मन में ही दबा लेते हैं, प्रकट नही होने देते। उनकी करुणा और क्षमाशीलता का परिचय उस समय मिलता है जब वे शतानन्द के हाथ से शापोदक को दूर करते हुए कहते हैं - जो कल्याणकारक है वह हम लोग कर रहें है। तुम जाबालि आदि के साथ शान्ति के लिए होम करो तथा जय के लिए भगवान वामदेव के साथ मेरे शिष्य सूक्त, साम तथा अनुवाक का जप करें। उस सन्दीप्त वातावारण में जब दूसरे लोग परशुराम के अविनय को दूर करने के लिए शाप अथवा चाप का आश्रय लेना चाहते थे, ऐसी सात्विक अवस्था अत्यन्त शान्त और गम्भीर स्वभाव वाले महर्षि वसिष्ठ ही कर सकते थे।

उनकी यह क्षमाशीलता उदाराशयता से मण्डित है। जब परशुराम उनका व्यक्तिगत अपमान करते हुए कहते है " वसिष्ठ हमारे सगोत्र है और वृद्ध है इसलिए आदरणीय है परन्तु स्पर्धा में वे हमसे अधिक नहीं हैं। तप में या ज्ञान में हमारे समान दूसरा कौन है, तब भी वे अत्यन्त शान्त भाव से कहते हैं - "भृगु के पुत्र पराजय तो हमारे लिए आनन्द की बात है, उन्हें खेद केवल इस बात पर है कि जिस आचार का उन्होंने पालन किया तथा जिसका प्राचीन काल से उनके घर में

147· वसिष्ठः - अयि वत्य, किमनया यावज्जीयमायुधपिशाचिकया। क्षोत्रियोऽसि जामदग्नयः पूतं भजस्व पन्थानम्। आरण्यकश्चासि, तत्परिचितु चित्तप्रसादनीश्चतस्त्रो मैत्र्यादिभावनाः। प्रत्यासीदति हिते विशोका ज्योतिष्मती नाम योगवृत्तिः। तत्प्र सादजं ऋतंभराभिधानं नामावहिः साधनोपधेयसर्वार्थ सामर्थ्यमयतिविद्रोविप्लवो -परागमूर्जस्वलमन्त ज्योतिषो दर्शनम्। यतः प्रज्ञानमभिसंभवति तद्ध्याचरितव्यं ब्राह्मणेन। तरति येजापमृत्युं पाप्मानम्। अन्यत्र ह्यभिनिविष्टोऽसि।
-म0च0, तृतीय अंक पृष्ट सं0 61

व्यवहार होता रहा है उसी का आज उनके ही घर में ह्रास हो रहा है।

परशुराम उनका अपमान करे या उनके सामने धृष्टता करें, वसिष्ठ उन पर क्रोध नहीं करते, परन्तु जब वे ऐसा दारूण कर्म (राम का अनिष्ट) करने को उद्यत हो रहे हैं तब सब कुछ देखना भी संभव नहीं। परशुराम का निग्रह तो करना ही होगा, परन्तु यदि वे एक बार भी क्रोधपूर्ण दृष्टि से देख ले तो प्रिय भार्गव शिशु का अनिष्ट हो जायेगा। परिस्थिति की जटिलता ने महर्षि के सम्मुख एक समस्या उपस्थित कर दी है। उनके मन में कर्तव्य और वात्सल्य के बीच संघर्ष होने लगा है। उनका मन दिविधा में है और वे निश्चय नहीं कर पा रहे है कि उन्हें क्या करना चाहिए ? ठीक इसी समय राम वहाँ उपस्थित होकर उनकी समस्या को सुलझा देते हैं और वसिष्ठ के हृदय में कर्तव्य भावना एवं वात्सल्य दोनों ही सुरक्षित रहते हैं।

परशुराम के स्वभाव में परिवर्तन देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती है। वे कहते हैं - "वत्स वास्तव में आज हम श्रोत्रियों के कुल में तुम उत्पन्न हुए हो। जब तक तुम दुर्विनीत ये तभी तक हम दुःखी थे, अब हम पूर्णतया सुखी है। उन्होंने परशुराम को जो आशीर्वाद दिया है उसमें परशुराम की कल्याण भावना के साथ ही लोक कल्याण की भावना भी निहित है।[148] वनवास से लौटने पर राम को दिये गये आशीर्वाद में भी महर्षि की लोक कल्याण भावना अभिव्यक्त हुई है।[149]

इस नाटक में वसिष्ठ का चरित्र अपनी प्रख्यात मर्यादा के अनुरूप ही है। ये तपस्वी तथा संयमी है।

148· स्थिरस्ते प्रशमो भूयात्प्रत्याज्योतिः प्रकाशताम्।
अचिन्तशिवसंकल्प मन्तः करणमस्तु ते। म0च0 4/36

149· चक्षुषां स्वस्वसमये संस्कारित्वं समाप्नुताम्।
वत्सो नयेन धर्मेण ज्ञानेन च पुरस्कृतम्। म0च0 7:35

<u>उत्तर रामचरित</u>

प्रथम व सप्तम अंक में वसिष्ठ का आगमन होता है। वसिष्ठ ने राम को संदेश भेजा है कि - "तुम अभी बच्चे हो, राज्य नया है, अतः सदा प्रजा के अनुरञ्जन में लगे रहना, इसी से यश मिलता है जो तुम्हारा परम धन है। वसिष्ठ यह नही जानते थे कि प्रजारञ्जन के लिए राम को कितना त्याग करना पड़ेगा।[150] वसिष्ठ के संदेश के उत्तर में राम की यह उक्ति भी उतनी ही स्वाभाविक है स्नेह, दया, सुख और यदि जानकी को भी प्रजारञ्जन के लिए छोड़ना पड़े तो मुझे व्यथा नहीं होगी।[151] क्या राम इस समय कल्पना कर सकते थे कि उन्हें प्रजारञ्जन के लिए जानकी का और जानकी के साथ ही स्नेह, दया तथा सुख का त्याग अनिवार्यतः करना ही होगा।

सीता को दिया गया वसिष्ठ का आशीर्वाद - "वीर प्रसवा भूयाः" भविष्य के अन्धकार में आशा की किरण बन जाता है।

<u>हनुमन्नाटक</u>

तेरहवें अंक में वसिष्ठ का उल्लेख हुआ है। सुमित्रा ने स्वप्न देखा कि एक साँप मेरी बायीं भुजा पूरी की पूरी निगल गया और वह घबड़ा कर उठ बैठी तथा उस स्वप्न को कोशल्या से कहा। कोशल्या ने मुनि वशिष्ट को बताया। वसिष्ठ ने वाण सहित धनुष भरत के समीप देखकर घी के हवन द्वारा शान्त किया। पर्वत की बूटी से ही वसिष्ठ ने इस बाण को उखाड़ हनुमान् की मूर्च्छा दूर किया।[152] वसिष्ठ ने श्रीराम का राज्याभिषेक भी किया।

150· जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं बाल एवासि नव च राज्यम्।
युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः।। उत्तररामचरितम 1/11

151· स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।। उ0रा0च0 1/12

152· प्रोवाच कोसलसुतापुरतोद्भुवं सा
स्वप्नं च सा मुनिवसिष्ठपुरोहितस्य।
पार्श्वे नियोज्य सशरं धनुरादधानं
शान्तिं चकार भरतं मुनिराज्यहोमैः।। हनुमन्नाटक 13/22

विश्वामित्र

§विश्व मित्रः, विश्वमेव मित्रं यस्य ब0स0, पूर्वपदस्याकारस्य दीर्घः§ एक सुविख्यात ऋषि का नाम। "विश्वामित्र" नाम की व्युत्पत्ति आरण्यक ग्रन्थों में भी दी गयी है - "विश्व का मित्र"[1] व्याकरणशास्त्रीय दृष्टि से "विश्वामित्र" एक अनियमित रूप है। पाणिनी के अनुसार "मित्र" शब्द के पहले जब "विश्व" शब्द का प्रयोग होता है, तब उस शब्द का अर्थ "ऋषि" होता है, तब उक्त शब्द "विश्वमित्र" नहीं बल्कि "विश्वामित्र" बनता है।[2]

ऋषियों के नाम के विषय में प्राचीन काल से ही विवाद रहा है। इनके नामों की निरर्थकता एवं सार्थकता के सम्बन्ध में वृहद्देवता §1/31§ में कहा गया है कि नाम निरर्थक नहीं होते हैं। "विश्वामित्र" इस नाम के भी अनेक निर्वचन दिये गये हैं जैसे महाभारत में कहा गया है -

"विश्ये देवाश्च मे मित्रं मित्रमस्मि गवां तथा।
विश्वामित्रमिति ख्यातं यातुधानिनिबोध माम्।।"
म0भा0, अनु0 93/92

वृहद्देवता में भी -

"मित्रोकृत्य जना विश्वे यदिमं पर्युपासते।
मित्र इत्याह तेनेनं विश्वामित्रस्तुवन् स्वयम्।।"
-वृहद्देवता 2/49

ऐतरेय आरण्यक में उल्लेख है -

"तस्येदं विश्वं मित्रमासीसदिदं किन्च।" ऐ0आ0 2/2/1

शतपथ ब्राह्मण में उल्लिखित है -

"श्रोतं ते विश्वामित्रऋषिर्यदनेन सर्वतः श्रृणोत्ययो यदस्मे सर्वतो।
मित्रं भवति तस्माच्छोत्रं विश्वामित्र ऋषिः" -शतपथ0 8/1/2/6

1· ऐतरेय आरण्यक, 1/2/2
2· अष्टाध्यायी, 6/3/130

कोषीतकि ब्राह्मण की परम्परा में भी भणित है कि -

"वाग् वे विश्वामित्रः।" कौ0ब्रा0 10/5, 10/1, 29/3

इस प्रकार विश्वामित्र का महाकाव्यों में भी बहुधा वर्णन प्राप्त होता है यहाँ विश्वामित्र अपने गोत्र नाम से ही प्रसिद्ध हैं।

कान्यकुब्ज देश के कुशिक नामक सुविख्यात क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुए विश्वामित्र एक प्रख्यात ऋषि जो अपने युयुत्स, विजिगषु एवं युगप्रवर्तक व्यक्तित्व के कारण तथा अपने ज्ञानोपासना एवं तप समर्थ्य के कारण वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में अमर हो चुका है। इस महान् ऋषि एवं वैदिक सूक्तद्रष्टा आचार्य को महर्षि वसिष्ठ जैसे आचार्य से जीवन पर्यन्त संघर्षरत रहना पड़ा। इस संघर्ष के परिणामस्वरूप ही अपने वंश सहित श्रेष्ठ ब्राह्मणत्व की प्राप्ति हुई।

विश्वामित्र ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के ऋषि हैं। विश्वामित्र अड़तालीस मन्त्रों के कर्ता हैं। ये गाधी के पुत्र, कुशिक के पौत्र और इषीरथ के प्रपौत्र हैं। इन्द्र, वरूण, वृहस्पति, पूषा, सविता, सोम, मित्र आदि देवताओं की इन्होंने स्तुति की है।[3] तैंतीस देवताओं का उल्लेख सर्वप्रथम इन्होंने ही किया है।[4] वेदों में उल्लिखित विश्वामित्र वसिष्ठ के प्रतिस्पर्धी प्रतीत होते हैं। ऋग्वेद में विश्वामित्र स्वयं को कुशिकपुत्र बतलाते हैं। अर्थात् हे पवित्राओं और सौम्य वचन के लिए मुहुर्त भर अपनी याग से रूक जाओ। कृपाकांक्षी मै "कुशिक सुनु" बड़ी लालसा से नदी की प्रार्थना करता हूँ।[5] विश्वामित्र "गाथिन" राजा के वंशज थे जिस कारण इसे "गाथिन" पैतृक नाम प्राप्त है विश्वामित्र गाथिन के द्वारा विरचित नाना सूक्त ऋग्वेद में प्राप्त है।[6] विश्वामित्र द्वारा विरचित एक सूक्त में विपाश्

3· ऋग्वेद, 3/6, 9, 26, 4, 59, 16, 62 आदि।

4· ऐभिरने सरभ याह्यवडि॰ नाना रथं वा विभवोह्यश्वाः।
पत्नीवतीस्त्रिशतं त्रीश्च देवानुष्वधमावह मादयस्व। ऋग्वेद 3/6

5· ऋग्वेद, 3/33

6· ऋग्वेद 3/1/12, 24, 25, 26 {1-6, 8,9}, 26-32, 33 {1-3, 5,7,9 11-13}, 34, 35, 36 {1-9, 11}, 36-53, 57-62, 9, 67, 13-15, 10, 136, 167।

एवं शुतुद्री (आधुनिक वियास् एवं सतलज नदियाँ) नदियों की संगम पर राह देने के लिए प्रार्थना की गयी है।[7] कतिपय विद्वानों का विचार है कि विश्वामित्र पैजवनसुदास राजा के पुरोहित थे एवं पंजाब के संवरण राजा पर आक्रमण करने वाली सुदास की विजयी सेना को मार्ग प्राप्त कराने के लिए विश्वामित्र ने इस नदी सूक्त का प्रणयन किया था।[8] नदियों को थाह में लाने का दावा वसिष्ठ ने भी किया है - "सुदासे अर्णांसि गाधानि अकरोत्।" तथा विश्वामित्र ने भी किया है विश्वामित्र ने व्यास और सतलुज गाधा (घाटवाली) होने के लिए प्रश्न-उत्तर में जो प्रार्थना की है वह नदियों के दिल को छू लेने वाली तथा मनमोहक काव्य बन पड़ी है इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं - "विपास् और शुतुद्री जल सहित पर्वतों के पास से बन्धनमुक्त घोड़ियों की तरह अट्टहास करती, बछड़ों को चाटने की इच्छा वाली शुभ्र गौ माताओं की तरह समुद्र की ओर दौड़ रही है।" "हे दोनो नदियों इन्द्र द्वारा प्रेरित स्तुतिओं की सुनने वाली तुम रथियों की तरह स्वच्छ समुद्र की ओर जा रही हो। साथ-साथ चलती ईर्मियों से बढ़ी हुई हे शुभ्रों दोनों पास-पास से चल रही हो।" "मेरे सौम्य वचन को सुनने के लिए मुहुर्त भर अपनी दौड़ से रुक जाओं। कुशिक का सुत विशाल नदियों का आह्वान मैं मन की बात के लिए कर रहा हूँ।"

इसके उत्तर में नदियां कहती हैं - "वज्रहस्त इन्द्र ने पर्वत का हनन कर हमारे लिए नदियों की परिधि खोदी। सुपाणि सविता देव हमें ले जा रहे हैं। हम उसकी आज्ञा में विस्तृत होकर जा रही हैं।" इस प्रकार के कई उदाहरण दिए जा सकते हैं।

सायण के मतानुसार सुदास राजा से विपुल धन सम्पत्ति प्राप्त करने के पश्चात् विश्वामित्र के कई शत्रुओं ने इसका पीछा करना शुरु किया। उस समय

7· ऋग्वेद, 3/33

8· गेल्डनर वेदिशे स्टूडियन, 3·152।

भागते हुए विश्वामित्र ने इस नदी सूक्त की रचना की थी।[9] किन्तु सायण का उक्त विचार समीचीन नहीं प्रतीत होता है। निरूक्तकार यास्क भी सायण के इस मत से अपनी असहमति प्रकट की हैं।[10]

ऋग्वेद में प्राप्त निर्देशों से ज्ञात होता है कि कि विश्वामित्र आरम्भ में राजा सुदास के पुरोहित थे - "विश्वामित्र ने सुदास को बड़ा किया, सिन्धु ‡नदी‡ को स्तम्भित किया[11] और सुदास के पीछे के विजयों में बड़ी सहायता की। किन्तु विश्वामित्र के इस पद से हटने के बाद वसिष्ठ सुदास के पुरोहित बन गये। तत्पश्चात् सुदास को शत्रु पक्ष में सम्मिलित होकर सुदास के विरूद्ध दाशराज युद्ध में हाथ बंटाया। इसी सन्दर्भ में विश्वामित्र ने "वसिष्ठ द्वेषिण्यः" नामक कई ऋचाओं की रचना की जो शौनक काल से प्रख्यात हैं। वसिष्ठ गोत्र में उत्पन्न लोग आज भी इन ऋचाओं का पठन-पाठन नहीं करते हैं। ऋग्वेद का एक भाष्यकार जो स्वयं वसिष्ठ गोत्रीय होने के कारण इन ऋचाओं पर भाष्य नहीं लिखा है।[12] उससे स्पष्ट रूप से विश्वामित्र का वसिष्ठ से वैर भाव परिलक्षित होता है।

राजा सुदास के यज्ञ के अवसर पर हुए वाद-विवाद में वसिष्ठ के पुत्र शक्ति ने विश्वामित्र को पराजित कर दिया। जमदग्नि से विश्वामित्र का घनिष्ठ सम्बन्ध था। अतः जमदग्नि ऋषि में "ससर्परी" विद्या ग्रहण कर विश्वामित्र ने शक्ति को ‡वाक् युद्ध‡ में पराजित कर दिया। इन दोनों के बीच संघर्ष का उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है।[13] विश्वामित्र ने सुदास के सेवकों द्वारा शक्ति का वध करवाया।[14] शक्ति ऋषि से हुए वाक् युद्ध में विश्वामित्र द्वारा प्रणयन की हुई ऋचाएँ "मौनी विश्वामित्र की ऋचाएँ" नाम से अभिहित हुई। जिसमें विश्वामित्र ने कहा हैं -

---

9· ऋग्वेद, 3/33 सायण भाष्य।
10· निरूक्त, 2/24
11· ऋग्वेद, 3/53
12· ऋग्वेद, 3/53/20-24, निरूक्त 10/14
13· वही, 3/53, 15/16
14· तै0सं0, 7·4, 7·1 ऋक्सर्वानुक्रमणी 7·32

कि आप लोग इस "अन्तक" {विश्वामित्र} के पराक्रम को नहीं जानते हैं, इसी कारण मुझे इस वाक् युद्ध में स्तब्ध देखकर हँसी उड़ा रहे हैं", किन्तु आप सबको नहीं मालूम है कि विश्वामित्र अपने शत्रु से लड़ना ही जानता है। अपने विरोधी के सम्मुख आत्मसमर्पण उसे स्वीकार नहीं है।[15]

विश्वामित्र के सूक्तों का प्रसार वामदेव ऋषि ने भी किया है। विश्वामित्र शुनः शेप यज्ञ में होतृ थे। इन्होंने ही उसे दत्तक पुत्र बनाकर देवरात नाम प्रदान किया था। शुनःशेप की प्राण रक्षा जिस प्रकार विश्वामित्र के द्वारा की गयी थी, उससे विदित होता है कि नरवलि उन्हें स्वीकार्य नहीं थी। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के अनुसार विश्वामित्र के 100 पुत्रों की बात सन्देहास्पद लगती है इसमें उनके पुत्रों, पौत्रों और प्रपौत्रों को भी सम्भवतः गिन लिया गया है। पौत्रों में मधुच्छन्दा के पुत्र अघमर्षण और जेता तथा ऋत के पुत्र उत्कील भी ऋषि हैं। ऐतरेय ब्राह्मण से विदित होता है कि मधुच्छन्दा से पचास बड़े और पचास छोटे पुत्र हैं। इस प्रकार विश्वामित्र के कुल पुत्रों की संख्या सौ है। शुनःशेप को दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार करना बड़े पुत्रों को अच्छा नहीं लगा। अतः विश्वामित्र ने अपने बड़े पुत्रों को शाप दिया - "तुम्हारी सन्तान अभक्ष्यभक्षी हो जाय।" इस तरह आन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिण्ड आदि दस्यु लोग विश्वामित्र की सन्तान हैं मधुच्छन्दा और उनके पचास भाइयों ने कहा कि पिताजी जो कहेंगे वह हमें शिरोधार्य है। अतः उन्होंने शुनःशेप के अपना ज्येष्ठ पुत्र माना। "हम तुम्हारा अनुसरण करेंगे, विश्वामित्र यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। विश्वामित्र ने निम्न मन्त्रों द्वारा अपने पुत्रों की स्तुति की - "मेरे पुत्रों तुम पशु और सन्तान से फूलों फलो। तुमने मेरा कहा मानकर मुझे पुत्रवत् बनाया। हे गाधि की सन्तानों देवरात के संरक्षण में तुम पुत्रवान् होंगे। वह तुमको सत्य के मार्ग पर ले चलेगा। हे कुशिक-सन्तानों वीर देवरात के अनुचर बनो यह तुम्हारा पथ-प्रदर्शक और हमारी विद्या का दयभागी होगा। विश्वामित्र के सब सच्चे पुत्र और गाधी के पौत्र जो देवरात के साथ हुए

15· ऋग्वेद, 3/53, 23-24

उनको धन, यश और कीर्ति की प्राप्ति होगी।[16] यद्यपि ऐतरेय ब्राह्मण ने शुनः शेप को देवरात वैश्वामित्र प्रख्यापित करने की चेष्टा की है पर पर ऋग्वेद के ऋषि शुनःशेप अजीगर्त के ही नाम से प्रसिद्ध हैं।[17] विश्वामित्र इन्द्र के कृपापात्रों में से एक थे। अतः इन्द्र ने इन्हे दर्शनलाभ प्रदान किया। कुशिक वंशी होने से भले ही राजा होने का निर्देश मिले किन्तु इनके कुल भी अन्य ऋषि वंशज ऋषियों की भांति मन्त्रद्रष्टा ऋषि थे ऋग्वेद में इस वंश में निम्नलिखित मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के मन्त्र उपलब्ध हैं - "विश्वामित्र गथिन, अष्टक वैश्वामित्र, ऋषभ वैश्वामित्र, कतवैश्यामित्र, उत्कील काव्य, कुशिक ऐषीरथि, गाथिन्-कौशिक, देवरात वैश्वामित्र (शुनःशेप, देवश्रवस् (भारत) पूर्ण वैश्वामित्र प्रजापति वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस वैश्वामित्र अघमर्षण माधुच्छन्दस जेता माधुच्दन्दस, रेणु वैश्वामित्र।

उपर्युक्त ऋषियों में से कुछ ऋषियों ने ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के सूक्त एवं मन्त्रों को दृष्ट किया है। ये गणना करने पर 61 सूक्त एवं 25 ऋचाएँ हैं। पुनः अन्य मण्डलों में कुछ ऋषियों के 15 सूक्त और 4 ऋचाएँ प्राप्त होती हैं। अतः उक्त वंश द्वारा कुल 86 सूक्त और 19 ऋचाएँ दृष्ट हुई हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में निम्न वैदिक मन्त्रों के प्रणयन का श्रेय विश्वामित्र को प्राप्त हैं - सम्पात ऋचाएँ जिनका प्रणयन एवं प्रचार क्रमशः विश्वामित्र एवं वामदेव ऋषियों ने किया।[18] रौहित कुलीय साममन्त्र जिनका प्रणयन सौदन्ति लोगों से मिलने के लिए जाने वाले विश्वामित्र ने नदी को लांघते समय किया था। एक धर्मशास्त्रकार जिसका निर्देश "वृद्ध याज्ञवल्क्य स्मृति" में प्राप्त है "अपरार्क" "स्मृति चन्द्रिका", जीमूतवाहन कृत कालपिवेश आदि धर्मशास्त्र विषयक ग्रन्थों में - व्यवहार, पञ्चमहापालक, श्राद्ध, प्रायश्चित आदि विषयों से सम्बन्धित अभिमत उद्धृत किये हैं। इनके द्वारा विरचित नौ अध्यायों की "विश्वामित्र स्मृति" मद्रास

16· ऐतरेव 6/3/18

17· ऋग्वैदिक आर्य (ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 66-69।

18· ऐतरेय ब्राह्मण, 6/18

गवर्नमेन्ट संस्कृत सीरीज ने भी भरद्वाज से आयुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की थी। हारीत संहिता के अनुसार महामुनि विश्वामित्र को अश्विनों ने अश्विरसायन का उपदेश दिया।[19] शांखायन आरण्यक के अनुसार विश्वामित्र को यज्ञ ज्ञान इन्द्र द्वारा प्राप्त हुआ। शालिहोत्र के वचनानुसार विश्वामित्र आयुर्वेद के कर्ता तथा सर्वलोक चिकित्सक थे। विश्वामित्र के आयुर्वेद सम्बन्धी ग्रन्थ के वचन आज भी उपलब्ध होते हैं "अष्टांगहृदय" पर हेमाद्रि ने अपनी टीका में लिखा है-

उक्तं हि विश्वामित्रेण

"तडागजं दरीजं तडागाधतसरिज्जलम्।

वलारोग्यकर तत्स्याछरीजं दोषलं मतम् ‡इति‡।।"

सुश्रुतसंहिता, निदानस्थान की टीका में उल्हण विश्वामित्र का वचन उद्धृत करते हुए कहा है[20] तथा च विश्वामित्रः-

"त्वग्गतं महस्त्राणि किलासं तत् प्रकीर्तितम्।

यदा त्वचमतिक्रम्य तह्लातूनावगाहते।

हित्वा किलासंसज्ञ च श्वित्रसंज्ञ लभेत् तत् ‡इति‡।।

इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य आयुर्वेदीय ग्रन्थों में से विश्वामित्र के बारह वचन उद्धृत किये हैं।

प्रपञ्च हृदय नामक ग्रन्थ में लिखा है - "धनुर्वेदोब्रह्म प्रजापति, इन्द्र-मनु-जमदग्नि-सुतादिभिरध्ययनाध्यापनपरम्परानुगतो विश्वामित्रादिभिरवन्तरं शास्त्रतवमापन्नः इति। उपवेद प्रकरण।" अर्थात् ब्रह्म आदि का धनुर्वेद परम्परा में आकर विश्वामित्र आदि द्वारा शास्त्र रूप में संक्षिप्त हुआ। मधुसूदन सरस्वती ने भी अपने प्रस्थान भेद में विश्वामित्र कृत धनुर्वेद का उल्लेख किए हैं।

विश्वामित्र के जन्म के विषय में एक कथा वेदार्थ दीपिका में प्राप्त होती है कि विश्वामित्र का पितामह कुशिक स्वयं एक अत्यन्त बलाढ्य राजा

19· हारीत संहिता, 3/29

20· सुश्रुतसंहिता, निदान स्थान 5/16 की टीका।

था जो अपने पिता इषीरथ के समान प्रजाहित में दक्ष था। इन्द्र के समान तेजस्वी पुत्र प्राप्त होने के लिए कुशिक ने तपस्या की उस समय स्वयं इन्द्र ने ही गाथिन् नाम धारण कर, कुशिक पुत्र के रूप में जन्म लिया एवं इसी गाथिन् रूप धारी इन्द्र से विश्वामित्र का जन्म हुआ। इस प्रकार विश्वामित्र का वंशानुक्रम - "इषीरथ कुशिक गथिन् ﴾इन्द्र﴿ विश्वामित्र कहा जा कसता है।[21] वा0रा0 में विश्वामित्र का वंशानुक्रम इस प्रकार प्राप्त होता है - "प्रजापति-कुश-कुशनाभ-गाथिन विश्वामित्र।"

अपने पिता के पश्चात विश्वामित्र कान्यकुब्ज देश का राजा बने। पुराणों में इसका निर्देश कुशिक एवं गाथिन राजाओं का "दायाद" ﴾उत्तरकालीन राजा﴿ नाम से अभिहित किया गया है। विश्वामित्र ने बाद में क्षत्रिय धर्म का त्यागकर ब्राह्मण बनने का व्रत लिया तथा सरस्वती नदी के तट पर सषंगु तीर्थ पर तपस्या करने के लिये प्रस्थान किया।[22] वायुपुराण के अनुसार इसने सागरानूप प्रदेश में तपस्या की थी।[23] उक्त निर्देशों से ज्ञात होता है कि विश्वामित्र का तपस्या स्थान आधुनिक राजपुताना के रेगिस्तान में कहीं था। जो प्रदेश प्राचीन काल में पश्चिमी समुद्र का तटवर्ती प्रदेश माना जाता था।[24]

अपनी घोर तपस्या के द्वारा विश्वामित्र को ब्राह्मणत्व प्राप्त होने का निर्देश अनेकानेक वैदिक संहिता एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। अतः इससे प्रतीत होता है कि विश्वामित्र का यह वर्णान्तर प्राचीन काल में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुरुवंशी महाराज गाधि के पुत्र एक प्रसिद्ध ब्रह्मर्षि जो क्षत्रिय होते हुए भी अपने तपोबल से ब्रह्मर्षियों में परिगणित हुए थे। इनका क्षत्रिय दशा का नाम "विश्वरथ" था पर ब्राह्मणत्व करने पर यह विश्वामित्र के नाम से विख्यात हुए। पुराणानुसार गाधि की सत्यवती नाम की पुत्री ऋचीक ऋषि को ब्याही गयी थी।

21· वेदार्थ दीपिका, 3/1

22· म0भा0 38/22-34, 41/23/7, वा0रा0, बाल0 51/56

23· वायु0 91, 92, 93

24· द्रष्टव्य, भारतवर्षीय प्राचीन चरित्रकोश, पृ0 871-72।

ऋचीक ने अपनी पत्नी और सास के लिए दो अलग-अलग चरू बनाये पर सत्यवती की माता ने सत्यवती वाला चरू खा लिया और सत्यवती ने अपनी माता के निमित्त बना चरू खाया। सत्यवती के पुत्र जमदग्नि हुए जो ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रिय गुण सम्पन्न थे और महाराज गाधि की पत्नी के गर्भ से यही विश्वामित्र हुए जो क्षत्रिय कुल में होते हुए भी, ब्राह्मणों के सदृश गुण वाले हुए। शुनः शेप, मधुच्छन्द, धनंजय, कृतदेव, अष्टक, कच्छप, हारीतक आदि इनके 100 पुत्र हुए। इनकी पत्नी का नाम सती था। एक बार इनके तप से डरकर इन्द्र ने मेनका नाम की अप्सरा को इनका तप भंग करने को भेजा। मेनका के गर्भ से विश्वामित्र को शकुन्तला नाम की पुत्री हुई, जिसका विवाह राजा दुष्यन्त के साथ हुआ और यह भरत नाम प्रतापी पुत्र की माता हुई। राजा त्रिशंकु को इन्होने ही सदेह स्वर्ग पहुँचाया था। राजा हरिश्चन्द्र के सत्य की सुप्रसिद्ध परीक्षा लेने वाले भी यही विश्वामित्र थे। पुराणों में इनसे सम्बन्धित अनेक कथाएँ भरी पड़ी हैं।[25] इनके आश्रम में रावण के अनुसार मारीच और सुबाहु बराबर विघ्न उपस्थित कर यज्ञों को दूषित कर देते थे, अतः यह राम और लक्ष्मण को अयोध्यापति दशरथ से मांग लाए, जिन्होंने ताड़का आदि का वध कर डाला था।[26] विश्वामित्र के आदेश से श्री राम ने गौतम् पत्नी अहल्या का उद्धार किया।[27] महर्षि विश्वामित्र का पूरा जीवन ही परोपकार में व्यतीत हुआ। यह वेदमाता गायत्री के द्रष्टा हैं तथा इनके अनेक धर्मग्रन्थ भी हैं।

मत्स्य महापुराण में कुशिकवंशज ऋषियों के नाम, गोत्र वंश प्रवर वर्णन इस प्रकार किया गया है -

अत्रेरेवापरं वंशन्तवः वक्ष्यामि पार्थिवः
अत्रे सोमः सुतः श्रीमांस्तस्य वंशोद्भवांनृप ﴾1﴿

25· विष्णु0 4/7/12-38
26· रामच0 मानस, बा0, 211-216 दोहा
27· राम0मा0, बा0, 209-211 दोहा

विश्वामित्रस्तु तपसा ब्राह्मण्यं समवाप्तवान्
तस्य वंशमहं वक्ष्ये तन्मे निगदतः शृणु ॥2॥
विश्वामित्रो देवरातस्तथा वैकृतिगालवः
वतण्डश्च सलङ्कश्च ह्यभयश्चायतायनः ॥3॥
श्यामायना याज्ञवल्क्या जाबालाः सैन्धवायनाः
बाभ्रव्याश्च करीषाश्च संश्रुत्याः अथ संश्रुताः ॥4॥
उलूपा औपगहचा पयोगजनपादपाः
खरवाचो हलयमाः साधिता वास्तुकौशिकाः ॥5॥
त्यार्षेयाः प्रवरात्सेषां सर्वेषां परिकीर्तिताः
विश्वामित्रो देवरात उद्दालश्च महायशाः ॥7॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः
देवश्रवाः सुजातेयाः सोसुकाः कारुकायनाः ॥7॥
तथा वैदेहराता ये कुशिकाश्च नराधिप।
त्यार्षेयो भिमतस्तेशषां सर्वेषां प्रवरः शुभः ॥8॥
देवश्रवा देवरातो विश्वामित्रस्तथैव च
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥9॥
धनञ्जयः कपर्देय परिकूटश्च पार्थिवः
पाणिनिश्चैव त्यार्षेयाः सर्व एते प्रकीर्तिताः ॥10॥
विश्वामित्रस्तथाघश्च माधुच्छन्दस एव च
त्रयार्षेयाः प्रवरा ह्येते ऋषयः परिकीर्तिताः ॥11॥
विश्वामित्रो मधुच्छन्दास्तथा चैवाघमर्षणः
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥12॥
कमलायजिनश्चैव अश्मरथ्यस्तथैव च
वञ्जुलिश्चापि त्यार्षेयः सर्वेषां प्रवरो मतः ॥13
विश्वामित्रश्चाश्वरथो वञ्जुलिश्च महातपाः
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥14॥

विश्वामित्रश्चाश्वरथो वञ्जुलिश्च महातपाः
विश्वामित्रः पूरणश्च तयोर्द्वौप्रवरौ स्मृतौ §15§
परस्परमवैवाह्याः पूरणाश्च परस्परम्
लोहिता अष्टकाश्चैषा त्यार्षेयाः परिकीर्तिताः §16§
विश्वामित्रो लोहितश्च अष्टकश्च महातपाः
अष्टका लोहितैर्नित्यमवैवाह्याः परस्परम् §17§
उदरेण कथकश्च ऋषिश्चोदावहिस्तथा
शारयायनिः करीराशी शालंकायनिलावकी §18§
मौन्जायनिश्चभगवान्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः
खिलिखिलीस्तथाविद्योविश्वामित्रस्तथैवच
परस्परमवैवाह्याः ऋषयः परिकीर्तिताः §19§

मत्स्यमहापुराण में कुशिक वंशज ऋषियों के नाम, गोत्र वंश प्रवर वर्णन इस प्रकार हुआ है - 6 महर्षि अत्रि के पुत्र श्रीमान् सोम हुए। उनके वंश में विश्वामित्र उत्पन्न हुए। विश्वामित्र ने अपने तप के प्रभाव से ब्राह्मणत्व को प्राप्ति की थी। विश्वामित्र के वंश का वर्णन मत्स्यमहापुराण के 198वां अध्याय में लगभग 20 श्लोकों में इस प्रकार किया गया है - "विश्वामित्र, देवरात, वैकृति, गालव, वतण्ड, शलंक, अभय, आयतायन, श्यामायन, याज्ञवलक्य, जाबाल, वभ्रव्य, करीष, संश्रुव्य, उलूप, औपहाव, पयोद, जनपादप, खरवाच, हलयम, साधित तथा वास्तुकौशिक इन सबके "त्रयर्षेण प्रवरकीर्तित किये गये हैं ।[28] इन सब ऋषियों के वंश में उत्पन्न होने वालों के "विश्वामित्र देवरात तथा महायशस्वी उछाल ऋषि प्रवर माने गये हैं। इनमें परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध निषिद्ध हैं। देवश्रुव, सुजातेय, सौमुक, कारुकायण, वेदेहरात तथा कुशिक इन सभी ऋषियों के वंशो में - देवश्रवा, द्वेवरात तथा विश्वामित्र ये तीन प्रवर माने जाते हैं। इन ऋषियों के वंश में उत्पन्न होने

28· मत्स्य0 198/1-5

वालों में परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं स्थापित किया जा सकता। धनंजय, कपर्देय परिकूट तथा पार्थिव इन वंशों में सबके विश्वामित्र, धनंजय तथा माधुच्छन्दस ये तीन प्रवर माने गये हैं। विश्वामित्र, मधुच्छन्द तथा अघमर्षण इन तीन ऋषियों के वंशधरों में परस्पर विवाह नहीं होते। काम-लायनिज, अश्मरथ्य तथा वञ्जुलि इनके वंशधर ऋषियों के विश्वामित्र अश्मरथ तथा महातपस्वी वञ्जुलि ये तीन प्रवर माने गये हैं इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध माना गया है। विश्वामित्र लोहित अष्टक तथा पूरण इनके विश्वामित्र और पूरण ये दो प्रवर माने गये हैं जिनमे पुराणो में परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है। लोहित और अष्टक वंशधरों के तीन ऋषियों के प्रवर माने गये हैं - विश्वामित्र, लोहित तथा महातपस्वी अष्टक। इनमें अष्टक वंशवालों का लोहित वंशवालों के साथ परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है। उदरेणु, कुथक, उदावहि - इन सबके ऋणवान्, गातिन तथा विश्वामित्र ये तीन प्रवर माने गये हैं जिनमें परस्पर विवाह नहीं होता है। उदुम्बर, सौवरिटि, याक्षायणि शायायनि, करीराशी, शांकलायनि, लावकि तथा मौञ्जायनि - इन ऋषियों के वंशधरों के खिल-खिल, विध तथा विश्वामित्र ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं। जिनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध हैं। उक्त कुशिक नाम से प्रसिद्ध मान्य ऋषिगणों के नाम हैं।[29]

हरिवंश पुराण में विश्वामित्र के वंशक्रम का वर्णन एक से अधिक बार विभिन्न रूपों में प्राप्त होता है। विश्वामित्र की वंश परम्परा में उनके पुत्रों की बहुत बड़ी संख्या प्राप्त होती हैं। विश्वामित्र के पुत्रों में कुछ ऐसे पुत्रों का उल्लेख हुआ है जो गुरु की गौ का भक्षण करके झूठ बोलने वाले हैं। पितरों को अर्पित किये गये गोमांस के भक्षण से दुष्ट योनि में प्राप्त होने पर भी उनकी धर्मोन्मुख बुद्धि तथा पूर्व जन्म की स्मृति बनी रही।[30] विश्वामित्र के पुत्रों का यह वृत्तान्त श्राद्ध के माहात्म्य के कथन के लिए विवेचित किया गया हैं। विश्वामित्र की अन्य

29· मत्स्यमहापुराण, 198/6-20

30· हरि0, 1/21/17-18

पुत्रों के रूप में कात्यायन, शांकलायन, बाष्कल, लोहित, यामदूत कारीषव, सौश्रुत, कौशिक तथा सैन्धवायन आदि ऋषियों का उल्लेख प्राप्त होता है।[31] विश्वामित्र के वंश से सम्बन्धी इन ऋषियों का ऐतिहासिक महत्त्व अधिक है। मौद्गलायन, शांकलायन, बाष्कल आदि ऋषियों के गोत्र नाम ज्ञात होते हैं। विश्वामित्र के वंशज ऋषियों में मौद्गलायन ऋषि का महत्त्व सर्वोपरि है। "मुद्गल, मौद्गल्य तथा मौद्गलायन नाम अनेक ऋषि, विद्वान् तथा प्रचारकों से सम्बद्ध हैं। मुद्गल और मौद्गल्य नाम उत्तर पाञ्चाल राजवंश में भी परिलक्षित होते हैं। यहां पर मुद्गल वाह्यश्व[32] का पुत्र हैं। मुद्गल का पुत्र मोदगल्य कहा गया है। उत्तरपाञ्चालवंशी मुदुगल और मौद्गल्य राजाओं के विषय में पार्जिटर महोदय ने वेदों के आधार पर पर्याप्त सामग्री एकत्रित की है। पार्जिटर महोदय के अनुसार यह मुद्गल और मौद्गल्य राजा वेदों के मुद्गल और मौद्गल्य राजाओं से समानता रखते हैं।[33]

पार्जिटर महोदय ने एक से अधिक विश्वामित्रों की कल्पना की है। उनके अनुसार महत्ता एवं प्राचीनता की दृष्टि से गाधि के पुत्र विश्वामित्र का स्थान प्रथम है। इसी सन्दर्भ में पार्जिटर महोदय ने हरिवंश में वर्णित विश्वामित्र के क्षत्रिय नाम विश्वरथ की ओर संकेत किया है।[34] पार्जिटर के पिता विश्वामित्र को गाधि पुत्र विश्वामित्र का उत्तराधिकारी माना है गाधि पुत्र विश्वामित्र कान्यकुब्ज राजवंश में उत्पन्न हुए थे। शकुन्तला के पिता मुनि विश्वामित्र का अस्तित्व महाप्रतापी राजा भरत के कालानुसार निर्धारित किया जाता है। भरत को पार्जिटर ने तीसरी अथवा चौथी पीढ़ी के बाद का निश्चित किया है।[35] गाधि तथा भरत के राज्यकाल

---

31. हरि0, 1/27/46-52, 1/32/55-58 विश्वामित्रवंश
32. भाग0, 9/21/31-32 भर्म्याश्व।
33. "Many of the king are mentioned in R.V. Mudgalya is mentioned in hymn"-Pargider: JRAS 1018 P. 235
34. "The earliest and thegreatest Visvamitra was the son of Gadhy or Gathim, king of Kanyakubja and his Ksatriya name was Visvaratha. He was connected withe the solar dynasty". Pargitor: JRAS. 1910 P. 33

में लम्बी व्यवधान दो विश्वामित्रों की विभिन्नता का परिचायक है। हरिवंश पुराण के अन्तर्गत मन्वन्तर वर्णन के अवसर पर विश्वामित्र का नाम दो बार उद्‌धृत किया गया है - प्रथम बार[36] विश्वामित्र का नामोल्लेख अतीत के सप्तम मन्वन्तर की गणना में हुआ है। तथा तथा दूसरी बार अनागत काल के प्रथम मन्वन्तर में हुआ है। यहाँ पर विश्वामित्र को "कौशिक" नाम से अभिहित किया गया है।[37] अतीत और अनागत के ये दोनो ही विश्वामित्र एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होते हैं।

त्रय्यारुण और सत्यव्रत त्रिशंकु का वृत्तान्त वसिष्ठ और विश्वामित्र को एक साथ प्रस्तुत करता है। वसिष्ठ, सत्यव्रत {त्रिशंकु} तथा विश्वामित्र का सम्बन्ध ऋषियों को ऐतिहासिक महत्त्व का परिचायक है। वसिष्ठ यहाँ पर त्रय्यारुण के पुरोहित के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। वसिष्ठ के पौरोहित्य में विवाह सम्बन्धी अपराध के कारण त्रय्यारुण ने सत्यव्रत को राज्य से निकाल दिया। इसमें वसिष्ठ का हाथ होने के सन्देह के कारण सत्यव्रत ने वसिष्ठ की गाय खा ली। अतः वैवाहिक अपराध, मोहत्या एवं गोभक्षण के तीन अपराधों के फलस्वरूप सत्यव्रत "त्रिशंकु" कहलाया।[38] त्रिशंकु ने विश्वामित्र का कृपापात्र बनने के लिए विश्वामित्र के अकालग्रस्त पुत्रों की देखभाल की।[39] त्रिशंकु के इस कार्य से प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने उसे सदेह स्वर्ग वरदान दिया तथा राज्य में पुनः प्रतिष्ठित किया।[40] त्रिशंकु के इस वृत्तान्त से वसिष्ठ त्रिशंकु के होने के कारण विश्वामित्र के भी विरोधी हो गये। अतः प्रतीत होता है कि इसी शत्रुता के कारण त्रिशंकु ने अपने राज्य का पोराहित्य पद अर्थात कुलपुरोहित वसिष्ठ के स्थान पर विश्वामित्र को बना दिया। यहाँ पर हरि0 में त्रिशंकु के यज्ञ को सम्पन्न कराने वाले पुरोहित के रूप में विश्वामित्र का उल्लेख हुआ है।[41] हरिवंश पुराण में त्रिशंकु के पिता त्रय्यारुण की राज्यसीमा

---

35. "The reasonable inferences are that Bhumanyu married Dasarha's daughter, that Bharata murt be placed three or four generations after Vidarbha and that Sakuntala" father was a near descendent of the great Visvamitra."- Pargiter JRAS. 1910 P. 43.
36. गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च। -हरिवंश पुराण, 1/7/34
37. कौशिको गालवश्चैव रुरुः कश्यप एवं च। हरि0, 1/7/48
38. हरि0, 1/13/19
39. हरि0, 1/13/23
40. हरि0, 1/13/20-23

अयोध्या मानी गयी है।[42] अयोध्या सूर्यवंशी राजाओं की प्राचीन राजधानी थी। राम के काल तक सूर्यवंशियों की परम्परागत राजधानी अयोध्या ही थी। सम्भवतः त्रिशंकु ने अयोध्या में ही राज्य किया। त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चन्द्र के सन्दर्भ में राज्य सम्बन्धी किसी परिवर्तन का संकेत नहीं मिलता है। हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित को रोहितपुर नामक एक नवीन नगर बसाते हुए कहा गया है। वैरागी रोहित ने इस रोहितपुर नगर को दे दिया।[43] इस नगर के विषय में हरिवंश में कोई विशेष सामग्री नहीं उपलब्ध होती है।

"वामनपुराण" में विश्वामित्र का उल्लेख प्राप्त होता है -जहाँ पर महामुनि विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था वहीं विश्वामित्र का सुविख्यात महान् तीर्थ है।[44] विश्वामित्र एवं वसिष्ठ में तपः स्पर्धा के कारण घोर शत्रुता उत्पन्न हो गयी थी। वसिष्ठ के आश्रम के पश्चिम दिशा में विश्वामित्र का आश्रम था। वसिष्ठ की तपस्या से विश्वामित्र हीन हो गये थे। विश्वामित्र ने सरस्वती को बुलाकर कहा कि तुम मुनि श्रेष्ठ वसिष्ठ को अपने वेग से लाओ मैं उन द्विज श्रेष्ठ का वध करूँगा। ऐसा सुनकर सरस्वती व्यथित हो गयीं, उन्हें व्यथित और कम्पित होता देखकर विश्वामित्र ने क्रुद्ध होकर कहा - "वसिष्ठ को शीघ्र लाओ।" सरस्वती ने दयालु वसिष्ठ से विश्वामित्र की बात बता दी। वसिष्ठ विश्वामित्र के पास चलने के लिए तैयार हो गये। उस विप्र को सरस्वती सुखपूर्वक विश्वामित्र के आश्रम में ले गयी एवं खिन्नतापूर्वक उस मुनि को विश्वामित्र के लिए निवेदित किया। विश्वामित्र वसिष्ठ को मारने के लिए शस्त्र खोजने लगे। विश्वामित्र को क्रुद्ध हुआ देखकर ब्रह्महत्या के भय से नदी ने गाधि पुत्र को वञ्चित कर दोनों के वाक्य का पालन करती हुई वसिष्ठ को जल में बहा ले गयी। तत्पश्चात् वसिष्ठ को बहाया हुआ देखकर क्रुद्ध लाल-लाल नेत्रों वाले विश्वामित्र ने कहा -"हे श्रेष्ठ

41· हरि0, राज्ये भिषिच्य तं मुनिः। -हरि0 1/13/22
42· हरि0, 1/13/4
43· संसारासारतां ज्ञात्वा द्विजेभ्यस्ततपुरं ददौ।- हरि0, 1/13/26-27
44· वामन पुराण, पृ0सं0 163

नदी। तुम मुझे वञ्चित कर चली गयी हो अतः तुम श्रेष्ठ राक्षसों से संयुक्त होकर शोणित का बहन करो।" विश्वामित्र के शाप से सरस्वती ने एक वर्ष तक रक्तमिश्रित जल का वहन किया।[45]

ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि कुशिक नन्दन गाधि ने तप विद्या और शम स्वरूप अपना दायाद (उत्तराधिकारी) विश्वामित्र पुत्र को समुत्पन्न किया। जो यह विश्वामित्र ऋषि ब्रह्मर्षि समता को प्राप्त कर ब्रह्मर्षि हो गये थे। यह विश्वामित्र परम धर्मात्मा थे और नाम से यह विश्वरथ कहे जाते है -

विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः
जनयामास पुत्र तु तपोविद्याशमात्मकम्।। 55।।
प्राप्य ब्रह्मर्षि यो यं ब्रह्मर्षितां गतः
विश्वामित्र-तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृताः।।56।। ब्रह्मपुराण

महर्षि भृगु की कृपा से कौशिक से वंश के वर्धन करने वाले ने जन्म ग्रहण किया था और विश्वामित्र के सुत देवराज प्रभृति कहे गये है। कच्छप और हारीत ये सब विश्वामित्र के पुत्र थे। उन समस्त महान् आत्मा वालों के गोत्र कौशिक विख्यात हैं। विश्वामित्र का सबसे अग्रज पुत्र शुनः शेप था। वह मुनि श्रेष्ठ भार्गव कौशकत्व को प्राप्त हो गया था। यह हरिदश्व के यज्ञ के पशुत्व में विनियोजित किया गया था। देवों के द्वारा यह शुनःशेप विश्वामित्र को दे दिया गया था। क्योंकि देवों के द्वारा दिये जाने के कारण वह तब से देवरात हो गया। विश्वामित्र के देवरात आदि सात पुत्र थे[46]

भागवत् पुराण के अनुसार कुशिक गोत्र में उत्पन्न महाराज गाधि के परम यशस्वी पुत्र राजर्षि विश्वामित्र ने अपने तपोवल से क्षत्रियत्व का त्याग करके ब्रह्मतेज प्राप्त कर लिया था। विश्वामित्र के सौ पुत्रों में से पचासवें पुत्र का नाम

45· श्री वामन पुराण, पृ0सं0 165-167
46· ब्रह्मपुराण, पृ0सं0 116-119

मधुच्छन्दा था। जो वेदमन्त्रों के द्रष्टा एवं वेदो के प्रकाण्ड विद्वान् हुए। महर्षि विश्वामित्र ने भृगुवंशी अजीर्गत के पुत्र अपने भानजे शुनः शेप को जिसका एक नाम देवरात भी था पुत्र रूप में स्वीकार कर लिया और अपने पुत्रों से कहा तुम लोग इसे अपना बड़ा भाई समझो। यह वही सुप्रसिद्ध भृगुवंशी शुनःशेप था जो राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ में यज्ञ पशु के रूप में मोल चुकाकर लाया गया था। विश्वामित्र ने वरुण आदि देवताओं की स्तुति करके शुनः शेप को पाशबन्धन से मुक्त करा लिया। देवताओं के यज्ञ में यह शुनः शेप देवताओं द्वारा विश्वामित्र को दिया गया था। अतः "देवे रतः" इस व्युत्पत्ति के अनुसार गाधि वंश में यह तपस्वी शुनः शेप को अग्रज मानना अच्छा नहीं लगा। इस पर विश्वामित्र ने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया - "दुष्टों तुम सब म्लेच्छ हो जाओं। जब मधुच्छन्द्रा के उन्चास भाई म्लेच्छ हो गये तो विश्वामित्र का पचासवाँ पुत्र अपने छोटे पचास भाइयों के साथ कहा कि पिताजी हम आपकी आज्ञा मानने के लिए तैयार हैं। इस प्रकार मधुच्छन्दा ने मन्त्रद्रष्टा शुनःशेप को अपना बड़ा भाई स्वीकार कर लिया और कहा कि हम सब तुम्हारे अनुज हैं। महर्षि विश्वामित्र ने कहा कि तुम लोगों ने मेरी आज्ञा स्वीकार कर मेरे सम्मान की रक्षा की है। इसलिए तुम जैसे पितृभक्त पुत्रों को प्राप्त मैं धन्य हो गया हूँ और उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम्हें भी सुपुत्र प्राप्त हों महर्षि विश्वामित्र ने कहा कि मेरे पुत्रों यह शुनः शेप भी तुम्हारे ही गोत्र का है, तुम लोग इसकी आज्ञा का पालन करना।[47]

महाभारत आदि पर्व[48] के अनुसार - कुशिक का पुत्र गाधि तथा गाधि का पुत्र विश्वामित्र था। लेकिन यह वंश परम्परा वाल्मीकि रामायण में कुछ परिवर्तन के साथ इस प्रकार है - कुशिक का पुत्र कुशनाभ, कुशनाभ का गाधि तथा गाधि का विश्वामित्र है। सुश्रुतसंहिता के कर्ता सुश्रुत विश्वामित्र के ही पुत्र हैं जैसा कि ज्ञात है विश्वामित्र जन्म से एक उच्चकोटि के क्षत्रिय थे किन्तु वसिष्ठ के ब्रह्मतेज से लज्जित होकर अपने तपोबल से ऋषि ही नहीं ब्रह्मर्षि को प्राप्त

47· भागवत् नवम स्कन्ध - अध्याय 16, पृ0 360

48· महाभारत, आदि पर्व 191/3-4

किये।[49] महाभाष्य §4·1·104§ में लिखा है कि - विश्वामित्र ने तप तपा मै अनृ षि न रहूँ, वह ऋषि हो गया। तप - तपा मै अनृषि का पुत्र न रहूँ तब गाधि ऋषि हो गया। उसने पुनः तप-तपा मै अनृषि का पौत्र न रहूँ तब कुशिक भी ऋषि हो गया। अतः पिता और पितामह पुत्र के पश्चात ऋषि बने।

महातपस्वी भगवान् विश्वामित्र राक्षसों से पीड़ित होने पर एक बार महाराज दशरथ के समीप पहुँचे। दशरथ ने उनका बहुत स्वागत सत्कार किया। तत्पश्चात् भंयकर राक्षसों के विनाश के लिए महर्षि विश्वामित्र ने राम लक्ष्मण की याचना की। विश्वामित्र जी का विश्वास था कि केवल राम ही अपनी दिव्य शक्ति के बल से राक्षसों का वध कर सकते हैं। अन्य कोई व्यक्ति नहीं कर सकता। दशरथ महामुनि की याचना सुनकर राम वियोग की आशंका से काँप गये और मूर्च्छित हो गए। चेतना आने पर अजनन्दन ने विश्वामित्र जी से कहा कि प्रभो राक्षस कूट योद्धा होते हैं। उनमें ये बालक कैसे युद्ध करेंगें ? दशरथ ने कहा कि राम से वियुक्त होकर मैं क्षण भर भी नहीं रह सकता हूँ। अतएव आप मुझ पर और मेरे पुत्रों पर दया कीजिए। दशरथ के इस प्रकर कहने पर महर्षि विश्वामित्र क्रोधित हो गए।[50] विश्वामित्र ने कहा कि आप पहले प्रतिज्ञा करके अब पीछे हट रहे हैं। यदि आपकी यही इच्छा है तो ठीक है मैं जाता हूँ आप भी मिथ्याप्रतिज्ञ होकर सुखी रहें। महामुनि विश्वामित्र के क्रोधित होने पर सारा संसार त्रस्त हो गया और पृथ्वी काँपने लगी। ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने राजा दशरथ को समझाया और कहा महाबली राम लक्ष्मण को कोई राक्षस कभी हानि नहीं पहुँचाएगा। अतएव आप विश्वस्त ह्रदय से दोनों पुत्रों को विश्वामित्र जी को सौंप दिया। तब कुलपति वसिष्ठ के कहने पर महाराज ने राम और लक्ष्मण को सहर्ष मुनि के साथ विदा कर दिया।

जब महर्षि विश्वामित्र के साथ राम, लक्ष्मण आश्रम की ओर जा रहे थे तो कुशिकनन्दन ने राम को "बला" और "अतिबला" नामक दो विधाएँ प्रदान कीं। इन विधाओं के प्रभाव से थकावट, ज्वर आदि पास नहीं फटकते थे। राक्षस

49· आयुर्वेद का इतिहास - प्रथम 126

50· वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 21/6-23

सुप्त दशा में भी प्रहार नहीं कर सकते थे। इन विद्याओं का पाठ करते ही मनुष्य की भुजाओं में अपरिमित बल आ जाता था। इन विद्याओं को धारण करने वाले से भूख और प्यास सदैव रहती थी। दोनों विद्याओं को धारण कर राम अधिक प्रदीप्त हो रहे थे।

विश्वामित्र ने राम को ताड़का वध के लिए प्रेरित किया विश्वामित्र मुनि ने राम से कहा इस परम दारूण एवं क्रूर दुराचारिणी यक्षिणी का गो-ब्राह्मण की रक्षा के लिए शीघ्र वध कर डालिए। आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी राक्षसी ताड़का का वध नहीं कर सकता है। चारों वर्णो की रक्षा के लिए आपको स्त्री का वध करने में घृणा नहीं करनी चाहिए। प्रजा की रक्षा के लिए राजा कर्तव्य-अकर्तव्य, पापयुक्त-दोषयुक्त सभी कार्यो को करने के लिए तैयार है। यह ताड़का पूर्णरूपेण पापिष्ठा है, इसमें धर्म का लेश मात्र भी नहीं है। ऐसी आततायी एवं दुराचारिणी स्त्री का तु मेरी आज्ञा से शीघ्र वध कर डालो।

गुरु कौशिक की आज्ञा पाकर राम ने एक ही बाण से ताड़का को मारकर गिरा दिया। ताड़का वध से प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने राम को मन्त्र सहित देव दुर्लभ दिव्य अस्त्रों को प्रदान किया। इनमें दण्ड, चक्र, धर्म चर्क, विष्णु चक्र, इन्द्र चक्र, शुष्क और आर्द्र दो अशनि, वज्रास्त्र, पाँच कामास्त्र, कालचक्र, शैवशूल, ब्रह्मशिर, ऐषीक अस्त्र, ब्रह्मास्त्र, मोदकी तथा शिखरी नामक दो गदा, धर्मपाश, कालापाश, वरूणपाश, पिनाकास्त्र, आग्नेयास्त्र, हयशिर, क्रौंचास्त्र, कंकाल तथा मुसल नामक दो शक्तियाँ कापालकिणी, वैधाधर नामक महास्त्र, नन्दन खड्·ग्, गान्धर्वास्त्र आदि।[51]

कुशनाभ के पुत्र गाधि थे। उन्हीं गाधि के पुत्र ये महामुनि विश्वामित्र हैं। महातेजस्वी राजा विश्वामित्र ने कई हजार वर्षो तक पृथ्वी का पालन तथा राज्य का शासन किया।[52] विश्वामित्र अनेको नगरों, राष्ट्रो, नदियों और आश्रमों

51· वा0रा0, बाल0 21/6-53

52· वा0रा0, बाल0 51/20

में क्रमशः विचरते हुए महर्षि वसिष्ठ के आश्रम पर पहुँचे। वसिष्ठ का दर्शन करके वीर विश्वामित्र प्रसन्न होकर विनयपूर्वक उनके चरणों में प्रणाम किया। वसिष्ठ एवं विश्वामित्र मुनि दोनों ने एक दूसरे के सकुशल होने की बात कही -

कृत्वा तौ सुचिरं कालं धर्मिष्ठौ ताः कथास्तदा
मुदा परमया युक्तौ प्रीयेतां तौ परस्परम्।।[53]।।11।।

वसिष्ठ के निमन्त्रण को राजा विश्वामित्र ने स्वीकार कर लिया। विश्वामित्र जी ने वसिष्ठ जी से कहा कि आप मुझसे एक लाख गौएँ लेकर यह चितकबरी गाय मुझे दे दीजिए, क्योंकि यह गौ रत्न रूप है। और रत्न लेने का अधिकारी राजा ही होता है। अतः धर्मतः यह मेरी ही वस्तु है। वसिष्ठ ने विश्वामित्र जी को चितकबरी गाय देने से इन्कार कर दिया।[54] विश्वामित्र जी ने इस गाय को बलपूर्वक घसीट कर ले चले, तब तक वह गाय भाग कर वसिष्ठ के पास आई और उनकी आज्ञा पाकर विश्वामित्र के देखते-देखते उनकी सारी सेना का नाश करने लगी। यह देखकर राजा विश्वामित्र को बड़ा क्रोध आया। वे क्रोध से आँखे फाड़-फाड़ कर देखने लगे। महातेजस्वी विश्वामित्र जी ने यवन, कम्बोज और बर्बर जाति के योद्धाओं पर बहुत से अस्त्र छोड़े। उन अस्त्रों की चोट से वे सभी योद्धा व्याकुल हो उठे। इसके बाद वसिष्ठ की आज्ञा से उस कामधेनु ने विश्वामित्र की सारी सेना का तत्काल संहार कर डाला। महायशस्वी विश्वामित्र जी अपने सभी पुत्रों व समस्त सेना का विनाश हुआ देख अत्यन्त लज्जित हो चिन्ता में पड़ गए। विश्वामित्र जी का एक ही पुत्र बचा था, उसको विश्वामित्र जी ने राजा के पद पर अभिषिक्त करके राज्य की रक्षा का भार सौंप दिया। क्षत्रिय धर्मानुसार पृथ्वी के पालन की आज्ञा देकर स्वयं वन को चले गए।[55] तदनन्तर महामुनि विश्वामित्र को वरदायक देवेश्वर भगवान् वृषभध्वज {शिव} ने दर्शन दिया और कहा अभीष्ट वर माँगो - उनके ऐसा कहने पर विश्वामित्र जी ने उन्हें प्रणाम करके कहा -

---

53· वा0रा0, बाल0 52/11

54· पूजितो हं त्वया ब्रह्मन् पूजार्हेण सुसत्कृतः।
श्रूयतामभिधास्यामि वाक्यं विशारदः।।8।।
गवां शतसहस्त्रेण दीयतां शबला मम।
रत्नं हि भगवन् नेतद् रत्नहारी च पार्थिवः।।9।।
तस्मान्मे शबलां देहि ममैषा धर्मतो दिजः। -वा0रा0 बाल0 सर्ग तिरपन

55· वा0रा0, 54/11 बालकाण्ड

"यदि तुष्टो महादेव धनुर्वेदो ममानघ
साङ्गोपाङ्गोपनिषदः सरहस्यः प्रदीयताम्"।[56]

यदि आप सन्तुष्ट हैं तो मुझे अंग, उपंग, उपनिषद् और रहस्यों सहित धनुर्वेद मुझे प्रदान कीजिए। देवताओं, दानवों महर्षियों, गन्धर्वों, यक्षों तथा राक्षसों के पास जो जो अस्त्र हों, सब आपकी कृपा से मेरे हृदय में स्फुटित हो जायें। यही मुझे अभीष्ट वर को प्राप्त कर अभिमान में भर गए।[57] विश्वामित्र के बढ़ते हुए अस्त्र तेज को देखकर सैकड़ो मुनि, पशु-पक्षी सभी भयभीत हो नाना दिशाओं की ओर भाग गए। गाधि पुत्र विश्वामित्र का उत्तम एवं भयंकर आग्नेयास्त्र वसिष्ठ जी के ब्रह्म दण्ड से उसी प्रकार शांत हो गया, जैसे पानी पड़ने से जलती हुई आग का वेग।[58] इसके बाद विश्वामित्र जी ने क्रोधित होकर वारुण, रौद्र, ऐन्द्र, पाशुपत और ऐषीक नामक अस्त्रों का प्रयोग किया। सभी अस्त्रों के शान्त हो जाने पर गाधिनन्दन विश्वामित्र जी ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। वह भी असफल रहा। तब पराजित हो विश्वामित्र जी लम्बी साँस खींचकर बोले -

"धिग् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम्
एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे"।।[59]

इस घटना को प्रत्यक्ष देखकर ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिए विश्वामित्र जी ने अपने मन और इन्द्रियों को निर्मल करके महान् तप का अनुष्ठान किया।[60] विश्वामित्र अपनी हार को याद करके मन ही मन दुःखी होने लगे। वसिष्ठ के साथ वैर बाँधकर महातपस्वी विश्वामित्र लम्बी साँस खींचते हुए अपनी रानी के साथ दक्षिण दिशा में जाकर अत्यन्त उत्कृष्ट एवं भयंकर तपस्या करने लगे। वहाँ अपनी मन और इन्द्रियों को वश में करके फल मूल को खाते हुए उत्तम तपस्या में लगे रहते

---

56. वा०रा०, 54/16 बालकाण्ड
57. वा०रा०, 54/19 बालकाण्ड
58. विवर्धमानो वीर्येण समुद्र इव पर्वणि।
    हतं मेने तदा राम वसिष्ठ मृषिसत्तमम्।।20।।
    ततो गत्वा श्रमपदं मुमोचास्त्राणि पार्थिवः
    यैस्तत् तपोवनं नाम निर्दग्धं चास्त्रतेजसा।।21।।
    -वा०रा०, बाल० पचपनवाँ सर्ग
59. वा०रा०, बाल० 55/23

थे। वहीं विश्वामित्र जी के चार पुत्र उत्पन्न हुए हविष्पन्द, मधुष्पन्द, दृढ़नेत्र और महारथ जो कि सत्य और धर्म में लगे रहते थे। एक हजार वर्ष पूरे होने पर ब्रह्मा जी ने तपस्या के प्रभाव से उन्हें सच्चा राजर्षि समझते हैं। उनकी बात सुनकर विश्वामित्र का मुख लज्जा से झुक गया। वे दुःखी हो मन ही मन कहने लगे - मैंने इतना बड़ा तप किया, फिर भी ऋषियों सहित सम्पूर्ण देवता मुझे राजर्षि ही समझते हैं। लगता है इस तपस्या का कोई फल नहीं हुआ।[61] विश्वामित्र ने राजा त्रिशंकु को चाण्डाल रूप में देखा तो सोचा कि अब इनका जीवन निष्फल हो गया। यह सोचकर महातेजस्वी परम धर्मात्मा मुनि के हृदय में करुणा भर आयी। दया से द्रवित हो विश्वामित्र जी ने त्रिशंकु से कहा यहाँ कैसे आए हो? लगता है कि तुम शाप से चाण्डाल भाव को प्राप्त हुए हो।[62]

राजा त्रिशंकु ने वसिष्ठ एवं वसिष्ठपुत्रों द्वारा ठुकराए जाने की बात कही। यह सुनकर कुशिकनन्दन विश्वामित्र ने कहा[63]- कि तुम यज्ञ करो, इसके लिए मै समस्त पुण्यकर्मा महर्षियों को आमन्त्रित कर दूँगा। सभी देशों में ब्रह्मवादी मुनि आए किन्तु महोदय नामक ऋषि तथा वसिष्ठ पुत्र नहीं आये। वसिष्ठ पुत्रों ने कहा है कि जो चाण्डाल है और जिसका यज्ञ कराने वाला आचार्य क्षत्रिय है, उसके यज्ञ में देवर्षि अथवा महात्मा ब्राह्मण हविष्य का भोजन कैसे कर सकते हैं अथवा चाण्डाल का अन्न खाकर विश्वामित्र जी से फलित हुए ब्राह्मण स्वर्ग में कैसे जा सकेंगे। विश्वामित्र जी ने कहा - मैं कठोर तपस्या में लगा हूँ और दुर्भावना से रहित हूँ फिर भी जो मुझ पर दोषारोपण करते हैं वे दुरात्मा भस्मीभूत हो जाएँ। महातेजस्वी विश्वामित्र ने अपने तपोबल से महोदय सहित वसिष्ठपुत्रों को नष्ट हुआ जान ऋषियों के बीच में कहा इक्ष्वाकुल में जात राजा त्रिशंकु जो मेरी शरण में आए हैं, उनकी इच्छा है कि मैं इसी शरीर के द्वारा देवलोक की प्राप्ति कर लूँ।[64] तदनन्तर सभी महर्षियों ने आपस में धर्मयुक्त परामर्श किया - कुशिक

61· वा0रा0, बाल0 सर्ग 57
62· वा0रा0, बाल0 सर्ग 58
63· वा0रा0, बाल0 59/2
64· वा0रा0, बाल0 59/3

के पुत्र विश्वामित्र मुनि बहुत क्रोधी हैं। अतः उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। विश्वामित्र अग्नि के समान तेजस्वी हैं। यदि इनकी बात न मानी गयी तो ये क्रोधपूर्वक शाप दे डालेंगे। इसलिए ऐसे यज्ञ का आरम्भ करें, जिससे विश्वामित्र के तेज से ये इक्ष्वाकुनन्दन त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग लोग में जा सके।[65] महातेजस्वी विश्वामित्र स्वयं ही उस यज्ञ में याजक (अध्वर्यु) हैं। क्रमशः अनेक मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण ऋत्विज हुए जिन्होंने काव्य शास्त्र के अनुसार विधि एवं मन्त्रोच्चारपूर्वक मन्त्रपाठ करके महातपस्वी विश्वामित्र ने अपना-अपना भाग ग्रहण करने के लिए सम्पूर्ण देवताओं का आवाहन किया, परन्तु उस समय वहाँ भाग लेने के लिए वे सब देवता नहीं आए।[66] विश्वामित्र ने कहा अब तुम मेरे द्वारा उपार्जित तपस्या का बल देखो मैं तुम्हें अपनी शक्ति से सशरीर स्वर्गलोक में पहुँचाता हूँ। इस तरह राजा त्रिशंकु सब मुनियों के देखते-देखते उस समय अपने शरीर के साथ ही स्वर्गलोक को चले गए। त्रिशंकु को स्वर्गलोक में आया देख इन्द्र आदि देवताओं ने कहा "तेरे लिए स्वर्ग में स्थान नहीं है, क्योंकि तू गुरु के शाप से नष्ट हो चुका है। अतः नीचे मुँह किए हुए पुनः पृथ्वी पर गिर जा। इन्द्र के ऐसा कहने पर त्रिशंकु तपोधन विश्वामित्र को पुकारकर "त्राहि-त्राहि" की रट लगाते हुए पुनः स्वर्ग से नीचे गिरे। चीखते हुए त्रिशंकु की वह करूण पुकार सुन कर कौशिक मुनि को बड़ा क्रोध आया। वे त्रिशंकु से बोले - वहीं ठहर जाओ।[67] तत्पश्चात् तेजस्वी विश्वामित्र ने ऋषि मण्डली के बीच दूसरे प्रजापति के समान दक्षिणमार्ग के लिए नए सप्त ऋषियों की सृष्टि तथा क्रोध में आकर उन्होंने नवीन नक्षत्रों का भी निर्माण कर डाला।[68]

65· अग्निकल्पो हि भगवान् शापं दास्यति रोषतः।6।।
तस्मात् प्रबर्त्यता सशरीरोणि यथा दिवि
मच्छेदिक्ष्वाकुदापादो विश्वामिश्रस्य तेजसा।।7।।
-वा0रा0, बाल0 60वाँ सर्ग

66· याजकश्च महातेजा विश्वामित्रो भवत् क्रतो।
ऋत्विजश्चातुपूर्व्येण मन्त्रवन्मन्त्रकोविदाः।।
-वा0रा0, बा0 60/8

67· वा0रा0, बाल0 60/12-18

68· तच्छुत्मा वचनं तस्य क्रोशमानस्य कौशिक।
दोशमाहारयत् तीव्रः तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत्।।19।।

"अन्यमिन्द्रं करिष्यामि लोको वा स्यादनिन्द्रकः
दैवतान्यपि स क्रोधात् स्रष्टुं समुपचक्रमे।"69

विश्वामित्र जी ने विचार करके कि अब मैं दूसरे इन्द्र की सृष्टि करूँगा। ऐसा निश्चय करके उन्होंने क्रोधपूर्वक नूतन देवताओं की सृष्टि आरम्भ की। इससे सभी देवता, असुर और ऋषि समुदाय बहुत घबराये और सभी वहाँ आकर महात्मा विश्वामित्र जी से विनयपूर्वक बोले - ये राजा त्रिशंकु गुरु के शाप से अपना पुण्य नष्ट कर चुके हैं, अतः तपोधन में चाण्डाल होने के कारण सशरीर स्वर्ग में जाने के अधिकारी नहीं है। मुनिवर कौशिक ने सम्पूर्ण देवताओं से परम उत्कृष्ट वचन कहा - देवगण मेनें राजा त्रिशंकु को सदेह स्वर्ग में भेजने की प्रतिज्ञा की है अतः मैं उसे पूरी करके ही रहूँगा।70

विश्वामित्र जी ने कहा - राजा त्रिशंकु को सदैव स्वर्गलोक का सुख प्राप्त हो। जिन नक्षत्रों का निर्माण मैनें किया है, वे सभी मोजूद रहें। जब तक संसार रहे तब तक वस्तुओं की सृष्टि मेरे द्वारा हुई है वह बनी रहें। देवताओं आप सभी लोग इन बातों का अनुमोदन करें।

उनके इस प्रकार कहने पर सम्पूर्ण देवताओं ने ऋषियों के बीच में ही महातेजस्वी धर्मात्मा विश्वामित्र मुनि की स्तुति की। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने बहुत अच्छा कहकर देवताओं का अनुरोध स्वीकार कर लिया। महातेजस्वी विश्वामित्र जी ने कहा -

"महाविघ्नः प्रवृत्तो यं दक्षिणामास्थितो दिशम्
दिशमन्यां प्रवत्स्यामस्तत्र तप्स्यामहे तपः।।71

69· वा0रा0, बाल0 60/23
70· वा0रा0, बाल0 60/24-27
71· वा0रा0, बाल0 61/2

विश्वामित्र जी ने विचार किया कि दक्षिण दिशा में रहने से हमारी तपस्या में अनेक बाधाएँ आ रही हैं, अतः अब हम दूसरी दिशा में जाकर तपस्या करेंगे। इसके बाद विश्वामित्र जी पश्चिम दिशा में जाकर जहाँ पर महात्मा ब्रह्मा के तीन पुष्कर हैं, उन्हीं के समीप रहकर हम सुखपूर्वक तपस्या करेंगे, क्योंकि वह तपोवन बहुत ही सुखद है।[72] शुनःशेप ने विश्वामित्र जी से कहा आप सभी के रक्षक तथा अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति कराने वाले हैं। ये राजा अम्बरीष कृतार्थ हो जायँ और मै भी विकार रहित दीर्घायु होकर सर्वोत्तम तपस्या करके स्वर्ग लोक प्राप्त कर लूँ। ऐसी कृपा कीजिए।[73]

महातपस्वी विश्वामित्र ने कहा - यह बालक मुनिकुमार मुझसे अपनी रक्षा चाहता है। इसलिए हे पुत्रों तुम लोग अपना जीवन मात्र देकर इसका प्रिय करो। तुम सब पुण्यात्मा और धर्म परायण हो। अतः राजा के यज्ञ में पशु बनकर अग्निदेव की तृप्ति प्रदान करो। इससे शुनःशेप सनाथ हो जाएगा और राजा का यज्ञ भी बिना किसी विघ्न बाधा के पूरा हो जाएगा देवता भी तृप्त हो जाएंगे और तुम्हारे द्वारा मेरी आज्ञा का पालन भी हो जाएगा।[74] विश्वामित्र ने पुत्रों से कहा आप अपने सभी पुत्रों को त्यागकर दूसरे किसी एक पुत्र की रक्षा कैसे करते हैं ? यथा- पवित्र भोजन में कुत्ते का मांस पड़ जाय तो वह अग्राह्य हो जाता है, उसी प्रकार जहाँ अपने पुत्रों की रक्षा आवश्यक हो वहाँ दूसरे के पुत्र की रक्षा के कार्य को हम अकर्तव्य की कोटि में ही देखते हैं।[75] विश्वामित्र ने कहा - तुम लोगों ने निर्भय होकर ऐसा कहा है जो कि धर्म रहित एवं निन्दित हैं। मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके जो यह दारुण एवं रोमाञ्चकारी बात तुमने कही है, इस अपराध के कारण तुम सभी वसिष्ठ के पुत्रों की भाँति कुत्ते का मांस खाने वाली मुष्टिक आदि जातियों में जन्म लेकर पूरे एक हजार वर्षों तक इस

72· वा0रा0, बाल0 61/4
73· वा0रा0, बाल0 62/8
74· वा0रा0, बाल0 62/13
75· वा0रा0, बाल0 62/15

पृथ्वी पर रहोगे।[76] मुनिकुमार राजा अम्बरीष के यज्ञ में जब तुम्हें कुश आदि के पवित्र पाशों से बाँधकर लाल फूलों की माला और लाल चन्दन धारण करा दिया जाय तब तुम विष्णु देवता सम्बन्धी यूप के पास जाकर वाणी द्वारा अग्नि की ﴾इन्द्र व विष्णु की﴿ स्तुति करना और इन दो दिव्य गाथाओं का गान करना। इससे मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त होगी।[77]

इसके बाद महातपस्वी धर्मात्मा विश्वामित्र ने भी पुष्कर तीर्थ में पुनः एक हजार वर्षों तक तीव्र तपस्या की।[78] विश्वामित्र जी के जब एक हजार वर्ष पूरे हो गए तब उन्होंने व्रत की समाप्ति का स्नान किया। स्नान कर लेने के बाद महामुनि विश्वामित्र के पास सम्पूर्ण देवता उन्हें तपस्या का फल देने की इच्छा से आये।[79] महातेजस्वी ब्रह्मा जी ने विश्वामित्र जी से कहा कि तुम अपने द्वारा उपार्जित शुभ कर्मों के प्रभाव से ऋषि हो गए हो। इसके बाद फिर से विश्वामित्र तपस्या में लग गए। बहुत समय बाद परम सुन्दरी अप्सरा मेनका पुष्कर में स्नान करने के लिये आयी।

"तां ददर्श महातेजा मेनकां कुशिकात्मजः
रूपेणाप्रतिमां तत्र विद्युतं जलदे यथा"।[80]

विश्वामित्र मुनि मेनका को देखते ही कामाभिभूत हो गए और उससे कहे तुम मेरे ही आश्रम में निवास करो। इस प्रकार पुनः उनकी तपस्या में बहुत विघ्न स्वयं उपस्थित हो गया। विश्वामित्र जी के आश्रम में निवास करते हुए मेनका का दस वर्ष बड़े सुख से बीता। इतना समय व्यतीत हो जाने पर महामुनि विश्वामित्र लज्जित हो चिन्ता और शोक में डूब गए।

अन्त में मुनि के मन में क्रोधपूर्वक यह विचार उत्पन्न हुआ कि देवताओं

---

76. वा0रा0, बाल0 62/16-17
77. वा0रा0, बाल0 62/19-20
78. विश्वामित्रोऽपि धर्मात्मा भूयस्तेपे महातपाः।
पुष्करेषु नरश्रेष्ठ दशवर्षशतानि च।। -वा0रा0, बाल0 62/28
79. पूर्ण वर्षसहस्त्रे तु व्रतस्नातं महामुनिम्।
अभ्यगच्छन् सुराः सर्वे तपः फलचिकीर्षतः।।1।।
-वा0रा0, बाल0 63वाँ सर्ग
80. वा0रा0, बाल0 63/5

की वजह से ऐसा हुआ है। उन्होंने हमारी तपस्या का अपहरण करने के लिए यह प्रयास किया है। विश्वामित्र ने कहा कि मैं कामजनित मोह से ऐसा आक्रान्त हो गया कि मेरे दस वर्ष एक दिन रात के समान बीत गये। यह मेरी तपस्या में बहुत बड़ा विघ्न आ पड़ा। विश्वामित्र मुनि ऐसा विचारकर लम्बी सांस खीचते हुए पश्चाताप से दुःखित हो गए। उस समय मेनका अप्सरा भय से थर-थर काँपती हुई उनके सामने खड़ी हो गयी। उसकी ओर देखकर विश्वामित्र ने उसे मधुर वचनों द्वारा विदा कर दिया और स्वयं वे उत्तर पर्वत {हिमवान्} पर चले गए।[81]

हिमवान् पर्वत पर जाकर विश्वामित्र मुनि ने निश्चयात्मक बुद्धि का आश्रय ले कामदेव को जीतने के लिए कौशिकी तट पर जाकर दुर्जय तपस्या आरम्भ की।[82] एक हजार वर्षों तक उत्तर पर्वत पर घोर तपस्या में लगे रहने से देवताओं को बड़ा भय हुआ। सब देवता और ऋषि आपस में बात करने लगे - ये कुशिक नन्दन विश्वामित्र महर्षि की पदवीं प्राप्त करें, इनके लिए यही ठीक होगा। देवताओं की बात सुनकर ब्रह्मा जी तपोधन विश्वामित्र जी के समीप जा मधुर वाणी में बोले - वत्स कौशिक मैं तुम्हारी कठोर तपस्या से बहुत संतुष्ट हूँ और मैं तुम्हें महत्ता एवं ऋषियों में श्रेष्ठता प्रदान करता हूँ। उनकी बात सुनकर विश्वामित्र जी ने कहा यदि आप अपने द्वारा उपार्जित शुभ कर्मों के फल से मुझे ब्रह्मर्षि का पद प्रदान कर सकें तो मैं अपने को जितेन्द्रिय समझूँगा।[83]

देवताओं के चले जाने पर विश्वामित्र जी पुनः घोर तपस्या में संलग्न हो गए। विश्वामित्र जी बिना किसी आधार के खड़े होकर दोनों भुजाएँ ऊपर उठाये केवल वायु पीकर रहते हुए तप में लगे रहे। गर्मी के दिनों और जाड़े के समय

81· द्रष्टव्य वा0रा0, बाल0 63वाँ सर्ग

82· स कृत्वा नैष्ठिकीं बुद्धिं जेतुकामो महायशाः।
कौशिकीतीरमासाद्य नमस्तेपे दुरासदम्।।
-वा0रा0, बाल0 63/14

83· वा0रा0, बाल0 63/15-22

रात-दिन पानी में खड़े रहते थे। इस प्रकार विश्वामित्र जी ने एक हजार वर्षों तक घोर तपस्या की।[84] विश्वामित्र को इस प्रकार से तपस्या करते देख देवताओं और इन्द्र के मन में भारी संताप हुआ। इन्द्र ने ही रम्भा अप्सरा से कहा कि तू विश्वामित्र मुनि को इस तरह लुभा, जिससे कि वे काम और मोह के वशीभूत हो जायें। रम्भा ने कहा कि ये विश्वामित्र मुनि बड़े भयंकर है वे मुझ पर भयानक क्रोध करेंगे। इन्द्र ने कहा - मैं तुम्हारे साथ हूँ अतः डरो मत। तुम अपने परम कान्तिमान् रूप को हाव-भाव आदि विविध गुणों से सम्पन्न करके उसके द्वारा विश्वामित्र मुनि को तपस्या से विचलित कर दे। तत्पश्चात् रम्भा अप्सरा ने मुनि को लुभाना आरम्भ किया। विश्वामित्र जी ने मीठी बोलने वाली कोकिल की मधुर काकली सुनी। विश्वामित्र जी ने प्रसन्न होकर जब उस ओर देखा तो सामने रम्भा खड़ी थी। कोकिल के कलख और रम्भा के अनुपम गीत तथा अप्रत्याशित दर्शन से मुनि के मन में संदेह हो गया कि निश्चय ही देवराज का ही सारा कुचक्र है। इसके बाद विश्वामित्र जी के क्रोध में भरकर रम्भा को शाप देते हुए कहा कि मै काम और क्रोध पर विजय पाना चाहता हूँ और तू आकर मुझे लुभाती है। अतः इस अपराध की वजह से तू दस हजार वर्षो तक पत्थर की प्रतिमा बनकर रहेगी।[85] शाप का समय पूर्ण हो जाने पर एक महान् तेजस्वी और तपोबलसम्पन्न ब्राह्मण मेरे क्रोध से कलुषित तेरा उद्धार करेंगे।[86] मुनि के महाशाप से रम्भा तत्काल पत्थर की मूर्ति बन गयी। महर्षि का शापयुक्त वचन सुनकर कन्दर्प और इन्द्र वहाँ से खिसक गए।[87] क्रोध से तपस्या का क्षय हो गया और इन्द्रियाँ वश में न थी। यह विचारकर उन महातेजस्वी मुनि के चित्त को शांति नहीं मिलती थी। तपस्या का अपहरण हो जाने पर उनके मन में यह विचार हुआ कि अब न क्रोध करूँगा और न किसी भी अवस्था में मुँह खोलूँगा।[88] जब तक मुझे अपने द्वारा

84· वा0रा0, बाल0 63/23-24

85· यन्मां लोभयसे रम्भे कामक्रोधजयैषिणम्।
दशवर्षसहस्राणि शैली स्थास्यसि दुर्भगे।।
-वा0रा0, बाल0 64/12

86· एवमुक्त्वा महातेजा विश्वामित्रों महामुनिः।
अशक्नुवन् धारयितुं कोपं संतापमात्मनः।।
-वा0रा0, बाल0 64/14

87· तस्य शापेन महता रम्भा शैली तदाभवत्।
वचःश्रुत्वाच कन्दर्पो महर्षेः सः निर्गतः।। -बा0रा0, बाल0 64/14

उपार्जित तपस्या से ब्राह्मणत्व की प्राप्ति न होगी। तब तक मैं बिना खाए पीये खड़ा रहूँगा और साँस भी न लूँगा। चाहे हजारों वर्ष व्यतीत हो जाएँ।[89] तपस्या करते समय मेरे शरीर के अंग नष्ट नहीं होंगे। मुनिवर विश्वामित्र ने पुनः एक हजार वर्षों तक तपस्या करने के लिए दीक्षा ग्रहण की। उनकी प्रतिज्ञा की संसार में तुलना नहीं है। पूर्वोक्त प्रतिज्ञा के बाद महामुनि विश्वामित्र उत्तर दिशा को छोड़कर पूर्व दिशा में रहकर कठोर तपस्या करने लगे। एक हजार वर्ष पूरे होने तक वे महामुनि काष्ठ की भाँति निश्चेष्ट बने रहे। तपस्या करते समय अनेक प्रकार के विघ्न आए किन्तु क्रोध उनके भीतर नहीं घुसने पाया। अपने निश्चय पर अटल रहकर विश्वामित्र जी ने अक्षय तप का अनुष्ठान किया। सहस्त्र वर्षों का व्रत पूरा होने पर महान् व्रतधारी महर्षि व्रत समाप्त करके अन्न ग्रहण करने के लिए उद्यत हुए। इसी समय ब्राह्मण वेष में आकर इन्द्र ने उनसे तैयार अन्त की याचना की।[90]

तस्मै दत्वा तदा सिद्धं सर्व विप्राय निश्चितः
निः शेषितेऽन्ने भगवानभुक्त्वैव महातपाः।।6।।[91]

विश्वामित्र जी ने ब्राह्मण से कुछ नहीं कहा और अपने मौन रूप का भली-भाँति पालन किया। इसके बाद पुनः पहले की तरह श्वासोच्छ्वास से रहित मौन व्रत का अनुष्ठान आरम्भ किया।[92] विश्वामित्र मुनि की तपस्या से तीनों लोकों के प्राणी घबड़ा उठे। उस समय देवता, ऋषि, गन्धर्व, नाग, सर्प और राक्षस सब मुनि की तपस्या से मोहित हो गए। उनके तेज से सभी की भाँति फीकी पड़ गयी। महामुनि विश्वामित्र अपनी तपस्या के प्रभाव से निरन्तर आगे बढ़ते जा रहे हैं। महर्षि विश्वामित्र के तेज से सूर्य की प्रभा फीकी पड़ गयी है। वे महाकान्तिमान

---

89. तावद् यावद्धि मे प्राप्तं ब्राह्मण्यं तपसार्जितम्।
अनुच्छ्वसन्तभुञ्जानतिस्तष्ठेयं शाश्वतीः समाः।।
-वा0रा0, बाल0 65/9

90. वा0रा0, बाल0 65/4-5

91. वा0रा0, बाल0 65/6

92. अथ वर्षसहस्त्रं च नोच्छ्वसन् मुनिपुङ्गवः।
तस्यानुच्छ्वासमानस्य मूर्ध्नि धूमो व्यजायत।।
-वा0रा0, बाल0 65/8

मुनि अग्निस्वरूप हो रहे हैं। महामुनि विश्वामित्र जब तक जगत् के विनाश का विचार नहीं करते तब तक ही इन्हें प्रसन्न कर लेना चाहिए।[93] सभी देवता विश्वामित्र से बोले कि आपने अपनी तपस्या से ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लिया है। ब्रह्मा जी ने विश्वामित्र जी को दीर्घायु प्रदान किया और कहा तुम मंगल के भागी हो, तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ सुखपूर्वक जाओ। ब्रह्मा जी की यह बात सुनकर विश्वामित्र जी ने सभी देवताओं को प्रणाम किया और कहा - यदि मुझे दीर्घायु और ब्राह्मणत्व की प्राप्ति हो गयी है तो ॐकार, वषट्कार और चारों वेद स्वयं आकर मेरा वरण करें। इसके अतिरिक्त क्षत्रिय वेद तथा ब्रह्मवेद के ज्ञाताओं में सर्वश्रेष्ठ वसिष्ठ स्वयं आकर मुझसे ऐसा कहें। यदि ऐसा हुआ तो मैं समझूँगा कि मेरा मनोरथ पूरा हुआ। वसिष्ठ मुनि ने "एवमस्तु" कहकर विश्वामित्र का ब्रह्मर्षि होना स्वीकार किया और उनके साथ मित्रता स्थापित कर ली। विश्वामित्र जी ने भी मन्त्र जप करने वालों में श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि वसिष्ठ का पूजन किया।[94]

ये विश्वामित्र मुनियों में श्रेष्ठ तपस्या के मूर्तिमान स्वरूप उत्तम धर्म के साक्षात विग्रह और पराक्रम की परम निधि हैं।[95] कुशिक नन्दन आप की तपस्या अप्रमेय है। आप का बल अनन्त है। आप के गुण भी सदा ही माप और संख्या से परे हैं।[96]

विश्वामित्र को क्षत्रिय धर्म त्यागकर ब्राह्मणत्व प्राप्त करने की इच्छा क्यों हुई इस सम्बन्ध में वाल्मीकि रामायण एवं महाभारत में कल्पनारम्य कथा प्राप्त होती है। एक बार विश्वामित्र अतिथि के रूप में वसिष्ठ के आश्रम में पधारे जहाँ

93· कालाग्निना यथा पूर्वे त्रैलोक्यं दह्यते ऽखिलम्।
देवराज्यं चिकीर्षेत दीयतामस्य यन्मन।।
-वा0रा0, बाल0 65/17

94· वा0रा0, बाल0 65वां सर्ग

95· वा0रा0, बाल0 65/27-29

96· अप्रमेयं तपस्तुभ्यप्रमेयं च ते बलम्।
अप्रमेया गुणाश्चैव नित्यं ते कुशिकात्मजः।।
-वा0रा0, बाल0 51/56

वसिष्ठ ने नंदिनी के माध्यम से इनका उचित आतिथ्य सत्कार किया। अनेकानेक दैवी गुणों से युक्त कामधेनु को वसिष्ठ से माँगा। वसिष्ठ द्वारा अस्वीकार कर देने पर विश्वामित्र अपना सारा राज्य देने को तैयार हो गये फिर भी वसिष्ठ नहीं माने। तत्पश्चात् नन्दिनी को प्राप्त करने के लिए विश्वामित्र ने अपनी सेना का सहारा लिया किन्तु उस कामधेनु से उत्पन्न शक, यवन, किरात आदि लोगों ने विश्वामित्र की सेना को पराजित कर दिया। विश्वामित्र के सभी प्रयत्न असफल सिद्ध हुए। तत्पश्चात् वसिष्ठ को पराजित करने के लिए विश्वामित्र ने अनेकानेकशस्त्रों का निर्माण किया तथा इसके लिए कठोर तप किया। अस्त्र प्राप्ति के बाद भी वसिष्ठ अजेय बने रहे। अतः विश्वामित्र को आभास हो गया कि क्षत्रबल से ब्रह्मबल अधिक श्रेष्ठ है। इसके पश्चात् वसिष्ठ के समान ब्रह्मबल प्राप्त करने के लिए प्रण किया एवं तत्प्राप्त्यर्थ कौशिकी नदी एवं ऋषंगु तीर्थ पर घोर तपस्या करके यह ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया।[97]

महाभारत की उक्त कथा काल की दृष्टि से विपरीत प्रतीत होती है नन्दिनी गाय का पालनकर्ता वसिष्ठ ऋषि "वसिष्ठ देवराज" न होकर वसिष्ठ अथर्वनिधि था, जो विश्वामित्र से काफी पूर्वकालीन था फिर भी महाभारत में विश्वामित्र ऋषि के समकालीन देवराज वसिष्ठ को नन्दिनी का पालनकर्ता चित्रित किया गया है। अतएव विश्वामित्र वसिष्ठ कारण परम्परा बताने वाली महाभारत में प्राप्त उपयुक्त सारी कथा अनैतिहासिक प्रतीत होती है।[98]

ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के बाद विश्वामित्र ने अपनी पत्नी एवं पुत्रों को कोशल देश स्थित एक आश्रम में रख दिया। स्वयं सागरानूप तीर्थ पर तपश्चर्यार्थ चले गये। इनकी अनुपस्थिति में कोसल देश में भारी अकाल पड़ा फलतः विश्वामित्र के पुत्र एवं पत्नी भूख से तड़पने लगे। अन्न के लिए अपने एक पुत्र एवं पत्नी

97· महाभारत 85/9/12, वा0रा0, बाल0 51/56
98· भारतवर्षीय प्राचीन चरित्रकाश पृ0 871-72

भूख से तड़पने लगे। अन्न के लिए अपने एक पुत्र एवं पत्नी भूख से तड़पने लगे। अन्न के लिए अपने एक पुत्र के गले में रस्सी बाँधकर उसे खुले बाजार में बेचने को आपत्प्रसंग विश्वामित्र की पत्नी पर आया जिस कारण उस पुत्र को "मानव" नाम प्राप्त हुआ। उस समय कोसल देश के त्रैय्यारूण के पुत्र सत्यव्रत (त्रिशंकु) ने विश्वामित्र के पत्नी की सहायता की तथा पुत्रों सहित उनकी जान बचायी। त्रिशंकु शिकार करके मांस लाता था और उस मांस को ऋषि के परिवार को खिलाता था। इसी समय एक बार राजा त्रिशंकु द्वारा वसिष्ठ की नन्दिनी गाय वध कर उसके मांस को विश्वामित्र के परिवार को खिलाने की प्रथा पुराणों में पायी जाती है। लेकिन यह कथा कल्पना पर आश्रित लगती है।

इसके बाद तपस्या समाप्तकर बारह वर्ष बाद कोसल देश वापस आने पर अपनी अनुपस्थिति में राजा त्रिशंकु द्वारा किए गये उपकार का बला, वसिष्ठ द्वारा पद भ्रष्ट किये गये त्रिशंकु को पुनः उसका राज्य उसे वापस दिलाने का आश्वासन देकर विश्वामित्र ने चुकाया। विश्वामित्र ने अयोध्या के राजपुरोहित वसिष्ठ को पराजित कर अयोध्या की राजगद्दी पर त्रिशंकु को बैठाया। त्रिशंकु ने भी बदले में अपने राजपुराहित को वसिष्ठ को पदच्युत कर उनके स्थान पर महर्षि विश्वामित्र को नियुक्त किया। इस प्रकार ब्राह्मण बनकर वसिष्ठ के समान राजपुरोहित बनने की विश्वामित्र की आकांक्षा पूर्ण हो गयी।

ब्रह्मबल प्राप्त कर लेने के बाद विश्वामित्र ने त्रिशंकु के अनेकानेका यज्ञों का आयोजन करवाया। अपने तपोवल से उसके सदेह स्वर्गारोहण की आकांक्षा को पूरी की। इस सम्बन्ध में अपने पुराने शत्रु से वसिष्ठ से अनेक बार संघर्ष करना पड़ा। देवराज इन्द्र द्वारा त्रिशंकु के सदेह स्वर्गारोहण का विरोध किये जाने पर इन्द्र से भी घोर संघर्ष करना पड़ा। किन्तु अन्त में सफलता एवं यश विश्वामित्र को ही प्राप्त हुआ। पार्जिटर के अनुसार त्रिशंकु के स्वर्गारोहण की पुराणों में वर्णित कथा कल्पनारम्य प्रतीत होती है। आकाश में स्थित ग्रहों में से एक ग्रह समूहाई को विश्वामित्र ने त्रिशंकु का नाम दिलवाया। यही इस कथा का तादृश अर्थ है।

रामायण में भी त्रिशंकु का वर्णन चन्द्र मार्ग पर स्थित एक ग्रह के नाते गुरु, बुध, मंगल आदि अन्य ग्रहो के साथ किया गया है।[99] पार्जिटर आदि का मत उचित नहीं प्रतीत होता है। पार्जिटर का मत भी कल्पनारम्य भी प्रतीत होता है। देखा जाय तो सारे पुराण ही कल्पनारम्य ही प्रतीत होते है। सम्भवतः त्रिशंकु का स्वर्गारोहण की घटना से सम्बद्ध होने के कारण ही किसी ग्रह विशेष का नाम त्रिशंकु रख दिया गया होगा।

विश्वामित्र के द्वारा त्रिशंकु के पुनः राज्य प्राप्त कराने की घटना अयोध्या के इक्ष्वाकुराजवंश में एक महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती है। अयाध्या के पुरातन इक्ष्वाकुराजवंश को दूर हटाकर वहाँ अपना स्वयं का राज्य स्थापित करने का प्रयत्न वसिष्ठ कर रहे थे। उसे असफल बनाकर इक्ष्वाकुराजवंश का अधिराज्य अवाधित रखने का कार्य महर्षि वाल्मीकि ने किया। अतः असम्भव को सम्भव कर दिखाना महर्षि विश्वामित्र के चरित्र की विशेषता है। जीवन पर्यन्त संघर्षरत कभी हार न स्वीकार करना उनका बड़ा गुण है। हरिश्चन्द्र के राज्य काल में उनके पुरोहित की यज्ञ में बलि देने का एवं इक्ष्वाकु राजवंश को निर्वंश करने का षडयन्त्र महर्षि वसिष्ठ के द्वारा रचाया गया था। किन्तु विश्वामित्र ने रोहित की एवं तत्पश्चात् उसके स्थान पर बलि जाने वाले अपने भतीजे शुनःशेप की रक्षा कर इक्ष्वाकुराजवंश का पुनः रक्षण किया। तदोपरान्त विश्वामित्र ने शुनःशेप को अपन पुत्र मानकर उसका नाम देवरात रख दिया।[100]

क्षत्रिय विश्वामित्र को महर्षि पद कैसे प्राप्त हुआ इस सम्बन्ध में वा0रा0[101] महाभारत एवं पुराणो[102] में अनेक कथाएँ वर्णित है। ब्रह्मर्षि पद प्राप्त होने के बाद इन्हें इन्द्र के साथ सोमपान करने का सम्मान प्राप्त हुआ।[103] इन्द्र के

99· वा0रा0, अयोध्याकाण्ड, 41/10
100· ऐतरेय ब्राह्मण, 7/16/ सां0श्रौ0 15/17
101· वा0रा0, बाल0, 62-66
102· स्कन्दपुराण, 6/1/167-168
103· महाभारत 69/50

कृपापात्र होने का निर्देश आरण्यक ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है।[104]

विश्वामित्र के ब्रह्मर्षि पद की प्राप्ति से सम्बन्धित एक कथा महाभारत मे इस प्रकार हैं - "एक बार धर्म ऋषि आकर विश्वामित्र से भोजन माँगने लगा। धर्म के लिये वे चावल पकाने लगे इतने में वह चला गया। बाद में विश्वामित्र सौ वर्ष तक वैसे ही खड़े रहकर धर्म ऋषि की राह देखते रहे। इतने दीर्घ काल तक खड़े रहकर भी इसने अपनी मनःशांति नहीं छोड़ी जिस कारण धर्म ने इसकी अत्यधिक प्रसन्नता की एवं ब्रह्मर्षि पद प्रदान किया।[105] इस प्रकार महाभारत में अन्यत्र त्रिशंकु आख्यान, रम्भा को शाप, विश्वामित्र के द्वारा कुत्ते का मांस भक्षण आदि इसके जीवन से सम्बन्धित अनेकानेक कथाएँ एकत्र रूप से प्राप्त होती हैं।

भविष्य पुराण के अनुसार ब्रह्मा को अत्यन्त प्रिय "प्रतिपदा" का व्रत करने के कारण विश्वामित्र को देहान्तर न करते हुए भी ब्राह्मणत्व की प्राप्ति हो गयी।[106] मृत्युपरान्त इन्हें शिवलोक प्राप्त हुआ यह फल इन्हें हिरण्य नदी के संगम पर स्नान के कारण प्राप्त हुआ था।[107]

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र का आश्रम कुरूक्षेत्र में सरस्वती नीर नदी के पश्चिम तट पर स्याणु तीर्थ के सम्मुख था।[108] इसी आश्रम के समीप सरस्वती नदी पर स्थित रूषंगु आश्रम में विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था।[109] विश्वामित्र का एक अन्य आश्रम आधुनिक बक्सर में ताटका वन के समीप था। महाभारत के अनुसार इसका आश्रम कौशिकी नदी (उत्तर विहार की आधुनिक कोशी नदी) के तट पर स्थित था। इस नदी को कौशिकी नाम भी इसी के कौशिक पैतृक नाम से प्राप्त हुआ था।[110] यह वही पुण्य स्थान था जहाँ पूर्व काल में वामन ने

104· ऐतरेय अरण्यक 2/2/3 सा0आ0 1/5
105· महाभारत, 10/4/7-18
106· भविष्यपुराण 16
107· पद्म0 उ0 140
108· महाभारत 41/4/37
109· वही, 38/22-32
110· वही, 65/20

बलि से त्रिपाद भूमि की माँग की थी। इसी महात्म्य को मानकर सम्भवतः विश्वामित्र ने यहाँ अपना सिद्धाश्रम बनाया। इसके अतिरिक्त देवकुण्ड (देवगर्भकुटी) एवं विश्वामित्र नदी के तट पर स्थित अन्य दो आश्रमों का उल्लेख प्राप्त होता है।[111]

विश्वामित्र के परिवार के बारे में उनके पत्नियों, पुत्रों की नामावलि विश्वामित्र कुल में उत्पन्न गौत्रो प्रवरों आदि की विस्तृत जानकारी हमें महाभारत वा0रा0 हरिवंशपुराण, वायु0पु0 ब्रह्मपु0 आदि में प्राप्त होती है। विस्तार रूप से यहाँ उनकी नामावली देना सम्भव नहीं है।

विश्वामित्र एक प्रख्यात ऋषि का नाम है। यह जन्म से क्षत्रिय एवं कान्यकुब्ज का राजा था। इनके पिता का नाम गाधि था। एक बार यह मृगया के लिए घूमते-घूमते वसिष्ठ ऋषि के आश्रम में पहुँचे। वहाँ अनेक गाओं को देखकर उसने अनन्त धनराशि देकर भी उनको लेना चाहा और न मिलने पर बलात् उनको छीनने का प्रयत्न किया। इस बात पर एक महान् संघर्ष हुआ, और राजा विश्वामित्र पूर्ण रूप से परास्त हो गये। इस पराजय से विश्वामित्र अत्यन्त क्षुब्ध हुए और साथ ही वसिष्ठ की ब्राह्मणत्व की शक्ति से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि वह ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के लिए घोर तपस्या करता रहा। यहाँ तक कि बाद में उन्हें क्रमशः राजर्षि, ऋर्षि, महर्षि और ब्रह्मर्षि की उपाधि मिली, परन्तु उन्हें सन्तोष न हुआ क्योंकि वसिष्ठ ने उन्हें अपने मुख से ब्रह्मर्षि नहीं कहा। विश्वामित्र हजारों वर्ष तपस्या करते रहे तब कहीं जाकर वसिष्ठ ने उन्हें ब्रह्मर्षि कहा। विश्वामित्र ने कई बार वसिष्ठ को उत्तेजित करने का प्रयत्न किया, उदाहरणतः वसिष्ठ के सौ पुत्रों को विश्वामित्र ने मौत के घाट उतार दिया, परन्तु वसिष्ठ तब भी नहीं घबराये। अन्तिम रूपसे ब्रह्मर्षि बनने से पहले विश्वामित्र की शक्ति बहुत अधिक थी, उदाहरणतः उसने त्रिशंकु को स्वर्ग भेजने इन्द्र के हाथ से शुनःशेप की रक्षा करने, तथा ब्रह्मा की भाँति पुनः सृष्टि रचना करने में अत्यधिक बल का प्रदर्शन किया। यह बालक राम का साथी और परामर्शदाता था, इसने राम को अनेक आश्चर्यजनक अस्त्र प्रदान किये।[112]

111· भारतीय चरित्रकोष, पृ0सं0 873-74

112· संस्कृत हिन्दी कोश -वामनशिवराम आप्टे पृ0 959

विश्वामित्र को कुशिकनंदन होने के कारण कौशिक भी कहा जाता है। ये महाराज दशरथ और महाराज जनक दोनों के समान रूप से प्रिय हैं। इनके जीवन की प्रमुख दो घटनाएं है - एक तो इनकी उग्र तपस्या में विघ्नभूता अप्सरा का आना और दूसरा इनके द्वारा अपने प्रभाव से त्रिशंकु को स्वर्ग भेजा। इन्हीं घटनाओं को संदर्भित करने वाले प्रसंगों का संस्कृत नाटकों में भरपूर प्रयोग किया गया है। इनका चित्रण मुख्यतः अभिज्ञान शाकुन्तल, महावीर चरित, प्रसन्नराघव, अनर्घराघव, हनुमन्ननाटक और चण्डकौशिक में हुआ है।

अभिज्ञान शाकुन्तल

अभिज्ञान शाकुन्तलम् मे विश्वामित्र किसी पात्र के रूप में चित्रित नहीं हैं। शकुन्तला के जन्मदाता के रूप में प्रथम अंक में इनका निर्देश अनसूया के द्वारा किया गया है।[113]

महाबीर चरितम

प्रथम, तृतीय एवं चतुर्थ अंक में विश्वामित्र का उल्लेख हुआ है। महर्षि विश्वामित्र नायक के प्रधान सहायक है। वे राम की भलाई के लिए सर्वदा प्रयत्नशील है। वे स्वयं तपस्वी है और उन्हें अपने लिए कुछ नहीं चाहिए, परन्तु केवल लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर वे एक महान् उत्तरदायित्व स्वयं ही अपने ऊपर ले लेते है।[114] क्योंकि उन्होंने शुभ कार्य का संकल्प किया है अतः व्यग्रता में भी उन्हें आनन्द का अनुभव होता है। वे अत्यन्त पवित्र और ज्ञानवान है। वे तप और तेज के निधान है तथा सभी विद्याएँ उनमें निवास

113· अनसूया-श्रृणोत्वार्यः। अस्ति कोऽपि कौशिक इति गोत्रनामधेयो महाप्रभावो राजर्षिः - अभि0शाकु0 पृ0 सं0 70/95
अनसूया-तमावयोः प्रियसख्याः प्रभवमवगच्छ। उज्झितायाः शरीरसंवर्धनादिभिस्तात काश्यपोऽस्याः पिता। - अभि0शा0 पृ0 71/97
अनसूया-श्रृणोत्वार्यः। गौतमतीरे पुरा किल तस्य राजर्षेरुग्रे तपसि। वर्तमानस्य किमपि जातशङ्कैर्देवैर्मेनका नामाप्सराः प्रेषिता नियमविघ्नकारिणी।
वही, पृ0 71/99
अनसूया-ततो वसन्तावतारसमये तस्या उन्मादयितृ रूपं प्रेक्ष्य। §इत्यर्धोक्ते लज्जया विरमति§ वही पृ0 सं0 72/101

114· म0च0 1/13

करती हैं।[115] स्वयं महर्षि वसिष्ठ उनके महत्व एवं दुर्धर्ष तेज की प्रशंसा करते हैं।[116] दशरथ और जनके बहुत उनका बहुत आदर करते हैं और विश्वामित्र भी दोनों राज परिवारों पर समान रूप से दयावान् है। जनक तथा रघु परिवारों का यह सम्बन्ध किसे प्रिय नहीं, जिसमें दाता और गृहीता स्वयं कुशीकनन्दन है।[117]

लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर ही उन्होंने राम द्वारा राक्षसों का वध कराया है। परशुराम को दिये गये आशीर्वाद - तुम्हारी यह शान्ति रहे और तुम्हारे मन में यह शिव संकल्प चिरस्थायी हो" में भी उनकी लोक-कल्याण भावना ही व्यक्त हुई हैं।

इसके पूर्व जब परशुराम क्रोधावेश में राम का अनिष्ट करने पर तुले हुए थे तब उनके गर्वयुक्त वचनों को सुनकर विश्वामित्र को मर्मान्तिक वेदना का अनुभव हो रहा था। पहले तो उन्होंने शांतिपूर्वक परशुराम को समझाने का प्रयत्न किया परन्तु जब उनका दुराग्रह बढ़ता ही गया तब विश्वामित्र भी क्रुद्ध हो उठे- "यद्यपि तुम मेरे द्वारा माननीय हो, फिर भी मेरा दक्षिण हस्त शापोदक तथा वामहस्त, पुराने संस्कार के कारण चाप को ढूंढ़ रहा है।[118] उनका यह क्रोध एक साथ ब्रह्म वर्चस्व और क्षात्र तेज से संदीप्त है। ऐसे अवसर पर उनके प्राक्संस्कार की पुनर्जागृति सर्वथा उचित है।

विश्वामित्र व्यवहारकुशल राजनीतिज्ञ भी हैं। जब राक्षस दूत सीता की याचना के सम्बन्ध में रावण का सन्देश सुनाता है तो वे सुनकर चुप रहे जाते हैं, कोई उत्तर नहीं देते और उसी समय राम द्वारा ताड़का का वध करा देते हैं। राक्षस जब पुनः उनसे उत्तर मांगता है तो वे कहते हैं - इस सम्बन्ध मे जनक ही

115· म0च0 1/11, 12

116· वही, 4/15

117· जनकानां रघूणं च सम्बन्धः कस्य न प्रियः।
यत्र दाता ग्रहीता च कल्याणप्रतिभूर्भवान्।। म0च0 1/57

118· वही, 3/43

उत्तर दे सकते हैं वे ही कन्या के पिता है, कुल के ज्येष्ठ है और प्रभु हैं। जब राक्षस ने कुशध्वज से कहा - "मेरा कितनी देर से अनादर किया जा रहा है तब विश्वामित्र ने उसके समक्ष ही राम द्वारा धनुर्भंग करवा दिया। राम सीतापति बन गये और रावण के दूत ने यह सब अपनी आँखों से देख लिया। उसके प्रस्थान के पूर्व ही उनके आदेश से राम ने सुबाहु और मारीच को उचित दण्ड दे दिया। इस प्रकार विश्वामित्र ने बिना कुछ कहे, रावण के पास जो संदेश भेजना था भेज दिया। अत्यन्त गम्भीर स्वभाव वाले विश्वामित्र अवसर आने पर मधुर विनोद भी कर सकते हैं। मिथिला से प्रस्थान करते समय वे वसिष्ठ से कहते हैं - भगवन् यदि आप स्वीकार करें तो हम दोनों ही सिद्धाश्रम चलें। आपके साथ चलने पर मधुच्छन्दा की माता मेरा अधिक सत्कार करेगी।

राम के प्रति विश्वामित्र का हृदय इतना वात्सल्यपूर्ण है कि तपः स्वाध्याय में अत्यधिक व्यस्त होने पर भी वे राज्याभिषेक के अवसर पर स्वयं अयोध्या पहुँचते है और वसिष्ठ की अनुमति प्राप्त कर राम के अभिषेक का आदेश देते हैं। राम को अभिषिक्त देखकर उनके हृदय में कितना आनन्द हुआ होगा, इसका अनुमान किया जा सकता है।

प्रसन्नराघव

इस नाटक के तृतीय अंक में विश्वामित्र का चित्रण हुआ है। मुनि विश्वामित्र तपोनिष्ठ महर्षि है। उन्होंने स्वयं को तपस्या रूपी अग्नि में तपा कर ब्रह्मा जी से पारितोषि के रूप में क्षत्रियत्व के बदलें ब्राह्मणत्वरूप उत्कर्ष को प्राप्त किया है -

यः कांचमिवात्मानं निक्षिप्याग्नौ तपोमये।
वर्णोत्कर्ण गतः सोऽयं विश्वामित्रों मुनीश्वरः।[119]

विश्वामित्र द्वारा तपः सामर्थ्य से भेजे हुए त्रिशंकु को जब देवों ने स्वर्ग में स्थान नहीं दिया तब उन्होंने क्रुद्ध हो नूतन स्वर्ग का निर्माण आरम्भ कर दिया। उस समय कोप से लाल-लाल अपनी दृष्टि को कूँची बनाकर गगनतलभित्ति

119· प्र0 3/8

पर देवश्रेणी को चित्रित करने लगे थे - तब चन्द्र और सूर्य के विम्बों ने क्रमशः सुधारस और लाक्षाद्रव के पात्रों का काम किया था।[120]

मुनि को राम लक्ष्मण के प्रति पितृतुल्य स्नेह है। वे इनके गुरू है जिनके समीप रहकर इन दोनों ने धनुर्विद्या ग्रहण की है। यज्ञ की रक्षा में तत्पर राम द्वारा ताड़का का वध किये जाने के पश्चात् वे शिव धनुष दिखलाने के निमित्त उन्हें मिथिला लाते हैं। उन्हें राम की शक्ति पर पूर्ण विश्वास है इसी कारण राम में मुग्धत्व को देखने वाले जनक के संकोच करने पर भी वे राम को धनुष नमाने की आज्ञा देते हैं। दशरथ से वे अपने आपको इतना अभिन्न मानते हैं कि उनसे पूछे बिना ही चारों जनक कन्याओं के साथ क्रमशः राम आदि चारों भाइयों के विवाह की स्वीकृति स्वयं दे देते हैं।

यज्ञरक्षण के लिए अयोध्यापति दशरथ ने जब कौशिकमुनि के पास अपने पुत्र राम और लक्ष्मण को सौंपा तब प्रसन्न होकर उन्होंने भी वीरमाता के कर्णभूषण ताटङ्कयुग्म कौशल्या के लिए उनको समर्पित किया।

अनर्घराघव

विश्वामित्र का चरित्र इस नाटक में मूल स्त्रोत माना जाता है। वे राम को इसी प्रकार संवारते हैं जैसे मुद्राराक्षस का चाणक्य चन्द्रगुप्त हो। विश्वामित्र ने तपस्या रूप छेनी से काटकर क्षत्रिय शरीर को ब्राह्मण शरीर के रूप में परिणत कर दिया। इन्द्र ने कुपित होकर विश्वामित्र ने सात पुराण ब्रह्मा तथा भुवनपितरों की सृष्टि कर डाली। देवों की प्रार्थना से प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने उन स्वरचित ब्रह्मा आदि वैश्वानर पथ से बाहर कर दिया।[121]

120· प्र0 3/14

121· अ0रा0 1/48

ब्रह्मतत्व का ज्ञान प्राप्त करके भी यह कौशिक स्वर्गसाधक तथा गृहस्थोचिताचार प्राप्त यज्ञों से खेलते हैं। विश्वामित्र ने त्रिशंकु के चरित सम्बन्ध में नवीन विश्व की सृष्टि का प्रारम्भ तथा परित्यागपूर्ण आश्चर्य कार्य किया। विश्वामित्र यज्ञ क्रियाओं द्वारा श्रोत अर्थ के कृतार्थ कर राम व लक्ष्मण को लेकर मिथिला गए।

दशरथ पुत्र राम-लक्ष्मण को ताड़का वध रूप मंगलमय अवसर पर विश्वामित्र ने दिव्यास्त्र मन्त्र का परायण किया है। विश्वामित्र ने राम व लक्ष्मण को धनुवेद की शिक्षा दी। विश्वामित्र ने यज्ञविघ्नशमन के लिए दशरथ के पुत्र राम व लक्ष्मण से राक्षसों का वध करवाया। शिव के धनुष को राम से तुड़वाकर सीता का विवाह सम्पन्न करवाया। विश्वामित्र ने दिव्यास्त्रों को प्रदान किया। विश्वामित्र जब धनुष उठाने की आज्ञा देते है तब धनुष उठता है। ताड़का वध की प्रेरणा देते है तब वध होता है। विश्वामित्र राम के सभी कर्तव्यों की चिन्ता करते हैं।

चण्डकौशिक

यह सम्पूर्ण नाटक विश्वामित्र के जीवनगाथा के रूप में है। विश्वामित्र अपने आश्रम में विद्यात्रयी की साधना में निरत है। महर्षि अपने तपोबल से इस त्रिविध मूल शक्ति को आत्मसात् करना चाहते है। महर्षि विश्वामित्र ने इस मूल शक्ति को अपने मंत्र शक्ति से अपने अग्निहोत्रागार में खींच लिया।

आश्रम ने विश्वामित्र क्रोध से आंखे लाल किए हुए विद्या की सिद्धि से विरत होकर अपने कोसने वाले की प्रतीक्षा कर रहे हैं। राजा के अनुनय विनय करने पर भी अत्यन्त कोपन स्वभाव वाले महर्षि का क्रोध शान्त नहीं हुआ। महर्षि विश्वामित्र ने कहा यदि तू दान देना चाहता है तो मेरी पात्रता देखकर जो उचित हो वह दान मुझे दे दो। महर्षि ने सहर्ष दान स्वीकार कर लिया।

जाति स्वयं ग्रहणं दुर्ललितैक विप्रं
दृप्यदशिष्ठ सुत कानन धूमकेतुम्।
सर्गान्तराहरण भीत जगत् कृतान्तं
चाण्डाल-याजिनमवेषि न कौशिकं माम्।[122]

एक बार विश्वामित्र जब वे क्षत्रिय राजा के शिकार के वन में गए। मृगया से परिश्रान्त होकर वे सदलबल महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में आये। वसिष्ठ उठे और आश्रम के बंधी हुई कामधेनु की लड़की शवला से राजोचित आतिथ्य प्रबंध करने को कहकर फिर विश्वामित्र से बातें करने लगे। बात होते-होते वहाँ का सारा परिपार्श्व ही बदल गया। उस स्थान में स्वर्ग की सारी विभूति मूर्तित हो गई। इस अलौकिक आतिथ्य संभार से सब आश्चर्यचकित हो रहे थे। राजा को भी इस स्वप्न में कभी भी इस वैभव का अनुभव नहीं हुआ था। सुबह जब राजा महर्षि से विदा मांगने के लिए उपस्थित हुए तो उन्होंने उनसे शवला मांगी। महर्षि वसिष्ठ ने कहा - यह स्वच्छन्द विचरण करने वाली है। आप स्वयं उससे प्रार्थना करें। गाय ने राजा के साथ जाना अस्वीकार कर दिया। राजा ने बलपूर्वक उसे ले जाने लगे। गाय ने वसिष्ठ को अपनी सहायता में असमर्थ देखकर स्वयं अपनी शक्ति से भयंकर सैनिकों को उपस्थित कर राजा की सेना को तहस-नहस कर दिया। विश्वामित्र को अपने हारने का रहस्य मालूम हो गया। विश्वामित्र जी ने अपने क्षात्रबल को ब्रह्मबल के आगे कमजोर समझा और वे तपोबल के अर्जन के लिए चल पड़े। विश्वामित्र ने हिमालय में जाकर घोर तपस्या की। प्रसन्न शिव ने विश्वामित्र को अद्वितीय तेजस्विता का वर दिया। तपस्या के क्रम में तपोबल अर्जित कर वे कई बार वसिष्ठ को दिखलाने आये किन्तु हर बार वसिष्ठ ने इन्हें राजर्षि कहकर पुकारा। ब्रह्मर्षि वसिष्ठ के प्रति विश्वामित्र की श्रद्धा का स्थान घोर द्वेष ने लिया। संसार विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि कहता था एक मुनि वसिष्ठ को छोड़कर। अपनी तपस्या से एकमात्र यही थे जो क्षत्रिय होकर भी ब्रह्मर्षि कहलाए - क्षत्रिय से ब्राह्मण बने।

घोर द्वेष के कारण कई बार विश्वामित्र और वसिष्ठ में लड़ाई हुई। त्रिशंकु की कहानी इसका प्रमाण है जिसमें वसिष्ठ एवं उनके पुत्रों ने त्रिशंकु की स्वर्ग जाने की इच्छा को अनुचित बताया लेकिन विश्वामित्र ने उसकी इच्छा अपने मंत्र शक्ति के बल पर पूरी की। इस तना तनी में विश्वामित्र ने विद्वेषी वसिष्ठ के पुत्रों को शाप देकर भस्म कर दिया।

122· चण्डकौशिक 2/24

हनुमन्ननाटक

प्रथम अंक में विश्वामित्र का चित्रण किया गया है महर्षि विश्वामित्र ने यज्ञ में विघ्न करने वाले राक्षसों के भय से राजा दशरथ से राम को मांगा। राम ने सुन्द राक्षस की स्त्री ताड़का का वध किया, इससे प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने राम को शस्त्र विद्या के रहस्य को बताया। आश्रम में पहुंचने पर राम ने विश्वामित्र के यज्ञ प्रारम्भ करने पर विघ्न स्वरूप आए हुए अन्य राक्षसों का संहार कर डाला। किन्तु राम ने मारीच को छोड़ दिया क्योंकि वे जानते थे कि रावण वध के लिए सीताहरण रूप लीला में यह साधन बनेगा।[123]

यज्ञ समाप्त होने के बाद मिथिला में होने वाले शिव धनुष यज्ञ का समाचार सुनकर महर्षि विश्वामित्र इन्हें स्वयम्वर दिखलाने जनकपुर ले गए।

123· सुन्दस्त्रीदमनप्रमोदमुदितादास्थाय विद्योदयं
राम: सत्यवती सुतादथ गतस्तस्याश्रमं लीलया।
क्लृप्ते कौशिकनन्दनेन च मरवे तत्रागतान् राक्षसान्
हत्वाऽमुमूचदाशु भाविविदसौ मारीचमुग्राकृतिम्।। हनुमन्ननाटकम् 1/7

कण्व

§कण् क्वन्§ कण्व एक प्राचीन ऋषि का नाम हैं। जिनका ऋग्वेद तथा बाद के ग्रन्थों में बार-बार उल्लेख हुआ है।[1] इनके पुत्र और वंशज कण्वों का भी मुख्यतः ऋग्वेद के आठवें मण्डल में उल्लेख है। जहाँ इस मण्डल तथा प्रथम के भी कुछ अंशों का प्रणयन भी इसी परिवार को अध्यारोपित किया गया है। "कण्व" का एक वंशज इसी नाम के एक वचन द्वारा भी व्यक्त किया गया है जो अकेले[2] अथवा पैतृक नाम से युक्त "कण्व नार्षद[3], "कण्व श्रायस[4]" के रूप में और उसके अतिरिक्त बहुवचन "कण्वः सौश्रवसाः"[5] के रूप में भी प्राप्त होता है। कण्व के पुत्र प्रस्कण्व ऋषि ने दस सूक्त रचे हैं। अपनी ऋचाओं में इन्होंने कण्व का उल्लेख आधे दर्जन से अधिक स्थलों पर किया है।

अंगिरस वंश में कण्व ऋषि माने जाते है। कण्व घोर के पुत्र थे और घोर अंगिरस के पुत्र थे। यह वंश परम्परा ऋग्वेद ऋषि सूची को देखने से स्पष्ट हो जाती है। कण्व के वंशज अथवा शिष्य काण्व कहलाते थे। इस वंश के ऋषियों का सम्बन्ध ऋग्वेद के प्रथम और अष्टम मण्डल से अधिक हैं। इस कुल में निम्नलिखित मन्त्रद्रष्टा ऋषि हुए हैं -

कण्व घोर, अश्वसूक्ति काण्वायन, आयु कण्व, इरिम्बिढि काण्व कुरूसुति काण्व, कुसीदी काण्व, कृश काण्व, गोषूक्तिन् काण्वायन, त्रिशोक काण्व, देवातिथि काण्व, नाभाक काण्व, पुष्टिगु काण्व, पृषधु काण्व, पुनर्वत्स काण्व, नारद काण्व, नीपातिथि काण्व, पर्वत काण्व, प्रगाथ काण्व §घोर§, कलि प्रगाथ, भर्ग प्रगाथ, हर्यत प्रगाथ, प्रस्कण्व काण्व, ब्रह्मातिथि काण्व, मातरिश्वा काण्व, मेध्य काण्व, मेध्यातिथि काण्व वत्सकाण्व, शशकर्या काण्व, श्रुष्टिगु काण्व, सध्वंस काव्य, सुपर्ण काण्व, सोभरि काण्व, कुशिक सोभा।

---

1. ऋग्वेद 1/36/8, 10/11 आदि, अ0वे0 7/15/1, 18/3/15, वा0सं0 17/74, पं0ब्रा0 8/1×1, 9/2/6, सा0ब्रा0 28/8
2. ऋ0 1/44/8, 46/9, 47/10, 48/4, 8/4, 3/1
3. ऋ0 1/117/8, अ0वे0 4/19/2
4. तै0सं0 5/4/7/5, क0सं0 21/8, मै0सं0 3/3/9
5. क0सं0 13/12, सां0 श्रौ0 16/11/20

उपर्युक्त ऋषियों के कुल अट्ठासी सूक्त तथा चौवालीस ऋचायें पायी जाती हैं। इस कुल के ऋषि कण्व का नाम धर्मशास्त्रकारों में आदर एवं श्रद्धा के साथ लिया जाता है।

क्षत्रियों के गायत्री मन्त्र में कण्व ने सूर्य से प्राप्त विश्व कल्याणकारक सद्बुद्धि हमें मिले ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है।[6] ऋग्वेद में कण्व से सम्बन्धित एक कथा आयी है जिसमें कहा गया है कि ब्राह्मणत्व की परीक्षा लेने के लिये असुरों ने कण्व को अँधेरे स्थान में रखकर कहा कि तुम यदि ब्राह्मण होंगे तो उषा काल कब होगा, पहचानोगे। इसे अश्वियों ने आकर बताया कि जिस समय उषः काल होगा उस समय हम लोग वीणा वादन करते हुए आयेंगे। उस शब्द को सुनकर तुम कह देना कि उषा काल हो गया है।[6]

अतः कण्व एक गोत्र प्रवर्तक तथा सूक्तद्रष्टा ऋषि थे।[8] अंगिरस कुल में कण्व मन्त्रकार थे। घोर के कण्व तथा उनका कुल है[9]-

"मा विदन्ययिति त्वेतदष्टमं मण्डलं प्रति।
प्रगाधाधृषयो येयाः शृणुं वक्ष्यामि सानिह ।।1।।
अनुक्तगोत्रो यस्त्यत्र मण्डले लक्ष्यों मुनिः।
स तु काण्व इति येयः प्राङ्मत्स्यात्सांमदादृषेः।।2।।
मण्डयायददृवृद्रस्यायं प्रगाधो घोरयो मुनिः।।"3।।

पार्जिटर महोदय के अनुसार कण्व अंगिरस कुल से सम्बद्ध थे।

ऋग्वेदानुसार ऋषि कण्व तथा प्रगाथ दोनो भाई थे। एक बार कण्व ऋषि किसी कार्यवश आश्रम से बाहर गये हुए थे। जब वापस आये तो देखा कि

---

6. वा0सं0 17/74
7. ऋ0 1/119/8
8. ऋ0 1/36-43, 8/9/94
9. आर्षा0 पृ0 21

उनकी पत्नी की गोद में सिर रखकर प्रगाथ सो रहा है। उनकी पत्नी ने उन्हें चुप रहने का संकेत किया कि कहीं प्रगाथ की निद्रा भंग न हो जाये। ऋषि कण्व के मन में दोनों के चरित्र के सम्बन्ध में शंका उत्पन्न हुई। उन्होंने प्रगाथ को अपने पैर से ठोकर मारकर जगाया। उनकी पत्नी कुछ भी नहीं समझ पायी किन्तु प्रगाथ ने कण्व के हाव-भाव से स्थिति को समझ लिया और कहा - "हे कण्व तुम मेरे पिता के समान हो और यह भाभी मेरी माँ स्वरूपा है।" यह कहकर प्रगाथ ने दोनों के चरणों में सिर झुकाकर नमन किया। कण्व की निर्मूल शंका तिरोहित हो गयी।[10]

जै० ब्रा० के अनुसार नृषत् पुत्रकण्व ने अखग नामक असुर-कन्या से विवाह किया था। उसके त्रिशोक तथा नभदि दो पुत्र उत्पन्न हुए। एक बार वह रूष्ट होकर पुत्रों को लेकर अपने मैके चली गयी। कण्व भी वहाँ पहुँचे। असुरों ने उनकी परीक्षा ली। अश्विनीकुमारों ने परीक्षा में सहायता पहुँचाई। असुरों ने कण्व को बैठने के लिये स्वणासन्दी {कुर्सी} उनके बैठने के लिये रखी। पत्नी के मना करने पर भी कण्व उस पर बैठ गये। वह तुरन्त शिला बन गयी और कण्व को अपने अन्दर समेट लिया। त्रिशोक तथा नभदि ने शिला का भञ्जन किया तथा मन्त्रपाठ से पिता कण्व को जीवित किया।[11]

महाभारतीय आख्यान के अनुसार कण्व नाम के ऋषि ने घोर तप किया। उनके माथे पर बाँबी जम गयी। वे फिर भी तपस्यारत रहे। ब्रह्मा प्रसन्न होकर उन्हें बर प्रदान करने गये। वहाँ ब्रह्मा को एक बाँस मिला लोक कल्याणार्थ ब्रह्मा ने उसके तीन धनुष बनाये, शिव के लिये पिनाक, श्री हरि के लिये शाड्·ग तथा सोम के लिए गाण्डीव की रचना की।[12]

10· ऋ0 8/1

11· जै0ब्रा0 3/72

12· म0भा0, दानधर्म पर्व, अध्याय 140/8-9

महाभारत युद्ध में कुरुवंश संहार के उपरान्त गान्धारी ने श्रीकृष्ण के वंश को नष्ट होने का शाप दिया था। तद्नुसार युद्ध के छत्तीस वर्ष के बाद तरह तरह के अपशकुन दिखाई देने लगे। वृष्णिवंशियों में अनेक प्रकार के अन्याय तथा कलह उद्भुत हो गये। उन्हीं दिनों विश्वामित्र और नारद के साथ कण्व भी द्वारका गये थे।[13]

महाभारत की एक अन्य कथा के अनुसार महातेजस्वी महामुनि कण्व ब्रह्मर्षि कश्यप के औरस पुत्र थे। मालिनी के तट पर मेनका अप्सरा द्वारा त्याग दी गयी उसकी पुत्री शकुन्तला का महर्षि कण्व ने बड़े वात्सल्य से पालन किया था। महात्मा कण्व शकुन्तला द्वारा बिना उसकी अनुमति के दुष्यन्त के साथ गान्धर्व विवाह कर लेने पर भी रूष्ट नहीं हुए। बल्कि उन्होंने उसका अनुमोदन कर दिया। कण्व ने शकुन्तला को सान्त्वना देते हुए कहा - "पुत्रि आज मेरी अवहेलना करके जो तुमने दुष्यन्त के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया है वह तुम्हारे धर्म का नाशक नहीं है क्योंकि क्षत्रिय के लिये गान्धर्व विवाह श्रेष्ठ कहा गया है। यदि स्त्री और पुरूष दोनों एक दूसरे को चाहते हों, उस अवस्था में उन दोनों का एकान्त में जो मन्त्रहीन सम्बन्ध स्थापित होता है, वही गान्धर्व विवाह है। हे पुत्रि महात्मा दुष्यन्त श्रेष्ठ पुरूष हैं तुमने योग्य पति के साथ सम्बन्ध स्थापित किया है, इसलिये इस संसार में तुम्हारे गर्भ से एक महाशक्तिशाली धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न होगा। उस बलशाली सम्राट् की गति आकाश, पृथ्वी और पर्वतों में अप्रतिहत होगी।[14]

भगवान् कृष्ण द्वारा शान्ति के लिये अथक प्रयत्न किये जाने पर भी जब दुर्योधन सन्धि के लिये तैयार नहीं हुआ तो महर्षि कण्व ने उसे समझाने का प्रयत्न किया। दुर्योधन से कहे कि तुम धर्मराज युधिष्ठिर से सन्धि कर लो। मेरी हार्दिक इच्छा है कि कौरव पाण्डव मिलकर इस पृथ्वी का पालन करें। सुयोधन तुम्हें यह अभिमान नहीं होना चाहिये कि मैं इस पृथ्वी पर बड़ा शक्तिशाली हूँ.

13· श्रीमद् भा० 11/6

14· म०भा०, आदि०, अध्याय 68-74 -

क्योंकि यह पृथ्वी एक से एक वीरों से भरी पड़ी है। यदि तुम्हें अपने सैनिक बल पर अभिमान है तो स्मरण रखो कि पराक्रमशालियों के बीच सैनिक बल कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। समस्त पाण्डव देवताओं की तरह पराक्रमी हैं। वे तुमसे अधिक बलवान् हैं। तुम्हारा जीवन तभी तक है जब तक तुम पाण्डवों के समक्ष युद्ध में नही उतरते तुम स्वयं विचार करो जब पवन कुमार महावली भीमसेन और इन्द्रपुत्र धनञ्जय युद्ध में किसका वध करने में समर्थ नहीं हैं धर्मस्वरूप विष्णु, वायु, इन्द्र तथा अश्विनीकुमार ये पाँचों देवता तुम्हारे विरूद्ध है। क्या तुम इन देवताओं की ओर देखने का भी साहस करोगे ? इसलिये तुम विरोध को छोड़कर शान्ति का आलम्बन करो। श्रीकृष्ण की सहायता से अपने कुल की रक्षा करो।[15]

कण्व सम्बन्धी जानकारी पौराणिक कोश में इस प्रकार दी गयी है -

§1§ अजगीढ़ और केशिनी के पुत्र का नाम, जो मेध्यातिथि के पिता थे।[16]

§2§ शुक्ल यजुर्वेद के एक शाखाकार ऋषि, जिनकी संहिता और ब्राह्मण भी है। सायणाचार्य ने इनकी संहिता पर भी टीका की है।

§3§ कश्यप गोत्रोत्पन्न एक तप प्रभाव सम्पन्न प्राचीन ऋषि जो अप्रतिरथ के पुत्र तथा मेधातिथि के पिता कहे गए हैं। इन्हीं से काण्वायन ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई। यह मेनका अप्सरा की छोड़ी कन्या शकुन्तला के पालक पिता थे और उनका आश्रम मालिनी नदी के तट पर था। महर्षि विश्वामित्र की कठोर तपस्या से डर कर इन्द्र ने मेनका को इनका तप भंग करने के लिए भेजा था जो शकुन्तला को उत्पन्न कर तथा मालिनी नदी के तीर इसे रख स्वर्ग चली गयी। इसकी रक्षा शकुन्तों अर्थात् पक्षियों ने की थी। अतः शकुन्तला नाम पड़ा और कण्व ऋषि ने इसे पाला था। कण्व का आश्रम प्रयाग में था। शकुन्तला सुत भरत के सब संस्कार इन्हीं ने किए थे।[17]

15· म0भा0 उद्योग0 अध्याय 97, 105

16· मत्स्य0 49/76, विष्णु0 4/19/30-31

17· म0भा0 आदि0, अ0 71/72-73, भाग0 9/20/6-12, 1, 8 विष्णु 4/19/5-6

§4§ श्रीकृष्ण के समकालीन एक ऋषि जिनके साथ वह मिथिला गए थे। यह युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में गए थे। पिण्डारक में जहाँ यदुकुमारों को शाप हुआ था, ये भी विद्यमान थे।[18]

§5§ याज्ञवल्क्य के शिष्य, शुक्ल यजुर्वेद की 101 शाखाओं के प्रवर्तक 15 ऋषियों में से एक मंत्रकृत् ऋषि।[19]

§6§ 33 अंगिरस् श्रेष्ठों में से एक अंगिरस। ये मंत्रकृत् थे।[20]

§7§ ब्रह्मा के यज्ञ के एक ऋत्विक्।[21]

कण्व के शिष्य काण्व कहे जाते हैं। कण्व एक गोत्र है इसलिये कण्व नाम के अनेक ऋषि समय-समय पर हुए होंगे। महाराज दुष्यन्त के काल में भी कश्यप कुल के एक कण्व थे। उन्हीं के आश्रम में शकुन्तला निवास करती थी। कण्व ने भरत का वाजिमेध यज्ञ कराये थे।[22] महाभार में उल्लिखित है कि द्वैपायन, नारद, देवल, देवस्थान और कण्व अपने शिष्यों सहित महाभारत के युद्ध के अवसर पर महाराज युधिष्ठिर से मिलने गये थे।[23] अन्यत्र उल्लेख प्राप्त होता है कि अंगिरा के पुत्र चित्र शिखण्डी नाम का एक वृहस्पति का शिष्य राजा उपरिचर वसु था।[24] उस राजा ने एक महान् अश्वमेघ यज्ञ किया था। उस यज्ञ के सोलह सदस्य थे जिनमें कोई एक कण्व अभिधान वाले भी थे। इन कण्वों में से प्रत्येक का भेद गोत्रानुसार प्रतीत होता है। मौसल पर्व 204 में भी एक कण्व का उल्लेख पाया जाता है। विश्वामित्र और नारद के साथ उन्होंने ही यादवों को कुलान्त करने वाला शाप दिया था। पं0 भगवद्दत्त के मतानुसार बहुत सम्भव है कि शान्ति पर्व के आरम्भ

18· भाग0 10/74/7, 10/86/18, 11/1/12, विष्णु0 5/37/6
19· वायु0 61/24/1, ब्रह्म0 2/35/28-33
20· ब्रह्माण्ड0 2/32/109, वायु0 59/100
21· वायु0 106/35, 108/42
22· "याजयामास तं कण्वः।" म0भा0, शान्ति0 अ0 1
23· म0भा0, शान्ति0, अध्याय 1
24· म0भा0, शा0, अध्याय 344

में उल्लिखित कण्व और उसके शिष्य ही काण्व शाखा से सम्बन्धित हों।[25] कण्व लोग अंगिरा गोत्र वाले है।[26]

विष्णु पुराण के अनुसार यह ब्रह्मरात तथा भागवत के अनुसार देवराज के पुत्र याज्ञवल्क्य के 15 शिष्यों में से एक थे। आगे चलकर इन्होंने ही यजुर्वेद में काण्व शाखा कर उसके ग्रन्थ निर्माण किये।[27] ये ग्रन्थ बहुत सी बातों मे याज्ञवल्क्य के विरुद्ध हैं।

कुछ पुराणों में इन्हें मतिनार पुत्र अप्रतिरथ से उत्पन्न बतलाया गया है।[28] किन्तु कहीं-कहीं कण्व को अजमीढ़ का पुत्र बताया गया है।[29] पीढ़ियों की दृष्टि से इनमें काफी अन्तर है। विष्णु पुराण में दोनों वंशों की चर्चा हुई हैं।

प्रगाथ काण्व दुर्गह के नातियों के समकालीन प्रतीत होते हैं।[30] कण्व वंश की वंशावलि अनेक पुराणों में पायी जाती है।[31] सत्याषाढश्रौतसूत्र[32] के अनुसार कण्व गोत्र-गोत्रियों को दक्षिणा नहीं देनी चाहिये क्योंकि गोपीनाथ भट्ट ने भाष्य में "कण्वं तु वधिरं विद्यात्।" ऐसा कहा है परन्तु उसे यह उचित नहीं प्रतीत हुआ। पद्म0 के मत में ब्रह्मदेव के पुष्कर क्षेत्र के यज्ञ में यह विद्यमान थे।[33]

एक धर्मशास्त्रकार के रूप में कण्व का उल्लेख प्राप्त होता है प्रथम किसका अन्न ग्राह्य है ऐसी शंका उत्पन्न होने पर आपस्तम्ब उसके समाधान के लिये कण्व

25· वैदिक वाङ्मय का इतिहास, पृ0 216

26· "एते ह्याङ्गिरसः पक्षं संश्रिताः कण्वमौद्गलाः।" हरिवंश0, अ0 32 तथा ब्रह्माण्ड0 1/112, वायु0 59/100

27· भा0 12/6

28· हरि0 पु0 1/32, विष्णु0 4/19

29· वायु0 99/169-170, मत्स्य0 49

30· ऋ0 8/65/12

31· मत्स्य0 50, ह0वं0 1/32, भा0 9/21

32· सत्याषाढश्रौतसूत्र 10/4

33· पद्म0 सृ0 34

के ग्रन्थ को उद्धृत किया है - "किसी का भी आदर से दिया हुआ अन्न ग्राह्य है।[34] कण्व ने ग्रन्थों के बहुत से उद्धरण स्मृति चन्द्रिका में §अन्हिक तथा श्राद्ध के सम्बन्ध में§ लिये गये हैं। इसी प्रकार मिताक्षरा नामक ग्रन्थ में कण्व के ग्रन्थ से उद्धरण दिये गये हैं।[35] कण्व के ग्रन्थ इस प्रकार है :-

§1§ कण्वनीति, §2§ कण्व संहिता, §3§ कण्वोपनिषद् §4§ कण्वस्मृति। कण्व-स्मृति का उल्लेख हेमाद्रि मध्वाचार्य आदि ने किया है। कण्व गौतम के आश्रम मे गये थे। वहाँ की समृद्धि को देखकर वैसी ही समृद्धि पाने के लिये इन्होंने तपस्या की थी। गंगा तथा क्षुधा को प्रसन्न किये। कण्व ने आयुष्य, द्रव्य, भुक्तिमुक्ति की याचना की। वह तथा उनके वंशज कभी सुधा पीड़ित न हों ऐसा वर माँगा तथा उसे प्राप्त भी कर लिया। जहाँ इन्होंने तप किया था उसी स्थल को कण्वतीर्थ नाम से प्रसिद्धि मिली।[36] भरत के यज्ञ के मुख्य उपाध्याय थे।[37] कण्व को भरत ने एक हजार पद्मभार शुद्ध जम्बूनद स्वर्ण[38] तथा एक हजार पद्म घोड़े[39] दक्षिणा में दिये थे। कण्व को कश्यप का पुत्र भी माना जाता है। इनकी पत्नी देवकन्या आर्यावती थी। उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी, पाण्डव इनके पुत्रों के नाम हैं। कण्व ने अपनी संस्कृति वाणी से मिश्र देश के दस हजार म्लेच्छों को वश में किया। इन बने हुए म्लेच्छों को दो हजार वैश्यों में से कश्यप सेवक पृथु को कण्व ने क्षत्रिय बनाकर राजपुत्र नगर दिया।[40] अतः काण्व ब्राह्मण वंश के प्रवर्तक हैं।

34· आप0 1/6/19/2-3
35· मिताक्षरा 3/58, 13/60
36· ब्रह्म0 85
37· म0भा0, आ0 69/48
38· म0भा0, द्रो0परि0 1/8 पंक्ति 750-751
39· म0भा0, शा0 29-40
40· भ0वि0वि0 प्रति 4/21

महाभारतीय कथा के अनुसार कण्व शकुन्तला के धर्म पिता हैं।

आश्रम

महाभारत के अनुसार कण्व का आश्रम मालिनी नदी के तट पर स्थित था। यह स्थान प्राचीन मध्यदेशान्तर्गत है। कण्व संहिता के अनुसार -"एषः वः कुरवो राजैषं पंचाला राजा।" इसी के स्थान में माध्यन्दिन पाठ है - "एष वोऽमी राजा।" प्राचीन भारतीय संस्कृति कोश के अनुसार कण्व का आश्रम विजनौर जिले के मदिपुर से थोड़ी दूर जंगल में मालिनी नदी के किनारे पर यह आश्रम है। उसी के निकट शकुन्तला का जन्म हुआ था। वहीं पर शकुन्तला का पालन-पोषण हुआ तथा इसी आश्रम में दुष्यन्त से भेट हुई।[41]

कण्व का ही अपर नाम काश्यप है।[42] अभिज्ञानशाकुन्तल में कण्व और काश्यप दोनों नामों का उल्लेख हुआ है। महाकवि दिङ्नाग प्रणीत कुन्दमाला में कण्व नाम का व्यवहार हुआ है तो कुलशेखर वर्मा कृत सुभद्रा धनञ्जय नाटक में काश्यप नाम का प्रयोग हुआ है।

शाकुन्तल के प्रथम और दूसरे[43] अंक में कण्व की चर्चा अवश्य की गयी है।[44] परन्तु उनका प्रवेश चौथे अंक में तब होता है जब आपन्नसत्त्वा शकुन्तला को पतिगृह भेजने की व्यवस्था की जा रही है। शकुन्तला कण्व की धर्मदुहिता है तथा उनके असीम स्नेह का भाजन है इसलिये उसके वियोग के कल्पना मात्र से कण्व अत्यधिक उद्विग्न हो उठते हैं।

वे तपोनिष्ठ नैष्ठिक ब्रह्मचारी, अन्तर्ज्ञानी और महाप्रभावशाली है। अपने तपोबल से वे भूत, भविष्य और वर्तमान सभी बातों को जानते हैं जैसा कि स्वयं

---

41. डॉ0 हरदेव बाहरी - प्रा0 भा0 सं0 कोश, पृ0 68
42. शाकुन्तल के प्रथम अंक मे "कुलपतेः कण्वस्य" का कथन है- कुछ आगे चलकर भगवान् काश्यपः शाश्वते ब्राह्मणि स्थितः का उल्लेख है तथा चौथे अंक में काश्यप के रूप में ही ऋषि सामने आते है।

महातेजा उर्ध्वरेता भगवान् मारीच ने स्वीकार किया है -

"तपः प्रभावात् प्रत्यक्षमेव तत्रभवतः[45]

कण्व ने पहले से ही जान लिया था कि शकुन्तला पर निश्चित रूप से कोई विपत्ति आयेगी और उस शांति के लिए वे सोमतीर्थ गए थे-

इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलामतिथि सत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थ गतः[46]

आश्रम में लौटकर उन्हें अपने तपोबल से ही ज्ञात हुआ था कि उनकी पुत्री ने दुष्यन्त से गान्धर्व विवाह कर लिया है -

अग्निशरणं प्रविष्ठस्य शरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या।[47]

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भूवः

भवेहि तनयां ब्रह्मन्तग्निगर्भा शमीमिव।।

कण्व की तपस्या में अद्भुत प्रभाव है। उनकी उपस्थिति में राक्षसादि यज्ञों में विघ्न नहीं कर सकते -

लाभवतः कण्वस्य महर्षेरसांनिधयाद् रक्षांसि न इष्टिविघ्नमुत्पादयन्ति। तत् कतिपयरात्रं सारथिद्वितीयेन भवता सनाथीक्रियतामाश्रम इति।[48]

सम्पूर्ण तपोवन के प्राणी यहां तक कि अचेतन पदार्थ भी उनसे प्रभावित हैं। शकुन्तला की विदाई के अवसर पर जब सखियाँ - "आभरणोचितं रूपमाश्रमसुलभैः

43· वैखानसः राजन् समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम्। एष खलु कण्वस्य कुलपतेरनुमालिनी-तीरमाश्रमो दृश्यते। न चेदन्यकार्यातियातः प्रविश्य प्रतिगृहयताभातिथेयः सत्कारः। अभि0 पृ0 29, भगवान् कश्यपः शाश्वते ब्रह्मणि स्थित इति प्रकाशः। इयं चवः सखी तदात्मजेति कथमेतत्। अभि0 पृ0 70

44· तत्रभवतः कण्वस्य महर्षेरसांनिध्याद् रक्षांसि न इष्टिविघ्नमुत्पादयन्ति। तत् कतिपयरात्रं सारथिद्वितीयेन भवता सनाथी[illegible]माश्रम इति।। अभि0 पृ0 126

45· अभि0 पृ0 450/140

46· वही, पृ0 31/30

47· वही, पृ0 198/40, 42

48· वही, पृ0 126/74

प्रसाधनैविप्रकायते[49] ऐसा कहकर खेद प्रकट करती है तो महर्षि कण्व के प्रभाव से आश्रम के वृक्ष तुरन्त मांगलिक, क्षौमयुगल, चरणोपभोग सुलभ लाक्षारस तथा आभरण दे डालते हैं -

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवता करतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः।[50]

जब कण्व आश्रम के वृक्षों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तुम्हारी शुभाकांक्षिणी शकुन्तला पति-गृह जा रही है तुम सब लोग उसे अनुमति प्रदान करो-

"सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्"[51]

तो उसी समय कोकिलरव के ब्याज से वृक्ष उसे अनुमति दे देते हैं और वन देवता उसके मार्ग को प्रशस्त बनाने की कामना करते हुए कहने लगते हैं -

"रम्यान्तरः कमिलिनीहरितैः सरोभिश्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः
भूयात्कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः।।[52]

दैवी सम्पत्ति से सम्पन्न होते हुए भी कण्व में कुछ मानवीय गुण भी विद्यमान हैं। उन्हें भी एक पिता का कोमल हृदय मिला है। यद्यपि शकुन्तला उनकी पालिता पुत्री है तथापि वे उसे अपना "जीवित सर्वस्वं" मानते हैं जैसा कि कण्व-शिष्य की स्वीकारोक्ति है - "सा खलु भगवतः कण्वस्य कुलपतेरुच्छ्वसितम्।" शकुन्तला के प्रति उनके हृदय में निःस्वार्थ प्रेम है। इसीलिए शकुन्तला के प्रति शकुन्तला के विदा होते समय वे करुणाविह्वल हो जाते हैं। वे स्वयं कहते हैं कि पुत्री-वियोग से जब मुझ जैसे अरण्यवासी इस प्रकार दुःखित हैं तो भला गृहस्थ जन क्यों न पीड़ित हो ? गृहस्थ जन तो संसारी जीव होने के कारण माया-मोह में लिप्त रहते हैं, अतः पुत्री के वियोग पर उनके चित्त में विक्षोभ होना उतनी

---

49. वही, पृ0 204/59
50. वही, 4/5
51. वही, 4/9
52. अभि0 4/11

बड़ी बात नहीं है जितनी कि कण्व सदृश वीतराग आरण्यौकस के चित का पीड़ित होना। पुत्री आज पति-गृह जाएगी इस कल्पना से पिता का करुणा जनित अंग-विकार कितना मार्मिक है -

"वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः[53]

पीडयन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैनवैः।।

शकुन्तला जब अपने पिता से सानुनय कहती है कि आप मेरे लिए व्याकुल न हों, तो करुणार्द्र होकर गद्गद् वाणी से वे कहने लगते हैं -

"शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम्

उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः।"

आरण्यवासी होते हुए भी कण्व लोक-वृत्तान्त में पूर्ण निष्णात है। उन्होंने स्वयं कहा भी है -

"वनौकसोऽपि सन्तोलौकिकज्ञा वयम्"।

परिग्रहीता दुष्यन्तवहाँ उपस्थित नहीं है, अतः शकुन्तला के वियोगजन्य दुःखावेग को दबाकर वे दुष्यन्त के लिए सामायिक और राजोचित संदेह शकुन्तला को लिवा जाने वाले वटुओं में से एक शाङ्गरव के माध्यम से अपना भाव-भीना संदेश देते हुए भगवान् कण्व कहते हैं -

"अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनान्"[54]

इसके बाद तुरन्त इस अवसर पर पिता का अपनी पुत्री को उपदेश तथा जामाता से निवेदन भी आवश्यक हो जाता है। पर इस उपदेश तथा निवेदन में भी पितृ-हृदय की करुण-वेदना ही छिपी रहती है। पुत्री के सुख-सौभाग्य की कामना करते हुए ऋषि कण्व अपनी पुत्री को सदुपदेश देते हुए कहते हैं -

"शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजनेः इत्यादि"[55]

इन वाक्यों में उनके लोक-व्यवहार ज्ञान का सुन्दर निदर्शन है। वे अच्छी तरह जानते हैं कि विवाहित पुत्री को अधिक समय तक पितृगृह में नहीं रखना चाहिए,

---

53· अभि0 4/6

54· अभि0 4/17

55· वही, 4/18

अतः वे शकुन्तला को शीघ्र ही दुष्यन्त के पास भेज देते हैं। पितृ वियोगकातरा शकुन्तला जब उनसे पूछती है कि कदा नु भूयस्तपोवनं प्रेक्षिष्ये" तो मुनि शांत एवं गम्भीर चित्त से उसे सान्त्वना देते हुए कहते हैं -

"भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी
दौष्यन्तिमतप्रतिरथं तनयं निवेश्य
भार्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्।।"[56]

कण्व को मानव स्वभाव का भी अच्छा ज्ञान है। वे जानते हैं कि मनुष्य धीरे-धीरे अपने दुःखों को भूल जाता है। अतः वे शोकविह्वल शकुन्तला को समझाते हुए कहते हैं कि पति के घर के कार्यों में संलग्न होकर तुम मेरे विरह के दुःख को शीघ्र भूल जाओगी -

"अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्येo।"[57]

कण्व जानते हैं कि पुत्री पर पिता का अधिकार नहीं होता। वह तो उसके भावी पति की धरोहर मात्र है, इसलिए शकुन्तला को पतिगृह भेजकर वे संतोष की साँस लेकर कहने लगते हैं -

"अर्थो हि कन्या परकीय एव
तामद्य संप्रेष्य परिगृहीतुः
जातो ममायं विशदः प्रकामः
प्रत्यार्पितन्यास इवान्तररात्मा।"[58]

इस प्रकार महर्षि कण्व दयालु, प्रेमी पिता, तपोनिष्ठ, ब्रह्मचारी, सिद्धिमान् और लौकिक व्यवहारज्ञ है। वे मानवों पर ही नहीं, पशु-पक्षियों तथा लता-वृक्षों पर भी समान रूप से स्नेह करते हैं। वे विद्या, ज्ञान और प्रेम की साक्षात मूर्ति है तथा भारतीय संस्कृति के आदर्श रूप को मुखरित करते हैं।

56· वही, 4/20
57· अभि0 4/19
58· अभि0 4/22

एक तपोनिष्ठ ऋषि को पुत्री पालन एवं गार्हस्थ्य जीवन के विभिन्न कर्तव्यों के प्रति सचेष्ट पात्र के रूप में चित्रित करके महाकवि कालिदास ने उन शाश्वत सांस्कृतिक मूल्यों को आदर्श रूप में प्रस्तुत कर दिया है जो एक पिता पुत्री से अपेक्षित है। उनके द्वारा कहे गये चार श्लोक -

§1§ यास्मत्यद्य शकुन्तलेति §4/7§,

§2§ अस्मान साधु विचिन्त्य §4/17§

§3§ सश्रूषश्व गुरून् कुरू §4/18§,

§4§ भूत्वा चिराय चतुरन्त §4/20§

संस्कृत के नाट्यवाङ्मय के सर्वश्रेष्ठ श्लोक माने जाते हैं इनमें जो भारतीय संस्कृति चित्रित की गयी है वह आज तक ज्यों की त्यों देखी जा सकती है आज भी पुत्री-वियोग उतना ही कष्टकर है, तथा पिता अपने पुत्री के लिये हर प्रकार से सुखी होने की कामना करता है। "उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी" कहकर पत्नी के ऊपर पति के अधिकारों की चर्चा प्रायः सर्वत्र मिलती है। परन्तु कालिदास ने कण्व के माध्यम से सम्भवतः पहली बार मुखर रूप से पत्नी के प्रति पति के कर्तव्यों का भी उल्लेख किया है - अस्मान साधु विचिन्त्य §4/10§ में उनका स्पष्ट अभिमत है कि कि पति कोई भी व्यवहार करने के लिये तीन तथ्यों पर अवश्य विचार करे -§1§ पत्नी के पिता आदि स्वजनों की प्रतिष्ठा, §2§ अपने कुल की प्रतिष्ठा और §3§ अपने प्रति पत्नी का व्यवहार। यदि तीनों तथ्यों पर पूर्णतया विचार किया जाय तो आज भी बहुत अधिकांश अप्रिय घटनाओं का टाला जा सकता है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि वे अपनी पुत्री के प्रति भी बहुत महत्वाकांक्षी नहीं होते। उनका केवल इतना ही आग्रह है कि उनकी पुत्री के साथ सामान्य आचरण का प्रयोग किया जाय उससे अधिक उसके भाग्याधीन है उसे वधू के वान्धवों को नहीं कहना चाहिये -

सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृष्या त्वया
भाग्यामत्तमतः परं न खलु तद् वाच्यं वधूबन्धुभिः।।

अभि0 4/17

यह वाक्यांश - न खलु तदवाच्यं वधू वन्धुभिः - भी पतिगृह में पुत्री के सामञ्जस्य तथा उसके पिता आदि के दायित्वों के प्रति सावधान करता है।

पुत्री के भावी जीवन की सफलता का गुरूमन्त्र बताते हुए कण्व द्वारा सश्रूषस्व गुरून कुरू की बात कही गयी है। इस उपदेश में ध्यान देने योग्य है कि इस प्रकार कण्व के सुपदेश चिरन्तन सत्य से अनुप्राणित हैं। गृहस्थ जीवन का उपदेष्टा गृहस्थ हो सकता था परन्तु उसके लिये ऋषि पात्र की योजना इसलिये की गयी कि उसमें ज्ञान का अनन्त विस्तार है वह स्वार्थ प्रेरित होकर कोई बात नहीं कहता अपितु चिरन्तन सत्य का उद्घाटन करता है वे पक्ष में हो या विपक्ष में हो।

कुन्दमाला में कण्व को वाल्मीकि का शिष्य[59] तथा राम का बालसखा बताया गया है।[60] वे गुरू की आज्ञा से राम को नैमिषारण्य का अवलोकन कराते हैं तथा उनके यमज सन्तानों (लव और कुश) से उनका पूरा परिचय कराते हैं।[61]

कण्व विषयक जो उल्लेख मिलते हैं उनमें कहीं इन्हें वाल्मीकि का शिष्य नहीं बताया गया है। यह कवि की अपनी कल्पना है। इस उल्लेख से दो निष्कर्ष निकाले जो सकते हैं - (1) वाल्मीकि का कोई कण्व नाम का शिष्य था जिसका यहाँ उल्लेख है शाकुन्तल वाले कण्व नहीं। (2) कवि कण्व को वाल्मीकि की अपेक्षा न्यून सिद्ध करना चाहता है। राम का सखा होने के कारण उन्हें वन-दर्शन कराने के लिए कण्व सर्वाधिक उपर्युक्त व्यक्ति हो सकते हैं जिसके लिए यहाँ उनकी अवतारणा कर दी गयी है।

---

59. कण्वः आदिष्टोऽस्मि भगवता वाल्मीकिना-कण्व, कण्व दाशरथि नैमिषाऽरण्यरामणीयक-दर्शनेन विनोदय इति। एष पुनः चिन्तापराधीनत्वात् पुरोगामिनम् अपि मां नाऽवगच्छति। -कुन्दमाला, चतुर्थ अंक, पृष्ठ 126

60. अहं रामस्तवाऽभूवं त्वं मे कण्वश्च शैशवे
यूयम् आर्या वयं चाऽद्य राजानो वयसा कृताः। वही, 4/2

61. कण्वः-परिपूर्णे ततः काले धीर् इवेन्दु-दिवाकरौ
सीताऽपि जनयामास सा यमौ तनयावुभौ।।
जाताऽवस्थोचितं कर्म विदधानो यथा-क्रमम्।
स चकार तयोद् नाम मुनिः कुश-लवाविति।। वही, 6/17, 18

गौतम

§गोतम अण§ भारद्वाज ऋषि का नाम। गोतम का पुत्र शतानन्द। §गोतम कावंशज§ एक साधारण पैतृक नाम है जो अरुण, उद्दालक, आरुणि, कुश्रि, साति, हारिद्रुभत के लिए प्रयुक्त हुआ है।

वृहदारण्यक उपनिषद् के वंशो §गुरुओं की तालिका§ में आग्निवेश्य के सैतव और प्राचीन योग्य के सैतव के, भारद्वाज के, गौतम के और वात्स्य के शिष्यों के रूप में अनेक गौतमों का उल्लेख है। अन्यत्र भी एक गोतम का उल्लेख मिलता है।

अंगिरस् कुल के गौतम ऋषि अन्य अंगिरस्वंशीय गोतम से भिन्न प्रतीत होते हैं। अंगिरस् गोतम दीर्घतमस् का पुत्र था। किन्तु मन्त्रद्रष्टा गोतम ऋषि का पैत्रक नाम राहूगण है, क्योंकि गोतम ने अपने को रहूगण वंशी बताया है। यह रहूगण आंगिरस अंगिरस् कुल के मन्त्रकार थे। गोतम राहुगण के नाम से ऋग्वेद में सूक्त बताये गए है[1]। वे सब ही व्यक्तिगत कर्तव्य के द्योतक नहीं है, क्योंकि इन सूक्तों में बहुवचनान्त गोतम का प्रयोग हुआ है। यह गोतम राहुगण माथव विदेध राजा के पुरोहित थे तथा इनको वैदिक संस्कृति का प्रतिनिधित्व बताया है। इनका उल्लेख ऋग्वेद में अनेक बार हुआ है। बहुवचनान्त गोतम भी अनेक बार आया है। वामदेव और बोधा इनके पुत्र माने जाते हैं। ऋग्वेद में गोतम

1· अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद्वचः। द्युमोरभि प्रणोनुमः।। ऋ01/78/5
यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ्· धियमतन्वत।
तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वचेन्द्र उक्था समामतार्चन्नु स्वराज्यं।। ऋ0 1/80/16
आंदगिरा प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या पे सुकृत्यया।
सर्व पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वान्तं पशुं नरः।।
यज्ञैरथर्वा प्रथमं पथस्तते ततः सूर्यो व्रतया वेन आजनि।
आगा आजदुशना काव्यः सचा समस्याजातममृतं यजामहे।। ऋग्वेद 1/83/4-5
इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्य प्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव।।ऋ0 1/84/13
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्चितं। तद्विदच्छर्यणायति।।ऋ0 1/84/14
गयस्फान्नो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः। सुमित्रः सोम नो भव।।ऋ0 1/91/12
अग्नीषोमा चेति तद्वीर्य वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः।
अवातिरतं वृषयस्य शेषो विन्दतं ज्योतिरेकं वहुभ्यः।।ऋ0 1/93/4

कुल के ﴾वामदेव को छोड़कर﴿ निम्नलिखित मन्त्र द्रष्टा ऋषि है - गोतम राहुगण नोधन, नोधस, गोतम तथा एकधु नोधस्।

इन तीनों ऋषियों के कुल ऋग्वेद में 31 सूक्त व 4 ऋचाएँ हैं। महाभारत में गोतम का निर्वचन करते हुए कहा गया है[2] -

गोदमो दमोऽधूमोऽमस्ते समदर्शनात्।।

विद्धि मां गोतमं कृत्यें यातुधानि निवोधमाम्।।

अर्थात् जितेन्द्रियोऽहं तस्मात् गोदमः। निर्धूयाङ्गारवत् तेजोयुक्तात्वात्। सर्वत्र समदृष्टित्वात्, न कोऽपि मामभिभवितुं समर्थः। मद् मानकान्तिः अन्धकारं नश्यति अतः मां गोतमं जानिहि रति।

स्पष्ट है कि गोतम ऋग्वेद 1/91 के ऋषि हैं। पाश्चात्य विचारकों के अनुसार उनका नाम भी 1/85/11 में आया है। यही गोतम ऋग्वेद 1/74/93 में ऋषि हैं। प्राचीन योग्य, शांडिल्य, आर्नामिम्लात, गार्ग्य, भारद्वाज, वात्स्य सैतव आदि गोतम के शिष्य थे।

गोतम दीर्घतमस के पुत्र थे। इनकी माता का नाम प्रद्वेषी था।[3] इनके पिता अंगिरस कुलोत्पन्न थे।[4] वह वृहस्पति के शाप के कारण जन्मान्ध हो गये थे।[5] कुछ स्थानों पर गोतम ने ही दीर्घ तमस रूप धारण किया ऐसा प्रतीत होता है।[6] गोतम नाम से गोतम के पशुतुल्य वर्णन का बोध होता है।[7] गोतम को मोशीनरी नामक शूद्र स्त्री से कक्षीवत् आदि पुत्र उत्पन्न हुए।

2· म0भा0, अनु0 93/90
3· म0भा0, आरण्यक0 98/17, 10/37, स 4/15, 11/15
4· म0भा0, अनु0 154/9
5· ऋ0 1/147, म0भा0, आ0 98/15
6· वृहद्देवता 3/123,म0भा0, शा0 34/3, मत्स्य0 48/53-84
7· वायु0 91/47-61, 88-92, ब्रह्माण्ड0 3/74/47-61, 90-94, मत्स्य0 48/43-56, 79-84

गोतम ऋषि की गणना वैवस्वत मन्वन्तर के सप्तर्षियों में भी गयी है। ब्रह्मा का मानस कन्या अहल्या से गोतम का विवाह हुआ था। ये महाराज जनक के उप पुरोहित थे। इनके पुत्र का नाम शतानन्द था।[8] इनका अंगिरस से नदी माहात्म्य के सम्बन्ध में सम्भाषण हुआ था।[9] इन्हीं के नाम से गोदावरी का नाम गोतमी पड़ा।

ऋग्वेद की एक ऋचा के अनुसार - "प्यासी भूमि एवं जनमेदिनी की प्यास शान्त करने के लिए मेघ रूपी कुएं को आकाश की ओर उत्प्रेरित करने के लिये गोतम ऋषि ने यज्ञ के द्वारा स्तुतिगान किया था।[10]

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी कुछ कथाएं मिलती हैं। एक स्थल पर कहा गया है कि राजा माधव के मुख में वैश्वानर अग्नि रहती थी। माधव के पुरोहित गोतम ने उसे पुकारा तो वह बोला नहीं कि कहीं अग्नि मुँह से नीचे न गिर जाय। गोतम ने अग्नि का आह्वान किया। अग्नि इतनी अधिक प्रज्जवलित हो गयी कि राजा उसे अपने मुख में रखने में असमर्थ हो गया। अतः अग्नि मुख से बाहर आकर नीचे गिर गयी उस समय राजा विदेह सरस्वती के तट पर थे। अग्नि के कारण उत्तरी पहाड़ से निकलने वाली सदानीरा को छोड़कर शेष सम्पूर्ण नदियां सूखने लगीं तथा राजा और मन्त्री जलते हुए उसके पीछे-पीछे चलने लगे क्योंकि वैश्वानर ने सदानीरा को दग्ध नहीं किया था। इसलिये पहले ब्राह्मण लोग उस नदी को पार नहीं करते थे। वैश्वानर से बची रहने के कारण नदी के समीप बहुत ठण्डक थी। राजा ने अग्नि से पूछा मैं कहां रहूं ? अग्नि ने उसे सदानीरा के पूर्व की ओर रहने को कहा। इसके बाद गोतम ने राजा से मौन का कारण पूछा तो बताया कि मुह से अग्नि न गिर जाय इसीलिये वह चुप था। पर गोतम के मन्त्र बोलते

8· म0व0 185
9· म0भा0 अनु0 25
10· ऋ0 1/81/90

हुए घृत का नाम लेते ही वह इतनी भभकी कि मुँह में रखना कठिन हो गया।[11] गोतम सम्बन्धी उल्लेख वाल्मीकि रामायण में भी प्राप्त होता है -

गौतमशापतः प्राप्तः सौदासी राक्षसी तनुम्

रामायण प्रभावेण विमुक्तिं प्राप्तवान् पुनः।।41।।

सोदास ने महर्षि गोतम के शाप से राक्षस शरीर प्राप्त किया था। वे रामायण के प्रभाव से ही पुनः उस शाप को छुटकारा पा सके थे।

विप्रस्तु गौतमाख्येन मुनिना ब्रह्मवादिना

श्रावितः सर्वधर्मांश्च गंगातीरे मनोरमे।।30।।

पुराणशास्त्रकथनैस्तेनासौ बोधितोऽपि च

श्रुतवान् सर्वधर्मान् वै तेनोक्तानखिलमपि।।।31।।

सोदास ब्राह्मणने ब्रह्मवादी गोतम मुनि से गंगा जी के मनोरम तट पर संपूर्ण धर्मो का उपदेश सुना था। गोतम ने पुराणों और शास्त्रों की कथाओं द्वारा उन्हें तत्व का ज्ञान कराया था। सोदास ने गोतम से उनके बताए हुए सम्पूर्ण धर्मो का श्रवण किया था।

स तु शान्तो महाबुद्धिर्गौतमस्तेजसां निधिः

शास्त्रोदितानि कर्माणि करोति स मुदं ययौ।।33।।

परम् बुद्धिमान गोतम तेज की निधि थे, वे शिष्य के बर्ताव से रुष्ट न होकर शांत ही रहे। उन्हें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मेरा शिष्य सोदास शास्त्रोक्त कर्मो का अनुष्ठान करता हैं -

ऊर्जे मासे सिते पक्षे रामायणकथामृतम्

नवाहवा चैव श्रोतव्यं भक्तिभावेन सादरम्।।37।।

नात्यन्तिकं भवेदतद् द्वादशाब्दं भविष्यति।

वत्स कार्तिक मास के शुक्लपक्ष में तुम रामायण की अमृतमयी कथा को भक्तिभाव से आदरपूर्वक श्रवण करो। इस कथा को नौ दिनों में सुनना चाहिए। ऐसा करने से यह शाप अधिक दिनों तक नहीं रहेगा, केवल बारह वर्षो तक ही रहेगा।

11· ता0ब्रा0 13/12/6-8, श0प0 1/4/1/10

ब्राह्मण ने महर्षि गौतम से पूछा कि रामायण की कथा किसने कही व उसमें किसके चरित्रों का वर्णन किया गया है -

> श्रुणु रामायण विप्र बाल्मीकि मुनिना कृतम्
> येन रामावतारेण राक्षसा रावणादयः।।40।।
> हतासतु देवकार्य हि चरितं तस्य तच्छृथु
> कार्त्तिके य सिते पक्षे कथा रामायणस्य तु।।41।।
> नवमेऽहनि श्रोतण्यासर्वपापप्रणशिनी।

गौतम ने कहा - ब्राह्मण सुनों रामायण काव्य का निर्माण वाल्मीकि मुनि ने किया है। जिन भगवान् श्री राम ने अवतार ग्रहण करके रावण आदि राक्षसों का संहार किया और देवताओं का कार्य संवारा था उन्हीं के चरित्र का रामायण काव्य में वर्णन है। तुम उसी का श्रवण करो। कार्तिकमास के शुक्ल पक्ष में नवे दिन अर्थात् प्रतिपदा से नवमी तक रामायण की कथा सुननी चाहिए। वह समस्त पापों का नाश करने वाली है। ऐसा कहकर पूर्ण काम गौतम ऋषि अपने आश्रम को चले गए।

विश्वामित्र ने राम को बताया कि यह जिस महात्मा का आश्रम था और जिन्होंने क्रोधपूर्वक इसे शाप दे दिया था, उस संदर्भ में सुनो -

> गौतमस्य नरश्रेष्ठ पूर्वभासीन्महात्मनः
> आश्रमो दिव्यसंकाशः सुरैरपि सुपूजितः।।15।।
> स चात्र तप आतिष्ठहल्यासहितः पुरा
> वर्षपूगान्यनेकानि राजपुत्र महायशः।।16।।

पूर्वकाल मे महर्षि गौतम अपनी पत्नी अहिल्या के साथ रहकर यहा तपस्या करते थे। उन्होंने बहुत वर्षो तक तप किया था।

एक दिन महर्षि गौतम आश्रम पर नहीं थे उस समय शचीपति इन्द्र गौतम मुनि का वेष धारण किए वहा आए और अहल्या से इस प्रकार बोले -

ऋतुकालं प्रतीक्षन्ते नार्थिनः सुसमाहिते।
संगमं त्वमिच्छामि त्वया सह सुमध्यमे।।18।।

इन्द्र को पहचानते हुए भी अहल्या ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। जब इन्द्र एवं अहल्या दोनों समागम से कृतार्थ हो गए और इन्द्र कुटी से बाहर निकले तब गौतम के आ जाने की आशंका से बड़ी उतावली के साथ वेगपूर्वक भागने का प्रयत्न करने लगे। इतने में ही इन्द्र ने देखा -

गौतमं स ददर्शायं प्रविशन्तं महामुनिम्
देवदानवदुर्धुर्ष तपोबलसमन्वितम्।।23।।
तीर्थोदकपरिक्लन्नं दीप्यमानमिवानलम्
गृहीतसमिधं तत्र सकुशं मुनिपुङ्गवम्।।24।।

महात्मा गौतम का शरीर तीर्थ के जलने से भीगा हुआ है और वे प्रज्वलित अग्नि के समान उद्दीप्त हो रहें है।

दुराचारी इन्द्र को मुनि का वेष धारण किए देख सदाचार सम्पन्न मुनिवर गौतम ने रोष में भरकर कहा -

मम रूपं समास्थाय कृतवानसि दुर्यते।
अकर्तव्यमिदं यस्माद् विफलस्त्वं भविष्यसि।।27।।

रोष में भरे हुए महात्मा गौतम के ऐसा कहते ही सहस्त्राक्ष इन्द्र के दोनों अण्डकोश उसी क्षण पृथ्वी पर गिर पड़े।

तथा शप्तवा च वै शक्रं भार्यामपि च शप्तवान्
इह वर्षसहस्त्राणि बहूवि निवसिष्यसि।।29।।
वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्यशायिनी
अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन् वसिष्यसि।।30।।
यदा त्वेतद् वनं घोरं रामो दशरथात्मजः
आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा पूता भविष्यसि।।31।।
तस्यातिथ्येन दुवृत्ते लोभ मोहविवर्जिता
मत्सकाशं मुदा मुक्ता एवं वपुधरिमिष्यसि।।32।।

इन्द्र को इस प्रकार शाप देकर गौतम ने अपनी पत्नी को भी शाप दिया - "दुराचारिणी" तू भी यहाँ कई हजार वर्षों तक केवल हवा पीकर, या उपवास करके कष्ट उठाती हुई राख में पड़ी रहेगी। समस्त प्राणियों से अदृश्य रहकर इस आश्रम में निवास करेगी। जब दुर्धर्ष दशरथ कुमार राम इस घोर वन में पदार्पण करेंगें, उस समय तू पवित्र होगी। उनका आतिथ्य सत्कार करने से तेरे लोभ मोह आदि दोष दूर हो जायेंगे और तू प्रसन्नतापूर्वक मेरे पास पहुँचकर अपना पूर्व शरीर धारण कर लोगी -

एवमुक्त्वा महातेजा गौतमो दुष्टचारिणीम्
इममाश्रममुत्सृज्य सिद्ध चारणसेविते।
हिमवच्छिखरे रम्ये तपस्तेपे महातपाः।।33।।

अपनी दुराचारिणी पत्नी से ऐसा कहकर महातेजस्वी महातपस्वी गौतम इस आश्रम को छोड़कर चले गए और सिद्धों तथा चारणों से सेवित हिमालय के रमणीय शिखर पर रहकर तपस्या करने लगे।

महात्मा गौतम के तपस्या जनित प्रभाव से इन्द्र को भेड़ो के अण्डकोश धारण करने पड़े। विश्वामित्र के कहने से श्री राम और लक्ष्मण ने बड़ी प्रसन्नता के साथ अहल्या के दोनों चरणों का स्पर्श किया। महर्षि गौतम के वचनों को स्मरण करके अहल्या ने बड़ी सावधानी के साथ उन दोनों भाइयों को आदरणीय अतिथि के रूप में अपनाया और पाद्य अर्घ्य आदि अर्पित करके उनका आतिथ्य सत्कार किया।

महर्षि गौतम के अधीन रहने वाली अहल्या अपनी तपः शक्ति से विशुद्ध शरीर को प्राप्त हुई -

गौतमोऽपि महातेजा अहल्यासहितः सुखी
रामं सम्पूज्य विधिवत् तपस्तेपे महातपाः।

महातेजस्वी महातपस्वी गौतम भी अहल्या को अपने साथ पाकर सुखी हो गए। उन्होंने श्री राम की विधिवत् पूजा करके तपस्या आरम्भ की। गौतम के ज्येष्ठ पुत्र शतानंद थे।

सौदास ने महर्षि गौतम के शाप से राक्षस शरीर प्राप्त किया था। ब्राह्मण ने ब्रह्मवादी गौतम मुनि से गंगा के मनोरम तट पर सम्पूर्ण धर्मो का उपदेश सुना था। गौतम ने पुराणों और शास्त्रों की कथाओं द्वारा उन्हें तत्व का ज्ञान कराया था। परम बुद्धिमान् गौतम तेज की निधि थे।[12]

महर्षि गौतम पुत्र चिरकारी

महर्षि गौतम का पारियात्र नामक पर्वत पर महान् आश्रम है। गौतम मुनि ने उस आश्रम में सात हजार वर्षो तक तपस्या की। उनके चिरकारी नामक एक महाज्ञानी पुत्र था। वह कर्तव्यकर्मो का भली-भाँति विचार करके सारे कार्य विलम्ब से किया करता था। वह चिरकाल तक जागता और चिरकाल तक सोता था। वह किसी कार्य को बड़ी देर में सम्पन्न करता था। इसलिए लोग उसे चिरकारी कहते थे। कुछ मंदबुद्धि मनुष्य चिरकारी को आलसी और कर्मण्य भी कहते थे। एक दिन की बात है - गौतम मुनि ने अपनी पत्नी के किसी व्यभिचार से कुपित हो, सहसा दूसरे पुत्रों को न कहकर चिरकारी से कहा - "बेटा तू अपनी इस पापिनी माता का वध कर डाल।" जप करने वालों में श्रेष्ठ महर्षि गौतम बिना विचारे ऐसा कहकर वन को चले गए। चिरकारी अपने स्वभाव के अनुसार बहुत देर बाद "बहुत अच्छा" कहकर चिरकाल तक वह उस विषय पर विचार-विमर्श करता रहा। मैं पिता की आज्ञा का पालन कैसे करूँ ? क्या उपाय किया जाय माता की हज्या न करनी पड़े। धर्म के बहाने यह मुझ पर एक बहुत बड़ी आपत्ति खड़ी हो गयी है। अन्य असाधु पुरूषों की भाँति मैं भी कैसे इस धर्म संकट में डूबूँ। पिता की आज्ञा का पालन करना महान् धर्म है। पुत्र सदा माता-पिता के अधीन है अतः मै कौन सा कार्य करूँ, जिससे मुझे धर्म की हानि रूपी पीड़ा न हो। स्त्री, वह भी माता की हत्या कर इस संसार में कौन सुखी रह सकता है ? फिर पिता का आज्ञा का अवहेलना कर कौन प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सकता है ? पिता की आज्ञा की अवहेलना न हो और मै कौन सा उपाय करूँ कि मुझे अधर्म का स्पर्श न हो। जात कर्म उपनयन आदि संस्कार करने तथा भरण-पोषण करने के कारण पिता

12· वा०रा०, बालकाण्ड, 49-49वां सर्ग, उत्तरकाण्ड 30/20-45

ही पुत्र का प्रधान गुरु है, पिता की आज्ञा ही धर्म है। वेदों में भी इसी बात का निश्चय किया गया है। इसलिए बिना विचार किए पिता की आज्ञा का पालन करने वाले पुत्र के सभी पातक नष्ट हो जाते हैं। पिता ही धर्म है, पिता ही स्वर्ग है, पिता ही परम तप है, पिता के प्रसन्न होने पर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हो जाते है। पिता-पुत्र के हित को दृष्टि में रखकर जो कठोर वचन बोलता है, वह उसके लिए आशीर्वाद बन जाता है और पुत्र के प्रति पिता का मधुर वचन उसके सम्पूर्ण पापों को धो देता है। फुल अपनी डाली से गिर जाता है, फल वृक्ष से गिर जाता है किन्तु अत्यन्त कष्ट पीड़ित होकर भी पिता कभी अपने पुत्र का त्याग नहीं करता। फिर माता का गौरव किसी प्रकार भी पिता से कम नहीं है। इस पाँच भौतिक शरीर की उत्पत्ति मे माता ही प्रमुख कारण है। माता मनुष्य के शरीर रूपी अग्नि को प्रकट करने के लिए आणी है। प्राणियों की पीड़ा और दुःखे में उनका एक मात्र आश्रय माता ही होती है। जिसकी माता है वही भाग्यशाली है, जो मातृविहीन है, वही अनाथ है। माता के जीवित रहते मनुष्य न तो चिन्तित होता है न उस पर वृद्धावस्था का अनुक्रमण होता है। जो निर्धन होते हुए भी अपनी माता को पुकारते हुए घर में प्रवेश करता है। वह मानों साक्षात् अन्नपूर्णा देवी के पास पहुँच जाता है। समर्थ हो या असमर्थ, निर्धन हो या धनी, पुत्र की रक्षा माता करती ही है। माता से बढ़कर पोषक दूसरा संसार में कोई नहीं है। जिस दिन माता इस संसार से विदा हो जाती है, उसी दिन पुत्र सचमुच में दुःखी हो जाता है, वृद्ध हो जाता है और उसके लिए सारा संसार सूना हो जाता है। माता के समान कोई छाया नहीं है, माता के समान कोई गति नहीं है, माता के समान कोई रक्षक नहीं है और माता से बढ़कर दूसरी कोई प्रिय वस्तु नहीं है। माता गर्भ में धारण करने के कारण धात्री, जन्म देने से जननी, अंड·गों को पुष्ट करने अम्बा और वीर पुत्र को जन्म देने से वीर प्रसु कहलाती है। अतएव माता की हत्या वहीं कर सकता है, जिसका मस्तिष्क पूर्ण रूप से चेतना शून्य हो चुका है। इस प्रकार चिरकारी बहुत देर तक विचार करता रहा, किन्तु वह निर्णय नहीं कर सका कि उसे क्या करना है ? इसी समय उसके पिता वन से लौट आये महाज्ञानी, तपोनिष्ठ मेधातिथि गौतम पत्नी के वध के अनौचित्य पर विचार कर अतयधिक सन्तप्त हो उठे थे। वे दुःख से आंसू बहाते हुए तपस्या के प्रभाव

से अपने को किसी तरह संभाले रहे और पश्चाताप करते हुए मन ही मन इस प्रकार कहने लगे - इन्द्र की विषय लोलुपता के कारण यह दुःखद घटना घटित हो गयी है। इन्द्र ने मेरे साथ विश्वासघात किया है। इसमें मेरी पत्नी का कोई दोष नही हैं। ईर्ष्या ने मुझे पाप के समुद्र में ढकेल दिया और मै उसमे डूब रहा हूँ। इस प्रमादरूपी व्यसन के कारण मैने अपनी सती-साध्वी पत्नी का वध कर डाला। मुझे धिक्कार है किन्तु मैनें उदारबुद्धि चिरकारी को उसकी माता के वध की आज्ञा दी थी। इस कार्य में विलम्ब करके यदि उसने आज अपने नाम को सार्थक किया है, तो वह अवश्य ही मुझे इस स्त्री वध के पाप से बचा सकता है। बेटा चिरकारी तेरा कल्याण हो चिरकारी तेरा मंगल हो। यदि आज भी तूने विलम्ब से कार्य करने के अपने स्वभाव का अनुसरण किया हो, तभी तेरा नाम सार्थक है। बेटा आज विलम्ब कर तू वास्तव में चिरकारी बन और मेरी-अपनी माता की तथा मैने जो तप का उपार्जन किया है, उसकी भी रक्षा कर। साथ ही अपने आपको भी पातकों से बचा लें। इस प्रकार पश्चाताप से संतप्त महर्षि गौतम ने घर आने पर चिरकारी को पास ही खड़ा देखा। पिता को देख चिरकारी ने हाथ की तलवार फेंक दी और उनके चरणों में गिर पड़ा। महर्षि ने देखा कि उनकी पत्नी एक ओर निष्चेष्ट खड़ी है। यह देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। महर्षि ने अपने पुत्र को सूँघा। प्रेम विह्वल गौतम मुनि ने पुत्र को आशिर्वाद देते हुए कहा - पुत्र चिरकारी तेरा कल्याण हो तुम चिरकाल तक चिरकारी और चिरञ्जीवी बने रहो। सौम्य यदि तुम चिरकाल तक ऐसे ही स्वभाव का बना रहा तो मै दीर्घकाल तक कभी दुःखी नहीं होउँगा।[13]

एक बार अन्न का अकाल पड़ जाने के कारण राजा वृषादर्भि दान कर रहे थे। कुछ सप्तर्षियों ने दान लेना अमान्य कर दिया था उनमें से एक गौतम भी थे।[14]

उतंक मुनि महर्षि गौतम के प्रिय शिष्य थे। गौतम उतंक से बहुत अधिक प्रसन्न रहते थे। उतंक के बाद आए अनेक शिष्यों को घर जाने की आज्ञा

13· म0भा0, शा0 अध्याय 165-166

14· म0भा0, अनु0 93

देकर भी उन्होंने उतंक को घर नहीं जाने दिया। एक दिन उतंक जंगल से लकड़ी ला रहे थे तो उसी समय थककर लकड़ियों में फसकर उनके सफेद बाल टूट गये। अपने सफेद बाल देखकर वे रोने लगे। पिता की आज्ञा से गुरु पुत्री ने उतंक के आँसू पोछे तो उसके दोनों हाथ जल गये तथा वह पृथ्वी पर गिर पड़ी। पृथ्वी भी उसके आँसू संभालने में असमर्थ थी। गौतम ने शिष्य का दुःख का कारण जाना तो उसे घर जाने की आज्ञा प्रदान कर दी तथा कहा कि यदि वे सोलह वर्ष के हो जाय तो वे अपनी पुत्री का विवाह उनसे कर देंगे। उतंक योग बल से सोलह वर्ष के हो गये और गौतम ने उनके अपनी कन्या का विवाह कर दिया। उतंक ने राजा सोदास के यहाँ से कुण्डल ले आकर गुरु पत्नी को गुरु दक्षिणा रूप में प्रदान की।[15]

गौतम तथा भगीरथ ने तप के द्वारा शंकर को प्रसन्न किया तथा गंगा की याचना की। शंकर ने गौतम को गंगा प्रदान की। वही गौतमी के नाम से प्रसिद्ध हुई।[16] गौतमी {गोदावरी} माहात्म्य विस्तृत रूप से प्राप्त होता है।[17] संस्कृत वाङ्‌मय में गौतम अनेक आचार्यो के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए है। कठोपनिषद के वाजश्रवा तथा नचिकेता, जनक के पुरोहित शतानन्द के पिता, कृपाचार्य तथा छान्दोग्य उपनिषद् का हरिद्रुमत सब गौतम कहलाते थे। गौतम के प्रभाव से उसके पूर्वज और कनिष्ठ सभी को गौतम कहा गया।[18]

ग्रन्थ

गौतम अति प्राचीन ऋषि है। शालि होत्र के अनुसार आयुर्वेद कर्ताओं में गौतम का नाम भी लिया जाता है। इनके आयुर्वेदीयतन्त्रका ज्ञान उपलब्ध नहीं होता है किन्तु उसके वचन कई स्थानों पर उद्धृत है। चरकसंहिता में उल्लेख प्राप्त होता है श्रेष्ठता को लेकर मुनियों में परस्पर विवाद छिड़ गया था। सभी लोग

15· म0भा0, अश्वमेधिक पर्व, अध्याय 52-58

16· पद्म0 उ0 268/52-54

17· ब्रह्म 70-175

18· ता0ब्रा0 13/12/8

निर्णय करने के लिए आत्रेय के पास गये इनमें गौतम ने अपनी सम्मति प्रकट की है[19]-

कट्टुतुम्बममन्यतोत्तमं वयने दोषसमीरणं च तत्।
तद्कृष्यम शैत्यतीक्ष्णताकट्ुोक्ष्यादिति गौतमोऽब्रवीत्।।

गौतम का न्यायशास्त्र अत्यन्त प्रसिद्ध है। महाभारत में उद्धृत है कि गौतम संपूर्ण न्यायशास्त्र को तत्वपूर्वक जानते हैं।[20] धर्मशास्त्रकार के रूप में भी गौतम प्रसिद्ध हैं। गौतम स्मृति गद्यमय है। गौतम का धर्मसूत्र सम्प्रति उपलब्ध है। बौधायनआदि धर्मसूत्रों से यह अति प्राचीन है। यह ग्रन्थ सामशाखाकार गौतम का है। गौतम धर्मसूत्र में चातुर्वणियों के व्यवहार के नियम, उपनयन आदि संस्कार, विवाह तथा उसके प्रकार प्रायश्चित राजधर्म स्त्रियों के कर्तव्य, नियोग, महापालक तथा उपपातको के लिये प्रायश्चित कृच्छ्र अति कृच्छ्र आदि का वर्णन किया गया है। गौतम धर्मसूत्र में संहिता ब्राह्मण, पुराण वेदांग आदि के उल्लेख प्राप्त होते हैं गौतम धर्मसूत्र का उल्लेख सर्वप्रथम बोधायन धर्मसूत्र में उपलब्ध है। मनुस्मृति में गौतम का उतथ्यपुत्र के नाम से उल्लेख हुआ है।[21] भविष्यपुराण में भी गौतम का सुरापान निषेध के बारे में उद्धरण प्राप्त होता है।

गौतम प्रोक्त गौतमी शिक्षा सम्प्रति पायी जाती है। गौतम के वैयाकरण होने का प्रमाण पं0 युधिष्ठिर मीमांसक जी के ग्रन्थ, व्याकरणशास्त्र का इतिहास, पृ0 91 पर उद्धृत है।

उपर्युक्त सभी ग्रन्थ एक ही गौतम के द्वारा ही लिखित है अथवा भिन्न-भिन्न यह विचारणीय विषय है।

मध्यदेश का एक गौतम नाम का ब्राह्मण था जिसे वेद का बिल्कुल ज्ञान नहीं था। अत्यन्त दरिद्र स्थिति में एक गाँव में भीख मांगने गया। वहाँ एक धनवान दस्यु ने उसे रहने, खने तथा एक विधवा स्त्री प्रदान की। कालान्तर में वह

19· आयुर्वेदीय च0सं0, अ0 11

20· न्यायतन्त्रे हि कार्त्स्न्येन गौतमो वेद तत्वतः। म0भा0,शा0 212, अन्यत्र विष्णु0 2/43-47

21· मनुस्मृति 3/16

एक कुशल शिकारी तथा डाकू बन गया। एक दिन उसका पूर्वपरिच ब्राह्मण मिल गया और वह उसके कर्मों को देखकर उसकी निन्दा की। उसके चले जाने के बाद गौतम लज्जित होकर समुद्र की ओर जाने लगा। मार्ग में एक वैश्य दल के साथ मिल गया किन्तु उसका साथ छूट गया।

मार्ग में गौतम महर्षि कश्यप के पुत्र ब्रह्मा के मित्र नाडीजंघ से मिला। वह राजधर्मा नाम से विख्यात था। राजधानी ने उसका अतिथि सत्कार किया तथा रात भर वहाँ विश्राम करने के लिये अनुरोध किया। राक्षसराज विरूपाक्ष के पास जाने के लिये प्रेरित किया। राजा के द्वारा पूछे जाने पर इसने सभी सच्चाई बताई। अन्य ब्राह्मणों के साथ उसे भोजन कराया, बहुमूल्य दक्षिणा दी। सम्पत्ति का भार सिर पर लेकर यह एक वट वृक्ष के नीचे बैठ गया। वहाँ बैठे-बैठे राजधर्मा का वध करने उसे जलाकर उसकी सम्पत्ति लेकर वहाँ से चल दिया। परन्तु शीघ्र ही विरूपाक्ष ने उसे पकड़ लाया तथा उसके टुकड़े-टुकड़े करके शवरों को खाने को दिया। यह कृतघ्न होने के कारण किसी शवर ने इसे नहीं खाया। दस्युओं ने भी उस कृतघ्न का मांस खाने से इन्कार कर दिया। क्योंकि ब्राह्मण मांस खाने का प्रायश्चित शास्त्रों में तो विहित है किन्तु मित्रद्रोही का नहीं। तदनन्तर विरूपाक्ष ने अपने मृत मित्र को चिता पर रखवा कर आग लगा दी। उसी समय ब्रह्मा प्रेषित सुरभि आकाश में प्रकट हुई। वकराज पुनर्जीवित होकर विरूपाक्ष के पास चला गया। रूद्र ने प्रकट होकर बताया कि एक बार ब्रह्मा की सभा में न पहुँच पाने के कारण राज धर्मा के वध का कष्ट भोगने का शाप मिला था। किन्तु उसे पुनर्जीवित करने का प्रयत्न विरूपाक्ष ने ही किया था। राजधर्मा ने इन्द्र से गौतम को पुनर्जीवन दान करने का अनुरोध किया। गौतम को जीवित देख कर वकराज ने उसे सप्रेम विदा किया उस शूद्र दासी (पत्नीवत्) के उदर से गौतम ने अनेक पापाचारी पुत्रों को जन्म दिया।[22]

22· म0भा0, शा0, अ0 168, श्लोक 30-52, अ0 169-173

ब्रह्मदेव ने अहल्या को शरद्वत गौतम के पास अमानत के रूप में रखे थे। शरद्वत गौतम मुनि का जितेन्द्रियत्व तथा तपसिद्ध देखकर ब्रह्मदेव ने यह कन्या उसे भार्या कह कर दी।[23] परन्तु इन्द्र, वरुण, अग्नि, देव, दानव तथा अन्य राक्षसों के मन भी इसके लिए अभिलाषा की। तब प्रत्येक की सामर्थ्य की परीक्षा ली जाय इस हेतु से ब्रह्मदेव ने निश्चय किया कि जो व्यक्ति सर्वप्रथम पृथ्वी की प्रदाक्षिणा करेगा उसे ही यह कन्या दी जायेगी। अहिल्या के अभिलाषी लोग प्रदाक्षिणा करने लगे, परन्तु अर्धप्रसूत धेनु पृथ्वी ही होने के कारण गौतम ने उसी की प्रदाक्षिणा ली तथा एकलिंग की प्रदक्षिणा करके वह ब्रह्म देव के पास पहुँच गये। गौतम प्रथम आये ऐसा समझकर ब्रह्मदेव ने उसे अपनी कन्या प्रदान की। देवगण एक-एक करके आने लगे परन्तु उन्हें ज्ञात हुआ कि अहल्या तथा गौतम का विवाह सम्पन्न हो गया। यह समाचार सुनकर इन्द्र दुखी हुए क्योंकि इन्द्र उससे प्रेम करते थे। विवाहोपरान्त गौतम तथा अहल्या ब्रह्मगिरि पर निवास करने के लिये चले गये।

आश्रम

गौतम ऋषि का आश्रम परियात्र पर्वत के निकट था। यहाँ इन्होंने कई वर्षो तक तप किया था। यहाँ स्वयं यम आया था। उससे गौतम ने पूछा था कि - "पितरो का ऋण किस प्रकार चुकाया जाये" यम ने कहा - "सत्य, धर्म, तप तथा शुचिर्भूतता का अवलम्बन करके माता-पितरों का पूजन करना चाहिये इससे स्वर्गादि की प्राप्ति होती है।[24] एक बार बारह वर्षो तक घोर अकाल पड़ा तब गौतम ने ऋषियों को अन्न देकर बचाया था।[25] यही वर्णन देकर शक्ति उपासना का महत्त्व बताया गया है।[26]

रामायण में भी इस आश्रम का उल्लेख पाया जाता है।[27] देवताओं द्वारा समर्पित इस पवित्र स्थल पर महर्षि गौतम ने अहिल्या के साथ रहकर कई

23· वा0रा0, उ0 30/29, विष्णु0 4/19, मत्स्य0 50
24· म0भा0, शा0 126
25· नारद0 2/63
26· भा0 12/9, शिव0 कोटि0 25-27
27· वा0रा0, आदि0 48/15-16

वर्षो तक तपस्या की थी। यहाँ पर अहल्या पथभ्रष्ट हो गयी थी इसलिये गौतम ऋषि दुःखी होकर हिमालय पर चले गये। सीता स्वयम्बर में सम्मिलित होने के लिए जनकपुर जाते समय राम ने इस आश्रम में आकर अहल्या का उद्धार किया था।

गौतम क्षेत्र

आधुनिक त्रयम्बक - नासिक जनपद का एक कसबा है गौतम ने यहाँ पर बहुत दिनों तक तपस्या की थी। शिवजी के बारह ज्योतिर्लिंगों में से "त्रयम्बकेश्वर" शिवलिंग यहाँ पर विद्यमान है।

परियात्र पर्वत विन्ध्याचल पर्वत क्षेत्रों के अन्तर्गत एक पर्वत है जो सप्त कुल पर्वत में से एक है इस पर महर्षि गौतम का आश्रम था। ब्रह्मपुराण में गौतम सम्बन्धी जो जानकारी प्राप्त है वह इस प्रकार है -

> कैलाशशिखरं गत्वा गौतमो भगवानृषिः
> किं चकार तपो वाऽपि कां चक्रेस्तुतिमुत्तमाम्।।
> गिरिं गत्वा ततो वत्स वाचं संयम्य गौतमः
> आस्तीर्य स कुशान्प्राज्ञः कैलासे पर्वतोत्तये।
> उपविश्य शुर्चिभूत्वा स्तोत्रं चेदं ततो जगौ
> अपतत्पुष्पवृष्टिश्च स्तूयमाने महेश्वरे।

नारद ने कहा - भगवान् गौतम ऋषि ने कैलास के शिखर पर पहुँचकर क्या किया था ? क्या कोई वहाँ पर उन्होंने तपस्या की थी अथवा कौन सी उत्तम स्तुति की थी ? ब्रह्मा ने कहा - हे वत्स फिर उस कैलास पर जाकर उस गौतम ने अपनी वाणी का सर्वप्रथम संयम किया था। फिर उस पर्वतों में परम श्रेष्ठ कैलास पर उस परम् प्राज्ञ गौतम ने कुशाओं को फैला दिया था। उस स्थल पर वह उपविष्ट हो गये थे और पवित्र होकर उन्होंने इस नीचे बताये जाने स्तोत्र का गान किया था। इस प्रकार से महेश्वर प्रभु की स्तुति करने पर नभोमण्डल से पुष्पों के वृष्टि हुई थी।

ततो गते भगवति लोकपूजिते

तदाज्ञया पूर्णबलः स गौतमः।

जटां समादाय सरिद्वरां तां,

सुरवृत्तो ब्रह्मगिरिं विवेश।

ततस्तु गौतमे प्राप्ते जटामादाय नारद

पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र समाजग्मुः सुरेश्वराः।

ऋषयश्च महाभागा ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा

जयशब्देन तं विप्रं पूजयन्तो मुदान्विता।

इसके अनन्तर लोकों के द्वारा वन्दित भगवान् शिव के गमन कर जाने पर उनकी आज्ञा से पूर्ण बल से युक्त वह गौतम मुनि शम्भु की जटा से उस श्रेष्ठ सरिता को लाकर सुरगण से समावृत्त होते हुए गौतम ने ब्रह्मगिरि में प्रवेश किया था। हे नारद इसके अनन्तर जटा को लेकर गौतम मुनि के वहाँ प्राप्त हो जाने पर जहाँ पर पुरूषों की वृष्टि हुई थी और सभी सुरेश्वर वहाँ पर समाप्त हो गए थे। सब ऋषि गण महान भाग वाले ब्राह्मण और क्षत्रिय जयकार की ध्वनि के द्वारा परमानन्द से युक्त होकर उस विप्र गौतम की अभ्यर्चना करने लगे थे।

हनुमननाटक के तीसरे अंक में गौतम का दो बार उल्लेख है जिसमें उनके द्वारा शप्त तथा पाषाण रूप अहल्या का श्रीराम के चरण धूलि से स्त्री रूप प्राप्त करने की घटना का संकेत दिया गया है -

पदकमलरजोभिमुक्तपाषाणदेहा-

मलभत यदहल्यां गौतमो धर्मपत्नीम्

त्वयि चरति विशीर्णग्रावविन्ध्याद्रिपादे

कति कति भवितारस्तापसा दारवन्तः।।

उपलतनुरहल्या गौतमस्यैव शापः

दियमपि मुनिपत्नी शापिता कापि वा स्यात्।

चरणनलिनसंङ्गानुग्रहं ते भजन्ती

भवतु चिरमयं नः श्रीमती पोतपुत्री।।[28]

28· हनुमननाटक 3/19, वही, 3/20

सम्भवतः महर्षि गौतम के जीवन की यही सबसे महत्वपूर्ण घटना थी जिसका अन्य साहित्य में भी भरपूर उपयोग किया गया है।[29]

29· "गौतम की घरनि ज्यों तरनी तरेगी मेरी
प्रभु से निषाद होइके वाद ना बढ़ाइ हौं
तुलसी के इश राम रावणे से साँची कहौं
बिना पग धोए नाथ नाव न चढ़ाइहौं"
तुलसीदास कृत - कवितावली

गालवः

§गल् घञ् तं वाति - वा+क§ §1§ लोध्र वृक्षा §2§ एक प्रकार का आवनूस §3§ एक ऋषि, विश्वामित्र का शिष्य §हरिवंशपुराण में उसे विश्वामित्र का पुत्र बतलाया गया है।

गालव का मत एक बार निरुक्त में और चार बार वृहद्देवता में उद्धृत किया गया है -

§1§ शिताम-शिताम शितिमांसतो मेदस्त इति गालवः। §4/3।।§

अर्थात शिताम् का अर्थ है श्वेत मांसमेद। अतः शितामतः का अर्थ हुआ भेद से। यह गालव मानता है। वृहद्देवता में गालव का मत है -

1§ नवभ्य इति नैरुक्ताः पुराणः कवयश्चये
मधुकः श्वेतकेतुश्च गालवश्चैव मन्यते। 1/24

2§ इळस्पति शाकपूणिः पर्जन्याग्नी तु गालवः। 5/34।।

3§ पौष्णौ प्रेति प्रगाथौ द्वौ मन्यते शाकटायनः
ऐन्द्रमेवाथ पूर्वं तु गालवः पौष्णमुत्तरम्।6/43।।

4§ सावित्रमेके मन्यन्ते अग्ने स्तवं परम्
आचार्या, शौनको यास्को गालवश्चोनृमागृचम्। 7/38।।

गालव-प्रोक्त एक गालव ब्राह्मण का उल्लेख हुआ है। वृहद्देवताकार के इस वचन से कि गालव पुराने ऋषियों में से था। यह अनुमान होता है कि वृहद्देवता और निरुक्त में उद्धृत हुआ गालव यह ब्राह्मण प्रवक्ता गालव ही होगा।

महाभारत शान्तिपर्व में भी एक गालव का उल्लेख है। यदि वह यही गालव है तो इनता निश्चय हो सकता है कि उस का गोत्र बाभ्रव्य था, और उसी ने ऋग्वेद का क्रमपाठ और एक शिक्षा बनायी -

पाञ्चालेन क्रमः प्राप्तस्तस्माद्भूतात् सनातनात्
बाभ्रव्यगोत्रः स वभौ प्रथमं क्रमपारगः
नारायणदरं लब्धवा प्राप्य योगमनुत्तमम्
कृमं प्रणीय शिक्षां च प्रणयित्वा स गालवः

बाभ्रव्य ने राम के मार्ग से क्रम बनया।[1] शाकटायन व्याकरण लघुवित में लिखा है - ब्राभव्यः कौशिकाः बाभ्रवेन्द्रन्यः।

पाणिनी यास्क में एक गालव का चार बार स्मरण किया गया है।[2] ऋक प्रातिशाख्य 11। 65।। में लिखा है

इति प्र बाभ्रव्य उचाव स क्रमम्

क्रम प्रवक्ता प्रथमं शशंस च।।

इस वचन के भाष्य में उवट लिखता है -

"बभ्रुपुत्रः भगवान् पञ्चाल §पाञ्चालः§।"

महाभारत के लेख से ज्ञात है कि गालव का गोत्र बाभ्रव्य था। बभ्रुपुत्र होने से वह बाभ्रव्य नही कहलाता। उवट का कथन विचारणीय है।

गालव का वृहदारण्यक उपनिषद के प्रथम दो वंशों §गुरूओं की तालिकाओं§ में विदर्भीकौण्डिन्य के एक शिष्य[3] के रूप में उल्लेख है। कदाचित यह वही व्यक्ति है जिसका किसी सांस्कारिक विषय के सम्बन्ध में ऐतरेय आरण्यक में उल्लेख है। निरूक्त में इस नाम के एक वैयाकरण का उल्लेख है।

गालव शाखा

यह गालव पांचाल अर्थात पांचाल देश के निवासी थे। इसका दूसरा नाम बाभ्रव्य था। कामसूत्र में इसी को बाभ्रव्य पांचाल कहा गया है। इसका उल्लेख ऋक प्रातिशाख्य निरूक्त में वृहद्देवता और अष्टाध्यायी आदि में मिलता है।

इसी बाभ्रव्य गालव का नाम आश्वलायन, कौषीतकि और शाम्बव्य गृहयसूत्रों के ऋषितर्पण प्रकरणों में मिलता है। प्रपञ्च हृदय में भी बाभ्रव्य शाखा का नाम

1· पाञ्चाल पदवृत्ति वैदिक वा0का इतिहास, ऋक प्रा0पृ0 77/2/33

2· महभारत नीलकण्ठटीका सहित, शांतिपर्व अ0 342

3· वृ0उ0 2/6/3, 4/6/3

मिलता है। यह बाभ्रव्य कौशिक विश्वामित्र की परम्परा में थे। व्याकरण महाभाष्य 1·1·44 में निम्नलिखित पाठ है -

आचार्यदेशशीलेन यदुच्ये तस्य तद्विषयता प्राप्नोति।" इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य ‌‌‌§6·3·61§ प्राचामवृद्धात फिन्बहुलम §4·1·160§ इति गालवा एव ह्रस्वान प्रयुञ्चजीरन्प्रा क्षु चैव हि फिनस्यात्।तद्यथा जमदग्नि र्वा एतत् पंचमभवदानमवाद्यत् तस्मान्नाजामदग्नयः पंचावत्तं जुहोति।"

पंतञ्जलि ने इस लेख से गालव के एक विशेष नियम का परिचय दिया है। गालव पाञ्चाल था। पाञ्चाल देश आधुनिक बरेली के आस-पास का प्रदेश है। ऐतरेय आरण्यक 5·3 में लिखा है - नेदमेकस्मिन्नहनि समायपयेत इति ह स्याह जातूकर्ण्यः। समापयेत इति गालवः।

यहाँ जिन दो आचार्यो के मत दिखाए गए हैं वे दोनों हमारी सम्मति में शाखाकार आचार्य ही हैं। यही गालव एक शाकल है।

चरक संहिता के आरम्भ में एक गालव का भी उल्लेख है। गालव दीर्घजीवी ऋषि थे। महाभारत सभापर्व के चतुर्थाध्याय में लिखा है कि

सभायमृषयस्तस्यां पाण्डवैः सह आसते ।।15।।
पवित्रपाणिः सावर्णो भालुकिर्गालिवस्तथा।।21।।

इसी पर्व के सातवें अध्याय के दशम श्लोक में भी गालव स्मरण किया गया है। निस्सन्देह यह गालव ऋग्वेदीय आचार्य है।

स्कन्दपुराण नागर खण्ड पृ0 168 §क§ के अनुसार एक गालव, कौरव राज्य के मन्त्री विदुर से मिला था। ऐतरेय ब्राह्मण 7·1 और आश्वलायन श्रौत सूत्र में एक गिरिज बाभ्रव्य का नाम मिलता है।

बाभ्रव्य - गालव सम्बन्धी ऐतिहासिक कठिनाई -, मत्स्यपुराण 21·30 में ब्राह्मण को सुबालक और दक्षिण पान्चाल के राजा ब्रह्मदत्त का मंत्री कहा है। सुबालक नाम गालव का भ्रष्ट पाठ प्रतीत होता है। हरिवंश में अध्याय 20 मे ब्रह्मदत्त का वर्णन मिलता है। तदनुसार यह ब्रह्मदत्त भीष्म के पितामह प्रतीप का समकालीन था। अतः गालव का समय पाराशर्य व्यास से कम से कम दो शती पूर्व था। इसका स्पष्टीकरण निम्नलिखित वंशानुक्रम से होगा।

प्रतीप (प्रतिप) ब्रह्मदत्त बाभ्रव्य

शन्तनु

भीष्म -व्यास

स्कन्द पुराण महेश्वर खण्डान्तर्गत कौमारिका खण्ड, अध्याय 54 में निम्न श्लोक है -

स च बाभ्रव्यनामा वै हारीतस्यान्वयोद्भवः
ब्राह्मणो नारदमुनेः समीपे वर्तते सदा।

<u>महर्षि गालव की उत्पत्तिः</u>

तस्य पुत्रास्त्रयः शिपटा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते
चन्द्राश्वकविलाश्वौ तु कुमारौ कनीयसौ (1)

धौन्धुमारिर्दृढाश्वस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मजः
हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत्क्षत्रधर्मरतः सदा (2)

संहताश्वो निकुम्भस्य पुत्रो रणविशारदः
अकृशाश्वः कृशाश्वश्च संहताश्वसुतौ नृप (3)

तस्य हैमवती कन्या सतां माता दृषद्वती
विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रश्चास्या प्रसेनजित् (4)

लेभे प्रसेनजिद्भार्यां गौरी नाम पतिव्रताम्
अभिशप्ता तु सा भर्त्रा नदी वै बाहुदाऽभवत् (5)

तस्याः पुत्रो महानासीद्युवनाश्वो महीपतिः
मान्धाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुतः (6)

तस्य चैत्ररथी भार्या शशबिन्दोः सुताऽभवत्

साध्वी बिन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भवि ॥7॥
पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणाशयुतस्य सा
तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ नृप ॥8॥
पुरुकुत्सं च धर्मज्ञं मुचुकुन्दं च धार्मिकम्
पुरुकुत्ससुत श्वासीत्रसदस्युर्महीपतिः ॥9॥
नर्मदायामयोत्पन्नः संभूतस्तस्य चात्मजः
संभूतस्य तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः ॥10॥
सुधन्वनः सुतश्चासीत्त्रिधन्वा रिपुमर्दनः
राज्ञस्त्रिधन्वनस्त्वासी द्विद्वांस्त्रय्यारुणः ॥11॥
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः
पाणिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे सुदुर्मतिः ॥12॥
येन भार्याऽऽहृता पूर्व कृतोआहा परस्य वै
बाल्यात्कामाच्च मोहाच्च संहर्षाच्चापलेन च ॥13॥
जहार कन्यां कामातस कस्यचित्पुरवासिनः।
अधर्मशकुना तेन राजा त्रय्यारुणोऽत्यजत् ॥14॥
अपध्वंसेति बहुशो वदन्क्रोधसमन्वितः
पितरं सोऽब्रवीत्त्यक्तः क्व गच्छामीति वै मुहुः ॥15॥
पिता त्वेनमथोवाच श्वपाकैः सह वर्त्तय।
नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वयाऽद्य कुलपांसन ॥16॥
इत्युक्तः स निराकामन्नगराद्यनात्पितु
न च तं वारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः ॥17॥
स तु सत्यव्रतस्तात श्वपाकावसथान्तिके
पित्रा त्यक्तोऽवसद्वीरः पिता तस्य वनं ययौ ॥18॥
ततस्तस्मिंस्तु विषये नावर्षत्पाकशासनः
समाद्वादश राजेन्द्र तेनाधर्मेण वै तदा ॥19॥
दारांस्तु विषये विश्वामित्रो महातपाः
संन्यस्य सागरानूपे चचार विपुलं तपः ॥20॥
तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम्
शेषस्य भरणार्थाय व्यक्रीणाद्गोशतेन वै ॥21॥

तं तु बद्धं गले दृष्टवा विक्रीयन्तं नृपात्मजः
महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोचयामास भारत §22§
सत्यव्रतो महाबाहुर्भरणं तस्य चाकरोत्
विश्वामित्रस्य तुष्टयर्थमनुकम्पार्थमेव च §23§
सोऽभवद्गालवो नाम गलबन्धान्महातपाः
महर्षि कौशिकस्तात तेन वीरेण मोक्षितः §24§

वामनुपराणानुसार प्राचीन काल में महर्षि गालव अपने आश्रम में सदा रहते हुए तपस्या कर रहे थे। दैत्य पातालकेतु मूर्खतावश उनकी तपस्या में विघ्न और उनकी समाधि को भंग करता था। उसको भस्म करने में समर्थ होते हुए भी वे तपस्या का व्यय नहीं करना चाहते थे। उन्होंने आकाश की ओर देखकर दीर्घ उष्ण एवं अत्यन्तुष्ण निःश्वास छोड़ा। तदनन्तर आकाश से एक सुन्दर अश्व गिरा और आकाशवाणी हुई कि यह बलवान अश्व एक दिन में सहस्त्र योजन जा सकता है। शस्त्रसम्पन्न राजा ऋतुध्वज को वह अश्व देकर वे महर्षि तप करने लगे। तदनन्तर दैत्य के समीप जाकर राजपुत्र ने उसे बाण द्वारा आहत किया।

यक्ष और असुर दोनों की कन्याओं के वहीं रहते समय गालव नामक ऋषि अव्यक्त स्वरूप श्रीकण्ठ का दर्शन करने के लिए इस वन में आए। उन्होंने दोनों कन्याओं को देखकर ये किसकी कन्याएँ है सोचते हुए कालिन्दी के विमल जल में प्रवेश किया। स्नान करने के बाद पवित्र होकर गालव ऋषि ने श्रीकण्ठ महादेव की पूजा की। तदनन्तर यक्ष और असुर की कन्याओं ने मधुर स्वर से गान किया। तदुपरान्त §उनके§ स्वर को सुनकर गालव ने यह समझा कि ये दोनों निस्सन्देह गंधर्व की कन्याएँ है गालव ने विधिपूर्वक श्रीकण्ठ देव की पूजा कर जप किया। तदनन्तर दोनों कन्याओं से अभिवादित होकर वे बैठ गये तत्पश्चात् उस मुनि ने पूछा - यह बतलाओं कि कुलालंङ्·कार स्वरूप एवं शंकर में भक्ति करने वाली तुम दोनों किसकी कन्याएँ हो ?

हे शुभानने दोनों कन्याओं ने मुनि श्रेष्ठ से यथार्थ वृत्तान्त बतलाया तब श्रेष्ठ तपस्वी गालव को सम्पूर्ण वृत्तान्त विदित हो गया। उन दोनों से पूजित मुनि ने वहाँ रात्रि में निवास किया। प्रातः काल उठकर उन्होंने विधानपूर्वक गौरीशंकर का पूजन किया। तदनन्तर उन दोनों के समीप जाकर उन्होंने कहा - मैं परम श्रेष्ठ पुष्कर वन में जाऊँगा मै तुम दोनो की अनुमति चाहता हूँ मुझे अनुमति दो। तदुपरान्त उन दोनों ने कहा - ब्रह्मन् आपका दर्शन दुर्लभ है आप आदर पूर्वक पुष्करारण्य में क्यों जा रहे हैं। महत्कार्य युक्त महातेजस्वी मुनि ने उन दोनों से कहा आगे मासान्त में कार्तिकी पूर्णिमा होगी जो पुष्कर में दुष्कर पुण्यदायिनी है। उन दोनों ने कहा आप जहाँ जाएगें हम भी वही चलेंगी। हे ब्रह्मन् आपके बिना हम यहाँ नहीं रह सकेंगे। ऋषि श्रेष्ठ ने कहा - ठीक है। तदनन्तर महेश्वर को प्रणाम कर ऋषि के साथ वे दोनों आदर पूर्वक पुष्करारण्य गयीं। गालव भी उन दोनों कन्याओं के साथ धनुष के समान आकार वाले मध्यम पुष्कर तीर्थ में स्नान करने के लिए उतरे। {जल में} निमग्न होने पर उन्होंने देखा कि एक महामत्स्य जल में स्थित है एवं अनेक मत्स्य कन्याएँ बार-बार उसे प्रसन्न करने में लगी है। उस मत्स्य ने उन {मछलियों} से कहा - मुग्ध होने के कारण तुम धर्म नहीं जानती। मै तीक्ष्ण एवं भयंकर जनापवाद नहीं सहन कर सकता। उन सभी {मछलियो} ने कहा क्या तुम दो कन्याओं के साथ यथेच्छ विचरण करने वाली तपस्वी गालव को नहीं देख रहे हो। यदि धर्मात्मा एवं तपस्वी होते हुए भी वे जनापवाद से भयभीत नहीं होते तो जल में रहने वाले आप क्यों डर रहे हैं ? तदनन्तर उस तिमि {मत्स्य} ने उनसे कहा - यह रागांध तपस्वी जनापवाद को नहीं जानता एवं मूर्खता वश जनापवाद जन्य भय को नहीं जानता। मत्स्य के उस वचन को सुनकर गालव लज्जित हो गए। वे जितेन्द्रिय ऊपर नहीं आये, भीतर ही डूबे रहे। वे दोनों सुन्दरियाँ स्नानोपरान्त जल से निकलकर तट पर खड़ी हो गयी एवं मुनिश्रेष्ठ के दर्शन के लिए उत्सुकतापूर्वक उनकी प्रतीक्षा करने लगी। पुष्कर की यात्रा समाप्त होने पर सभी ऋषि राजा और नगरवासी लोग जहाँ से आये थे वहाँ चले गये। वे दोनों कन्याएँ देखती हुई गालव की प्रतीक्षा करती हुई निर्जन तीर्थ में खड़ी रही एवं गालव जल के भीतर ही रहे। वेगवान् बानर पाताल से निकलकर

पृथ्वी पर विचरण करने लगा। माहिष्मती के निकट तपोनिधि गालव को देखकर वह उद्दला एवं शीघ्र उन्हें सप्तगोदावर के जल के निकट ले आया। गालव को देखकर उन सभी ने उठकर उनका अभिवादन किया। उन्होंने भी महादेव की पूजा कर महर्षियों को प्रणाम किया। उन श्रेष्ठ राजाओं ने भी तपोधन की पूजा की एवं अत्यन्त प्रसन्न होकर सुखपूर्वक बैठ गए। विधिपूर्वक हव्य का हवन कर गालव ऋत्विक् बने।

पुराणों में इस नाम के अनेक व्यक्ति मिलते हैं, परन्तु महाभारत के अनुसार विश्वामित्र के शिष्य हठी गालव प्रसिद्ध है।[4] परीक्षा लेने के लिए धर्मराज ने वसिष्ठ का रूप धारण कर विश्वामित्र को 100 वर्षो तक एक ही स्थान पर हाथ में भोजन का थाल ले खड़ा रहने की आज्ञा दी थी। उस समय गालव ने उनकी यथेष्ट सेवा की थी। सेवा से प्रसन्न हो विश्वामित्र ने इन्हें पूर्ण विद्वान होने का आशीर्वाद दिया। इनके हठ करने पर विश्वामित्र ने 800 श्यामकर्ण घोड़े गुरुदक्षिणा से मांगे।[5] इन्होंने राजा ययाति की कन्या माधवी की सहायता से यह गुरु दक्षिणा (800 श्यामकर्ण घोड़े) दी थी। गालव ने माधवी को पहले अयोध्यापति हर्यश्व को दिया जिन्होंने माधवी से एक पुत्र उत्पन्न कर 200 घोड़े दिये। काशीराज दिवोदास ओर भोजराज उशीनर ने भी इसी प्रकार माधवी से पुत्र उत्पन्न कर प्रत्येक ने गालव को दो-दो सौ घोड़े दिए। अन्त में 600 श्याम कर्ण घोड़ो सहित गालव ने माधवी को विश्वामित्र को अर्पित किया। माधवी के गर्भ से विश्वामित्र को अष्टक नामक पुत्र हुआ जिसे अपना सर्वस्व दे विश्वामित्र तपस्या करने चले गये। माधवी राजा ययाति को लौटा दी गयी और गालव भी तप करने वन को चले गये थे।

हरिवंश में इन्हें विश्वामित्र जी का पुत्र लिखा है। इन्हें गले में बाध 100 गौ पर बेचने माता ले गयी, सत्यव्रत ने माता और पुत्र दोनों के भोजन का भार उठाया था।

4· म0उ0 104-116
5· म0उ0 104-126

संस्कृत व्याकरण के एक आचार्य। आठवें सावर्णि मन्वन्तर के एक ऋषि। यह भार्गव गोत्रकार तथा प्रवर प्रवर्तक ऋषि थे। एक ऋषि जो श्रीकृष्ण से मिलने स्यमंतपंचक गये थे। एक वाजसनेयी यानि शुक्ल यजुर्वेदीय याज्ञवल्क्य के शिष्यों में से एक। गालव के पुत्र श्रृंगवान् जिन्होंने कुणिगर्ग की एक वृद्धा पुत्री से विवाह किया था। एक आंगिरस त्र्यार्षेय प्रवर।

अभिज्ञान शाकुन्तल

अभिज्ञान शाकुन्तल के सप्तम अंक में गालव का सन्दर्भ निर्दिष्ट है। यहाँ गालव को महर्षि मारीच का शिष्य बताया गया है। मारीच की आज्ञा से गालव का कण्व को संदेश देने के लिए आकाश मार्ग से जाकर यह समाचार सुनाया।[5]

---

5. गालव, इदानीमेव, विहायसा गत्वा मम वचनात् तत्रभवते कण्वाय प्रियमावेदय यथा - पुत्रवती शकुन्तला तच्छापनिवृत्तौ स्मृतिमता दुष्यन्तेन प्रतिगृहीतेति। अभि० शा० सप्तम अंक, पृ० 450

च्यवन

च्यवन एक प्रसिद्ध ऋषि थे। भृगु के औरस और पुलोमा के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई थी। कोई राक्षस इनकी गर्भवती माता को बलात्कार पूर्वक हरण किए जा रहा था। इससे गर्भस्थ बालक क्रुद्ध होकर जमीन पर गिर पड़ा और क्रोधाग्नि से उस बालक ने राक्षस का नाश कर दिया। वह बालक गर्भ से च्युत हुआ था। इस कारण पतनार्थक "च्यु" धातु से सिद्ध च्यवन इसका नाम रखा गया।

च्यवन ऋषिर्भवति[1] अर्थात् च्यवन ऋषि है। च्यवन शब्द च्युतिर् क्षरणें से निष्पन्न है। आख्यान युक्त (इतिहास) कथन से ऋषि की प्रतीत होती है-

ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यान संयुक्ताः।[2]

च्यवन शब्द का निर्वचन महाभारत में भी प्राप्त होता है -

माता पुलोमा राक्षसेनापहृता। तस्मिन् काले तस्याः गर्भस्थः बालकः गर्भात् च्युतः। अस्मात् कारणात तस्य नाम च्यवन इति प्रथितम्।

"ततः स गर्भो निवसन् कुक्षौ भृगुकुलोदह

रोषान्मातुश्च्युतः कुदेपच्यवनसोन सोऽभव्।।[3]

च्यवन के दो स्त्रियाँ मनु पुत्री आरुषी तथा शर्याति पुत्री सुकन्या थी। इनके पुत्र आप्नवान प्रमति और दधीचि थे। आरुषी से आप्नवान, सुकन्या से प्रमति व दधीचि हुए। आप्नवान से ऋचीक (और्व), ऋचीक से जमदग्नि आदि 100 पुत्र तथा जमदग्नि से पाँच पुत्र हुए - रुमण्वान, सुषेण वसु विश्वावसु तथा परशुराम हुए।

च्यवन नाम वेदमन्त्रों के आधार पर रखा गया। अथर्ववेद[4] में च्यवन का अर्थ ज्वर है। भार्गव का नाम ऋग्वेद में ऋषियों में आता है।[5] अश्विनी

---

1. नि0 4/2/19
2. नि0 10/10
3. म0आदि 7/2
4. अथर्व0 6/115 (120)
5. ऋग्वेद0 मण्डल 10 सूक्त 19

सूक्तों में कई स्थलों पर च्यवन (च्यवान) ऋषि के पुनः यौवन प्राप्त करने का उल्लेख हुआ है।[6] शतपथ[7] और जैमिनीय[8] ब्राह्मणों में च्यवन और सुकन्या की कथा मिलती है। ऐतरेय ब्राह्मण[9] में भी कथा का संकेत मिलता है। निरुक्त[10] में भी च्यवन के नवयौवन प्राप्ति की चर्चा आयी है। जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण[11] में भी यह कथा आती है। ऋग्वेद संहिता पर आधारित द्विवेद के ग्रन्थ नीति मंजरी[12] में भी च्यवन की कथा का उल्लेख हुआ है। इन वैदिक ग्रन्थों के अतिरिक्त महाभारत[13] भागवतपुराण[14] पद्म पुराण[15] देवीभागवतपुराण[16] और विष्णुधर्मोत्तरपुराण[17] आदि ग्रन्थों में भी इस कथा की किसी न किसी रूप में चर्चा आई है और इन ग्रन्थों में इसके कहीं विस्तृत और कहीं संक्षिप्त विवरण पाये जाते हैं।

ऋग्वेद के जिन सूक्तो में वृद्ध च्यवन ऋषिके अश्विनी कुमारों की कृपा से पुनः यौवन प्राप्त करने तथा यौवन सम्पन्न कन्या से विवाह का उल्लेख होता है। वे सूक्त प्रायः अश्विनीकुमारों से सम्बन्धित हैं उदाहरणतः

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुंचतं द्रापिमिव च्यवानात्।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्त्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम्।। ऋ०,1,116, 10

इस मंत्र का भाष्य करते हुए सायणाचार्य, मंत्र की पृष्ठभूमि के रूप में इससे सम्बद्ध एक आख्यान का उल्लेख करते है -

---

6· ऋग्वेद अश्विनी सूक्त मण्डल 1 सूक्त 116 मंत्र 10। म0 1 सूक्त 117। मण्डल 1, सूक्त 118, मन्त्र 6, मण्डल 5, सूक्त 74, मंत्र 5, मण्डल 7 सूक्त 68 मन्त्र 6 मण्डल 7, सूक्त 71 मन्त्र 5, मण्डल 10 सूक्त 39 मन्त्र4
7· शतपथ0 4, 1, 5, 6
8· जैमिनीय ब्राह्मण 3, 120-127
9· ऐतरेय ब्राह्मण 8, 21
10· निरुक्त 4, 19
11· जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण 4,7,1,8,35
12· नीति मंजरी (वाराणसी) पद्य 28, पृ0 81-83
13· महाभारत, वनपर्व, अ0 121-123, आदि0अ0 5,6
14· भागवत पुराण स्कन्ध 9, अ0 3
15· पद्मपुराण पातालखण्ड अ0 14, 16
16· देवी भागवत पुराण 7 अ0 2-7
17· विष्णुधर्मोत्तार 5, अ0 199

अत्रेदमाख्यानम्। वलीपलितादिभिरूपेतो जीर्णागः पुत्रादिभिः परित्यक्तः च्यवनाख्यः ऋषिः अश्विनी तुष्याव। स्तुतावश्विनी तस्मै ऋषये जरामपगमय्य पुनर्यौवनमकुरुता मिति।

मन्त्र की व्याख्या में यह बात और भी स्पष्ट करके कही गई गयी है

हेअश्विनौ, जुजुरषः जीर्णात् च्यवानात् च्यवनाख्यात् ऋषेः सकाशात् बध्रिकृस्नं शरीरमावृत्यावस्थितां जरां भ्रामुचंतम् प्रकर्षेणामोचयतम्।

तत्र दृष्टान्तः द्रापिमिव। द्रापिरिति कवचस्याख्या। यथा कश्चित् कवचं कृत्सन्शरीरव्यापकं धृत्वा पश्चात् शरीरात् पृथक् करोति तद्वत् जहितस्य पुत्रादिभिः परित्यक्तस्य ऋषेः आयुः जीवनं प्रातिरतं प्रावर्धयतम्। युवानं सन्तं कनीनां कल्यानां पति भर्तारं अकृणुतम् अकुरुतम्।।

इस मन्त्र और इसके भाष्य से तीन बातों पर स्पष्ट रूप से प्रकाश पड़ता है - §1§ वृद्ध च्यवन के बुढापे को अश्विनी कुमारों ने दूर किया §2§ उन्होंने ऋषि को यौवन के साथ आयु भी दी। §3§ कन्याओं का पति बनाया।

ऋग्वेद के अन्य मन्त्र 1, 177, 13 में यह बात और भी स्पष्ट करके कही गई है -

"युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः।"

एक बार शर्याति नामक राजा के राज्य में प्रतिकूल आचरण होने लगा। बहुत प्रयत्न करने पर यह ज्ञात हुआ कि उनके राजकुमारों ने तपस्या में लीन किसी वृद्ध जर्जर शरीर को वल्मीक तथा मिट्टी से ढका हुआ देखकर खेल-खेल में लकड़ी से उस पर प्रहार किया। संभवतः मुनि ने नाराज होकर शाप दिया होगा। राजा शर्याति अपनी पुत्री सुकन्या को लेकर ऋषि च्यवन के पास पहुँचे। राजकुमारों के

दुर्व्यवहार के लिए क्षमा माँगकर उनके हाथ में अपनी कन्या का हाथ सौंपकर चले आए। सुकन्या वृद्ध च्यवन की सेवा करने लगी। एक बार अश्विनीकुमार सुकन्या पर आसक्त हो गये। जब ऋषि को ज्ञात हुआ तब सुकन्या से कहा कि वह उनसे अपने पति के लिए यौवन की कामना करे। अश्विनीकुमारों के पुनः आने पर सुकन्या ने उनसे च्यवन ऋषि के लिए यौवन प्राप्त करने की अभिलाषा प्रकट की। अश्विनीकुमारों की कृपा से च्यवन ने पुनः यौवन प्राप्त किया।[18]

शतपथ ब्राह्मण[19] ने च्यवन और सुकन्या की कथा कुछ भिन्न प्रकार से कही गयी है। यहां पर भृगु के पुत्र च्यवन जीर्ण और कुरूप थे। एक समय मनु पुत्र शर्याति अपने परिवार और राजकीय पुरुषों सहित विचरण करते हुए उसी वन में पहुँचे। राजा के कुमारों ने जीर्ण एवं भयानक रूप वाले मुनि को अनर्थकारी समझकर आहत किया। मुनि ने क्रुद्ध होकर शर्याति के लोगों को मति विभ्रम उत्पन्न कर दिया। इस प्रकार शर्याति को ज्ञात हुआ कि उनके कुमारों ने महर्षि च्यवन के साथ दुर्व्यवहार किया है। राजा क्षमा याचना हेतु च्यवन के पास गए और उपहार स्वरूप पुत्री सुकन्या को देकर वचन दिया कि इसके बाद ऐसा फिर दुर्व्यवहार नहीं होगा। एक बार विचरण करते हुए अश्विनी कुमार उसी प्रदेश मे आए सुकन्या के पास जाकर उन्होंने जीर्ण और कृत्या रूप मुनि को छोड़कर अपने से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कहा। पिता ने जिसे सौंप दिया है जीवनपर्यन्त उसे नही छोड़ूंगी ऐसा कहकर सुकन्या ने उनकी बात का विरोध किया। मुनि को सुकन्या से जब यह विदित हुआ तो उन्होंने कहा कि यदि पुनः वे तुमसे इस प्रकार कहे तो तुम कहना कि आप अपूर्ण और असम्पन्न है फिर भी मेरे पति की निन्दा करते है जब वे पूछे कैसे तो तुम उत्तर देना कि पहले आप मेरे पति को युवा बना दीजिए तब बताऊँगी। ऐसा ही हुआ च्यवन ने सरोवर मे डुबकी लगायी

18· ऋ0 1/11, 6/10, 1/117/13, 1/118/6, 5/74/5, 7/68/6, 7/71/5, साम वे0 475, ता0ब्रा0 14/6/20, जै0ब्रा0 3/159-161, श0 ब्रा0 4/2/5/1

19· शतपथ ब्राह्मण 4,1,5,1-15, (काण्ड 4, अ0 1, ब्रा05, कण्डिका 1-15

फलतः वे युवा बन गये अश्विनी कुमारों की असम्पन्नता का कारण बताते हुए च्यवन ने कहा कुरूक्षेत्र में देव लोग जो यज्ञ कर रहे है उसमें आपको भाग नहीं दिया गया है इसलिए आप अपूर्ण एवं असम्पन्न है। तत्पश्चात् अश्विनीकुमार कुरूक्षेत्र गए और वहाँ उन्होने कौशल से यज्ञ भाग प्राप्त किया।

जैमिनीय ब्राह्मणो[20] में यह कथा विस्तार के साथ दी गयी है। वहाँ भृगु के पुत्र ऋषि च्यवन पुत्रों वाले हैं। वे अपनी वृद्धावस्था से दुःखी है पुनः युवावस्था को प्राप्त कर किसी कुमारी से विवाह करना चाहते है। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए वे एक वृहद् यज्ञ करते हैं। उनके पुत्रों ने उन्हें त्याग दिया है और वे अपने वृद्धावस्था में तपोरत है। एक दिन मनु पुत्र शर्याति अपने दल-बल के साथ विचरण करते हुए वहाँ पहुंच जाते हैं। उनके कुमार मुनि के प्रति दुराचरण करते हैं। ऋषि के क्रोध से सब अति शून्य हो जाते हैं। कारण ज्ञात होने पर राजा ऋषि के पास जाकर क्षमा याचना करते हैं। किन्तु ऋषि उनकी पुत्री सुकन्या को ही चाहता है। राजा को झुकना पड़ता है। आश्रम जाते हुए राजकीय पुरूष सुकन्या से कहते है कि इस वृद्ध के पास तुम्हारा रहना उचित नहीं है। तुम हमारे पीछे-पीछे चली आना। सुकन्या जाना चाहती है किन्तु मार्ग में एक काले सर्प के पड़ जाने के कारण रूक जाती है। इसके बाद अश्विनी कुमारों का प्रसंग आता है। यहां सुकन्या अश्विनी कुमारों से कहती है कि आप देवता होकर भी सोमपायी नहीं है इसलिए अपूर्ण है। मेरे पति सोमपायी है इसलिए पूर्ण हैं। वे आपको भी स्वयंपायी बना सकते हैं किन्तु शर्त है कि पहले आप उन्हें युवा बना दे। सरोवर में प्रवेश करने से पूर्व च्यवन सुकन्या को अपनी विशेष पहचान बता देते हैं। क्योंकि सरोवर के बाहर आने पर तीनों का रूप एक सा हो जाएगा।

च्यवन के यौवन प्राप्त होने पर अश्विनी कुमार उनसे अपना वचन पूरा करने के लिए कहते हैं। यहाँ च्यवन उन्हें एक उपाय बताते हैं कि कुरूक्षेत्र में देव लोग शिरहीन यज्ञ से भजन कर रहे हैं। दधीचि उस शिर के रहस्य को

20· जैमिनीय ब्राह्मण 3, 120-128, सं0 डॉ0 रघुवीर, प्रकाशक इन्टरनेशनल

जानते हैं। आप दधीचि के पास जाइये वे आपको जो बताएंगे उससे आप सोमपायी बन जायेंगे। वे दोनों वहाँ जाते हैं किन्तु इन्द्र ने पहले ही दधीचि से बता दिया है कि यदि वह रहस्य किसी को बताएंगे तो उनका सिर काट दीजिएगा। अश्विनीकुमार दधीचि के वास्तविक सिर के स्थान पर अश्व का शिर लगा देते हैं और उससे सब रहस्य मालूम कर लेते हैं। इन्द्र को जब यह बात ज्ञात होती है तो वह अपनी प्रतिज्ञानुसार दधीचि का सिर काट देते हैं अश्वसिर के कटने पर अश्विनी कुमार वास्तविक सिर पुनः लगा देते है। इस प्रकार इन्द्र की प्रतिज्ञा भी पूरी हो जाती है और अश्विनी कुमार रहस्य विद्या भी सीख लेते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण[21] में भी च्यवन ऋषि की कथाका कुछ संकेत मिलता है। यहाँ केवल इतना ही ज्ञात होता है कि भृगु पुत्र च्यवन ने मनु पुत्र शर्याति का अभिषेक किया। इसके पश्चात शर्याति ने समस्त पृथ्वी को जीतकर अश्वमेघ यज्ञ किया और देवों के सत्र में भी वह गृहपति बना -

"ऐन्द्रेण महाभिषेकेण च्यवनो भार्गवः शार्यात मानवमभिषिषेच। तस्माद् शार्यातो मानवः समन्तः सर्पतः पृथ्वी, जयन् परीमायाश्वेन च मेध्येनेजे देवानां ह्यापि सत्रे गृहपतिरासं।

इस पर भाष्यकार आचार्य सायण ने लिखा है -

भृगोः पुत्रोंः च्यवन नामकों महर्षिः मनुवंशोत्पन्नं शार्यातनामकंराजानं अभिषिषेच तस्मात् फलं पूर्ववत् किं च देवानां सम्बन्धिनि सत्रेऽपि शार्यातो गृहपतिरभूत।

यहाँ राजा का नाम शार्यात मानव है। मानव से अभिप्राय मनु का पुत्र और मनु गोत्र में उत्पन्न सन्तान दोनों से हो सकता है। शार्यात शर्यात का पुत्र भी हो सकता है। भार्गव च्यवन का सम्बन्ध मनु पुत्र शर्यात से शतपथ

21· ऐतरेय ब्राह्मण भाग 4 सं0 सत्यप्रवत सामश्रमी, एसियाटिक सोसायटी कलकत्ता 1906, पृ0 257, {8,4,7}

और जैमिनीय ब्राह्मण की कथा से स्थापित हो चुका है। जैमिनीय ब्राह्मण मे शर्यात से एक सहस्त्र मुद्राएँ लेकरच्यवन ऋषि के एक यज्ञ का उल्लेख है।[22] इससे शर्यात मानव को यजमान बनाकर भार्गव च्यवन का यज्ञ कराना स्पष्ट है।

आचार्य यास्क के निरुक्त[23] में भी व्यवन और सुकन्या की कथा का कुछ संकेत मिलता है। यह च्यवन शब्द की निरुक्ति के सम्बन्ध में आया है।[24] निरुक्त के प्रसिद्ध टीकाकार दुर्गाचार्य च्यवन और सुकन्या की कथा से परिचित है यह उनकी कथा से ही स्पष्ट हो जाता है। ऋग्वेद[25] के एक मन्त्र की व्याख्या के अन्त में दुर्गाचार्य ने लिखा है -

> "एवमेतस्मिन् मन्त्रे च्यवान शब्देन च्यवन एव ऋषिरुक्तः स हि श्रूयते सौकन्ये आख्याने जीर्णः सन् अश्विभ्यां पुनर्युवा कृत इति तस्माद् उपपद्यत एतत्।

यास्क के इस उदाहरण में च्यवान शब्द है च्यवन नहीं। परन्तु लोक में च्यवन नाम ही प्रसिद्ध है। महाभारत में यह कथा दो स्थलों पर आयी है। भृगु के पुत्र च्यवन तपस्या में लीन थे उनका सम्पूर्ण शरीर मिट्टी के ढेर के समान प्रतीत होता था। वे चारों ओर लताओं से घिरे हुए थे। एक बार राजा शर्याति अपनी रानियों तथा अपनी एक मात्र सन्तान सुकन्या के साथ उसी स्थल पर विचरण करते हुए पहुँचे। सुकन्या ने मिट्टी के लोदे में जुगनू के समान कोई चमकती हुई वस्तु देखी उसने कौतुहल वश लकड़ी से उसे कुरेदना चाहा वह वास्तव में च्यवन की आँखे थी अतः क्रुद्ध होकर च्यवन ने सैनिकों सहित राजा के परिवार को शाप दे दिया। कारण ज्ञात होने पर राजा ने च्यवन से क्षमा याचना की।

22· डॉ0 रघुबीर सम्पादित नागपुर 1954 §3·128§ पृ0 407

23· निरुक्त 4·19,सं0 मुकुन्द झा, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1930, पृ0 187-88

24· निरुक्त - यास्क

25· ऋग्वेद 10/39/4

महर्षि ने सुकन्या से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। कालान्तर में उसी स्थल पर अश्विनी कुमार पहुँचे। वे सुकन्या के सम्मुख प्रेम निवेदन करने लगे और उन्होंने कहा कि वे च्यवन को युवा बना देंगे क्योंकि च्यवन देवताओं के बैद्य है। तदोपरान्त उन तीनों में से सुकन्या अपने योग्य पति का चयन कर ले। अश्विनी कुमारों ने च्यवन को सरोवर में स्नान करने के लिए कहा। स्नानोपरान्त वह युवा बन गए। सुकन्या ने महर्षि च्यवन को ही पति रूप में पुनः चयन किया। च्यवन ने अश्विनी कुमारों के प्रति अपना आभार प्रकट किया तथा कहा कि उन दोनों को इन्द्र के समान यज्ञ में सोमरस पान का अधिकारी बना देंगे। उन्होनें राजा से शर्याति से यज्ञ करवाया। यज्ञ करते हुए अश्विनी कुमारों के लिए सोमरस का भाग हाथ में ले लिया। इन्द्र ने वहाँ साक्षात उपस्थित होकर ऐसा करने से रोक लिया तथा कहा कि अश्विनीकुमार चिकित्सक है। भूलोक में विचरते है इसलिए सोमरस के अधिकारी नही हैं। च्यवन अपने संकल्प पर अटल रहे। इन्द्र ने उन पर आघात करने के लिए वज्र उठाया च्यवन ने उनकी भुजा स्तम्भित कर दी। ऋषि के तपोबल से वहाँ एक कृत्या उत्पन्न हो गयी। वह एक राक्षस के रूप में थी। वह मदासुर इन्द्र की ओर बढ़ने लगी तो इन्द्र ने ऋषि से क्षमा याचना की तथा कहा कि भविष्य में अश्विनी कुमार भी इन्द्र की भाँति सोम रस के अधिकारी होंगे। भागर्व च्यवन ने इन्द्र को मुक्त कर दिया। तथा मद को मद्यपान, स्त्री, जुआ तथा मृगया में बाँटकर यज्ञ स्थली से दूर कर दिया।[26]

च्यवन ने महान् व्रत धारण कर जल के भीतर रहना आरम्भ कर दिया। वे गंगायमुना संगम स्थल पर रहते थे। वहाँ उनकी जलचरों से प्रगाढ़ मैत्री हो गयी। एक बार मछलियों के साथ च्यवन भी जाल में फंस गये। नदी से बाहर निकलने पर समस्त मछुवाहे उनसे क्षमा मांगने लगे। वहाँ के राजा को जब च्यवन की इस घटना का ज्ञान हुआ तो उसने भी मुनि से उचित सेवा पूछी। मुनि ने उससे मछलियों के साथ-साथ अपना मूल्य मछुआहों को देने के लिए कहा। राजा

---

26. म0भा0 वनपर्व अध्याय 122 से 124 तक अ0 125, श्लोक 1 से 11 तक।

ने पूरा राज्य देना भी स्वीकार कर लिया परन्तु च्यवन उसे अपने समकक्ष मूल्य नहीं मान रहे थे। तभी गौ के पेट से उत्पन्न गोताज मुनि आ पहुँचे। जिस प्रकार उन्होंने राजा नहुष से कहा जिस प्रकार ऋषि च्यवन अमूल्य है उसी प्रकार गाय भी अमूल्य होती है। अतः आप उनके मूल्य स्वरूप एक गौ दे दीजिए -

उवाच हर्षयन् सर्वानमात्यान् पार्थिवं च तम
अनर्घेया महाराज द्विजा वर्णेषु चोत्तमाः
गावश्च पुरुषव्याघ्र गोर्मूल्यं परिकल्पयताम्
नहुषस्तु ततः श्रुत्वा महर्षेर्वचनं नृप
हर्षेण महता युक्तः सहामात्यपुरोहितः
अभिगम्य भृगोः पुत्रं च्यवनं संशितव्रतम
इदं प्रोवाच नृपते वाचा संतर्पयन्निव।

नहुष उवाच — उत्तिष्ठोत्तिष्ठ विप्रर्षे गवा क्रीतोऽसिभार्गव
एतन्मूल्यमहं मन्ये तव धर्मभृतां वर

च्यवन उवाच — उत्तिपठाम्येष राजेन्द्र सम्यक् क्रीतोऽस्मितेऽनस
गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धनं किंचिदिहाच्युत -म0अनु0 50/3 26

एक बार च्यवन मुनि को यह ज्ञात हुआ कि उनके वंश में कुशिक वंश की कन्या के सम्बन्ध से क्षत्रियत्व का दोष आने वाला है। अतः उन्होंनें कुशिक वंश को भस्म करने की ठान ली। वे राजा कुशिक के यहां अतिथि रूप में गये। राजा-रानी उनकी सेवा में लग गये। उन दोनों से यह कहकर वे उन्हें जगाये नहीं और उनके पैर दबाते रहें वे सो गये। इक्कीस दिन तक वे लगातार एक करवट सोते रहे और राजा-रानी उनके पैर दबाते रहे। फिर वे अंतर्धान हो गए। पुनः प्रकट हुए और इसी प्रकार वे दूसरी करवट सो गये। जागने पर भोजन में आग लगा दी। तदनन्तर एक गाड़ी में दान, युद्व इत्यादि की विपुल सामग्री भरकर उसमें राजा-रानी को जोतकर सवार हो गये तथा राजा-रानी पर चाबुक से प्रहार करते रहे। इस प्रकार के अनेक कृत्य होने पर भी जब राजा कुशिक तथा रानी क्रोध अथवा विकार से अभिभूत नही हुए तो च्यवन उन पर प्रसन्न

हो गये। उन्हें गाड़ी से मुक्त कर अगले दिन आने के लिए कहा और राजमहल में भेज दिया तथा स्वयं गंगा के किनारे रुक गये। अगले दिन वहाँ पहुँचकर राजा-रानी ने एक अद्भुत स्वर्ण महल देखा जो चित्र-विचित्र उपवन से घिरा था। उसके चारो ओर छोटे-छोटे महल तथा मानव भाषा बोलने वाले पक्षी थे। दिव्य पलंग पर च्यवन ऋषि लेटे थे। राजा-रानी मोह में पड़ गये। च्यवन ने उन दोनों को अपने आने का उद्देश्य बताकर कहा कि उनसे वे इतने प्रसन्न हुए है कि वे उनके बिना मांगे ही इच्छित वर देंगे तद्नुसार राजा कुशिक की तीसरी पीढ़ी से कौशिक वंश {ब्राह्मणो का एक वंश} प्रारम्भ हो जायेगा। च्यवन ऋषि बोले चिरकाल से भृगुवंशी लोगो के यजमान क्षत्रिय रहे है किन्तु भविष्य में उनमें फूट पड़ेगी। मेरे वंश में "ऊर्व" नाम का तेजस्वी बालक त्रिलोक संहार के लिए अग्नि की सृष्टि करेगा। ऊर्व के पुत्र ऋचीक होंगे। वे तुम्हारी पौत्री {गाधी की पुत्री} से विवाह करके ब्राह्मण पुत्र को जन्म देंगे जिसका पुत्र क्षत्रिय होगा। ऋचीक की कृपा से तुम्हारे वंश गाधि को विश्वामित्र नामक ब्राह्मण पुत्र की प्राप्ति होगी। जो कुछ दिव्य तुम देख रहे हो, वह स्वर्ग की एक झलक मात्र है। इतना कहकर ऋषिने उन दोनो से विदा ली[27] -

भविष्यत्येष ते कामः कुशिकात् कौशिको द्विजः
तृतीयं पुरुषं तुभ्यं ब्राह्मणत्वं गमिष्यति।
वंशस्ते पार्थिव श्रेष्ठ भृगुणामेव तेजसा
पौत्रस्ते भविता विप्रस्तपस्वी पावक धुतिः
यः स देवमनुष्यांम भयमुत्पादयिष्यति।
त्रयाणमेव लोकानां सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।

महा0अनु0 52·55 अ0 31-33

भागवतपुराण में भी यह कथा आयी है। यहाँ यह वंशावली अन्य राजाओं के चरित वर्णन के प्रसंग में कही गयी है। यहा यह कथा संक्षेप से

27· म0भा0, दानधर्म पर्व अध्याय 50-56, अ0 156 श्लोक 17-35

केवल 26 श्लोकों में है। जहाँ तक कथा के रूप और उसकी घटनाओं का सम्बन्ध है महाभारत की कथा से इसमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। मनु पुत्र राजा शर्याति की सुंदरी कन्या का नाम सुकन्या था। वन में घूमते हुए उसने दीमक की बांबी §मिट्टी§ में चमकती हुई तपस्वी च्यवन की आँखे देखी, कोई चमकीली वस्तु समझकर सुकन्या ने कांटे उन्हें कुरेद दिया जिससे खून टपकने लगा। शर्याति ने देखा तो बहुत अनुनय विनय से च्यवन को प्रसन्न किया तथा सुकन्या का विवाह उनसे कर दिया। च्यवन बहुत वृद्ध थे। एक बार अश्विनीकुमारों ने मुनि का आतिथ्य ग्रहण किया। मुनिने उन्हें सोमपान कराने का वादा किया तथा उनसे अनुरोध किया कि उन्हें युवावस्थाप्रदान कर दें। अश्विनीकुमारो ने उनसे एक कुंड में स्नान करने करने के लिए कहा। गोता लगाकर निकलने पर वे अत्यन्त सुंदर तेजस्वी युवक दिखलायी पड़े। सुकन्या ने उन्हें नही पहचाना। अतः वह अश्विनीकुमारों की शरण में गयी। वही च्यवन है" यह जानकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। कुछ समय बाद राजा अपनी कन्या से मिलने वन में गया। उसे किसी युवक पुरुष के साथ देखकर राजा को उसके चरित्र पर बहुत क्रोध आया। "वे च्यवन ही है" जानकर वे भी बहुत प्रसन्न हुए। च्यवन मुनि ने राजा से सोम यज्ञ का अनुष्ठान करवाया तथा यज्ञ में अश्विनीकुमारों को सोमपान करवाया। अश्विनीकुमार वैद्य होने के कारण सोमपान के अधिकारी नही माने जाते थे। उनके सोमपान के विषय में सुनकर इन्द्र बहुत रूष्ट हुआ तथा उसने शर्याति को मारने के लिए वज्र उठा लिया च्यवन मुनि ने इन्द्र की बांह स्तंभित कर दी। जब देवताओं ने अश्विनीकुमारो को सोमपान का अधिकारी मान लिया तब इंद्र की बांह का स्तम्भन ठीक हुआ। विष्णु धर्मोत्तर[28] पुराण में प्रहेति के पुत्र पुलोमा के विनाश की, चर्चा करते हुए महर्षि मारकण्डेय ने जो कथा सुनायी है उसमें महर्षि भृगु से पुलोमा का विवाह उसके कुछ समय के पश्चात् उनकी अनुपस्थिति में समान नाम वाले एक राक्षस दारा पुलोमा के बलात् हरण किए जाने का प्रयत्न तथा उसी समय भय के कारण उनके गर्भ का पतन बाहर आए नवजात शिशु च्यवन के दर्शन मात्र से माँ का

28· विष्णुधर्मोत्तर पुराण अ0 199, 1-15

अपहरण करने वाले उस राक्षस को भस्म कर देना आदि घटनाएं वर्णित हैं।

ब्रह्मपुराण[29] में भानुतीर्थ के वर्णन के प्रसंग में राजा शर्याति और उनके पुरोहित मधुच्छन्दा वैश्वामित्र की कथा का वर्णन आया है। महर्षि च्यवन और सुकन्या की कथापद्म पुराण[30] में विस्तार से 118 श्लोकों में कहीं गयी हैं। यहां महर्षि च्यवन के जन्म से लेकर महाराज शर्याति के उस यज्ञ तक है जिसमें अश्विनीकुमारों को सोमपायी बनाया गया है। यहाँ महर्षि च्यवन के जन्म की जो कथा दी गयी है उसमें तथा महाभारत और विष्णुधर्मोत्तर पुराण में वर्णित कथा में कुछ अन्तर है। महर्षि च्यवन को शर्याति द्वारा सुकन्या दे दिए जाने पर उसका अपने वृद्ध पति के साथ जो व्यवहार है उसका चित्रण यहाँ कुछ विस्तार के साथ किया गया है -

सा मानवी तं वरमात्मनः पतिं नेत्रेण हीनं जरसागतौजसम्।
सिषेव एवं हरिमेधसोत्तमं निजेष्टदात्री कुलदेवतां यथा।।
चरणौ सेवते तन्वो सर्वलक्षणलक्षिता
राजपुत्री सुन्दरांगी फलमूलोदकाशया।[31]

सुकन्या ने अपने पति की अनुमति से जो वर मांगा है उसमें पति का यौवन नहीं बल्कि उसके लिए दृष्टि मांगी है -

पत्यभिप्रायमालक्ष्य तामुवाच नृपात्मजा
दत्तं मे चक्षुषी पत्युर्यदि तुष्टौ युवां सुरौ।[32]

अश्विनी कुमारों की शर्त के अनुसार उनको यज्ञ में सोम का भाग दिलाने का अधिकारी बना दे तो वे उसके पति की दृष्टि ठीक कर देगें -

त्वत्पतिर्यदि देवानां भागं यज्ञे दधात्यसौ
आवयोरधुना कुर्वश्चक्षुषोः स्फुटदर्शनम ।।
च्यवनोऽप्योमित प्राह भागदाने वरौजसौः।[33]

29· गुरुमण्डल ग्रंथमाला प्रकाशन कलकत्ता {मनसुखराम मोर} 1954, अ0 138
30· पाताल खण्ड अ0 14 के श्लोक 26 से अ0 16 के श्लोक 24 तक
31· पद्मपुराण पाताल खण्ड अ0 15 श्लो0 2, 4
32· वही, अ0 15, श्लोक 11
33· वही, अ0 15, श्लो0 13, 14

सुकन्या के साथ च्यवन के विवाह का वर्णन यहां विस्तार के साथ किया गया है-

एवं तया क्रीडमानः सर्वत्र धरणीतले

नाबुध्यत् गतानब्दान् शतसंख्यापरिमितान्।[34]

इतना समय बीत जाने पर भी अश्विनीकुमारों को दिए गये वचन का मुनि को ध्यान नहीं आया। राजा शर्याति को ही यज्ञ करने की इच्छा हुई और च्यवनमुनि को बुलाने के लिए उन्होंने निमन्त्रण भेजा -

कदाचिदथ शर्यातिर्यष्टुमैच्छत देवताः।

तदा च्यवनमानेतुं प्रेषयामास सेवकान्।।

देवी भागवतपुराण[35] में सप्तम स्कन्ध के द्वितीय अध्याय से लेकर सप्तम अध्याय पर्यन्त 332 श्लोकों में इसका वर्णन है। इसमें जब सुकन्या वल्मीक में स्थित च्यवन के चमकते हुए नेत्रों को देखकर कौतूहलवश उनकी ओर बढ़ती है तो च्यवन उसे मना करते हैं किन्तु वह नहीं मानती।[36] नियत की विवशता कण्टक आंखो में चुभते ही आंखो से रक्त की धारा बह निकलती है। वस्तु स्थिति का ज्ञान होते ही उसे बड़ा पश्चाताप होता है -

दैवेननोदिता भित्वा जगाम नृपकन्यका।

क्रीडन्तीं शंकमाना सा किं कृतं तु भयेति।।

राजा के सम्मुख च्यवन जब सुकन्या के लिए प्रस्ताव रखते हैं तो राजा चिन्तित हो उठते हैं। वे इस निश्चय पर पहुँचते है कि किसी भी परिणाम को वे सहन कर लेगें किन्तु कन्या को वृद्ध और अन्धे ऋषि को नहीं देंगे। अहल्या और गौतम का सम्बन्ध और उसके परिणाम का विचार भी च्यवन को कन्या देने से रोकता है।

34· पद्मपुराण ﴾पा0ख0﴿ अ0 16, श्लोक 1

35· देवीभागवतपुराण स्कन्ध 7, अ0 207

36· दे0भा0 स्कन्ध 7, अ0 2 12-54

यौवने दुर्जयः कामो विशेषेण सुरूपया।
आत्मतुल्यं पति प्राप्य किमु वृद्धं विलोचनम्।।
गौतमं तापसं प्राप्य रूप यौवनासंयुता।
अहल्या वासवेनाऽऽशु वंचिता वरवर्णिनी।।
शप्ता चपतिना पश्चाज्ज्ञात्वा धर्म-विपर्ययम्।
तस्माद् भवतु मे दुःखं न ददामि सुकन्यकाम्।।[37]

परन्तु सुकन्या महर्षि की पत्नी बनकर उनकी सेवा के लिए सहर्ष तैयार हो जाती है। उसके दृढ़ निश्चय को देखकर राजा का विचार बदल जाता है। च्यवन सुकन्या के साथ राजा की ओर से दिए जाने वाले किसी अन्य उपहार को स्वीकार नहीं करते -

प्रतिगृह्य मुनिः कन्यां प्रसन्नो भार्गवोऽभवत्।
पारिवार्हं नं जग्राह दीयमानं नृपेण ह।।[38]

सुकन्या अपने शील और तप के प्रभाव से अश्विनी कुमारों को प्रसन्न असम्भव को भी सम्भव बना कर दिखा देती है।

महर्षि भृगु के पुत्र च्यवन मुनि महान् तेजस्वी थे। च्यवन मंत्र द्रष्टा थे। इनका ऋग्वेद में गो देवता सम्बन्धी सूक्त मिलता है। अन्य स्थल पर च्यवन नहुष की गोदान का महत्व बताते हुए प्रस्तुत किए गए है। इसके अतिरिक्त याज्ञवल्क्य के मिताक्षरा मे उद्धृत च्यवन के कथन भी गो महत्व से सम्बन्धित है जिससे पूर्णतः प्रमाणित होता है कि च्यवन का गो से विशेष सम्बन्ध था।

च्यवन भी भृगु के समान शाप और अनुग्रह के अधिकारी थे। उन्होंने राजा शर्याति की सेना में क्रुद्ध होकर रोग फैलाने का शाप दिया था तथा राजा कुशिक के पास गए तो शाप देने के लिए थे, किन्तु बिना कारण के दे भी कैसे सकते थे। इसलिए इन्होंने नाना प्रकार की यातनाएँ राजा दम्पत्ति को दी फिर भी किसी प्रकार का दोष न देख सके। अन्त में प्रसन्न होकर उस वंश में ब्राह्मण पुत्र होने का वरदान दिया। इस प्रकार च्यवन का स्वभाव था। क्रोधी हुए तो शाप दे दिए, प्रसन्न हुए तो वरदान।

37· देवीभागवत पु0 7/3/27,29
38· दे0भा0 7/3/52

च्यवन ऋषि ने प्रारम्भ से ही तपस्वी जीवन व्यतीत किया था। कभी-इन्होंने स्थल पर तपस्या करके वर्षो व्यतीत कर दिया जिससे शरीर के चारो ओर वल्मीक बन गयी और कभी जल में निरन्तर तपस्या में सलग्न रहे।

वायुपुराण के उद्धरण के अनुसार च्यवन ऋषि का आश्रम गया में है। जहाँ वैकुण्ठ, लोकदण्ड, गृद्धकूट और श्रोणक है।[39] चरक की परम्परानुसार च्यवन ने भरद्वाज से आयुर्वेदोपदेश ग्रहण किया था। शालिहोत्र वचनानुसार च्यवन आयुर्वेद के कर्ता थे। भाष्कर शिष्यों की नामावलि में च्यवन का नाम भी है। "जीवदान" नामक चिकित्साग्रन्थ उनकी कृति थी। अष्टादश ज्योतिषशास्त्र प्रवर्तकों में च्यवन का भी नामोल्लेख है। च्यवन ऋग्वेद 10/19 के ऋषि थे। सुश्रुत संहिता चि0 15/5 में च्यावन मन्त्र उल्लिखित है। च्यवन ऋषि धर्मशास्त्रकार के रूप में भी प्रसिद्ध थे। अपरार्क तथा मिताक्षरा ग्रन्थों में इनके धर्मशास्त्र का उल्लेख प्राप्त है।[40] भाष्कर संहिता के अन्तर्गत जीवदान तन्त्र के ये रचयिता है।[41] हेमाद्रि माध्वाचार्य एवं मदनपाल जात इन तीन ग्रन्थों में इनके आधार लिए गए हैं। आचार्यो में सुकन्या का भी नाम आता है। अगस्त्य पत्नी लोपामुद्रा तथा अत्रि पत्नी अनसूया के अनुसार च्यवन पत्नी सुकन्या ने भी आयुर्वेद विषयक ज्ञान प्राप्त किया था। च्यवन एक उत्कृष्ट वक्ता तथा सप्तर्षियों में से एक थे।[42] इसे प्रमति नामक एक पुत्र था जो भृगु गोत्र का एक प्रवर भी था। यह ऋषि तथा मन्त्रकार थे। इसे "काञ्चन" ऐसा नामान्तर प्राप्त था।[43] च्यवन भार्गव ऋषि का नामान्तर ऋग्वेद में सर्वत्र निर्दिष्ट हैं। च्यवन ऋषि को सुकन्या से आप्नवान एवं दधीचि नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए उनमें से आप्नवान वंश में ऋचीक, जमदग्नि एवं परशुराम जामदग्न्य इस क्रम से एक से एक अधिक पराक्रमी एवं विद्या सम्पन्न पुत्र उत्पन्न हुए। आप्नवान् के इन पराक्रमी वंशधरों ने हैहयवंशीय राजाओं के साथ किया गया शत्रुत्व विख्यात है। च्यवन ऋषि के वंश ने ब्राह्मण होकर भी क्षत्रिय धर्म स्वीकार

39· वायु0पु0 108/73

40· अप0 1/207, 3, 263-265 मिता0 3, 30 3/292

41· ब्रह्म0वै0 2/16

42· म0भा0 अनु0 85

43· वा0रा0 66/17

किया था। इसीलिए भार्गयवंशियों को क्षत्रिय ब्राह्मण उपाधि भी प्राप्त हुई है।

विक्रमोर्वशीय

इसके पंचम अंक में च्यवन आश्रम का उल्लेख हुआ है। यह वही आश्रम है जहाँ उर्वशी ने अपने पुत्र वायु को इसलिए रख छोड़ा था ताकि पुरूरवा द्वारा उसका मुँह देख लेने के कारण उसका वियोग न हो जाय।[44]

---

44. श्रृणोत महाराजः एष दीर्घायुरायुजातमात्र एवोर्वश्या किमपि निमित्तमवेक्ष्य मम हस्ते न्यासीकृतः। यत्क्षत्रियकुमारस्य जातकर्मादि विधानं तदस्य भगवता च्यवनेनाशेषमनुष्ठितम। गृहीतविद्यो धनुर्वेदेऽभिविनीतः। -विक्रमो0 पञ्चम अंक, पृ0 211-212

पञ्चम अध्याय

अन्य ऋषि

- दुर्वासा
- परशुराम
- नारद
- वाल्मीकि

-: अन्य ऋषि :-

दुर्वासा

महायोगी ऋषि दुर्वासा अपने उग्र तथा क्रोधी स्वभाव के लिए विख्यात है।[1] ये महर्षि अत्रि के पुत्र अनसूया के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। स्वयं शिव ने ही अंश रूप से अनसूया के गर्भ से दुर्वासा के रूप में जन्म ग्रहण किया था। जिसका धर्म में दृढ़ निश्चय हो उसे दुर्वासा कहते है। और्व मुनि की पुत्री कन्दली से इनका विवाह हुआ था। एक सौ अपराधी को क्षमा करने के पश्चात् अपनी पत्नी को भस्म हो जाने का शाप दे दिया। इन्हें प्रसन्न करना अत्यन्त कठिन था। इस प्रकार बहुत से स्त्री-पुरूषों को अपमान तथा कष्ट सहन करने के लिये शाप दिया। इन्हीं के नाम से क्रोधी, तथा दूसरे को सताने वाले मनुष्य को दुर्वासा कहने की लोकरीति प्रचलित हो गयी। अर्थात् जमदग्नि के क्रोध की भाँति इनका भी क्रोध एक लोकोक्ति बन गया है।

दुर्वासा की उत्पत्ति के विषय में भिन्न रूप से तीन कथायें प्रचलित है - प्रथम कथा के अनुसार ब्रह्मा के दस मानस पुत्रों में से एक दुर्वासस् भी थे। दूसरे अत्रि तथा अनसूया के तीन पुत्रों मे से दुर्वासा भी एक थे।[2] एक बार पुत्र प्राप्ति की कामना से महर्षि अत्रि त्र्यक्षकुल पर्वत पर तपस्या करने के लिये गये। वहाँ वे बहुत दिनों तक तपस्या किये। उस तपस्या के फलस्वरूप अत्रि के मस्तक से प्रखर ज्वाला निकली और वह त्रैलोक्य को त्रस्त करने लगी। तदनन्तर ब्रह्मा विष्णु एवं शंकर महर्षि अत्रि के यहाँ आये। अत्रि का मनोरथ समझकर अपने तेज अंश से तीन तेजस्वी पुत्र होने का वर उन्होंने अत्रि को दिया। उस वरदान के फलस्वरूप अत्रि को ब्रह्मा के अंश से सोम {चन्द्र} विष्णु के अंश से दत्त, एवं शिव के अंश से दुर्वासस् ये तीन पुत्ररत्न प्राप्त हुए।[3] तीसरी कथा के अनुसार शंकर के अवतारों से एक दुर्वासा भी थे।[4] भगवान शिव ने त्रिपुर नामक राक्षस का नाश करने के लिये एक बाण छोड़ा। त्रिपुर का वध करने के पश्चात वह बाण छोटे बालक का रूप धारण कर शंकर की गोद में आ बैठा उस बालक को ही दुर्वासस् अभिधान प्राप्त हुआ।[5]

पुराणों में दुर्वासा को अत्रि ऋषि का पुत्र एवं दत्तात्रेय का भाई कहा गया है।[6] किन्तु कब और कहाँ पैदा हुए यह कहना कठिन है। पौराणिक कथाओं में काल दृष्टि से परस्पर सुदूर माने गये अनेक राजाओं के साथ इनको दर्शाया गया है। उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार है - §1§ अम्बरीष[7] §2§ श्वेतकि[8] §3§ राम दाशरथि[9] §4§ कुन्ती[10] §5§ कृष्ण[11] §6§ द्रौपदी[12] उक्त उल्लेखों से प्रतीत होता है कि नारद की भांति दुर्वासा भी तीन लोकों में निर्बाध रूप से सञ्चरण करते थे। इन्द्र से लेकर अम्बरीष एवं राम तथा कृष्ण तक और स्वर्ग से पाताल तक किसी भी समय अथवा स्थान पर प्रकट हो जाते हैं।

दुर्वासा आश्रम - प्रयाग में संगम से गंगा पार होकर गंगा के ही तट पर लगभग छः मील दूर तथा छतनाग से चार मील दूर **ककरा** गांव स्थित है, यही पर दुर्वासा ऋषि का मन्दिर विद्यमान है।

दुर्वासा धाम - मऊ शाहगंज §जौनपुर§ लाइन पर आजमगढ़ जनपद में खुराशो रोड स्टेशन से तीन मील दक्षिण गोमती के तट पर यह स्थान है। कहा जाता है कि यहाँ पर महर्षि दुर्वासा ने तपस्या की थी। यहाँ पर दुर्वासा का एक बड़ा मन्दिर भी विद्यमान है।[13]

ऋषि दुर्वासा को स्वरूप वर्णन के अतिरिक्त उनका रंग कुछ हरा तथा दाढ़ी बहुत ही लम्बी थी। यह अत्यन्त कृश काटा तथा पृथ्वी के अन्य मनुष्यों में सबसे लम्बे थे। यह सदा चिथड़े पहनते थे। एक विल्ववृक्ष की लम्बी लकड़ी हाथ में लकर त्रैलोक्य में स्वच्छन्द होकर विचरण करते थे।[14] इनके क्रोधी स्वभाव के कारण कई लोग त्रस्त हुए।

1· मार्क0 पु0 17/9-16, विष्णु 1/9, 4/6 2· भाग0 4/1 विष्णु 1/25
3· शिव0शत0 19 4· मार्क0 17/9-11
5· म0अनु0 160/14-15 6· ब्रह्म 117/2, अग्नि 20/12
7· भागवत0 9/4/35 8· म0आ0 परि0 1/118
9· पद्म0उ0 271/44 10· म0अ0 67
11· ह0वं0 298-303 12· म0व0परि0 1 क0 25
13· डॉ0 हरिदेव बाहरी- प्राचीन भारतीय संस्कृति कोश पृ0सं0 158-159

क्रोधी स्वभाव वाले स्वयं अपनी पत्नी कन्दली को ही शाप देकर जला दिया।[15] इन्हीं के शाप से शकुन्तला को अति कष्ट झेलना पड़ा। इन्द्र तथा अन्य देवताओं को भी ऐश्वर्य कम हो जाने का शाप दिया। कुन्ती की सेवा से प्रसन्न होकर पुत्र लाभ के पाँच मंत्र बताए थे। इसी के प्रभाव से कर्ण तथा पाँच पाण्डव उत्पन्न हुए थे। क्रुद्ध होकर शाप देना तथा प्रसन्न होकर वरदान देना यह दुर्वासस् के स्वभाव का स्थायी भाव था। इसी कारण इनसे लोग भयभीत रहते थे। ऋषि दुर्वासा स्वयं कठोर व्रत का पालन करने वाले तथा गूढ़ स्वभाव के तपस्वी थे। इनके मन में क्या है इसका पता अपने हाव भाव से नहीं लगने देते थे।

जावालोपनिषद में इनका उल्लेख हुआ है।[16] जैमिनि गृह्य सूत्र के उपाकर्मांग तर्पण में दुर्वासस् का उल्लेख प्राप्त होता है। इससे प्रतीत होता है कि ये सामवेदी आचार्य थे। इनके नाम पर आर्यादिशती देवी महिमन्तोत्र, परशिवमहिमास्तोत्र, ललितास्तवर आदि ग्रन्थों का निर्देश प्राप्त होता है।

वाल्मीकि रामायण में दुर्वासा का उल्लेख इस प्रकार हुआ है - एक बार राजा दशरथ अपने पुरोहित वसिष्ठ से मिलने गये। वहां पर अत्रि पुत्र ऋषि दुर्वासा भी विराजमान थे। उनके सम्मुख राजा दशरथ ने अपने कुल के विस्तार के बारे में जानना चाहा। तदनन्तर दुर्वासा ने बताया - "प्राचीन काल में देवताओं और दैत्यों के युद्ध में दैत्य मार खाकर भृगु पत्नी के शरण में चले गये। विष्णु ने अपने तेज चक्र से भृगु पत्नी का सिर काट डाला। इनसे क्रुद्ध होकर भृगु को शाप दिया कि वे मानव देह धारण करके मृत्युलोक में जन्म ग्रहण करें और दीर्घकाल तक पत्नी का वियोग भोगे। शाप देने के बाद भृगु का तप क्षीण हो गया, किन्तु विष्णु ने उस शाप को स्वीकार कर लिया, इस प्रकार रामचन्द्र के रूप में दशरथ के घर जन्म लिया।" महायोगी दुर्वासा ने यह भी बताया कि राम दीर्घायु है, राम के पुत्रों का जन्म अयोध्या में नहीं होगा। अन्त में राम अपने पुत्रों को प्राप्त करके उनका राज्याभिषेक करेंगे ऋषि ने बताया राम को जीवन में अपने भाईयों का वियोग भी सहना पड़ेगा।[17]

---

15. ब्रह्म0वै0 4/23-24 16. जा0

ऋषि दुर्वासा के क्रोध एवं अनुग्रह ﴾शाप एवं वरदान﴿ की अनेक कथाए पायी जाती है। उनमे से कुछ उल्लेखनीय कथाएँ इस प्रकार है -

एक बार ऋषि दुर्वासा दस हजार शिष्यों के साथ दुर्योधन के यहाँ गये दुर्योधन ने उनका आतिथ्य सत्कार करके प्रसन्न किया और वर मांगा कि वे अपने दस हजार शिष्यों सहित वनवासी युधिष्ठिर का आतिथ्य स्वीकार करें। वे उनके यहाँ उस समय पहुंचे जब द्रोपदी भोजन कर चुकी हों। दुर्योधन ने ऐसी इच्छा प्रकट की थी क्योंकि उसे ज्ञात था कि द्रोपदी के भोजनोपरान्त बटलोई में कुछ भी शेष नहीं होगा और तब दुर्वासा उसे शाप दे देंगे। दुर्वासा ऐसे ही अवसर पर पहुंच कर तथा उन्हें रसोई तैयार करने का आदेश देकर स्नान करने चले गये। धर्म संकट में पड़ी हुई द्रोपदी दारा स्मरण किये गये कृष्ण ने बटलोई में लगे हुए साग को खाकर बोले - "इस साग से सम्पूर्ण विश्व के आत्मा, यज्ञभोक्ता, सर्वेश्वर भगवान श्रीहरि तृप्त तथा संतुष्ट हो।" कृष्ण के ऐसा करते ही शिष्यों सहित दुर्वासा को सन्तुष्टि के डकार आने लगे वे लोग यह सोच कर दूर भाग गये कि पाण्डव अपनी बनाई रसोई को व्यर्थ जाता देख रूष्ट होंगे। एक बार ऋषि दुर्वासा नगर मे यह सोचकर घूम रहे थे कि वे क्रोधी है इसलिए उनका आतिथ्य कोई नहीं करेगा। उनके वस्त्र फटे हुए थे। कृष्ण ने उन्हें अतिथि रूप में आमंत्रित किया। उन्होने नाना प्रकार से कृष्ण की परीक्षा ली। दुर्वासा कभी शैय्या आभूषित कुमारी इत्यादि समस्त वस्तुओं को भस्म कर देते कभी दस हजार लोगों के बराबर भोजन करते, कभी कुछ भी नहीं खाते। एक दिन खीर जूठी करके कृष्ण को दी और उसे ओर उसे अपने ओर रूक्मिणी के पूरे शरीर में लगाने को कहा। फिर रूक्मिणी को रथ में जोकर चाबुक मारते हुए बाहर निकलें। कुछ दूर चलकर रूक्मिणी लड़खड़ाकर गिर पड़ी। दुर्वासा क्रोध से पागल दक्षिण दिशा की ओर चल दिये। कृष्ण ने उनका अनुगमन करते हुए उन्हें रोकने का प्रयत्न किया तो दुर्वासा अत्यन्त प्रसन्न हो गये तथा कृष्ण को क्रोध विहीन जानकर उन्होने कहा - "सृष्टि का जब तक और जितना अनुराग अन्न में रहेगा, उतना ही तुममें भी रहेगा। तुम्हारी जितनी वस्तुएँ मैने तोड़ी या जलायी हैं सभी तुम्हें पूर्ववत मिल जायेगी।[18]

18· म0भा0 वनपर्व अध्याय 262 से 263 तक, दानधर्म पर्व अध्याय 159

इसी कथा को अन्यत्रकहा गया है कि दुर्वासा ऋषि खूब गरम-गरम खीर खा रहे थे और उसी मे से निकाल कर श्रीकृष्ण को दी और सर्वांग में लगाने को कहा श्रीकृष्ण ने ऐसा ही किया परन्तु यह ब्राह्मण का प्रसाद है ऐसा सोचकर पैर मे नहीं लगाया। यह देखकर दुर्वासा बोले - "तुमने हमारा उच्छिष्ट सर्वांग में लगाया है इस कारण तुम्हारा सर्वांग अभेद्य होगा, परन्तु पैर में नही लगाया वह अभेद्य नही होगा। अतः यही कारण था कि पैर में बाण लगने से ही श्रीकृष्ण की मृत्यु हुई थी।[19]

भुशुण्डि रामायण में कहा गया है कि -"एक बार काल से मन्त्रणा चल रही थी कि उसी समय संयोगवश महर्षि अत्रि के पुत्र महायोगी दुर्वासा आ गये। लक्ष्मण ने उनका स्वांग किया। ऋषि लक्ष्मण से कहे कि "तुम शीघ्र राम को मेरे आगमन की सूचना दो। लक्ष्मण मुनि से बोले कि देव क्षण भर रूक जाइये। मै प्रतिहार का कार्य कर रहा हूँ। दुर्वासा ने क्रुद्ध होकर कहा, रघुवंशी राजाओ ने यह सनातन रीति स्थापित कर रखी है कि मुनि अन्तःपुर में भी निर्बाध रूप से आ जा सकते है। यह तो दरबार है तुम द्वार पर आये मुझे रोक रहे हो। अभी घोर शाप देता हूँ। लक्ष्मण शाप और राजा की आज्ञा के उल्लंघन के भय से चिन्तित होकर भीतर गये। वहाँ भाई के विकराल स्वरूप को देखकर संत्रस्त हो गये। काल के चले जाने पर लक्ष्मण ने राम से दुर्वासा के आगमन की बात कही। राम स्वर्ण सिंहासन से उठकर द्वार तक गये। मुनि को आदर सहित भीतर लिवा आये और सीता के साथ मिलकर उनकी पूजा की। मुनि ने कहा आप ने अवतार ग्रहण कर राक्षसी माया से पीड़ित जीवों की रक्षा की है अब प्रार्थना है कि आत्यन्तिक रूप से दुःख नाश के लिए उस ज्ञान काउपदेश करें जिसके द्वारा मृत्यु लोक के जीव सहज ही भवसन्तरण कर सकें। स्वकथित गीता के अध्यायों में भक्ति, दर्शन, तथा वैष्णवाचार की विशद व्याख्या करके राम ने दुर्वासा को दिव्य दृष्टि प्रदान की उसके द्वारा स्वरूप दर्शन प्राप्त कर वे कृतकृत्य हो गये। भगवान् ने आगामी सारस्वत काव्य में उन्हें लीला प्रवेश का आश्वासन दिया। दुर्वासा प्रभु के आलिंगन कर उनके चरणवत

19· चरित्रकोश, पृ0 216

कमणों को हृद्य में धारण किये हुए अपने आश्रम को चले गये। उन्होंनें अपना शेष जीवन राम का यशगान करते हुए रामतीर्थो के पर्यटन में व्यतीत किया।

एक बार श्वेतकि नामक राजा के ऋत्विज यज्ञ करते-करते थक गये गये थे, उसी समय जब उसने सौ वर्षो तक चलने वाला एक सत्र प्रारम्भ करने का निश्चय किया तो कोई भी ब्राह्मण ऋत्विज बनने के लिए तैयार नहीं हुआ। ब्राह्मणों के कहने पर घोर तपस्या के द्वारा रूद्र को उसने प्रसन्न किया। रूद्र ने उसे बारह वर्षो तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए घृत की अविच्छिन्न धारा से अग्नि को तृप्त करने के लिए कहा, ऐसा करने के पश्चात रूद्र ने अब्राह्मण होनेके कारण ऋत्विज बनने में असमर्थता प्रकट करते हुए दुर्वासा को उनका यज्ञ सम्पन्न करने का आदेश दिया दुर्वासा ऋषि ने उनका यज्ञ यथाविधि सम्पन्न करवाया।[20]

पृथा {कुन्ती} की अपरिमित परिचर्या से सन्तुष्ट होकर दुर्वासा ने कुन्ती को वर दिया कि वह जिस किसी भी देवता का आवाहन करेगी उसकी कृपा से उसको पुत्र उत्पन्न होगा। कुतूहलवश उस कुमारी कन्या ने सूर्य का आवाहन किया ओर उसे कर्ण के रूप में पुत्र की प्राप्ति हुई। इसी प्रकार इस मन्त्र से इन्द्र आदि देवताओं से अर्जुन आदि पाण्डवों का जन्म हुआ। कर्ण सहित कुल छ पुत्र की प्राप्ति हुई। दुर्वासा ने कुन्ती को "अथर्वशिरस" मन्त्र भी प्रदान किये थे।[29]

मुद्गल एक अत्यन्त दानी ब्राह्मण था। शिलोच्छवृत्ति {खेत करने पर विखरे हुए अनाज के दाने तथा बाजार उठने पर विखरे पड़े अनाज के दाने} वाले इस ब्राह्मण के सत्व की परीक्षा लेने के लिये दुर्वासा ऋषि पहुँचे। उन्मत्त मुनि के वेष में उन्होंने मुद्गल का समस्त भोजन खा लिया तथा जूठन अपने शरीर पर पोत लिया। ऐसा वे छः वर्ष तक करते रहे। मुद्गल की निर्विकार रूप से परिवार सहित उनका आतिथ्य करता रहा। दुर्वासा उससे प्रसन्न होकर सदेह स्वर्ग जाने का वरदान दिया।[22]

20· महा0आदिपर्व 222/17-62 तक

21· महा0आदिपर्व, अ0 67 श्लोक 134-150, आदिपर्व अ0 110, श्लोक 27-31, आ0 300-310, दे0भा0 2/6 भा0 9/24/32, म0व0 289/20

एक बार द्रौपदी नदी में स्नान कर रही थी। वहीं थोड़ी दूरी पर तपस्वी दुर्वासा भी स्नान कर रहे थे। उसी समय दुर्वासा अधोवस्त्र जल में बह गया। नग्नावस्था के कारण लज्जा वश वे बाहर नहीं निकल पा रहे थे। दुर्वासा की कठिनाई को समझकर द्रौपदी ने अपनी साड़ी से थोड़ा सा कपड़ा फाड़कर उन्हें दे दिया। उस कपड़े से इनका लज्जा रक्षण हुआ द्रौपदी समयसूचकता से उन्हें अत्यन्त प्रसन्न्ता हुई। फलस्वरूप उन्होंने द्रौपदी को वर दिया कि उसकी लज्जा पर कभी आँच नहीं आयेगी।[23] यही वरदान द्रौपदी के चीरहरण के प्रसंग में लज्जा रक्षण किया।

एक बार इन्द्र मदिरापान कर उन्मत्त अवस्था में रम्भा के साथ क्रीड़ा कर रहे थे, तभी ऋषि दुर्वासा शिष्यों सहित पहुच गये। इन्द्र ने अतिथि सत्कार किया। दुर्वासा ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद से युक्त एक पारिजात पुष्प इन्द्र को दिया। वह पुष्प विष्णु ने दिया था। इन्द्र ऐश्वर्य के मद में चूर उस पुष्पमाला को अपने हाथी के मस्तक पर रख दिया। पुष्प के प्रभाव से हाथी, अलौकिक गरिमायुक्त होकर जंगल में चला गया। इन्द्र उसे संभालने में असमर्थ रहे। दुर्वासा ने उन्हें श्रीहीन होने का शाप दे दिया। अमरावती भी अत्यन्त भ्रष्ट हो गयी। इन्द्र पहले वृहस्पति की ओर फिर ब्रह्मा की शरण में पहुँचे। समस्त देवता विष्णु के पास गये उन्होने लक्ष्मी को सागर पुत्री होने की आज्ञा दी अतः लक्ष्मी सागर में चली गयी। विष्णु ने लक्ष्मी के परित्याग की विभिन्न स्थितियों का वर्णन करके उन्हें सागर मंथन करने आदेश दिया। मंथन से जो अनेक रत्न निकले, उनमें एक लक्ष्मी भी थी। लक्ष्मी ने नारायण को वरमाला देकर प्रसन्न किया।[24]

इसी कथा को भिन्न प्रकार से कहा गया है कि स्वायम्भुव मन्वन्तर में एक विद्याधर द्वारा दी गयी पुष्पमाला इसने इन्द्र को दी। इन्द्र द्वारा ध्यान न दिये जाने के कारण वह माला ऐरावत के पैरो के नीचे कुचली गयी। माला

---

23. शि०पु० 7/25-26

24. दे०भा० 9/40-41

को इस अपमान को देखकर, दुर्वासा उदिग्न हो गये और इन्द्र को शाप दिये कि तुम्हारी सम्पत्ति नष्ट हो जायेगी। इन्द्र ने क्षमा मांगी फिर भी उसने उःशाप नहीं दिया। तब विष्णु की आज्ञानुसार इन्द्र ने समुद्र मन्थन करके पुनः संपत्ति प्राप्त की।[25] समुद्रमंथन का यह समारोह चाक्षुष मन्वन्तर में सम्पन्न हुआ।[26]

वाल्मीकि रामायण में भी उल्लिखित है कि दुर्वासा ने एक हजार वर्षों तक उपवास किया था। उस उपवास के बाद भोजन पाने के लिए यह दाशरथि राम के पास गया। उस समय राम काल से कुछ मन्त्रणा कर रहे थे। किसी का अन्दर प्रवेश निषिद्ध था। आज्ञा भंग का दण्ड मृत्यु था। इसी कारण दुर्वासा को भीतर जाने से रोक दिया। दुर्वासा क्रुद्ध होकर शाप देने के लिए उद्यत हुए। ऐसा देखकर शाप के भय से लक्ष्मण ने उन्हें भीतर जाने दिया। राम ने इच्छित भोजन देकर इन्हें तृप्त किया किन्तु लक्ष्मण के आज्ञा भंग के कारण शरीर त्यागना पड़ा।[27]

नाभाग का पुत्र अम्बरीष वीर राजा था। वह विष्णु का अनन्य भक्त था। विष्णु ने राजा अम्बरीष की रक्षा के लिए चक्र को नियुक्त कर रखा था। एक बार शाप और वरदान देने में समर्थ स्वयं दुर्वासा जी उनके यहां अतिथि के रूप में पधारे। राजा अम्बरीष एकादशी का व्रत रखे हुए थे। राजा अम्बरीष ने अतिथि सत्कार के पश्चात ऋषि से भोजन के लिए प्रार्थना की। दुर्वासा जी प्रार्थना स्वीकार कर नित्य कर्मों से निवृत्त होने के लिए पास ही नदी तट पर चले गये। उनके स्नानादि करने में इतनी देर हो गयी कि पारण का समय व्यतीत होने को हो गया। धर्मज्ञ अम्बरीष ने धर्मसंकट में पड़कर ब्राह्मणों के साथ परामर्श किया। उन्होंने कहा कि ब्राह्मणों को बिना भोजन कराये स्वयं खा लेना और द्वादशी रहते पारण न करना - दोनों ही दोष है। ब्राह्मण के परामर्श से राजा ने जल पी लिया क्योंकि श्रुतियों में कहा गया है कि जल पी लेना भोजन करना भी है नहीं भी है। अतः राजा ने जल ग्रहण कर लिया। स्नान ध्यान से निवृत्त होकर जब दुर्वासा पहुँचे

25· विष्णु 1/9 पद्म सृ0 1-4

26· भा0 9/4, पद्म सृ0 231-233, ब्रह्म0वै0 2/36, स्कन्द 2/9/8-9

तो उन्होंने अनुमान से ही यह जाना कि राजा ने पारण कर लिया है। इसे आतिथ्य में व्याघात मानकर मुनि ने राजा को मार डालने के लिये अपने बालों की एक लट तोड़कर एक कृत्या उत्पन्न की। वो तलवार लेकर राजा को मारना ही चाहती थी कि सुदर्शन चक्र ने उसे नष्ट कर दिया तथा मुनि के पीछे लग गया।[28]

जब दुर्वासा जी ने देखा कि मेरी बनाई हुई कृत्या जल रही है तो और चक्र मेरी ओर आ रहा है। तो वे भयभीत होकर भाग चले। वे सुमेर पर्वत की गुफा में प्रवेश किया। दुर्वासा जी दिशा, आकाश, पृथ्वी, अतल-वितल, स्वर्ग जहाँ कहीं गये पीछे-पीछे सुदर्शन चक्र भी गया। तत्पश्चात् दुर्वासा अपने प्राण के लिये ब्रह्मा, महेश आदि देवताओं की शरण में गये महेश ने उन्हें विष्णु की शरण में जाने को कहा। तब दुर्वासा विष्णु के परमधाम बैकुण्ठ में गये। दुर्वासा जी भगवान के चक्र की आग से जल रहे थे वे कांपते हुए भगवान् के चरणो में गिर पड़े और कहे प्रभो। मै अपराधी हूँ आप मेरी रक्षा कीजिये। आप का परम प्रभाव न जानने के कारण ही मैने आप के भक्त का अपराध किया है। विष्णु ने कहा दुर्वासा जी मै सर्वथा भक्तों के आधीन हूँ। भक्तजन मुझसे प्यार करते है और मै उनसे। विष्णु ने कहा जिसका अनिष्ट करने से आप को इस विपत्ति में पड़ना पड़ा है आप उसी के पास जाइये, निपराध साधुओं की अनिष्ट की चेष्टा से अनिष्ट करने वाले का ही अमंगल होता है। विष्णु ने कहा कि ब्राह्मणो के लिए तपस्या और विद्या परम कल्याण के साधन है परन्तु यदि ब्राह्मण उदण्ड और अन्यायी हो जाय तो वे ही दोनों विपरीत फल देने वाले हो जाते हैं। अतः आप नाभागनन्दन राजाअम्बरीष के पास जाइये और उन्हीं से क्षमा मांगिये तब आपको शान्ति मिलेगी।

दुवार्सा जी की दुःख निवृत्ति

भगवान विष्णु की आज्ञानुसार सुदर्शन चक्र की ज्वाला से जलते हुए दुर्वासा लौटकर राजा अम्बरीष के पास आये और अत्यन्त दुःखी होकर राजाके पैर पकड़ लिये। दुर्वासा जी के ऐसा करने से लज्जित होकर राजा अम्बरीष भगवान्

28· भाग0 नवम स्कन्ध, अध्याय 4, श्लोक 35-48

चक्र की स्तुति करने लगे। उस समय उनका हृदय दया से अत्यन्त पीड़ित हो रहा था।[29] राजा ने भगवान् से कहा कि दुर्वासा जी का कल्याण कीजिये हमारे ऊपर यह आप का महान् अनुग्रह होगा। दुर्वासा की जलन शांत हो जाय। राजा अम्बरीष द्वारा की गयी विष्णु की स्तुति से चक्र शांत हो गया। तब स्वस्थ चित्त होकर दुर्वासा ने राजा को अनेक आशीर्वाद देते हुए उनकी प्रशंसा की। दुर्वासा जी ने कहा अम्बरीष आप का हृदय करूणा भाव से परिपूर्ण है। आपने मेरे अपराध को भुलाकर मेरे प्राणों की रक्षा की है। जब से दुर्वासा भगे थे तभी से राजा भोजन नहीं किये थे। दुर्वासा जी का इन्तजार कर रहे थे। अब वे दुर्वासा को प्रसन्न कर उन्हें भोजन कराया। तृप्ति होकर ऋषि ने राजा को भोजन करने के लिए कहा। दुर्वासा जी आतिथ्य से संतुष्ट होकर राजा को आशीर्वाद देकर तथा उनसे अनुमति लेकर आकाश मार्ग से ब्रह्मलोक की यात्रा की जो केवल निष्काम कर्म से ही प्राप्त होता है। दुर्वासा के चले जाने के बाद एक वर्ष तक जल पीकर रहने वाले, तथा दुर्वासा के भोजन कर लेने से बचे हुए पवित्र अन्न को उन्होंने खाया। अपने कारण दुर्वासा का विपत्ति में पड़ना और पुनः अपनी ही स्तुति से उनका छूटना इन दोनों बातों को उन्होंने अपने द्वारा होने पर भी भगवान् की महिमा समझा।

शिवपुराण में भी कहा गया है कि राजा अम्बरीष विष्णु के परम भक्त थे तथा सदैव एकादशी का व्रत रखकर द्वादशी में पारण करते थे एक बार दुर्वासा उनकी परीक्षा लेने पहुँचे। वे अपने शिष्यों सहित इतनी देर तक नहाते रहे कि द्वादशी समाप्त होने लगी वेदज्ञ ब्राह्मणो की आज्ञा से राजा ने पारण कर लिया। इस पर दुर्वासा अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उनका क्रोध जानकर विष्णु का चक्र उनके पीछे पड़ गया। एक वर्ष तक दुर्वासा उस चक्र से बचने के लिये इधर-उधर भागते रहे। अंत में अम्बरीष की शरण में पहुँचे उन्हीं की कृपा से वे चक्र के प्रकोप से मुक्त हुए।[30]

29· भावा० नवम स्कन्ध, अध्याय 5, श्लोक 1-8

30· शि०पु० 7/25

ब्रह्मपुराण की एक कथानुसार अत्रि ने ब्रह्मा, विष्णु महेश को स्तुति से प्रसन्न करके उन्हें पुत्रों के रूप में मांगा। तथा एक सुन्दरी कन्या की भी याचना की फलतः उनके दत्ता, सोम, तथा दुर्वासा नामक पुत्र और आत्रेयी नामक कन्या का जन्म हुआ। आत्रेयी का विवाह अंगिरा से हुआ वे अग्नि से उत्पन्न हुए थे अतः वे क्रोधी थे।[31]

गरुण की वंश परम्परा में प्रलोलुप का जन्म हुआ उसके दो पुत्र हुए कंक तथा कन्धर। एक दिन कंक कैलास पर्वत पर गया। वहाँ विद्युद्रूप {कुवेर के अनुचार} नामक राक्षस को अपनी पत्नी मदनिका {मेनका की कन्या} के साथ रति विलास में मग्न देखा। विद्युद्रूप ने कंक को वहां से चले जाने के लिए कहा। कंक नहीं गया तो उसने उसे मार डाला। भाई के बध से कन्धर अत्यन्त कृद्ध हुआ उसने उस निसाचर को दन्द युद्ध में मार डाला। मदनिका ने पति की मृत्यु के उपरान्त कन्धर को पति रूप में वर लिया। उसमें इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति थी। अतः उसने यक्षिणी का रूप धारण कर लिया। उसी यक्षिणी की कोख से दुर्वासा के शाप के कारण वपु ने जन्म लिया जिसका नाम तार्क्षी रखा गया।[32]

राजा ब्रह्मदत्त के पुत्र हंस और डिम्भक थे। ब्रह्मदत्त के मित्र ब्राह्मण मित्रसह ने विष्णु की कृपा से जनार्दन नामक पुत्र प्राप्त किया। एक बार वे लोग शिकार के लिए गये। वन में उन्हें वैष्णव सत्र में व्यस्त कश्यप मिले। हंस ने उन्हें भावी राजसूय यज्ञ के लिए आमंत्रित किया। उसकी बातों से अभिमान झलक रहा था। शिव प्रदत्त मदमस्त राजकुमारों ने दुर्वासा आदि की अवमानना कर दी। आश्रम के विध्वंस कर दुर्वासा को कष्ट पहुँचाया। जनार्दन के बहुत समझाने और रूष्ट होने पर भी उन्होंने अपनी गलती को नहीं समझा जनार्दन ने दुर्वासा से क्षमायाचना की। दुर्वासा ने हंस और डिम्ब को शाप दिया कि वे दोनो कृष्ण द्वारा मारे जायेंगे। तथा जनार्दन को वर दिया कि भगवान् के साथ शीघ्र ही उसका समागम हो।

31· ब्र०पु० 144

32· हरि०वं०पु० भविष्य पर्व 104-129

दोनों राजकुमारों ने क्रोधवश सन्यासियों के कमण्डलु इत्यादि नष्ट कर डाले तथा वहीं मांस पकाकर खाया। दुर्वासा के साथ सन्यासी कृष्ण की शरण में गये। दुर्वासा का क्रोध प्रसिद्ध था। कृष्ण इत्यादि ने उनका आतिथ्य किया। उनके दुःख को समझकर कृष्ण ने दोनों को मारने की शपथ ग्रहण की।[33]

पूर्व काल में पाण्डु देश में सहस्त्राक्ष नामक राजा था। वह रानियों के साथ जल विहार कर रहा था। निकट से जाते हुए दुर्वासा का उसने प्रणाम नहीं किया दुर्वासा ने उसे राक्षस होने का शाप दे दिया तथा मुक्ति के श्रीकृष्ण का स्पर्श वांछनीय बताया। वही राजा तृणावर्त के रूप में गोकुल पहुँचा। भागवत की टीका फुटनोट में सन्दर्भोल्लेख रहित उक्त कथा दी गयी है।[34]

स्कन्दपुराणानुसार दुर्वासा की आज्ञा से रथ खींचती हुई रुक्मिणी थककर गिर पड़ी। उसे प्यास लगी थी। कृष्ण ने उसे पीने के लिये पानी दिया। दुर्वासा क्रुद्ध हो गये कि बिना मेरी आज्ञा के इसने पानी पी लिया यह देखकर दुर्वासा ने शाप दे दिया - "तुम भोगवती नामक नदी बनोगी, यद्यपि पदार्थों का भक्षण करोगी तथा पति विरही बनोगी।

इसी पुराण में कहा गया है कि एक बार दुर्वासा तीर्थाटन करने के बाद, काशी में शिवाराधना करने लगे। पर्याप्त तपस्या करने के बाद भी शंकर प्रसन्न नहीं हुए तो ये शंकर को ही शाप देने के लिये उद्यत हुये। यह देखकर शंकर को इनके प्रति वात्सल्ययुक्त प्रेम का अनुभव हुआ। शंकर ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर दुर्वासा को सन्तुष्ट किये।

स्कन्दपुराणानुसार एक बार दुर्वासा गोमती के तट पर स्नान करने गये थे उसी समय वहाँ कई दैत्य एकत्रित होकर दुर्वासा को पीटने लगे। तब राक्षसों के विनाश के लिये दुर्वासा ने कृष्ण की आराधना की।

33· मा०पु० 2/3

एक बार दुर्वासा के उग्र तप से समस्त देवगण भयभीत हो गये। उन्होंने वपु नामक अप्सरा को, इसका सत्व हरण करने के लिए भेजा। उसको पापी जानकर दुर्वासा ने शाप दिया - "तुम गरूण यक्षिणी बनोगी।"

अभिज्ञानशाकुन्तल

विवेच्य नाटकों में दुर्वासा का उल्लेख केवल अभिज्ञानशाकुन्तल में हुआ है। इस विश्व प्रसिद्ध नाटक में दुर्वासा की भूमिका अत्यल्प परन्तु अतीय महत्वपूर्ण है। महर्षि दुर्वासा नाटक में कहीं भी साक्षात् दिखाई नहीं पड़ते। चौथे अंक में नेपथ्य से उनका क्रोधपूर्ण स्वर सुनाई पड़ता है -

नेपथ्य मे   आः अतिथिपरिभाविनि
विचिन्यन्ती यमनन्यमानसा
तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव।[35]

यह वह अवसर है कि जब नाटक की नायिका शकुन्तला नायक दुष्यन्त के वियोग में विचारमग्न है उसे अपनी भी सुधि नहीं है फिर वह किसी आने वाले अतिथि की क्या परवाह करती। शकुन्तला की सखियाँ शाप को सुनकर परेशान हो उठती है और ऋषि से अनुनय विनय करने के लिये प्रियम्बदा उनके समीप जाती है वह लौटकर बताती है कि महर्षि ने कहा कि -

न मे वचनमन्यथाभवितुमर्हति, किं त्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयमाण एवान्तर्हित।[36]

इस प्रकार शकुन्तला को शाप दिलाने और उस शाप से मुक्ति का मार्ग निर्दिष्ट कराने मात्र के लिये दुर्वासा का उपयोग किया गया है।

35· अभि0 शा0 4/1
36· अभि0 शा0 पृष्ठ सं0 187-188

वस्तुतः शाप की घटना कालिदास द्वारा मूल कथा में लिया गया मौलिक परिवर्तन है। नाटक के तीसरे अंक में तपोवन विरोधी, कामविकार से अभिभूत होने के फलस्वरूप गान्धर्व विवाह करने वाले नायक-नायिका को अमर्यादित आचरण के लिये दण्ड देना आवश्यक था। साथ ही दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला के प्रत्याख्यान किये जाने पर राजा के चरित्र पर आने वाले दोष का निवारण भी करना था। इन दोनो स्थितियों के सफल एवं सास्कृतिक मर्यादा के अनुकूल समायोजन हेतु शाप की व्यवस्था की गयी। इससे तपोवन के संयमपूर्ण वातावरण में असंयमित आचरण के लिये नायक-नायिका को विरहाग्नि में तड़पने का दण्ड मिला। और शकुन्तला के प्रत्याख्यान में शाप के कारण गान्धर्व विवाह विस्मृत हो जाने से दुष्यन्त के चरित्र पर झूठा होने का आरोप नहीं लग सका। इसके विपरीत परस्त्री पराङ्‌·गमुख होने से उनका चरित्र और अधिक निखर आया।[37]

चूँकि दुर्वासा ही सुलभ कोप महर्षि हैं। छोटी सी बात के लिये भी वह शाप देने से नहीं चूकते इसलिये शाप की घटना के लिये उनसे उपयुक्त पात्र कोई नहीं हो सकता।

37· अहो धर्मावेक्षिता भर्तुः। ईदृशं नाम सुखोपनतं रूपं दृष्ट्वा कोऽन्यो विचारयति।
भोस्तपोधनाः चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्रप्रभवत्याः स्मरामि।
तत्कथमिमामभिव्यक्तसत्त्वलक्षणांप्रत्यात्मानं क्षेत्रिणमाशङ·क्मानः प्रतिपत्स्ये।
पञ्चम अंक पृ0 174

परशुराम

परशुराम ऋचोक के पौत्र और महर्षि जमदग्नि के महान् पुत्र थे। "परशु" उनका प्रिय शस्त्र था। परशु के प्रयोग में अत्यन्त निपुण होने के कारण उनका नाम परशुराम पड़ा। इनकी माता का नाम रेणुका था। जो विदर्भराज प्रसेनजित की पुत्री थी।[1] परशुराम का जन्म वैशाख शुक्ल तृतीया को रात्रि के प्रथम प्रहर में हुआ था। उन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियों को (विशेषतः हैहय वंशीय क्षत्रियों) का संहार किया था। ये विष्णु के छठवें अवतार माने जाते हैं।[2] भृगु वंश में उत्पन्न होने के कारण जमदग्नि एवं परशुराम "भार्गव" इस पैतृक नाम से प्रसिद्ध थे। भार्गववंशीय ब्राह्मण गुजरात के रहने वाले थे। बाद में हैहय राजाओं से संघर्ष के कारण उत्तर भारत के कान्यकुब्ज प्रदेश में चले गये इसके पूर्व भार्गव वंश के ब्राह्मण पश्चिमी भारत पर शासन करने वाले हैहय राजाओं के कुल गुरू थे। कहा जाता है कि हैहय राजाओं तथा भार्गव वंश के ब्राह्मणों के मध्य बारह पीढ़ियों तक संघर्ष चलता रहा। यहीं कारण है कि प्राचीन इतिहास में 2550 ई0पू - 2350 ई0पू0 तक का काल "भार्गव" हैहय नाम से जाना जाता है। हैहय एवं भार्गवों के शत्रुता की चरम परिणति हैहय क्षत्रियों के संहार में हुई।

"राम भार्गवेय" नामक एक वैदिक ऋषि का नाम एक सूक्तद्रष्टा के रूप में आया है।[3] सर्वानुक्रमणी के अनुसार यही परशुराम है। "रामभागवेय" श्यापर्ण लोगों के पुरोहित थे। "राम भार्गवेय" एक ही थे इसका पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता है।

1· स वेदाध्ययने युक्तो जमदग्निर्महातपाः।
तपस्तेपे ततो देवान् नियमाद् वंशमानयत्।।
स प्रसेनजितं राजन्मधिगम्य नराधिपम्।
रेणुका वरयामास च तस्मै ददौनृपः।।
रेणुकात्वयं सम्प्राप्य भार्या भार्गवनन्दनः।
आश्रमस्यास्तया सार्धं तपस्तेपेऽनुकूलयया।
तस्याः कुमाराश्चत्वारो जज्ञिरे रामयं चमः।
सर्वेषामजघन्यस्तु राम आसीज्जघन्यजः।। म0भा0 वनपर्व 116/1-4

2· पद्म0 उ9 248, मत्स्य0 47/244, वायु0 91/88, 36/90

हैहय राजा कार्तवीर्य और परशुराम के युद्ध का वर्णन अथर्ववेद में संक्षिप्त रूप से प्राप्त होता है।[4] अथर्ववेद के अनुसार कार्तवीर्य राजा ने जमदग्नि ऋषि की धेनु बलपूर्वक ले जाने का हठ किया। इसीलिए परशुराम द्वारा हैहय वंश का पराभव हुआ।

परशुराम के परशुधर, भार्गव, जमदग्नि, राम, रेणुकात्मजा नामों से भी जाना जाता है। ये अपने क्रोधी स्वभाव के लिये प्रसिद्ध है। इनका पूर्व चरित्र क्रोध तथा वीरता की कहानी है। ये वरदान स्वरूप उत्पन्न हुए थे। पितामह द्वारा क्षत्रिय गुरु सम्पन्न होने का वरदान मिला था क्योंकि सत्यवती द्वारा चरु के बदल जाने पर ऋषि ने पुत्र के गुण को पौत्र में स्थापित कर दिया था। परशुराम अपने पाँच भाइयों में सबसे कनिष्ठ थे। परशुराम धनुर्विद्या के साथ-साथ अन्य सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र सम्बन्धी विद्याओं में प्रवीण थे।[5] परशुराम ने द्रोण तथा कर्ण को धनुर्विद्या का प्रशिक्षण दिया था।[6] परशुराम एक तपस्वी ऋषि थे इन्होंने इन्द्रिय संयम मनोनिग्रह, होम, मन्त्र, जप, अर्पण आदि साधनों से तपस्या की थी। तप द्वारा शक्ति प्राप्त किये। इन्होंने समस्त विद्याओं को अर्जित किया था। वैष्णव धनुष भी इनको प्राप्त हुआ कश्यप ऋषि ने विधि पूर्वक इनको वैष्णव मन्त्र प्रदान किये थे। इनकी तपस्या का सम्बन्ध तन्त्र-मन्त्र से अधिक था। पुराणों में परशुराम को कभी विष्णु की तपस्या शस्त्रास्त्रों को प्राप्त करते हुंए दिखाया गया है तो कभी शिव से। एक अन्य अध्याय के अनुसार ये कालीकवच काली देवी से प्राप्त किये थे। इससे प्रतीत होता है कि परशुराम परम तपस्वी थे। उन्होंने तप और साधना से नाना शक्ति एवं शस्त्रास्त्रों को प्राप्त किया था।

परशुराम के पास बड़ी मात्रा में उच्च कोटि के शस्त्रास्त्रों का भण्डार था। उनमें से कुछ इस प्रकार है - ब्रह्मास्त्र, वैष्णव, रौद्र, आग्नेय, वासन, याम्य,

---

4· अथर्व0 5/18/10

5· ब्रह्म0 10

6· म0भा0 121/12, कर्ण0 22/39

कोबेर, वायव्य, वारुण, सोम्य, सौर, पार्वत, चक्र, बज्र, पास, सर्प, गान्धर्व, स्वायन, ओत, पाशुपत, ऐशीक, तर्जन, प्रास, भारुड़, नर्तन, क्षात्ररोधन, आदिव्य, रैवत, मानव, अक्षिसंतर्जन, भीम, जृम्भज, रोधन, सौपर्ण, पर्जन्य, राक्षस, मोहन, कालास्त्र, दानवास्त्र, ब्रह्मशिरस।

उपनयन संस्कार के बाद यह शालग्राम पर्वत पर गयें जहाँ कश्यप ने मन्त्रोपदेश दिया।[7] इसके अतिरिक्त शंकर को प्रसन्न कर इन्होंने धनुर्वेद शस्त्रास्त्र विद्या एवं मन्त्र प्रयोगादि का ज्ञान प्राप्त किया।[8]

वाल्मीकि रामायण में परशुराम से सम्बन्धित अनेक जानकारी प्राप्त होती है। राम, लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न के विवाहोपरान्त राजा दशरथ अपनी सेना के साथ जब अयोध्यापुरी के लिये प्रस्थान किये तो मार्ग मे अत्यन्त क्रुद्ध एवं तेजस्वी महात्मा परशुराम से भेंट हुई। राम से अपने हाथ की धनुष को चढ़ाने के लिए कहा और तब वे उनको पराक्रम से सन्तुष्ट होकर द्वन्द्व युद्ध के लिए आमन्त्रित करेंगे। परशुराम बोले कि "विश्वकर्मा द्वारा निर्मित दो श्रेष्ठ धनुषों में से एक को देवताओं ने शिव की और दूसरा विष्णु को अर्पित किया। एक बार देवताओं द्वारा जिज्ञास प्रकट करने पर कि शिव और विष्णु में कौन बलवान है और कौन निर्बल है ब्रह्मा ने दोनों में मतभेद स्थापित कर दिया। फलस्वरूप विष्णु की धनुष की टंकार के सम्मुख शिव का धनुष शिथिल पड़ गया था। अतः पराक्रम की वास्तविक परीक्षा इसी धनुष से हो सकती है। शान्त होने पर शिव ने अपना धनुष विदेह वंशज देवरात को और विष्णु ने भृगुवंशी ऋचीक को धरोहर रूप में दिया था। वहीं धनुष मेरे पास सुरक्षित है।" यह सब सुनकर राम क्रुद्ध हो गये और परशुराम के हाथ से धनुष बाण लेकर चढ़ा दिये और बोले कि - "विष्णु बाण व्यर्थ नहीं जा सकता अब इसका प्रयोग कहाँ किया जाये ? परशुराम का बल तुरन्त क्षीण गया। उनके कथनानुसार राम ने बाण का प्रयोग परशुराम के तपोबल से जीते हुए अनेक लोकों पर किया, जो कि नष्ट हो गये। परशुराम ने कहा - "हे राम, आप निश्चय ही साक्षात् विष्णु है।" यह कहकर परशुराम तप करने के लिए महेन्द्र

---

7. पद्म0 3/241

पर्वत के वनों मे चले गये। राम ने परशुराम की छोड़ी हुई सेना के साथ आगे अयोध्या के लिये प्रस्थान किया। उन्होंने उस धनुष को वरुणदेव को दे दिया।[9]

एक बार परशुराम की माता रेणुका स्नान करने गई थी वहां पर उन्होंने मृत्तिकावत् के राजा चित्ररथ को स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा करते हुए देखा। उसे देखकर रेणुका का मन भी विचलित हो उठा है। रेणुका जब आश्रम को वापस आयी तो उसे देखते ही परशुराम समझ गये और अपने पुत्रों रेणुका का सिर काट देने को कहा। उनके चारो पुत्रों ने ऐसा करने के लिए तैयार नहीं हुए। क्रुद्ध होकर जमदग्नि ने शाप दिया जिससे चारों पुत्र अचेतन हो गये। पाँचवे पुत्र परशुराम उस समय आश्रम में उपस्थित नहीं थे। कुछ समय पश्चात् वे आपस आये और पिता की आज्ञा से माता रेणुका का सिर काट दिया। जमदग्नि शान्त हो गये तथा अपने पुत्र परशुराम से वर माँगने को कहा परशुराम ने चार वर मांगे §1§ प्रथम मेरी माता जीवित हो जाय और उसे अपना वध किया जाना भूल जाये §2§ युद्ध में मेरा कोई सामना न कर सके §3§ मै दीर्घ जीवन प्राप्त करूँ तथा चतुर्थ वर में भाइयों का जीवन दान माँगा और पहले की तरह से वे अपने-अपने कामों में लग जाय। जमदग्नि ने प्रसन्न होकर ये चारों वर पुत्र को देना स्वीकार कर लिये। परशुराम की पितृ भक्ति अलौकिक है जैसा कि महाभारत में उल्लिखित है -

ततो रामोऽभ्यात् पश्चादाश्रमं परवीरहा।
तमुवाचमहाआडु·र्जमदग्निर्महातपाः।। 13।।
जहीमा मातरे पापां मा च पुत्र व्यथां कृथाः।
तत आदायपरशुं रामो मातुः शिरोऽहृत्।।14।।
ततस्तस्य महाराज जमदग्नेर्महात्मनः।
कोपोऽभ्यगच्छत् सहसा प्रसन्नच्चाब्रवीदिदम्।।15।।
ममेदं वचनात् तात कृतं ते कर्म दुष्करणम्।
वृणीष्व कानान् धर्मज्ञ यायन्तो वान्छसे तदा। ।।16।।

9· बा0रा0, 74/1-25, 75/1-28, 76/1-24

त वव्रे मातुरुत्थानमस्मृतिं च वधस्य वै।
पापेन तेन चास्पर्शं भ्रातृण्यां प्रकृतिं तथा।।17।।
अप्रतिदन्दितां युद्धे दीर्घमायुश्च भारत।
ददौ च सर्वान् कामांस्तान्यमदग्निर्महातपाः।।18।।

एक बार हैहय राजा कार्तवीर्य परशुराम के न रहने पर जमदग्नि को मार डाला। परशुराम घर वापस आकर माता से पितृ वध का सारा वृत्तान्त सुना उसी समय हैहय देश में जाकर उन्होंने कार्तवीर्य को मार डाला तथा होम की धेनु का उद्धार किया। कार्तवीर्य का वध करके परशुराम को सन्तोष नहीं हुआ। पितृवध का बदला चुकाने के लिए उन्होंने पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन करने का भीषण व्रत लिया। कहा जाता है कि उन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन किया उसने क्षत्रियों के रुधिर से कुरुक्षेत्र के पाँच तालाबों को भर दिया था। उन्हीं तालाबों में पित्रितर्पण करके महर्षि ऋचीक का दर्शन पाया था। महर्षि ऋचीक ने उसे क्षत्रियों का वध न करने को कहा। तदुपरान्त जामदग्न्य कश्यप को पृथ्वी दान करके स्वयं महेन्द्र पर्वत पर जाकर रहने लगे। क्षत्रिय संहार से सम्बन्धित अनेक आख्यान महाभारत में मिलते हैं।[11]

परशुराम ने गन्धमादन पर्वत पर तपस्या करके शिव को प्रसन्न किया था और उनसे वरदान स्वरूप तेजोमय परशु पाया था। मत्स्यपुराण व विष्णुपुराण में वे क्रमशः छठवें और सोलहवें अवतार माने जाते है। परशुराम ने कोंकण दस्युओं से मुक्त कराकर ब्राह्मणों का उपनिवेश स्थापित किया था।

ब्रह्माण्ड तथा महाभारत {कर्ण 34/140-156} की कथानुसार भगवान् शिव ने देव-दानव युद्ध में परशुराम को देवताओं की तरफ से दैत्यों से युद्ध करने का आदेश दिया था -

हिमाद्रेर्दक्षिणे भागे रामो नाम महातपः।
मुनिपुत्रोऽतितेजस्वी मामुद्दिश्य तपस्यति।।51।।
तत्र गत्वा त्वमवैव निवेद्य मम शासनम्।
महोदर तपस्यन्तं तमिहानय माचिरम्।।53।।

10· म0भा0 वन0 116/13-18
11· महा0द्रोण 70/2/22, म0भा0 वन0 116/20-29, 177/5/12, शांति0 49, अश्वमेधिक 29/8-21, 39/22-32

तपस्यन्त मिदं वाक्यमुवाच विनयान्वितः।।54।।
द्रष्टुमिच्छति शम्भुस्त्वां भृगुवर्यं तदा ज्ञया।
आगतोऽहं तदागच्छ तत्पादाकुज सन्निधिम्।।55।।

ब्रह्माण्ड0 3/24/51-55

परशुराम को विचिकित्सा को देखकर शिव ने कहा कि तुम अवश्य विजय प्राप्त करोगे-

गच्छ त्व मदनुज्ञातो निर्हानिष्यसि शस्त्रवान्।
विजित्य स रिपून् सर्वाम् गुणान् प्राप्स्यसि पुष्कलान्।।

महा0, कर्णपर्व 34/146-147

महाभारत के अन्य आख्यान में नारायण ने ही भृगुवंश में परशुराम के रूप में अवतार लिया था। उन्होंने जंभासुर का मस्तक विदीर्ण किया। शतदुन्दुभि का वध किया तथा युद्ध में हैहयराज अर्जुन को मारा। मात्र धनुष की सहायता से सरस्वती नदी के किनारे हजारों ब्राह्मणद्वेषी क्षत्रियों को मौत के घाट उतार दिया। एक बार कार्तवीर्य अर्जुन ने वाणों से समुद्र को त्रस्त कर किसी परमवीर के विषय में पूछा। तब समुद्र ने उसे परशुराम से लड़ने को कहा। उसने अपने व्यवहार से परशुराम को रूष्ट कर दिया। इसलिये परशुराम ने उसकी हजारों भुजायें काट डालीं। अनेक क्षत्रिय युद्ध के लिये एकत्रित हो गये। परशुराम क्षत्रियों को देखकर क्रुद्ध हो गये, अतः उन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन कर डाला। अन्त में पितरों की आकाशवाणी सुनकर उन्होंने क्षत्रियों से युद्ध करना छोड़कर तपस्या की ओर ध्यान आकृष्ट किया वे सौ वर्षो तक सौम नामक विमान पर बैठे हुए शाल्व से युद्ध करते रहे। किन्तु गीत गाती हुई नग्निका (कन्या) कुमारियों के मुह से यह सुनकर कि शाल्व का वध प्रद्युम्न और साम्ब को साथ लेकर विष्णु करेंगे। ऐसा उन्हें विश्वास होगया अतः वे उसी समय से वन में जाकर अपने अस्त्र-शस्त्र आयुध इत्यादि पानी में डुबोकर कृष्णावतार की प्रतीक्षा में तपस्या करने लगे।

परशुराम ने अपने जीवन काल में अनेक यज्ञ किये। कहा जाता है कि यज्ञ करने के लिये उन्होंने बत्तीस हाथ ऊँची सोने की वेदी बनवाई थी। महर्षि कश्यप ने दक्षिणा में पृथ्वी सहित उस वेदी को ले लिया, तदुपरान्त परशुराम से

पृथ्वी छोड़कर चले जाने को कहा। परशुराम ने समुद्र पीछे हटाकर गिरि श्रेष्ठ महेन्द्र पर निवास करने लगे।[12]

रामायण से ही मिलता जुलता एक अन्य आख्यान महाभारत में भी प्राप्त होता है - भृगुनन्दन परशुराम क्षत्रियों का संहार करने के लिये सदैव तत्पर रहते थे। राम के पराक्रम को सुनकर वे अयोध्या गये। उनके स्वागतार्थ दशरथ ने राम को भेजा। राम को देखते ही परशुराम ने उनकी परीक्षा लेनी चाही। अतः उनसे क्षत्रियसंहारक दिव्य धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाने के लिए कहा। राम के ऐसा कर लेने पर धनुष पर एक बाण चढ़ाकर दिखाने के लिये कहा। राम ने बाण चढ़ाकर परशुराम के तेज पर छोड़ दिया। बाण उनके तेज को छीनकर पुनः राम के पास आ गया। राम ने परशुराम को दिव्य दृष्टि प्रदान की, जिससे उन्होंने राम के यथार्थ स्वरूप के दर्शन किये। परशुराम एक वष्र तक लज्जित तेजोहीन तथा अभिमानशून्य होकर तप में लगे रहे। तत्पश्चात पितरो से प्रेरणा से ग्रहण कर बधूसर नदी के तीर्थ पर स्नान करके अपना तेज पुनः प्राप्त किया।[13] महाभार के अनुसार शिवसहस्त्र नाम महिमा का वर्णन परशुराम ने स्वयं किया है।[14]

गाधि नामक महाप्रतापी राजा अपने राज्य का परित्याग करके वन में चले गये। वहाँ उनकी एक पुत्री उत्पन्न हुई जिसका वरण ऋचीक नामक मुनि ने किया। गाधि ने ऋचीक से कहा कि कन्या की याचना करते हुए उनके कुल में एक सहस्त्र पाण्डुवर्णी अश्व, जिनके कान एक ओर से काले हों, शुल्क स्वरूप दिये जाते हैं। अतः वे शर्त पूरी करे। ऋचीक ने वरुण देवता से सहस्र घोड़े प्राप्त कर शुल्क के रूप में प्रदान किये। शर्त पूरी हो जाने पर गाधि की सत्यवती नामक पुत्री का विवाह ऋचीक से हो गया। भृगु ने अपने पुत्र के विवाह की सूचना पाकर बहुत प्रसन्न हुए और अपनी पुत्रवधू से वर माँगने को कहा। तब सत्यवती ने अपने तथा अपनी माता के लिये पुत्रजन्म की इच्छा प्रकअ की। भृगु ने उन दोनों

12· म0भा0, सभापर्व, अध्याय 38, द्रोण पर्व अ0 70, आश्वमेधिक पर्व अ0 29

13· म0भा0 वनपर्व, अध्याय 99, श्लोक 41-71

14· म0भा0 अनु0 18/12-14

को दो "चरू" खाने के लिये दिये तथा कहा कि ऋतुकाल के उपरान्त स्नान करके सत्यवती गूलर के पेड़ तथा उसकी माता पीपल के पेड़ का आलिंगन करे तो दोनों को पुत्र की प्राप्ति होगी। माँ और पुत्री के चरू खाने में अदला-बदली हो गयी। दिव्य दृष्टि से देखकर भृगु पुनः वहां पधारे और सत्यवती से कहा कि तुम्हारी माता का पुत्र क्षत्रिय होते हुए भी ब्राह्मणोचित व्यवहार करेगा इसके विपरीत तुम्हारा पुत्र ब्राह्मण होकर भी क्षत्रियोचित आचार-विचार वाला होगा। बहुत आग्रह करने पर भृगु ने स्वीकार किया कि सत्यवती का पुत्र ब्राह्मणोचित रहेगा किन्तु पोता क्षत्रियों के समान कार्य करने वाला होगा। उन्हीं सत्यवती से जमदग्नि पैदा हुए - उन्होंने राजा प्रसेनजित की पुत्री रेणुका से विवाह किया रेणुका के पाँच पुत्र हुए - रूम्णवान्, सुषेण, वसु, विद्वानसु तथा पाँचवे परशुराम हुए। वहीं क्षत्रियोचित आचार-विचार वाला हुआ। एक बार सदास्नाता रेणुका राजा चित्ररण पर मुग्ध हो गयी। उसके आश्रम वापस आने पर जमदग्नि को दिव्य दृष्टि से सब घटना विदित हो गयी। वे क्रोधावेश में क्रमशः चारों पुत्रों से मां की हत्या करने को कहा किन्तु कोई तैयार नहीं हुआ तब चारों पुत्रों को जड़बुद्ध होने का शाप दे दिया। परशुराम ने पिता की आज्ञा का पालन किया जमदग्नि ने प्रसन्न होकर पुत्र से वर माँगने को कहा। परशुराम ने प्रथम वर में माता का पुनर्जीवन मांगा फिर भाइयों के स्वास्थ्य, अपने मन को पाप से बचा पाने तथा युद्ध में सब पर विजय प्राप्त करने के वर मांगे। एक दिन जब परशुराम बाहर गये हुए थे तो कार्तवीर्य अर्जुन उनकी कुटिया पर पधारे। युद्ध के मद में उसने रेणुका का अपमान किया तथा उसके बछड़ो का हरण करके चले गये। गायें रंभाती रह गयीं। परशुराम ने सारा वृत्तान्त जानकर सहस्रबाहु हैहयराज (कार्तवीर्य अर्जुन) को मार डाला। हैहयराज के पुत्र ने आश्रम पर धावा बोल दिया तथा परशुराम की अनुपस्थिति में मुनि जमदग्नि को मार डाला। परशुराम घर पहुँचे तो बहुत दुःखी हुए तथा पृथ्वी को क्षत्रियविहीन करने का भीषण संकल्प किया। और इक्कीस बार पृथ्वी पर क्षत्रियों का संहार किया। ऋचीक प्रकट होकर के परशुराम को ऐसा कार्य न करने की सलाह दी। ऋत्विजों को दक्षिणा में पृथ्वी प्रदान कर दी। उन्होंने कश्यप को एक सोने की वेदी प्रदान की ब्राह्मणों ने कश्यप की आज्ञा से उस वेदी को टुकड़े-टुकड़े करके बांट लिया। वे ब्राह्मण जिन्होंने वेदी

वेंदी को परस्पर बांटा था वे सब खाण्डवायन कहलाये।[15]

महाभारत के एक आख्यान के अनुसार बड़े होने पर परशुराम ने शिवाराधना से उस नियमों का पालन करते हुए भगवान् शिव को प्रसन्न किया। शिव ने दैत्यों को मारने का आदेश दिया। परशुराम ने शत्रुओं से युद्ध किया तथा उनका वध किया किन्तु इन युद्धों में परशुराम का शरीर क्षत विक्षत हो गया। शिव ने प्रसन्न होकर कहा कि शरीर में जितने घाव हुए हो उतना ही देवत्व उन्हें प्राप्त होगा वे मानवेतर होते जायेंगे। इसके भगवान् शंकर ने परशुराम को अनेक दिव्यास्त्र प्रदान किये, जिनमे से परशुराम ने कर्ण से प्रसन्न होकर उसे दिव्य धनुर्वेद प्रदान किया था।[16]

महाभारत में एक स्थल पर उल्लिखित है कि जब द्रोण को ज्ञात हुआ कि परशुराम अपना संपूर्ण राज्य धन वैभव दान कर रहे है अतः वह धन की कामना से परशुराम के पास गये। परशुराम तब तक अपना सर्वस्व दान कर चुके थे, मात्र उनका शरीर और अस्त्र-शस्त्र बचा था, अतः उन्होंने अपना सारा अस्त्र-शस्त्र द्रोण को दे दिये तथा प्रयोग और उपसंहार की विधि भी प्रदान कर दी।[17]

श्रीमद्भागवत में भी परशुराम से सम्बन्धित आख्यान प्राप्त होता है। जमदग्नि ऋषि के सबसे छोटे पुत्र परशुराम जी थे। उनका यश सारे संसार में प्रसिद्ध है। कहते हैं कि हैहयवंश का अंत करने के लिए स्वयं भगवान् ने ही परशुराम के रूप में अंशावतार ग्रहण किया था।

जमदग्नि ऋषि ने रेणुका के गर्भ से अनेक पुत्र प्राप्त किये। उनमें सबसे छोटे परशुराम थे। उन दिनो हैहयवंश का अधिपति अर्जुन था। वह विष्णु के अंशावतार

15· म0भा0 वनपर्व, अध्याय 114-117 तक

16· म0भा0, कर्णपर्व, अध्याय 34, श्लोक 129-159 तक

17· म0भा0, आदि पर्व अध्याय 137, 136/13-15

दत्तामेय के वरदान से एक सहस्र भुजायें प्राप्त की थी।[18] एक बार नर्वदा में स्नान करते हुए मदोन्मत्त होकर अपने बाहों से नदी का वेग रोक लिया। फलतः उसकी धारा उल्टी बहने लगी जिससे रावण का शिविर पानी में डूबने लगा रावण ने अर्जुन के पास उलाहना देने गया तो अर्जुन ने उसे कैद करवा लिया। पुलस्त्य के कहने पर उसने रावण को मुक्त किया। एक बार वह वन में जमदग्नि के आश्रम पर पहुँचा। जमदग्नि के पास कामधेनु थी अतः वह अपरिमिति वैभव के भोक्ता थे। ऐसा देखकर हैहयराज सहस्रबाहु अर्जुन ने कामधेनु का अपहरण कर लिया।

हैहयाधिपति अर्जुन ने जब जमदग्नि ऋषि की कामधेनु को बलपूर्वक ले आए, तब परशुराम जी आश्रम पर आये और उसकी दुष्टता का वृत्तान्त सुनकर वे अपना भयंकर फरसा, तरकस, ढाल, एवं धनुष लेकर बड़े वेग से उसके पीछे दौड़े। सहस्रबाहु अर्जुन अभी अपने नगर में प्रवेश कर ही रहा था कि उसने देखा परशुराम जी महाराज बड़े वेग से झपटे आ रहे हैं। उनकी बड़ी विलक्षण झाँकी थी। वे उन्हें देखते ही उसने गदा, खड्ग, बाण ऋष्टि शतघ्नी और शक्ति आदि आयुधों से सुसज्जित एवं हाथी, घोड़े रथ तथा पदातियों से युक्त अत्यन्त भयंकर सत्रह अक्षौहिणी सेना भेजी! भगवान् परशुराम ने अकेले ही सारी सेना को नष्ट कर दिया।

उसने एक साथ ही अपनी हजार भुजाओं से पाँच सौ धनुषों पर बाण चढ़ाये और परशुराम पर छोड़े परन्तु परशुराम तो समस्त शस्त्रधारियों के शिरोमणि ठहरे। उन्होंने अपने एक धनुष पर छोड़े हुए बाणों से ही एक साथ सबको काट डाला।[19] परीक्षित् विपक्षी वीरो के नाशक परशुराम जी ने बछड़े के साथ कामधेनु लौटा दी। वह बहुत दुःखी हो रही थी। उन्होंने उसे अपने आश्रम पर लाकर पिताजी को सौंप दिया। माहिष्मती में सहस्त्रबाहु ने तथा उन्होंने जो कुछ किया था सब अपने पिताजी तथा भाइयों को कह सुनाया। यह वृतांत सुनकर जमदग्नि दुःखी हुए। उन्होंने अपने पिता की यह शिक्षा भगवान् परशुराम ने जो आज्ञा

18· हैहयानामधिपतिरर्जुनः क्षत्रियर्षभः। दत्तं नारायणस्यांशमाराध्य परिकर्मभिः।।17।।
वाहून् दशशतं लेभे दुर्धर्षत्वमरातिषु। अव्याहतेन्द्रियोजःश्रीतेजोवीर्ययशोबलम्।।18।।
-श्रीमद्भागवत् नवम स्कन्ध अध्याय 15

कहकर स्वीकार की इसके बाद वे एक वर्ष तक तीर्थयात्रा करके अपने आश्रम पर लौट आए।[20]

जमदग्नि मुनि की आज्ञा से परशुराम ने माता के साथ सब भाइयों को भी मार डाला था। इसका कारण था वे अपने पिताजी के योग और तपस्या का प्रभाव भली-भाँति जानते थे।

सती रेणुका अपने हाथों अपनी छाती और सिर पीट-पीटकर ऊँचे स्वर में रोने लगी - "परशुराम! शीघ्र आओ। परशुराम जी ने बहुत दूर से माता का "हा राम"! यह करूण क्रन्दनसुन लिया। वे बड़ी शीघ्रता से आश्रम पर आये और वहां आकर देखा कि पिताजी मार डाले गये हैं। परीक्षित् उस समय परशुराम को बड़ा दुःख हुआ। साथ ही क्रोध, असहिष्णुता, मानसिक पीड़ा और शोक के वेग से अत्यन्त मूर्च्छित हो गये। हाय पिताजी आप तो बड़े महात्मा थे। पिताजी आप तो धर्म के सच्चे पुजारी थे। आप हम लोगों को छोड़कर स्वर्ग चले गये। इस प्रकार विलाप कर उन्होंने पिता का शरीर तीन भाइयों को सौंप दिया और स्वयं हाथ में फरसा उठाकर क्षत्रियों का संहार कर डालने का निश्चय किया।

19· अथार्जुनः पञ्चशतेषु बाहुभिर्धनुःषु बाणान् युगपत् स सन्दधे।
रामाय रामोऽस्त्रभृतां समग्रणीस्तान्येकधन्वेषुभिराच्छिनत् समम्।।33।।
पुनः स्वहस्तैरचलान् मृधेऽङ्घ्रिपानुत्क्षिप्य वेगादभिधावतो युधि।
भुजान कुठारेण कठोरनेमिना चिच्छेद रामः प्रसभं त्वहेरिव।।34।।
-श्रीमद्भागवत, नव स्कन्ध, अध्याय 15

20· कृत्तबाहोः शिरस्तस्य गिरेः श्रृङ्गमिवाहरत्। हते पितरि तत्पुत्रा अयुतं दुद्रुवुर्भयात्।35।
अग्निहोत्रीमुपावर्त्य सवत्सां परवीरहा। समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत्।।36।।
स्वकर्म तत्कृतं रामः पित्रे भ्रातृभ्य एव च। वर्णयामास तच्छ्रुत्वा जमदग्निरभाषत।।37।
राम राम महाबाहो भवान् पापमकारषीत्। अवधीन्नरदेवं यत् सर्वदेवमयं वृथा।।38।
वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयार्हणतां गताः। ययालोकगुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमगात् पदम्। 39।
क्षमया रोचते लक्ष्मीर्ब्राह्मी सौरी यथा प्रभा। क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः।।४०।
राज्ञो मूर्धाभिषिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद् गुरुः। तीर्थसंसेवया चांहो जह्यङ्गाच्युतचेतनः।
-श्रीमद्भागवत, नवम स्कन्ध, अध्याय 15

परीक्षित् कमललोचन जमदग्निनन्दन भगवान् परशुराम आगामी मन्वन्तर में सप्तर्षियों के मण्डल में रहकर वेदों का विस्तार करेंगे। वे आज भी किसी को किसी प्रकार का दण्ड न देते हुए शान्त चित्त से महेन्द्र पर्वत पर निवास करते हैं। वहाँ सिद्ध, गन्धर्व और चारण उनके चरित्र का मधुर स्वर से गान करते रहते हैं। सर्वशक्तिमान् विश्वात्मा भगवान् श्री हरि ने इस प्रकार भृगुवंशियों में अवतार ग्रहण करके पृथ्वी के भारभूत राजाओं का बहुत बार वध किया।[21]

महाभारत के एक अन्य आख्यान के अनुसार कर्ण के पास एक विजय नामक धनुष था जिसे साक्षात् विश्वकर्मा ने उसे इन्द्र के लिये बनाया था। इन्द्र ने उसे परशुराम को प्रदान किया और परशुराम ने उसे कर्ण को दिया था।[22] कर्ण ने परशुराम से ब्रह्मास्त्र आदि अनेक अस्त्र प्राप्त किये थे। कर्ण ब्राह्मण के वेश में परशुराम की सेवा किया था। एक बार गुरु परशुराम कर्ण की जांघ पर अपना सिर रखकर सो गये तभी उसकी जाँघ में एक कीड़े ने काट लिया। गुरु की निद्रा टूट न जाय इसलिए वह निश्चल भाव से पीड़ा सहता हुआ बैठा रहा तथा उसकी जंघा से खून बहता रहा। जब परशुराम की निद्रा टूटी तो वह सारी परिस्थिति को देखकर आश्चर्यचकित हो गये और कहा - "तुम ब्राह्मण नहीं हो सकते। सत्य बोलो तुम कौन हो ? कर्ण ने बताया कि वह सूतपुत्र है इस पर क्रुद्ध होकर परशुराम ने शाप दिया कि मृत्यु उपस्थित होने पर तुम ब्रह्मास्त्र के प्रयोग को भूल जाओगे, क्योंकि ब्राह्मणेतर लोगों में यह अस्त्र स्थिर नहीं रह सकता है।[23]

परशुराम कुण्ड

परशुराम नामक एक तीर्थस्थान है जिसमें पाँच कुण्ड बने हुए है। परशुराम ने सम्पूर्ण क्षत्रियों का संहार करके उन कुण्डों की स्थापना की थी तथा अपने पितरों से वर-प्राप्त किया था कि क्षत्रिय संहार के पाप से मुक्ति मिल जायेगी।[24]

21· श्रीमद्भागवत् नवम स्कन्ध अध्याय 15-16

22· भार्गवोऽपि ददौ दिव्ये धनुर्वेदं महात्ममुने।
कर्णाय पुरुषव्याघ्र सुप्रीतेनान्तरात्मना।। म0भा0 कर्णपर्व 34/157-158

23· महा0 कर्णपर्व, अ0 31/42-44, अ0 42/87-91, 72/30,

शिष्य

तप करके वापस लौटने पर मार्ग में शालग्राम शिखर पर शान्ता के पुत्र लकड़बग्घे से मुक्त कराकर यह उसे अपने साथ ले आये वही आगे चलकर "अकृतवर्ण" नाम से परशुराम का शिष्य प्रसिद्ध हुआ।

आश्रम

जमदग्नि का आश्रम नर्मदा नदी के तट पर विद्यमान था। वही परशुराम का भी आश्रम था।[25]

परशुराम द्वारा रेणुका वध से प्रसन्न होकर परशुराम ने स्वेच्छा कृत्य तथा अजेयता का वरदान दिया था।[26] परशुराम को ब्रह्मास्त्र, वैष्णव, रौद्र आदि अनेक अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा प्राप्त थी।[27]

कामधेनु हरण से सम्बन्धित एक अन्य का आख्यान प्राप्त होता है जो पहले के आख्यानों से किंचित भिन्न है। इसमें कहा गया है कि परशुराम अपने पिता जमदग्नि से अधिक पराक्रमी थे। उन्होंने तपश्चर्या को जाने से पूर्व अपनी कामधेनु को अपने पिता जमदग्नि के पास अमानत के रूप में रखी थी। कार्तवीर्य अर्जुन ने उसे जमदग्नि से छीनने का प्रयत्न किया। जिससे कामधेनु के शरीर से हजारों यवन उत्पन्न हुए और उन्होंने कार्तवीर्य का वध करने का प्रयत्न किया किन्तु वे असफल रहे। कार्तवीर्य कामधेनु को लेकर चला गया।

तपश्चर्या से वापस आने के बाद परशुराम ने कार्तवीर्य को मारने की प्रतिज्ञा की। कुछ पुराणों के अनुसार कार्तवीर्य वध की प्रतिज्ञा से जमदग्नि ने परशुराम को परावृत्त करने की कोशिश की। उसने कहा ब्राह्मणों के लिये यह कार्य अशोभनीय है। पुनः जमदग्नि ने इस कृत्य के लिए ब्रह्मा की तथा ब्रह्मा ने शंकर की सम्मति

---

24. म0भा0 वनपर्व 83/26-42
25. ब्रह्माण्ड0 3/23/26
26. विष्णु धर्म 1/36/11
27. विष्णु धर्म 1/50

लेने को कहा। सम्मति लेने के बाद यह सरस्वती नदी के किनारे अगस्त्य मुनि के पास आया तथा उसकी आज्ञा से गंगा के उद्गम के निकट जाकर इसने तपश्चर्या की इस प्रकार देवों का आशीर्वाद प्राप्त कर परशुराम नर्मदा के किनारे गये। वहाँ से कार्तवीर्य के पास दूत भेजकर युद्ध का आह्वान किया।

परशुराम की प्रतिज्ञा जानकर कार्तवीर्य अर्जुन ने भी युद्ध का आह्वान स्वीकार कर लिया। अनेक अक्षौहिणी सेनाओं के साथ युद्ध भूमि में गया। उसका परशुराम से नर्मदा नदी के तट पर मुकाबला हुआ। युद्ध के प्रारम्भ में कार्तवीर्य की ओर से मत्स्य राजा ने परशुराम पर प्रभावशाली आक्रमण कर दिया। सुलभता के साथ परशुराम ने उनका वध किया। वृहद्दल, सोमदत्त एवं विदर्भ, मिथिला, निषध तथा मगध आदि देश के राजाओं का भी परशुराम ने वध किया। सात अक्षौहिणी सैन्य तथा एक लाख क्षत्रियों के साथ आये हुए सूर्य वंशज सुचन्द्र को परशुराम ने भद्रकाली की कृपा से परास्त किया था। सुचन्द्र के पुत्र पुष्कराक्ष को भी इसने सिर से पैर तक काटकर मार डाला।

ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार बाद में कार्तवीर्य तथा उसके सौ पुत्रों के साथ परशुराम का युद्ध हुआ। प्रारम्भ में कार्तवीर्य ने परशुराम को चेतनाशून्य कर दिया था किन्तु बाद में परशुराम ने कार्तवीर्य का उसके पुत्रों और सेना सबका हनन कर दिया।[28] परशुराम ने कार्तवीर्य के सहस्रबाहुओं को काट डाला।[29] कार्तवीर्य के शूर, वृषास्य, वृष, शूरसेन तथा जयध्वज नामक पुत्रों ने पलायन किया। भागकर हिमालय की तराई में स्थित अरण्य में आश्रय लिया। परशुराम ने युद्ध समाप्त कर दिया। तदनन्तर परशुराम नर्मदा नदी में स्नान करके शिवजी के पास गये। वहाँ गणेश जी ने कहा कि शिवजी से मिलने का समय नहीं है फिर क्रुद्ध होकर फरसे से गणेश जी का दाँत तोड़ दिया।[30] जमदग्नि आश्रम आकर कार्तवीर्य वध का सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

---

28. ब्रह्माण्ड 3/39, 119
29. मा0ब्रो0 परि0 1 क्र0 8
30. ब्रह्माण्ड 3/42

मत्स्य के अनुसार क्षत्रिय हत्या के दोष हरण के लिये जमदग्नि ने परशुराम को बारह वर्ष तक तप करके प्रायश्चित करने को कहा। प्रायश्चित करने के लिये वे महेन्द्र पर्वत पर चले गये। मत्स्य के अनुसार ये कैलास पर्व पर गणेशा जी की आराधना करने गये।[31] जहां-जहां ये जाते थे क्षत्रिय डर कर छिप जाते थे तथा अन्य लोग इसकी जय जयकार करते थे।[32]

परशुराम तपश्चर्या मे निमग्न थे। तभी कार्तवीर्य के पुत्रों ने समाधिष्ट जमदग्नि ऋषि की हत्या कर दी तथा उसके सिर को लेकर भाग गये। ब्रह्माण्ड के अनुसार जमदग्नि का वध कार्तवीर्य के अमात्य चन्द्रगुप्त ने किया था।[33]

बारह वर्षो के बाद परशुराम के वापस आने पर रेणुका ने इक्कीस बार छाती पीटकर जमदग्नि के मृत्यु का वृत्तान्त सुनायी। क्रोधातुर परशुराम ने केवल हेहयो का ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण पृथ्वी से क्षत्रियों का वध करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की।

परशुराम की प्रतिज्ञा की यह कथा "रेणुका माहात्म्य" में कुछ भिन्न प्रकार से व्यक्त की गयी है। कार्तवीर्य जब जमदग्नि से मिलने उसके आश्रम में गया उसी समय कामधेनु की प्राप्ति के लिये जमदग्नि का वध कर दिया था। फिर अपने पिता का आर्ध्वदैहिक करने के लिए परशुराम ने एक डोली मे जमदग्नि का शव तथा रेणुका को बैठाकर "कान्यकुब्जाश्रम" से बाहर निकले। अनेक तीर्थस्थानों एवं अरण्यों को पार करते हुए दक्षिण मार्ग से पश्चिम घाट के मल्लकी नामक दत्तात्रेय क्षेत्र में प्रवेश किये। वहाँ कुछ समय विश्रामोपरान्त वे चलने वाले ही थे कि इतने में आकाशवाणी हुई कि "अपने पिता का अग्निसंस्कार यहीं करो।" आकाशवाणी के कथानानुसार परशुराम ने दत्तात्रेय की अनुमति से जमदग्नि का अंतिम संस्कार किया। वही रेणुका भी पति के साथ अग्नि में सती हो गयी।

31· मत्स्य0 36

32· ब्रह्माण्ड 3/44

33· ब्रह्माण्ड 3/29/14

कालान्तर में मातृ-पितृ प्रेम से विह्वल होकर परशुराम ने दोनों को पुकारा फिर दोनों उसी स्थान पर साक्षात् उपस्थित हो गये। इसी कारण उस स्थान को मातृतीर्थ (महाराष्ट्र में स्थित आधुनिक माठूर) नाम से जाना जाता है। इस मातृतीर्थ में रेणुका स्वयं वास करती है तथा यहाँ पर रेणुका ने परशुराम को आज्ञा दी कि तुम कार्तवीर्य का वध करो तथा पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन बना दो। नर्मदा के तट पर मारकण्डेय ऋषि का आश्रम था। वहाँ मारकण्डेय ऋषि का आशीर्वाद लेकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए आगे बढ़े।[34]

ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार प्रतिज्ञा निभाने के लिये परशुराम ने सबसे पहले अपने गुरु अगस्त्य का स्मरण किया। इनके अगस्त्य से उत्तम रथ एवं अस्त्र-शस्त्र प्राप्त हुआ। महसाह इनका सारथि बना।[35] रुद्र द्वारा प्रदान किया गया "अभित्रजित" शंख इसने फूँका। कार्तवीर्य एवं पुत्रों का वध करने के पश्चात् हैहय राजाओं का राजधानी माहिष्मती नगरी को जलाकर भस्म कर दिया हैहयों में केवल वीतिहोत्र बचे शेष हैहय मारे गये। हैहय विनाश के बाद महेन्द्र पर्वत पर लगातार दस वर्षों तक तपस्या करता था एवं दो वर्षों तक महेन्द्र से उतरकर नये पैदा हुए क्षत्रियों को निष्ठुरता से मार देता था।[36]

कालान्तर में गया जाकर चन्द्रपाद नामक स्थान पर परशुराम ने श्राद्ध किया।[37] इस प्रकार उपर्युक्त अद्भुत कर्म करके अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण किया। परशुराम ने पितरों की आज्ञानुसार प्रायश्चित[38] कर अकृतवर्ण के साथ सिद्धवन की ओर प्रस्थान किये। रथ, सारथि, धनुष आदि को छोड़कर पुनः ब्राह्मण धर्म स्वीकार किये। इसके उपरान्त सभी तीर्थों में स्नान कर पृथ्वी की तीन बार प्रदक्षिणा कर महेन्द्र पर्वत पर स्थाई निवास बनाकर रहने लगे।

---

34. रेणुकामहात्म्य 37/40
35. ब्रह्माण्ड0 3/46/14
36. ब्रह्माण्ड0 3/46
37. पद्म0 स्व0 26
38. म0भा0 2/4/12

परशुराम ने अपने महान् अश्वमेधयज्ञ में जिन ऋषियों को यज्ञाधिकार दिया उनमें काश्यप §उध्वर्यु§ गौतम §उद्‌गाता§, विश्वामित्र §होतृ§, तथा मारकण्डेय §ब्रह्मा§ थे। इस यज्ञ में भरद्वाज, अग्निवेश आदि ने भी भाग लिया। यज्ञोपरान्त महेन्द्र पर्वत को छोड़ समस्त पृथ्वी कश्यप को दे दी।[39] तदनन्तर "दीपप्रतिष्ठाख्य" नामक व्रत किया।[40]

उक्त घृणित व्यवहार के कारण लोगों के हृदय में परशुराम के प्रति तिरस्कार की भावना भर गयी। किंचित कालोपरान्त विश्वामित्र के पौत्र तथा रैमापुत्र परावसु ने भरी सभा में इसे चिढ़ाया और कहा "पृथ्वी निः क्षत्रिय करने की प्रतिज्ञा तुमने की। परन्तु ययाति के यज्ञ के लिए एकत्रिय प्रतर्दन प्रभृति लोग क्या क्षत्रिय नहीं है ? तुम मनचाही बकवास करते हो सत्य तो यह है कि चारो ओर फैले क्षत्रियों के भय से तुम वन में मुह छिपाकर बैठे हो। इससे सन्तप्त होकर परशुराम ने पुनः हथियार उठाया और निरपराधी जानकर छोड़े गये शेष क्षत्रियों का वध कर डाला। गर्भस्थ शिशुओं को भी नहीं छोड़ा।[41]

अभिमन्यु की मृत्यु से शोकग्रस्त युधिष्ठिर को यह कथा बताकर नारद ने शान्त किया।

परशुराम के वध से जो क्षत्रिय बच गये थे उनके नाम इस प्रकार हैः-

हैहय राजा वीतिहोत्र - यह अपने स्त्रियों के अन्तःपुर में छिपने से बच गये थे।

पौरव राजा ऋक्षवान् - पर्वत के रीछों में छिप गया था। अयोध्या का राजा सर्वकर्मन को पराशर ऋषि ने शूद्र के समान सेवा कर इसे बचाया। मगधराज वृहद्रथ को रक्षा गृध्रकूट पर्वत पर रहने वाले वंशो ने की। अंगराज चित्ररथ की रक्षा गौतम ने की। शिवो राजा गोपालि की रक्षा गायों ने की। प्रतर्दन पुत्र वत्स

---

39. म0भा0 शा0 49, अनु0 137/12

40. ब्रह्माण्ड 3/47

41. मा0द्रो0 परि0 क्र0 26

को गोवरसों ने बचाया। मरूत को समुद्र ने बचा लिया। कहा जाता है कि इन राजाओं के वंश के लोग क्षत्रिय होते हुए भी शिल्पकार तथा निम्न श्रेणी का व्यवसाय करने पर विवश हुए। इस प्रकार की फैली हुई अराजकता को समाप्त करने के लिए कश्यप ने चारो ओर से क्षत्रियों को ढूंढ़कर उनका राज्याभिषेक कर सुराज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया।[42]

बचे हुए क्षत्रियों की रक्षार्थ कश्यप ने परशुराम को दक्षिण सागर के पश्चिमी किनारे पर जाने के लिये कहा। समुद्र से "शूर्पारक" नामक प्रदेश प्राप्त कर परशुराम वहीं रहने लगे। "भृगुकच्छ" (भड़ोच" से लेकर कन्याकुमारी तक का पश्चिमी समुद्र तट का प्रदेश "परशुराम देश" या "शूर्पारक"नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ब्रह्माण्ड आदि पुराणों में "शूर्पारक" प्रदेश की स्थापना के कुछ अन्य कारण भी दिये गये हैं। प्रथम, सगर पुत्रों द्वारा गंगा नदी के खोदे जाने पर, "गोकर्ण" प्रदेश का समुद्र में डूब जाने का भय उत्पन्न हो गया। वहाँ पर रहने वाले ब्राह्मणों ने परशुराम से प्रार्थना की। तब गोकर्ण वासियों के लिये नयी बस्ती बसाने के उद्देश्य से परशुराम ने समुद्र को पीछे हटाकर दक्षिणोत्तर चार सौ योजन लम्बे शूर्पारक देश की स्थापना की।[43]

फिर भी परशुराम हैहयों का सम्पूर्ण विनाश नहीं कर पाये। हैहय लोग "तालजंघ" सामूहिक नाम से पुनः एकत्र हुए। तालजंघों में पाँच उपजातियों का समावेश था, जिनके नाम थे - वीत होत्र, शर्यात, भोज, अवन्ति, कुण्डीरक[44]। उन लोगों ने कान्यकुब्ज, कोशल, काशी आदि देशों पर बार-बार आक्रमण किये तथा कान्यकुब्ज राज्य का सम्पूर्ण विनाश किया।

कुछ और भी आख्यान प्राप्त होते हैं जिनके अनुसार सौभपति शाल्व के हाथों परशुराम पराजित हुए। फिर कृष्ण ने शाल्व का वध किये।[45] सैंहिकेय

42· म0शां0 49/57-60
43· ब्रह्माण्ड0 3/56/51-57
44· मत्स्य0 43/48-49
45· म0स0पारे0 1 क्र0 29 पंक्ति 474-485

शाल्व का वध भी कृष्ण ने परशुराम के कहने पर किया था।[46] सैंहिकेय शाल्व के वध के बाद शंकर ने परशुराम को शंकर गीता का ज्ञान कराया।[47]

हरिवंश0 के अनुसार जरासन्ध के आक्रमण के भय से कृष्ण तथा बलराम राजधानी के लिये सुरक्षित नये स्थान ढूढ़ रहे थे तभी उनकी भेंट परशुराम से हो गयी। परशुराम ने उन्हें गोमंत पर्वत पर रहकर जरासंध से दुर्ग युद्ध करने की सलाह दी।[48]

महेन्द्र पर्वत पर परशुराम केवल अष्टमी तथा चतुर्दशी के दिन ही अभ्यागतों से मिलते थे।[49] परशुराम शूर्पारक में ही रहने लगे।[50] भीष्माचार्य को परशुराम ने अस्त्रविद्या का ज्ञान दिया था। भीष्म को अम्बा का वरण करवाने के लिये दोनो गुरू शिष्य में एक माह तक युद्ध चलता रहा। और परशुराम ने भीष्म को पराजित किया।[51] क्षत्रियों की हिंसा करने के लिये भीष्म ने परशुराम को मुँहतोड़ जबाब दिया था।

परशुराम सम्बन्धी उपर्युक्त आख्यानों में कहीं-कहीं अतिश्योक्ति प्रतीत होती हैं। परशुराम एवं हैहयों का युद्ध प्राचीन भारतीय इतिहास का पहला महायुद्ध कहा जाता है। रामायण और महाभारत में परशुराम के प्राप्त निर्देश कुछ अनैतिहासिक प्रतीत होते हैं क्योंकि रामायण के राम दाशरथि से परशुराम बहुत पहले हुए थे। दोनों में कालविपर्यास है। इस कालविपर्यास निवारण महाभारत एवं पुराणों में परशुराम को दीर्घ जीवी कहकर किया गया है। अतः अनैतिहासिक नहीं कहा जा सकता है क्योंकि ऋषियों का चिरञ्जीवी होना सर्वमान्य है।

परशुराम के जीवन से सम्बन्धित इन घटनाओं के अतिरिक्त इनसे जुड़े हुए अनेक स्थानों का भी उल्लेख हुआ है उनमें से कुछ इस प्रकार है - (1) जमदग्नि

46· ह0वं0 2/44
47· विष्णुधर्म 1/52/65
48· ह0वं0 2/39
49· म0वं0 115/6
50· ब्रह्माण्ड0 3/58
51· म0उ0 186/8

आश्रम (पञ्चतीर्थ) जो परशुराम के जन्म स्थान के साथ-साथ सहस्रार्जुन का वध स्थान भी है। यह उत्तर प्रदेश में मेरठ के पास हिंडन (प्राचीन "हर") नदी के तट पर है यहाँ पाँच नदियों का संगम है। इसलिये "पञ्चतीर्थ" कहा जाता है। यहाँ "परशुरामेश्वर" नामक शिव मन्दिर भी है।

(2) **मातृतीर्थ** - महाराष्ट्र मे स्थित आधुनिक "माहूर" ग्राम तथा रेणुका दहन स्थल है।

(3) **महेन्द्र पर्वत**, (4) **शूर्परक** - बम्बई के निकट स्थित आधुनिक "सोपारा" ग्राम परशुराम की तपस्यास्थल है। (5) **गोकर्ण क्षेत्र** (6) **जंबुवन** - राजस्थान में कोटा के पास चर्मण्वती नदी के निकट स्थित आधुनिक "केशवदेवराय" पाठन ग्राम। परशुराम का तपस्थल। (7) **परशुराम तीर्थ** - परशुराम का तपस्या स्थल। नर्मदा नदी के मुख में स्थित आधुनिक "लोहात्या" ग्राम। (8) **परशुराम ताल** - पंजाब में शिमला के निकट रेणुका तीर्थ पर स्थित पवित्र तालाब। परशुराम के पवित्र स्थान यहाँ के पर्वत का नाम "जमदग्नि पर्वत" है।

(9) **रेणुकागिरि** - अलवार-रेवाडी रेलमार्ग पर खेरथल से पाँच मील दूर स्थित आधुनिक "रैनागिरि" ग्राम परशुराम का आश्रम स्थल।

(10) **चिपडूण** - महाराष्ट्र में स्थित आधुनिक चिपडूण ग्राम। परशुराम का यहाँ एक मन्दिर है।

(11) **राम ह्रद** - कुरुक्षेत्र की सीमा में स्थित एक तीर्थस्थान। पाँच कुण्ड इसे समंतपंचक भी कहते हैं।[52]

<u>परशुराम जयन्ती</u>

वैशाख शुक्ल तृतीया के दिन रात्रि के प्रथम प्रहर में परशुराम जयन्ती का आयोजन किया जाता है।[53] यह समारोह अधिकांशतः दक्षिणी भारत में मनाया

52· म0व0 81/22-33

53· धर्मसिन्धु पृ0 9

जाता है। जयन्तीव्रत सम्बन्धी पूजा की जाती है। इस समारोह में निम्नलिखित मन्त्र के साथ परशुराम को अर्घ्य प्रदान किया जाता है -

जमदग्निसुतो वीरक्षत्रियान्तकरः प्रभो।
ग्रहणर्घ्यं मया दत्तं कृपया परमेश्वर।।

ग्रन्थ

परशुराम कल्पसूत्र नामक एक तान्त्रिक सम्प्रदाय का ग्रन्थ परशुराम के नाम से प्रसिद्ध है। "परशुराम प्रताप" नामक एक और ग्रन्थ उपलब्ध होता है।

निष्कर्षतः देखा जाता है कि विकारयुक्त माता का वध करके जहाँ एक ओर परशुराम ने वीरता का प्रदर्शन किया वहीं दूसरी ओर पितृ-भक्ति को दर्शाया है। माता के बध से यह नहीं कहा जा सकता है कि परशुराम में मातृ प्रेम नहीं था, इन्होंने पिता के प्रसन्न होने पर सबसे पहले अपनी माता का पुनर्जीवन मांगा साथ उस घटना की विस्मृति भी जिससे माँ और पुत्र के बीच किसी प्रकार भेद न उत्पन्न हो जाय। भ्रातृ प्रेम भी इनमें प्रचुर मात्रा में पाया जाता है क्योंकि भाइयों को भी पिता से शाप मुक्त करने की प्रार्थना की थी। अतः परशुराम वीर, पिता की आज्ञा का पालन करने वाले, माता के साथ-साथ भाइयों से भी प्रगाढ़ प्रेम करने वाले थे।

शिव के परम उपासक परशुराम का उल्लेख रामाश्रित प्रायः सभी नाटकों में उस स्थल पर हुआ है जहाँ राम शिव का धनुष तोड़ते है। महावीर चरितम्, प्रसन्नराघव, अनर्घराघव, हनुमन्ननाटक, बाल रामायण एवं कर्णभार में इनका सजीव चित्रण किया गया है।

महावीर चरितम्

इसके द्वितीय तृतीय एवं चतुर्थ अंक में परशुराम का चित्रण हुआ है। परशुराम पौराणिक दृष्टि से क्रोध की साक्षात् मूर्ति है। महावीर चरित में भी परशुराम उग्रता, क्रोधा और औद्दत्य के पर्याय है। वे क्षत्रियहन्ता तो है ही रावण भी उनसे

पराजित हुआ है। राम की प्रतिद्वन्दिता में आने वाले परशुराम में किसी वीर के उपयुक्त सभी गुण विद्यमान है। परशुराम की कीर्ति गाथाएँ लोक-कथाओं की भाँति सभी के मुख पर है[54] अपने इन गुणों के कारण उनका चरित्र ऋग्वेद के महान् नायक इन्द्र पर्याप्त निकट है। परशुराम का यह रूप तो उनकी पौराणिक ख्याति पर आधृत है। इस रूपक में उनका चरित्र इस प्रकार का है - वे विकत्थन है, वे उद्धत है, दर्प से संपृक्त है, वे वीर है, अर्थात् राम की वीरता के प्रशंसक होते हुए भी उसके संहार में समर्पित है। गुरू भक्ति चाहे शिवधनु के संदर्भ में हो अथवा वसिष्ठ के प्रति, उससे वे ओत-प्रोत है। इस सन्दर्भ में सबसे बड़ी विशेषता है उत्साहपूर्वक उनका रंगमञ्चपर प्रवेश और उत्साहपूर्वक निर्गमन। वे राम को जिस उत्साह के साथ निगृहीत करने आते हैं - राम से स्वयं निगृहीत होकर वे राम को अपना धनुष भी देने में संकोच नहीं करते, यह उनकी वीरता और उनके प्रायश्चित के अनुकूल है।

परशुराम के चरित्र में गर्व का मिश्रण है, क्रोध मूलक है परशुराम में शिव और वसिष्ठ के प्रति व्यक्त श्रद्धा उनके गर्व के साथ प्रतिष्ठित है।

परशुराम का सही मूल्यांकन वसिष्ठ ही करते हैं। वे सोचते है - गुणो से महान होते हुए भी स्वभाव से यह असुर है और सभी प्रकार के उत्कर्ष के कारण इसका दर्प भी बढ़ गया है।[55] जामदग्नि के क्रोध के मूल में जो जातिगत घृणा है वह उनका कलंक है पर अपने को क्षत्रियहन्ता कहलाने में उन्हें गर्व का अनुभव होता है।[57] उनके गर्व से विश्वामित्र भी रोमाञ्चित हो उठते हैं।[58] राम को

54· महावीर चरित 2/13, 2/16, 2/17, 2/18, 2/19, 2/34, 2/36, 3/37, 3/45

55· वसिष्ठ §स्वगतम्§ कामं गुणैर्महानेष प्रकृत्या पुनरासुरः।
उत्कर्षात्सर्वतोवृत्तेः सर्वाकारं हि दृप्यति। महावीर 3·12

56· जनक के प्रति "सद्वृत एषः तथापि क्षत्रिय इति शिरः शूलमुत्कोपयति।
-महावीर द्वितीय अंक, पृ0 97

57· महावीर 2·29, 48, 3·14, 24, 28, 37, 41, 44, 48

58· महावीर 3·10

उनका गर्वपूर्ण घोषणाओं में अत्युक्ति लगती है। राम, वसिष्ठ, विश्वामित्र सभी के कान उनकी गर्वोक्तियों से पक गए हैं फिर भी सभी उनसे भयभीत है, अतः उनकी प्रतिक्रियाएँ स्वगत कथनों के रूप में ही अभिव्यक्ति पाती है।

संक्षेप में उनकी विकल्पनाएँ[60] हो अथवा गर्व[61] अथवा क्रोध[62] अथवा वीरता[63] सभी का पर्यवसान राम की विजय में और परशुराम के दर्प के विखण्डन में होता है।[64] अन्त में अपने उद्दण्ड और उद्धत स्वभाव के कारण वसिष्ठ विश्वामित्र प्रभृति महर्षियों को अपमानित करने के कारण तथा जनक जैसे तथा दशरथ जैसे लोकविश्रुत राजा को तिरस्कृत करने के कारण, आत्मग्लानि का अनुभव करते हुए इस पाप की भावना का प्रायश्चित करते हैं।[65]

अपने उपर्युक्त गुणों के आधार पर परशुराम एक सशक्त प्रतिद्वन्दी है। परशुराम राम से पराजित होकर प्रायश्चित करते है और वह भी उत्साहपूर्वक। अन्त में अपने धनुष का दान करते समय[66] वे उत्साहपूर्वक कहते हैं कि इसका उपयोग ऋषियों को सताने वाले राक्षसों के विनाश के लिए है।[67]

प्रसन्न राघव

चतुर्थ अंक में नेपथ्य से परशुराम का आगमन होता है। परशुराम का आमन नाटक के वस्तु विन्यास का वह झंझावत है जिसने धर्नुयज्ञ में उपस्थित महान् क्षत्रिय योद्धाओं का सहसा झकझोर डाला। उनके देदीप्यमान तेजोदीप को बुझा दिया। वे सब सहमे हुए कोने में दुबक गये। भगवान् परशुराम का परशु, दुष्ट

59· महावीर0 द्वितीय अंक पृ0 91
60· महावीर 2·28, 2·33, 34, 37, 48
61· महावीर0 2·47, 3·14, 24, 36
62· महावीर0 पृ0 101, 118, 2·46, 49, 3·28, 29, 32, 40, 41
63· महावीर, 2·32, 37, 49, 3·3, 6
64· महावीर, 4·22, 4·24

एवं अभिमानी राजाओं के लिए यमपुरी का द्वार है। उनको भगवान् शंकर से धर्नुविद्या सीखने का सौभाग्य प्राप्त है। अपने गुरु का तनिक भी अपमान उन्हें सहन नहीं है। शिव धनुष को तोड़ने वाला या चढ़ाने वाले के साथ अपनी कन्या सीता के विवाह की प्रतिज्ञा जनक ने की है। यह सुनते ही परशुराम ने अपने गुरु शंकर का इसमें अपमान समझ कर क्रोधाभिभूत हो जनक के पास तत्काल संदेश भेजा। विदेहराज किसी राजकुमार को अपनी कन्या दे दीजिये और लम्बी आयु प्राप्त कीजिये। हमारे लिए प्रिय शंकर के धनुष को खींचने की चर्चा के पाप से हट जाइये। अन्यथा हमारे परशु का लक्ष्य बनकर तुम्हें उसका प्रायश्चित करना होगा।[68] जनक परशुराम के संदेश की उपेक्षा कर धनुष यज्ञ के आयोजन से विरत नहीं हुए। परशुराम क्रोध के कारण लाल दृष्टिपातों से अपने परशु की धार को सम्प्रति भी क्षत्रियों की रुधिर सरिता में स्नान सा कराते हुए गर्जन करती हुई प्रत्यञ्चा वाले धनुष को लिए उस क्षत्रिय समुदाय में पहुँच गये।[69]

शिवधनुष टूट चुका ऐसा जान कर उनका क्रोध सीमा पार कर गया। राम के साथ बात करते हुए सभी उपस्थित क्षत्रिय राजाओं को उन्होंने ललकारा बाणान् रिपुप्राणहरान्मदीयान् सर्वेऽपि यूयं सहिताः सहध्वम्" भगवान् राम ब्राह्मण जाति की स्तुति कर उन्हें शान्त करने के प्रयास में संलग्न है किन्तु दूसरी ओर लक्ष्मण अपने व्यङ्ग्य वचनों से उन्हें पीड़ित कर रहे हैं। वे आवेश में विश्वामित्र की भी प्रतिष्ठा के विरुद्ध निन्दा व्यञ्जक वचन कहने में नही हिचके। अन्त में यह विश्वास हो जाने पर कि राम नारायण के अवतार है वे प्रसन्न हो राम को पुनः अनेक आशीर्वाद देकर तपश्चरणार्थ निकल गये।

परशुराम अत्यन्त पराक्रमी तथा परम शिवभक्त हैं। उनका रूप अत्याकर्षक है। क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों के चिन्ह धारण करने के कारण वीर और शान्त रस के विकार प्रतीत होते है।[70]

68· प्र0 3/38 69· प्र0 4/2

कार्तवीर्य की भुजाओं का छेदन करना, क्रौंचपर्वत शिखर का वेधन करना, समुद्र के कुछ भाग को अपने बाण से सुखाकर भूमि खण्ड के रूप में परिणत करना, कार्तिकेय को परास्त करना, नर्मदा प्रवाह को विरूद्ध करना तथा संग्राम में रावण को बद्ध करना आदि घटनाएँ उनके पराक्रम की द्योतक हैं।[71] काश्यप को सकल पृथ्वी देकर वे दानवीरता का परिचय देते हैं। राम के शब्दों में परशुराम विस्मयशीलों के शिरोमणि हैं।

अनर्घराघव

अनर्घराघव के चतुर्थ अंक में परशुराम का प्रवेश होता है -नेपथ्य में ही उनका उद्घोष सुनाई पड़ता है -

आजन्मब्रह्मचारी पृथुलभुजशिलास्तम्भविभ्राजमान-
ज्याघातश्रेणिसंज्ञान्तरितवसुमतीचक्रजैत्रप्तशस्तिः।
वक्षः पीठे घनास्त्रवणकिणकठिने संक्ष्णुवानः पृष्त्का
न्प्राप्तो राजन्यगोष्ठीवनगजमृगयाकौतुकी जामदग्न्यः[72]

आजन्म ब्रह्मचारी विशाल बाहु पर वर्तमान ज्याघात परम्परा के रूप में विश्वविजय प्रशस्ति को धारण करने वाले, अस्त्र ब्रणचिन्ह से युक्त वक्षः स्थल में बाणों को धारण करने वाले तथा क्षत्रिय समुदाय रूप मृगवर्य की मृगया के कौतुकी परशुराम आ रहे है।

एष स्त्रैण कपोलकुङ्कमलिपिस्तेयातिभीरो भुजे
विभ्राणश्चतुरन्तराजविजयि ज्यानादरौद्रं धनुः।
तूणावेव पुनस्तरां द्रष्यति स्वादन्तरस्मात्परा
दाकृष्टैः कुशचरितन्तुभिरभिकृद्धो मुनिर्भार्गवः।।[73]

71· प्रसन्नराघव 4/17
72· अनर्घ राघव 4/18
73· अनर्घ राघव 4/19

ब्रह्मचारी होने से स्त्रियों के कपोल पर वर्तमान कुङ्कुमलिपि के स्तेय में डरने वाले अपने बाहु पर सागर पर्यन्त राजमण्डल के विजयी धनुष को धारण करने वाले तथा अति कुपित यह परशुराम अपने उत्तरीय वस्त्र के के कुश चीरात्मक सूत्रों द्वारा अपने तूणीरों को दृढ़ कर रहे हैं।

उनका क्षात्रिय विरोध तथा वीरभाव इतना प्रकट है कि वह राम की बातों पर ध्यान तक नहीं देना चाहते वे अपनी ही बात कहे जाते हैं। परशुराम को ब्राह्मणत्व की एवं तपस्या तथा क्षत्रियोचित वीरता का भी समान अभिमान है। शतानंद की बातों से उनको चिढ़ सी होती है।[74]

हनुमन्ननाटक

हनुमन्ननाटक के प्रथम अंक में परशुराम का प्रवेश होता है। जनकनन्दिनी के विवाहार्थ शिवजी के विशाल धनुष की प्रत्यञ्चा का प्रचण्ड शब्द सुनकर जमदग्नि के पुत्र परशुराम जी आए है।[75] परशुराम के पीठ पर दो तरकस बंधे है जिनमें कंकपत्र भूषित बाण भरे है, वक्षस्थल पवित्र भस्म से दीप्त हो रहा है और कटि में कृष्णमृगक्षाला है। रक्ताम्बर धारण किए एक हाथ में जपमाला और दूसरे में धनुष तथं पिप्पल दण्ड लिए आजन्म ब्रह्मचारी का वेष सौम्य और भयावह है।[76] अपने पितृ कुल के अनुरूप यज्ञोपवीत धारण किए और क्षत्रिया माता के अनुसार विशाल धनुष हाथ में लिए हुए परशुराम ऐसे प्रतीत होते है जैसे चन्द्रमा को साथ लिए सूर्यदेव या चन्दन द्रुम के साथ सर्प हो।[77] आजन्म ब्रह्मचर्य के कारण गठीला

---

74. अनर्घ राघव 4/43

75. जामदग्न्यस्त्रुटयदभ्रेषधनुः कोलाहलामर्षमूर्च्छितः प्रलयमारु लोद्भूतकल्यान्तानल वत्प्रदीप्तरोषानलः। -हनुमान्ननाटक प्रथम अंक

76. हनुमन्नाटक 1/29

77. हनुमन्ननाटक 1/30

शरीर मांसल भुजदण्ड, जिन पर धनुष की प्रत्यन्चा की रगड़ के खरोंच उभरे हुए ऐसा लग रहा है जैसे त्रिभुवन विजय की प्रशस्ति लिखी हो। पीठ और वक्षस्थल पर शस्त्रास्त्रों के घाव के असंख्य ठेले जिन पर बाण पिजाये जाते है। राज समाज रूपी बनैले हाथियों के शिकार के प्रणयी परशुराम है।[78] परशुराम ने सहस्त्रार्जुन कंठ का छेदन अपने कुठार से किया था। परशुराम ने क्रोधवेश में क्षत्रिय डिम्भों रूधिर से निकाल कर निर्दयता पूर्वक वध किया तथा आवालबृद्धवनिता क्षत्रियों को इक्कीस बार यमालय पहुँचा कर उनके रक्त से पितरों का तर्पण किया ओर अपने क्रोध को शान्त किया।[79]

जमदग्नि ऋषि से परशुराम की उत्पत्ति हुई पिनाकधारी शिव परशुराम के दीक्षा गुरू और वाणी द्वारा अवर्णनीय वीरता का कर्म द्वारा प्रदर्शन ओर त्याग ऐसा कि निष्कपट भाव से समग्र पृथ्वी का दान ब्राह्मणों को दिया।[80] राम को अवतार समझकर जमदग्निकुमार परशुराम ने उनका गाढालिंगन किया और अपना महत्तेज से क्षत्रिय वध से निवृत्त हुए।[81]

कर्णभार

कर्ण शलय से अपनी अस्त्र प्राप्ति के वृत्तान्त का वर्णन करता है कि पहले मै जामदग्न्य परशुराम के पास अस्त्र लाभ की आकांक्षा से गया। क्षत्रियान्तक भगवान् परशुराम दिव्यवर्चस् से देदीप्यमान् थे। उन्हें प्रणाम कर मैं चुपचाप खड़ा हो गया। मुझे खड़ा देख कर परशुराम ने कहा तुम कौन हो ? और किस प्रयोजन से यहाँ आये हो ? मैने कहा कि सम्पूर्ण अस्त्रों की शिक्षा प्राप्त करने मैं आपके पास आया

78· हनुमन्ननाटक 1/31
79· हनुमन्ननाटक 1/36
80· हनुमन्ननाटक 1/53
81· हनुमन्ननाटक 1/55

हूँ इस पर उन्होंने कहा कि - मै केवल ब्राह्मणों को उपदेश करता हूँ क्षत्रियों को नहीं। तब मैने कहा दिया मै क्षत्रिय नहीं हूँ। ओर उन्होंने उपदेश देना प्रारम्भ किया। कुछ समय बीतने पर गुरूजी के समित्कुशाहरण जाने पर मैं भी उनके साथ चला गया। गुरूजी परिभ्रमण से क्षान्त हो गये थे और मेरी गोद में सिर रखकर सो गये। देव दुर्विपाक से वज्रमुख[82] नामक क्रीड़ा मेरी दोनों जांघों में कुरेदने लगा। जिसके काटने से रुधिर निकलने लगा और उस रुधिर के स्पर्श से परशुराम जी जाग उठे। जागते ही क्रोध से लाल हो गये और मुझे क्षत्रिय समझकर शाप दे दिया जा समय पड़ने पर तेरे शस्त्र काम न आवेंगे।

बालरामायण

बालरामायण के द्वितीय अंक में परशुराम का चित्रण किया गया है। इस नाटक में रावण व परशुराम का तीव्र व कटु विवाद युद्ध की स्थिति में पहुँच जाता है। रावण युद्ध के लिए पुष्पक विमान को बुलाकर उस पर आरूढ़ हो जाते हैं।[83] पर परशुराम पदाति ही युद्ध करते है। दोनों तरफ से आग्नेयास्त्र वारणस्त्र, पंचाननास्त्र आदि दिव्य अस्त्र चलाये जाते है।[84] आग्नेयशास्त्र से सभी ओर आग लग जाती है, वारणस्त्र से सर्वत्र हाथी दिखाई देने लगते है और पंचावनास्त्र से सभी ओर सिंह प्रकट होकर हाथियों पर झपट पड़ते है। सुरांगानाएं अपने विमानें पर चढ़कर इस भयंकर युद्ध को देखती है।[85] किन्तु यह युद्ध अधिक समय नही चलता। भगवान् शिव के द्वारा प्रेषित पोलस्त्य ऋषिक व भृंगारिटि के हस्तक्षेप से युद्ध बीच में ही रोक दिया जाता है।[86]

परशुराम राम की शक्ति परखने के लिए उन्हें वैष्णव धनुष देते हैं। लक्ष्मण राम से कहते है कि आप शिव का धनुष तोड़ चुके है। अतः यह धनुष मुझे चढ़ाने दीजिए। अनन्तर लक्ष्मण खेल ही खेल में वैष्णव धनुष को तोड़ देते है।[87] रामायण के अनुसार वैष्णव धनुष भी राम ने चढ़ाया था लक्ष्मण ने नहीं।[88]

---

82. महाभारम में इस कीड़े का नाम अलर्क है।
83. बालरामायण, 2 पृ0 94
84. वही, 2, 56, 58, 59.
85. वही, 2, 56
86. वही, 2/60

नारद

§नरस्य धर्मो नारं, तत् ददाति - दा+क§ यह एक प्रसिद्ध देवर्षि का नाम है। दिव्य ऋषि, सन्त, महात्मा जिसने देवत्व प्राप्त किया। देवर्षि नारद ब्रह्मा के दस मानसपुत्रों में से एक हैं। ये ब्रह्मा की जंघा से उत्पन्न हुए।[1] इन्हें देवों के सन्देशवाहक के रूप में चित्रित किया गया है जो मनुष्यों को देवों का सन्देश देते तथा मनुष्यों का सन्देश देवों तक पहुँचाते थे। यह देव और मनुष्यों में कलह के बीज बोने के कारण "कलिप्रिय" कहलाते थे। कहा जाता है कि वीणा के आविष्कार नारद ही थे।

नारद यज्ञवेत्ता तथा वैदिक द्रष्टा भी जाने जाते हैं।[2] यह राजा हरिश्चन्द्र के पुरोहित थे। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार हरिश्चन्द्र को पुरुषमेध करने की सलाह नारद ने ही दी थी।[3] वशा धेनु का मांस ब्राह्मणों के लिये भक्ष्य है या अभक्ष्य इस सम्बन्ध में इनका नामोल्लेख अथर्ववेद में कई बार हुआ है।

यह वृहस्पति के शिष्य थे।[4] यद्यपि समस्त विद्याएँ नारद ने वृहस्पति से प्राप्त की थी तथापि "ब्रह्मज्ञान" की प्राप्ति के लिये, यह सनत्कुमार के पास गये थे।[5]

जन्म

नारद ब्रह्मा जी के मानस पुत्र तथा विष्णु के तीसरे अवतार माने जाते हैं।[6] ये यह नटनारायणों के उपासक थे।[6] दर्शन तथा जिज्ञासा की शान्ति के लिये यह उनके पास सदा जाते थे।[8] चाक्षुष मन्वन्तर के सप्तर्षियों में इनकी गणना की गयी है।

1· भाग0 3/12/28
2· अथर्व0 5/19/9, 12/4/16, 24, 41, मै0सं0 1/5/8
3· ऐ0ब्रा0 7/13
4· सां0 ब्रा0 3/9
5· छां0 उ0 1/1

नारद की शरीरकान्ति श्वेत एवं तेजस्वी थी। इन्द्र द्वारा दिया गये सफेद मृदु एवं धूत वस्त्र को ये धारण करते थे। कानों में स्वर्णकुण्डल कन्धों पर वीणा सदा शोभायमान रहती थी तथा सिर पर चोटी भी रखते थे।

शिष्य

सोमक साहदेव नामक अपने शिष्य को नारद "सोमविद्या" की शिक्षा प्रदान की थी।[9] पर्वत नामक आचार्य के साथ मिलकर नारद ने आत्मष्ठ्य एवं युधाश्रौष्टि राजाओं को ऐन्द्रमहाभिषेक किया था।[10]

वाल्मीकीय रामायण में नारद के सम्बन्ध में कहा गया है कि जब त्रिलोक स्वामी ब्रह्मा जी ने ब्रह्मर्षि वाल्मीकि को रामकथा लौकिक छन्दों में लिखने को प्रेरित किया तो भगवान् वाल्मीकि ने सदा तप एवं स्वाध्याय में निरत, विद्वानों में श्रेष्ठ, मुनि श्रेष्ठ देवर्षि नारद से पूछा कि अधुना इस लोक में निरत, विद्वानों में श्रेष्ठ कौन व्यक्ति गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी, सत्यव्रती, चरित्रवान, लोकोपकारी, विद्वान, समर्थ, प्रियदर्शन, आत्मवेत्ता, क्रोधजयी, तेजस्वी, असूया रहित, त्रिलोकजयी है ? महर्षि वाल्मीकि के इस वचन को सुनकर त्रिकालज्ञ भगवान् नारद ने बड़ी प्रसन्नता से इन सम्पूर्ण गुणों से युक्त, इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न दशरथनन्दन भगवान् राम को बताया। तत्पश्चात् महर्षि वाल्मीकि से पूजित हो महामुनि नारद स्वर्गलोक को प्रस्थान कर गये।[11]

---

6. भा0 1/3/8, मत्स्य0 3/6-8
7. भा0 1/3
8. म0शा0 3/21/13-14
9. ऐ0ब्रा0 7/34
10. ऐ0ब्रा0 8/21
11. वा0रा0, बालकाण्ड, प्रथम सर्ग

यहीं एक स्थल पर महाबली रावण जब अपने अत्याचार से सम्पूर्ण पृथ्वी को सन्तप्त कर रहा था, तब दयानिधि देवर्षि नारद ने कहा - "विश्रवा के यशस्वी पुत्र महापराक्रमी दशग्रीव मै तुम्हारे इस महान् पराक्रम से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो। तात तुम देवता, दैत्य, दानव, सिद्ध गन्धर्व सबके द्वारा अबध्य हो। फिर इस पृथ्वी पर तुम जो अत्यन्त बलहीन मनुष्यों का वध कर रहे हो, यह तुम्हारे लिये लज्जास्पद है। रावण ये पार्थिव मनुष्य तो स्वय मृत्यु के वशीभूत है, इन मरणशील मनुष्यों का वध करने में तुम अपनी शक्ति व्यर्थ ही नष्ट कर रहे हो। जो अपने कल्याण के विषय में मोहग्रस्त है, सदैव महान् विपत्तियों से घिरा रहता है, जो वृद्धावस्था और सैकड़ो व्याधियों से घिरा हुआ है ऐसे निष्प्राण मनुष्यलोक का वध कौन बुद्धिमान् करना चाहेगा ? पुलस्त्य के पौत महायशस्वी दशानन भूख प्यास से व्याकुल, जराग्रस्त, विषाद और शोक से मतिभ्रष्ट इस मनुष्यलोक का विनाश तुम मत करो। यह तो स्वयं विनाश को प्राप्त होने वाला है। बुद्धिमान रावण इस मर्त्यलोक में कहीं तो यह देखा जाता हैकि लोग नृत्य, गीत, वाद्य के द्वारा आनन्द मना रहे हैं और दूसरी ओर नेत्रों से आँसुओं की धार बहाते हुए रो रहे हैं। यह सांसारिक मनुष्य माता, पिता, पुत्र, पत्नी एवं बन्धु-बान्धवों के प्रेम में जकड़ा हुआ मोहित हो जाता है और अपने वास्तविक दुःख को भूल जाता है। अतएव सौम्य दुःख, व्याधि से मूढ़ इस मर्त्यलोक को जीतना मात्र पिष्टपेषण है। मर्त्यलोकवासी सम्पूर्ण जन मर कर यमलोक जाएँगे, यह निश्चित है। अतएव तुम यमराज पर ही विजय प्राप्त करो। यमराज के पराजित ही माना जायेगा। शत्रुसूदन दशग्रीव ! तुम इस समय जिस आकाशमार्ग पर आरूढ़ हो वह यमपुरी को ही जाता है। नारद के वचनों को सुनकर रावण ने हँसकर कहा - "मुनिश्रेष्ठ मैनें पहले ही प्रतिज्ञा कर रखी है कि मैं चारों दिग्पालों पर विजय प्राप्त करूँगा तो अब मैं यमराज को पराजित करने के लिए शीघ्र ही प्रस्थान करता हूँ। मैं प्राणियों को अपरिमित कष्ट देने वाले यमराज का आज ही वध कर डालूँगा।" ऐसा कहकर दशग्रीव के चले जाने पर देवर्षि (नारद) ने विचार किया - "आयु क्षीण होने पर इन्द्र सहित सम्पूर्ण चराचर एवं तीनों लोक जिस यमराज द्वारा पीड़ित होते हैं वह काल किस प्रकार जीता जायेगा ? जिसके भय से तीनों लोकों के प्राणी व्याकुल होकर भागते फिरते है, उस मृत्यु पर यह रावण कैसे आक्रमण करेगा ? जो प्राणियों

का धाता, विधाता, सुकृत, दुष्कृत सब कुछ है जिसने अपने तेजस से तीनों लोको को अभिभूत कर रखा है, उसे दशानन कैसे जीतेगा ? अतएव अत्यन्त कौतूहलवश यम और रावण का युद्ध देखने के लिए महर्षि नारद यमलोक को प्रस्थान कर गये।[12]

महाभारत में भी नारद के विषय में अनेक आख्यान प्राप्त होते हैं। उनमें से एक आख्यान के अनुसार - एक समय महर्षियों से घिरे हुए भगवान नारद महाराज युधिष्ठिर की सभा में पधारे। देवर्षि नारद वेद और उपनिषदों के ज्ञाता थे। वे इतिहास पुराण के मर्मज्ञ, पूर्वकल्प की बातों के विशेषज्ञ प्रसिद्ध न्यायवेत्ता, धर्म तत्त्व के ज्ञाता और शिक्षा, कला, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द - इन छः वेदांगों के विशेषज्ञ थे। वे ऐक्य, संयोगनानात्व एवं समावाय के ज्ञान में विशारद थे। वे प्रगल्भ वक्ता, मेधावी, बुद्धिमान, नीतिमान्, कवि, अपर ब्रह्म और ब्रह्म को विभागशः जानने वाले, प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान एवं शब्द प्रमाण द्वारा एक निश्चित सिद्धान्त पर पहुँचे हुये, वृहस्पति जैसे वक्ता से भी उत्तर-प्रत्युत्तर करने वाले, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के विषय में संशयरहित, इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्रत्यक्ष द्रष्टा, महाबुद्धिमान सांख्य योग के ज्ञाता, सन्धि और विग्रह के तत्वज्ञ अपने और शत्रु पक्ष के बलाबल का अनुमान से निश्चय करके शत्रुपक्ष के मन्त्रियों आदि को फोड़ने के लिए धन आदि बाँटने के उपयुक्त अवसर पर ज्ञान रखने वाले सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय राजनीति के इन छहो अंगो के जानकार, समस्त शास्त्रों के निपुण विद्वान, युद्ध और संगीत कला के विशेषज्ञ, सर्वत्र क्रोध रहित, असंख्य सद्गुणों से सम्पन्न मननशील, परमकान्तिमान एवं महातेजस्वी थे। देवर्षि नारद को आया हुआ देख पाँचो पाण्डवों ने अर्घ्य पाद्य देकर उन्हें सिंहासन पर बैठाया और उनकी शोडषोपचार पूजा की।

12· वा0रा0, उत्तरकाण्ड, सर्ग 20

शान्त चित्त तथा प्रसन्न हृदय भगवान् नारद ने महाराज युधिष्ठिर से प्रश्न के रूप में उनका कुशल क्षेम पूछा और प्रश्न के रूप में ही उन्हें राजनीति का उपदेश किया। "राजन् क्या तुम्हारा धन तुम्हारे निर्वाह के लिए पूरा पड़ जाता है ? क्या धर्म में तुम्हारा मन प्रसन्नतापूर्वक लगता है ? क्या तुम्हें इच्छानुसार सुख-भोग प्राप्त होते हैं ? धर्म में निरत तुम्हारे मन को आघात या विक्षेप तो नहीं पहुँचता ? राजन् तुम धन के लोभ में पड़कर धर्म को, केवल धर्म में निरत रहकर धन को अथवा आसक्ति ही जिसका मूल है, उस कामभोग के द्वारा धर्म और अर्थ को तो बाधा नहीं पहुँचाते ? निष्पाप युधिष्ठिर क्या तुम राजोचित छः गुणों के द्वारा सात उपायों की, अपने और शत्रु के बलाबल की तथा देशपाल, दुर्गपाल आदि चौदह व्यक्तियों की भली-भाँति परख करते रहते हो न ? तुम्हारी मन्त्री आदि सातों प्रकृतियाँ कहीं शत्रुओं में मिल तो नहीं गई है ? तुम्हारे राज्य के धनी लोग बुरे व्यसनों से बचे रहकर सर्वथा तुमसे प्रेम करते है न ? क्या तुम मित्र, शत्रु एवं उदासीन लोगों के सम्बन्ध में यह ज्ञान रखते हो कि कब, कौन क्या करना चाहता है ? उपयुक्त समय का विचार करके ही सन्धि और विग्रह की नीति का सेवन करते हो न ?

तुम हजारों मूर्खो के बदले एक पण्डित को ही खरीदते हो न ? क्योंकि विद्वान् पुरूष ﴾मन्त्री﴿ ही अर्थ संकट के समय राजा और राज्य का महान् कल्याण कर सकता है। क्या तुम्हारा सेनापति हर्ष और उत्साह से सम्पन्न शूरवीर बुद्धिमान, धैर्यवान् पवित्र, कुलीन, स्वामिभक्त तथा अपने कार्य में कुशल है ? अपनी सेना के लिए यथोचित भोजन और वेतन ठीक समय पर दे देते हो न ? उसमें कभी विलम्ब तो नहीं करते ? तुम्हारी आमदनी और खर्च को लिखने और जोड़ने के कार्य में लगाये गये लेखक और गणक प्रतिदिन पूर्वाह्नकाल में तुम्हारे सामने अपना हिसाब पेश करते है न ? तुम्हारे राज्य के किसान का अन्न या बीज तो नष्ट नहीं होता। उन्हें न्यूनतम ब्याज पर ऋण उपलब्ध होता है न ? महाराज युधिष्ठिर तुम नास्तिकता, झूठ, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, ज्ञानियों का संग न करना, आलस्य पाँचो इन्द्रियों

के विषयों में आसक्ति प्रजा की समस्या पर अकेले निर्णय लेना, अर्थशास्त्र के ज्ञान से रहित मूर्खो के साथ विचार विमर्श, निश्चित कार्यो के करने में टाल-मटोल, गुप्त मंत्रणा को सुरक्षित न रखना, मांगलिक उत्सव आदि न करना तथा एक साथ ही सभी शत्रुओं पर चढ़ाई कर देना इन राज सम्बन्धी चौदह दोषों का परिहार तो करते हो न ? क्योंकि जिनके राज्य की जड़ जम गई है ऐसे राजा भी इन दोषों के कारण नष्ट हो जाते हैं।[13]

महाभारत में ही एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि एक समय कल्याण की इच्छा रखने वाले महर्षि गालव ने अपने आश्रम पर पधारे हुए देवोमय तेजस्वी, मोह और क्लान्ति से रहित, ज्ञानानन्द से परिपूर्ण एवं मन को संयम में रखने वाले देवर्षि नारद से श्रेय मार्ग के विषय में पूछा। तब भगवान् नारद ने कहा - महर्षे जो अच्छी तरह कल्याण करने वाला साधन होता है वह सर्वदा संशय रहित होता है। सुहृदों पर अनुग्रह करना इसे मनीषी पुरूष श्रेय कहते हैं।

"पाप कर्म से दूर रहना, निरन्तर पुण्य कर्मो में लगे रहना, सत्पुरूषों के मतानुसार सदाचार का ठीक-ठीक पालन करना यह संशयरहित कल्याण का मार्ग हैं।

सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति कोमलता का बर्ताव रखना, व्यवहार में सरल होना तथा मीठे वचन बोलना - यह भी कल्याण का संदेह रहित मार्ग है।"

"देवताओं, पितरों और अतिथियों को उनका भाग देगा तथा भरण पोषण करने योग्य व्यक्तियों का त्याग न करना - यह कल्याण का निश्चित मार्ग है।"

---

13. म0भा0, सभापर्व, अध्याय 5

"सत्य वचन श्रेय का परम मार्ग है। परन्तु सत्य को यथार्थ रूप से जानना अति कठिन है। मैं तो उसे ही सत्य कहता हूँ जिससे प्राणियों का अत्यन्त हित हो। अहंकार का त्याग, प्रमाद एवं आलस्य को रोकना, सन्तोष और एकान्तवास यह निश्चित श्रेय का साधन है। धर्माचरणपूर्वक वेद और वेदांगों का स्वाध्याय करना तथा उनके सिद्धान्तों के तत्व को जानने के लिए प्रयत्न करना - निस्संदेह श्रेय का मार्ग है। जिसे कल्याणप्राप्ति की तीव्र इच्छा हो, उस मनुष्य को किसी तरह भी शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध - इन विषयों का अल्प मात्रा में सेवन यह सब त्याग दे। कभी भी दूसरों की निन्दा करके अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयत्न न करे। अपनी उत्कृष्टता अपने गुणों द्वारा ही सिद्ध करने का प्रयत्न न करे। अपनी उत्कृष्टता अपने गुणों द्वारा ही सिद्ध करे। बुद्धिमान् पुरूष ज्ञानवान् होने पर भी बिना पूछे किसी को कोई उपदेश न करे। मनुष्य को सदा धर्म में लगे रहने वाले साधु-महात्माओं तथा स्वधर्म-परायण श्रेष्ठ एवं उदार पुरूषों के निकट निवास करने की इच्छा रखनी चाहिए।[14]

एक अन्य स्थल पर महाभारत के मतानुसार - एक समय व्यास जी के आश्रम में भगवान् नारद का आगमन हुआ। उस समय आश्रम में केवल उनके पुत्र शुकदेव जी थे। शुकदेव जी ने उनका आतिथ्य सत्कार किया और उनसे प्रार्थना की कि "इस लोक में जो परम कल्याण का साधन हो उसका मुझे उपदेश करें।"

तब नारद जी ने कहा - "वत्स विद्या के समान कोई नेत्र नहीं। सत्य से बढ़कर कोई तप नहीं। आसक्ति से बढ़कर कोई दुःख नहीं और त्याग से बढ़कर सुख नहीं। पापकर्मो से दूर रहना, सदा पुण्यकार्यो का अनुष्ठान करना, सदाचार और शिष्टाचार यह सब परम कल्याण का साधन है। इस सुख रहित मनुष्य शरीर को प्राप्त कर जो विषयों में आसक्त होता है, वह मोह को प्राप्त होता है। इस संसार में विषयों का संयोग दुःखरूप है। विषयासक्त जीव का दुःखो से छुटकारा नहीं। अतएव कल्याण प्राप्ति के इच्छुक व्यक्ति को सम्पूर्ण उपायों के

---

14. म0भा0, शान्ति पर्व, अध्याय 287

द्वारा काम और क्रोध का निग्रह करना चाहिए, क्योंकि काम और क्रोध से तप की रक्षा करें, लक्ष्मी को डाह से बचावे, विद्या की मानापमान से और अपनी प्रमाद से रक्षा करे। किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। सबके प्रति मित्रभाव रखे तथा यह मनुष्य जन्म पाकर किसी के साथ बैर न करे। संसार में कुटुम्ब, स्त्री, पुत्र, शरीर और संग्रह - सब कुछ पराया है। सब नाशवान् है। इसमें अपना क्या है ? पाप और पुण्य।

"शोक के हजारों और भय के सैकड़ों स्थान हैं। इन सबसे मूर्ख प्रभावित होता है, विद्वान नहीं। दुःख की निवृत्ति का एक ही उपाय है, उसका बार-बार चिन्तन न करना। चिन्तन करने से दुःख घटता नहीं, बढ़ता है। रूप, यौवन, जीवन, धनसंग्रह, आरोग्य तथा प्रियजनों का सहवास - सब कुछ अनित्य है, क्षणभंगुर है। विद्वान् पुरुष को इनमें आसक्त नहीं होना चाहिए।

"धन खर्च करते समय बड़ा कष्ट होता है, उसकी रक्षा में भी सुख नहीं है, और उसकी प्राप्ति भी बड़े कष्ट से होती है। अतः धन को प्रत्येक अवस्था में दुःखदायक समझकर उसके नष्ट होने पर चिन्ता नहीं करनी चाहिए। संग्रह का अन्त है विनाश। ऊँचे बढ़ने का अर्थ है, नीचे गिरना। संयोग का अन्त है वियोग और सांसारिक जीवन का अन्त है, मरण। आयु निरन्तर बीत रही है। वह पल भर भी ठहरती नहीं है। जब अपना शरीर ही अनित्य है तब इस संसार की किस वस्तु को नित्य समझा जाय ? मनुष्य को चाहिए कि वह धैर्य के द्वारा शिश्न और उदर की, नेत्र के द्वारा हाथ और पैर की, मन के द्वारा आँख और कान की तथा सद्विद्या के द्वारा मन और वाणी की रक्षाकरे।[15]

---

15. म0भा0, शान्तिपर्व, अ0 330

महाभारत की एक कथानुसार नारद मुनि को एक पर्वत नाम का भांजा था। दोनों मित्रवत् साथ-साथ पृथ्वी पर विचरण करते थे। दोनों ने परस्पर समझौता कर लिया था कि अच्छी या बुरी कोई भी बात क्यों न हो वे एक दूसरे को अवश्य बतायेंगे। एक बार राजा संजय के पास रहने के उद्देश्य से गये। राजा ने दोनों का विधिपूर्वक स्वागत किया। उसकी सेवार्थ अपनी कन्या को नियुक्त कर दिया। नारद उस राजकुमारी पर आसक्त हो गये और यह बात उन्होंने अपने भांजे पर्वत से नहीं बताई किन्तु पर्वत उनके हाव भाव से उनकी कामशक्ति को पहचान लिया। अब पहले किये गये प्रण को तोड़ने के कारण पर्वत ने शाप दे दिया कि "यह कन्या तुम्हारी पत्नी होगी। विवाह होते ही तुम्हे लोग बन्दर के समान मुह वाला देखने लगेंगे। प्रत्युत्तर में नारद ने पर्वत को स्वर्ग न प्राप्त कर सकने का शाप दिया। रूष्ट होकर दोनो विपरीत दिशाओं में चले गये। कालान्तर में नारद का विवाह राजकुमारी से हो गया। पूर्व शापानुसार वह नारद को बन्दर जैसा देखने लगी। किन्तु उसकी पति भक्ति में कोई कमी नहीं आयी। शापानुकूल पर्वत भी इधर-उधर भटकता रहा। स्वर्ग नहीं प्राप्त कर पाया। इधर-उधर भटकने के बाद वह नारद के शरण में आया और उनसे शाप वापस लेने की अनुनय विनय करने लगा। दोनों ने अपने-अपने शाप वापस ले लिये। दोनों ने अपने-अपने शाप वापस ले लिये। अपना पूर्व रूप प्राप्त कर लेने पर नारद की पत्नी ने नारद को पहिचाना नहीं। पर्वत ने पूर्व घटित घटना के विषय में बताकर उसका समाधान करवाया। कालान्तर में जब ये लोग संजय के महल से जाने लगे तो प्रसन्न होकर संजय से वर मांगने को कहे। संजय ने इन्द्र को भी पराजित करने में समर्थ वीर पुत्र प्राप्त करने की की कामना प्रकट की। पर्वत ने ऐसा ही वर दिया लेकिन साथ ही ये भी कहा कि वह लम्बी आयु वाला नहीं होगा क्योंकि संजय ने इन्द्र से स्पर्धा करने वाले पुत्र की कामना की है। तब राजा संजय की चिन्ता को देखकर नारद ने मृत बालक को पुनः लम्बी आयु देने का आश्वासन दिया। अतः कोई दुर्घटना घटित हो जाने पर संजय को चाहिये कि वे नारद का स्मरण करें। यह कहकर नारद तथा पर्वत संजय के यहाँ से चले गये। कुछ समय पश्चात् संजय के यहाँ सुवर्णष्ठीनी

का पीछे करे तथा अवसर पाकर उसे मार डाले। एक बार एकान्त वन में धाय के साथ खेलते हुए बालक को पाकर वज्र ने मार डाला तथा उसका रक्तपान कर लिया। धाय के द्वारा सूचना पाकर विषादग्रस्त राजा-रानी वहाँ पहुँच गये। तभी राजा को नारद द्वारा पूर्व कही बात का स्मरण हो आया। शीघ्र ही संजय ने नारद का स्मरण किया नारद ने वहाँ प्रकट होकर इन्द्र की अनुमति से बालक को प्राणदान दिये। संजय के उस पुनर्जीवित पुत्र को नारद ने हिरण्यनाभ कहकर पुकारा तथा उसे एक हजार वर्ष तक जीवित रहने का वरदान दिया।

नारद प्रकाण्ड विद्वान् तथा आलस्य, क्रोध, चपलता, अभिमान तथा अप्रीति से रहित थे। वे लज्जाशील, सुशील, तथा विष्णु के प्रति दृढ़ भक्ति भाव रखने वाले थे।[16]

हरिवंश पुराण के अनुसार नारद ने दक्ष के दस पुत्रों के ज्ञानोपदेश देकर संसार से विरक्त कर दिया, इसलिये ब्रह्मा उनसे रूष्ट हो गये। पूर्वकल्प में नारद ब्रह्मा के मानस पुत्रथे किन्तु इस कल्प में उन्हें कश्यप ने प्रकट किया था। नारद ने पृथ्वी को घाट से उद्धार करने के लिये विष्णु को अवतरित होने के लिये प्रेरित किया। इसके बाद कंस को जाकर सूचित किया कि उस पर नारायण के जन्म ग्रहण करने से विपत्ति आयेगी और नारायण देवकी के पुत्र के रूप में जन्म ग्रहण करेंगे।[17]

एक अन्य आख्यान के अनुसार नारद ने दक्ष के "हर्यश्च" नामक दस हजार पुत्रों को सांख्यज्ञान का उपदेश दिया, फलस्वरूप वे सब विरक्त होकर घर छोड़ दिये।[18] अपने पुत्रों को प्रजोत्पादन से परावृत्त करने के कारण, दक्ष नारद पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और शाप दे दिया। इस शाप के कारण नारद ब्रह्मचारी रहकर

16· म0भा0, शान्तिपर्व, अध्याय 29-31, 230

17· हरि0पु0, हरिवंशपर्व 31, विष्णु0 1/

18· म0आ0 70/5-6, विष्णु0 1/15

भटकते रहे और सब जगह झगड़ा लगाते रहे।[19] दक्ष का शाप इन्हें जन्म-जन्मान्तर के लिये मिला था। यही कारण है कि कश्यप प्रजापति के घर जन्म लेकर अपने अगले जन्म में भी दक्ष के शाप की पीड़ा इन्हें पूर्ववत भोगनी पड़ी। दक्ष प्रजापति के शाप की यही कहानी, अन्य पुराणों में कुछ भिन्न ढंग से प्रस्तुत की गयी है। हरिवंश के मतानुसार दक्ष ने नारद को शाप दिया कि तुम नष्ट होकर पुनः गर्भवास का दुःख सहन करोगे।[20] परमेष्ठी ने अन्य ब्रह्मर्षियों को आगे कर नारद को उःशाप देने की प्रार्थना नारद से की। पुनः दक्ष ने परमेष्ठी से कहा कि "मै अपनी कन्या तुम्हें दे दूँगा, उसी कन्या के गर्भ से नारद का पुनर्जन्म हो जायेगा।[21] इस उःशाप के अनुसार परमेष्ठी का विवाह दक्ष कन्या से होने के पश्चात् उन्हें नारद पुत्र रूप में प्राप्त हो गये।[22]

देवी भागवत के अनुसार दक्ष ने नारद को शाप दिया कि तुम्हारा नाश होकर अगला जन्म तुम्हारा मेरे ही पुत्र के रूप में लेना पड़ेगा।[23] वायुपुराण के मत में शिव जी के शाप के कारण जिन प्रजापतिओं की मृत्यु हो गयी उनमें नारद भी एक थे[24] अपने अगले जन्म में नारद कश्यप प्रजाति के पुत्र एवं अरून्धती तथा पर्वत इन कश्यप सन्तति के भाई बन गये।[25] जबकि महाभारत के अनुसार पर्वत नारद का भाई न होकर भांजा था।[26] पूर्वोद्दृत है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में नारद के पुनर्जन्म सम्बन्धी कहानी कुछ भिन्न प्रकार से दी गयी है दक्ष के शाप के कारण एक शूद्र स्त्री के गर्भ से ये पुनः उत्पन्न हुए।

19· भा0 6/5/37-39
20· हरि0पु0 1/15
21· वायु0 66/135-150, ब्रह्माण्ड0 3/2/18
22· ब्रह्म0 12/12-15
23· दे0भा0 7/1
24· वायु0 66/9
25· वायु0 71/78/80
26· म0शा0 30/5, दे0भर0 6/27

इस नये जन्म में इनकी माता का नाम कलावती था जो एक शूद्र स्त्री थी। तथा उसके पति का नाम द्रमिल था। अपने पति की अनुमति से कलावती ने पुत्र प्राप्ति हेतु, कश्यप प्रजापति का वीर्यप्राशन किया। कालान्तर में द्रमिल ने शरीरत्याग कर दिया। कलावती एक ब्राह्मण के घर उत्पन्न हुई उसे नारद के रूप में पुत्र उत्पन्न हुआ। बाद में नारद को कश्यप ऋषि को अर्पित कर दिया गया। कृष्ण की स्तुति के कारण यह शापमुक्त हो गये। इस प्रकार ब्रह्मदेव ने इसे सृष्टि उत्पन्न करने की अनुमति भी मिल गयी। किन्तु नारद जीवनपर्यन्त ब्रह्मचारी ही रहे। महाभारत में, कश्यप एवं मुनि के पुत्र के रूप नारद ने पुनः जन्म ग्रहण किया।[27]

श्रीमद्भागवत के अनुसार पूर्वजन्म में नारद वेदवादी ब्राह्मणों की एक दासी के पुत्र थे। बाल्यकाल से ही ब्राह्मणों के सानिध्य से उन्हें बहुत ज्ञान हो गया था। ब्राह्मणों की अनुमति से उनकी बर्तनों की जूठन वे प्रतिदिन एक बार खाते थे। सेवा से उनका हृदय शुद्ध होता गया। सत्संग में ये श्रीकृष्ण की मनोरम कथाएँ सुनीं। शपदंशन के कारण उनकी माँ का स्वर्गवास हो गया, तब वे मात्र पाँच वर्ष के थे। वे घर-बार छोड़कर एक पीपल के वृक्ष के नीचे भगवान् में ध्यान मग्न हो गये। एक बार भगवत् झलक दिखाई पड़ी। वैसा अनिवर्चनीय आनन्द पुनः कभी नहीं प्राप्त हुआ। उन्हें अव्यक्त ब्रह्म ने गम्भीर वाणी में कहा - "इस जन्म में मेरा दर्शन सम्भव नहीं है तथा मृत्यु के उपरान्त मेरे पार्षद बन जाओगे। तुम्हारी अटूट श्रद्धा रहेगी।" नारद काल के आगमन की प्रतीक्षा करते रहे। ऐहिक शरीर के नष्ट होने पर वे भगवान् के पार्षद बन गये। प्रलयकालीन समुद्र में शयन करते समय विष्णु के हृदय में, सोने के लिये जब ब्रह्मा ने प्रवेश किया तब उनके साथ ही नारद ने भी प्रवेश पा लिया। एक सहस्रयुगी बीत जाने पर ब्रह्मा ने सृष्टि की कामना की तो उनकी इन्द्रियों से मरीचि आदि ऋषियों के साथ प्रकट हो गये। तभी से वैकुण्ठ आदि सभी लोकों में उनका निर्वाध रूप से प्रवेश है।[28]

27· म0आ0 59/43
28· श्रीमद्भा0 प्रथम स्कन्ध, अध्याय 5-6

शिवपुराण का मत है कि नारद गंगा के निकटवर्ती हिमालय खण्ड में तपस्या कर रहे थे। इन्द्र भयभीत हो गये कि कहीं वे इन्द्रपद न प्राप्त कर ले, अतः उसने काम को सैन्यसहित उनके पास भेजा। संयोग से वह स्थान भी वही था जहाँ शिव ने काम को भस्म किया था। इसीलिये काम नारद पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाया। नारद को यह तथ्य विदित नहीं था, अतः उन्हें काम को पराजित कर देने का गर्व होने लगा। यह बात उन्होंने शंकर से कही भगवान् शंकर ने कहा कि "त्रैलोक्य काम को कोई जीत नहीं सकता, इसलिये ये सब वृत्तान्त किसी ओर से मत कहना।" नारद को यह बात उचित नहीं लगी। उन्होंने क्रमशः ब्रह्मा तथा विष्णु के पास जाकर यह अपनी तपस्या का वृत्तान्त कह सुनाया। ब्रह्मा ने ऐसी बात न कहने की सलाह दी तथा विष्णु ने कहा - "भला आप के ब्रह्मचर्य व्रत के सम्मुख किसका वस चलेगा।" तब नारद मुनि और अधिक गर्व अनुभव करने लगे। सदाशिव की माया से उनके मार्ग में एक शहर बस गया। उस शहर के स्त्री पुरूषों के विहार को देख काम भी लज्जित होता था। वहाँ के राजा शीलनिधि की कन्या का स्वयम्बर हो रहा था। नारद काम-विमोहित होकर कन्या को प्राप्त करने के लिए विष्णु से रूप सौन्दर्य के उपलब्धि की कामना की। उनका शरीर सौन्दर्ययुक्त किन्तु मुख बन्दर जैसा हो गया। सदाशिव के दो गण उनके आस-पास जाकर बैठ गये तथा उनके रूप का परिहास करने लगे। कन्या ने भी नारद का वरण नहीं किया। जल में अपने मुख का प्रतिबिम्ब देखकर नारद ने क्रुद्ध होकर विष्णु को शाप दिया कि - "तुम पुरूष रूप में कष्ट पाओ। नारी के लिये मेरा परिहास हुआ है, पत्नी के वियोग के लिए तुम्हें भी कष्ट उठाना पड़े। बन्दर जैसे मुख के लोग तुम्हारी सहायता करें।" शिव ने अपनी माया का परिहार कर लिया। नारद को जब ज्ञात हुआ कि सत्य क्या है, स्वप्न क्या हैं तो विष्णु के चरणों में जाकर गिर पड़े। तब विष्णु ने उन्हें मिथ्या गर्व न करने की सलाह दी तथा सदाशिव ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश - तीनों रूपों की व्याख्या की।[29]

---

29. शिवपुराण, पूर्वार्द्ध 2-4

देवी भागवत की एक कथानुसार एक बार नदी के तट पर स्थित व्यास मुनि के आश्रम में नारद पधारे। नारद का आतिथ्य सत्कार करने के बाद व्यास जी ने पूछा - "यह जानते हुए भी कि वासना और इच्छा कष्ट के प्रमुख कारण हैं, फिर भी लोग मोहयुक्त कर्म क्यों करते हैं ?" नारद ने कहा - "मेरा जन्म होते ही माँ ने मुझे द्वीप में छोड़ दिया था तथापि बड़े होकर मैंनें शिव की तपस्या करके "शुक्र" को पुत्र के रूप में प्राप्त किया। ज्ञान प्राप्त करने पर वह मुझे रोता छोड़कर दूसरे लोक में चला गया। पुत्र वियोग से दुःखी मैं अपनी माँ को स्मरण करने लगा। सरस्वती के तट पर आश्रम बनाकर मैं वहीं रहने लगा माँ ने शान्तनु से विवाह किया था। विधवा होकर माँ अपने दो पुत्रों के साथ रहती थी। भीष्म उनका पालन पोषण करते रहे किन्तु चित्रांगद का निधन होने के उपरान्त वह शान्त नहीं हो पा रही थी। उसने मुझको बुलाकर आज्ञा दी कि वे चित्रांगद की दोनो पत्नियों (अम्बिका तथा अम्बालिका) को एक-एक पुत्र प्रदान करें। नारद ने पहले तो संकोच किया किन्तु माँ के बहुत कहने पर दोनों के साथ सम्भोग किया। अम्बिका ने मेरे रूप को देखकर आँखे बन्द कर ली थी, तथा अम्बालिका पीली पड़ गयी थी इसलिये दोनों को क्रमशः अन्धा तथा पीत वर्ण का पुत्र हुआ। उनके नाम क्रमशः धृतराष्ट्र तथा पाण्डु रखे गये। दोनों राजा के उपयुक्त न होने के कारण माँ ने पुनः अम्बिका से पुत्रोत्पन्न करने के लिए बाध्य किया। अम्बिका ने अपने स्थान पर एक दासी को भेज दिया जिससे विद्वान्, सुन्दर, धर्मात्मा पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम विदुर रखा गया। उनके मोह के कारण मै अपने पुत्र शुक को भी भूल गया, किन्तु एक बात भूलनी असम्भव थी कि वे व्यभिचार से उत्पन्न थे। पाण्डु को राज्य की प्राप्ति होने पर मेरी प्रसन्नता भी एक "मोह" ही थी। कुछ समय पश्चात् पाण्डु को शाप मिला कि स्त्री-सहवास से इसकी मृत्यु हो जायेगी। वह अपनी दोनों पत्नियों कुन्ती तथा माद्री को लेकर वन में चले गये। मैने उन्हें अपने आश्रम में बुलाया। वन में धर्म, वायु, इन्द्र अश्विनीकुमारों से पाँच पुत्र प्राप्त हुए। धर्म, वायु, इन्द्र से कुन्ती को क्रमशः युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा अश्विनीकुमारों से माद्री को नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए। माद्री के आलिंगन कर लेने से पाण्डु की मृत्यु हो गयी, तब माद्री सती हो गयी। कुन्ती सन्तान-पालन के लिये जीवित

रही। कर्ण कुन्ती के विवाह के पूर्व ही उत्पन्न हुए थे जिसे कुन्ती ने पैदा होते ही नदी में फेंक दिया। तदनन्तर पाण्डव और कौरवों की शत्रुता देखकर मेरा मन डोलता रहा। संसार में कोई भी मोह रहित नहीं हो पाता।

नारद ने कहा कि एक बार मै और मेरा भांजा पर्वत मृत्युलोक में विचरण करने गये। हम दोनों ने तय किया कि परस्पर कोई दुराव नहीं रखेंगे। हम लोग चार माह राजा संजय के यहाँ रहे। राजपुत्री दमयन्ती मुझ पर आसक्त होकर प्रेम करने लगी। कुछ समय पश्चात् पर्वत को पता चला तो दुराव रखने के कारण उसने मुझे मर्कटमुखी होने का शाप दिया, क्रोधवश मैने भी उसे मृत्युलोक में वास करने का शाप दिया। वह क्रुद्ध होकर चला गया। कालान्तर में राजकुमारी ने आग्रहपूर्वक मुझसे विवाह कर लिया। वह मेरे संगीत पर मुग्ध हो गयी थी। तीर्थाटन से लौटकर पर्वत मुझसे मिला तो उसने मुझे और मैने उसे शापमुक्त कर दिया। किन्तु यह सब मिथ्या मोह पर आधारित कृत्य था।

यहीं एक अन्य स्थल पर नारद ने कहा है कि एक बार मैं विष्णु के पास गया तो क्रीड़ारत कमला शीघ्र अन्दर चली गयीं। विष्णु मुझे गरुड़ पर बैठाकर पुतीर्थ नामक सरोवर पर ले गये। वहाँ स्नान करते ही मैं सुसज्जित नारी बन गया। विष्णु मेरी वीणा लेकर चले गये। तदनन्तर वहाँ तालध्वज नामक राजा ने मेरे सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा। उससे विवाह पर मैने वीरवर्मा तथा सुधन्वा आदि अनेक पुत्रों को जन्म दिया। परिवार में पुत्र-पौत्रों, बहुओं से मोह उत्पन्न हो गया। कालान्तर में युद्ध में वे सभी मारे गये। इतना समय बीत जाने पर मेरा ज्ञान इत्यादि सब तिरोहित हो गया था। मैं बच्चों के वियोग से नित्य उदास रहने लगा। एक दिन विष्णु का पुनः दर्शन हुआ और पुंतीर्थ में एक बार फिर स्नान के लिये प्रेरित करने लगे। वहाँ स्नान करके मैं पूर्ववत् पुरुष रूप को प्राप्त हो गया। विष्णु ने मेरी वीणा लौटा दी और कहा कि मोह ही समस्त कष्टों का मूल है। देवी की आराधना इन सबसे मुक्त करने में समर्थ है" उधर राजा तालध्वज रानी

§मुझे§ को तालाब से निकलता न देखकर विलाप करने लगा। उसे प्रतीत हुआ कि सब पुत्र तो मर ही चुके, रानी भी डूबकर मर चुकी है। विष्णु ने राजा से माया-मोह का परित्याग करके जीवन यापन करने का उपदेश दिया।[30]

महाभारत में नारद का चित्रण राजाओं के वार्ताकार एवं सलाहकार के रूप में किया गया है। अर्जुन के जन्म[31] तथा द्रौपदी[32] के स्वयम्बर में नारद उपस्थित थे। द्रौपदी को लेकर पाण्डवों के मध्य कोई मतभेद न हो इसीलिये नारद इन्द्रप्रस्थ चले आये थे। सुन्द एवं उपसुन्द की कथा को सुनकर द्रौपदी को लेकर झगड़े से बचने के लिये पाण्डवों को प्रेरित किया।[33]

युधिष्ठिर को हरिश्चन्द्र की कथा सुनाकर राजसूय यज्ञ के लिये प्रेरित किये थे।[34] राजसूय यज्ञ में अवभृथ स्नान के समय स्वयं नारद ने युधिष्ठिर का अभिषेक किया।[35] विदर्भ देश की राजकन्या दमयन्ती के स्वयम्बर की वार्ता इन्द्र को नारद ने ही बतलाई थी।[36] राजा अश्वपति के यहाँ जाकर सत्यवान् एवं सावित्री के विवाह का प्रस्ताव नारद ने ही रखा था।[37]

इस प्रकार अनेक प्राचीन राजाओं की कथायें नारद द्वारा महाभारत में कही गयी है। उनमें से "षोडश राजकीय उपाख्यान" की कथायें अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं।[38] उनमें जिन राजाओं के चरित्र, पराक्रम, महत्ता, दानशीलता एवं उत्कर्ष आदि का वर्णन किया गया है वे इस प्रकार हैं- अविक्षित मरूत्त, वैदिथिन

30· देवी भागवत 26/24/31
31· म0आ0 114/46
32· म0आ0 178/7
33· म0आ0 204
34· म0,स0 11/70
35· म0, स0 49/10
36· म0, व0 51/20-24
37· म0आ0, व0 278/11-32
38· म0आ0, द्रो0 परि0 1/8/325-872

सुहोत्र, पौरव, औशीनर, शिवि, दाशरथि राम, ऐक्ष्वाकु भगीरथ, ऐलविल दिलीप, योवनाश्व मान्धातृ, नाहुष ययाति, नाभाग, अंबरीष, यादव शशविन्दु, आमूर्तरयस गय, सांकृति रंतिदेव, दोष्यन्ति भरत, वैन्य पृथु, जामदग्न्य परशुराम। नारद द्वारा कही गयी वे कथाएँ भारतीय युद्ध के बाद श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कही थी।[39]

महाभारत के रात्रि युद्ध में नारद ने दोनो सेनाओं में दीपक के प्रकाश का निर्माण किया था।[40] नारद ने कौरवों के सर्वनाश का वृत्तान्त बलराम से कह सुनाया था।[41] अर्जुन एवं अश्वत्थामा के मध्य हुए युद्ध में ब्रह्मास्त्र को शान्त करने के लिए नारद प्रकट हुए थे।[42] युद्धोपरान्त युधिष्ठिरके पास आकर उनका कुशल समाचार पूछा था।[43]

युधिष्ठिर के अश्वमेघ यज्ञ के समय भी नारद उपस्थित थे।[44] प्राचीन ऋषियों की तपःसिद्धि का उदाहरण देकर, नारद ने धृतराष्ट्र को तपस्या के लिये प्रेरित किया था।[45] वन में कुन्ती, धृतराष्ट्र, गान्धारी के दावानल से दग्ध होने का समाचार नारद ने ही युधिष्ठिर को सुनाया था।[46] नारद ने युधिष्ठिर से कहा "धृतराष्ट्र लौकिक अग्नि से नहीं, अपनी अग्नि से ही दग्ध हो गये हैं।" इतना कहकर उन्होंने युधिष्ठिर जलाञ्जलि प्रदान करने की आज्ञा दी।[47] सांब के पेट मुसल पैदा होने का शाप देने वाले ऋषियों में नारद भी एक थे।[48]

39· म0भा0, शा0 29
40· म0भा0, द्रो0 138
41· म0भा0, श 53/23-31
42· म0भा0, सौ0 14/11-12
43· म0भा0, शा0 9/12
44· म0भा0, आश्वा0 90/38
45· म0भा0, आश्व0 26/1
46· म0भा0, आश्व0 45/9 -31
47· म0भा0, आश्व0 47/1-9
48· म0भा0, मौ0 2/4

तत्ववेत्ता के रूप में नारद

एक तत्वज्ञ के रूप में नारद प्रसिद्ध है। श्रेष्ठ तत्वज्ञ नारद के उपदेश महाभारत में भरे पड़े हैं। तीस लाख श्लोकों वाले "महाभारत" को नारद ने देवताओं को सुनाया था।[49] नारद ने "पंचरात्र" नामक आत्मतत्त्व का उपदेश व्यास को[50], सूर्य के अष्टोत्तरशत नाम का उपदेश धोम्य[51] को, वैराग्य, ज्ञान आदि का उपदेश शुकदेव[52] को दिया था। मारकण्डेय[53] को नारद ने धर्मशास्त्र एवं तत्वज्ञान के विषय में बताया था। पूजय पुरुषों के लक्षण एवं उनके आदर सत्कार से होने वाले लाभ को श्रीकृष्ण से बताया था।[54] कृष्ण की माता देवकी से विभिन्न नक्षत्रों में विभिन्न वस्तुओं के दान देने के महत्त्व को समझाया है।[55]

"श्रेयः प्राप्ति" के लिये नारायण की उपासना करने का उपदेश नारद ने पुण्डरीक को दिया था।[56] समुद्र के किनारे ब्रह्मसत्र करने वाले ज्ञानी प्रचेताओं को ज्ञानोपदेश दिया था।[57] नारद ने सृष्टि की उत्पत्ति तथा लय के बारे में जानकारी देवता[58] को दी थी। समंग के साथ ज्ञान विषयक संवाद हुआ था।[59] पुत्र शोक करने वाले अकंपन राजा को मृत्यु की कथा बताकर शान्त किया था।[60] शास्त्रश्रवण से लाभ की जानकारी गालव[61] को दी थी। प्राणायन में से प्रथम क्या उत्पन्न हुआ इसका ज्ञान देवमत को प्रदान किया।[62]

49· म०भा०, परि० 1/4
50· म०भा०, शा० 326
51· म०भा०, 3/17-29
52· म०भा०, शा० 316/318
53· म०भा०, अनु० 54/63 कुं०
54· म०भा०, अनु० 31/5-25
55· म०भा०, अनु० 64/5-35
56· म०भा०, अनु० 124
57· म०भा०, शा० 316-319
58· म०भा०, शा० 267
59· म०भा०, शा० 275
60· म०भा०, शा० 248-250
61· म०भा०, शा० 276
62· म०भा०, आश्व० 24

भागवत आदि ग्रन्थों में भी नारद के अनेक निर्देश प्राप्त होते हैं। सावर्णि मनु के "पंचरात्रागमतन्त्र" का उपदेश नारद ने दिया था।[63] भागवत ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा व्यास को दी थी।[64] ऋषियों को "भागवतमाहात्म्य" की जानकारी उपलब्ध करायी थी।[65]

नारद एक श्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध संगीतज्ञ एवं स्वरवेत्ता थे।[66] उनका "नारद संहिता" नामक प्रसिद्ध संगीतशास्त्र सम्बन्धी एक ग्रन्थ भी प्राप्त हैं। नारद के संगीत कला की प्राप्ति के विषय में अध्यात्म रामायण में एक आख्यान प्राप्त होता है। उसके अनुसार एक बार लक्ष्मी के यहाँ संगीत समारोह का आयोजन हुआ था उस समय गायन कला न जानने के कारण लक्ष्मी ने नारद को बाहर निकलवा दिया तथा संगीतकला प्रवीण तुम्बरू का सम्मान किया। असहनीय अपमान से नारद ने लक्ष्मी को शाप दे दिया कि "तुम राक्षस कन्या बनोगी तथा तुम्हें घर से निकाल दिया जायेगा।" नारद गायन सीखने के लिये गान वन्धुओं के पास गये और गान विद्या प्रवीण बन गये। किन्तु इनका संगीत ज्ञान केवल ग्रान्थिक ही रहा। रागनियों द्वारा अपमानित होकर नारद श्वेतद्वीप चले गये। वहा आराधना से प्रसन्न होकर विष्णु ने कृष्णावतार में स्वयं गायन सिखाने का आश्वासन दिया।[67]

पुराणों में नारद का चित्रण एक धर्मज्ञ देवर्षि के साथ-साथ हास्यजनक व्यक्ति के रूप में भी किया गया है। विष्णु की माया के कारण नारद का रूपान्तर कुछ काल के लिये "नारदी" नामक स्त्री में हो गया था। यह कथा विभिन्न पुराणों में अलग-अलग ढंग से पायी जाती है। नारदपुराण के अनुसार वृन्दा के कहने पर नारद ने एक सरोवर में डुबकी लगाई इससे इनका रूपान्तर नारदी नामक स्त्री में हो गया। इसी स्त्री का कृष्ण से विवाह हो गया। कालान्तर में अन्य सरोवर में स्नान करने पर इनहें पुरूष रूप पुनः वापस मिल गया।[68]

63· भाग0 1:.3/8, 5/19/10
64· भाग0 1/5/8
65· पद्म0 उ0 193-195
66· म0भा0, आ0परि0 111/40
67· अ0रा0 7
68·नारद0 2/87, पद्म0 पा0 75

यही आख्यान ब्रह्मपुराण में इस प्रकार पाया जाता है - एक बार श्वेतदीप में जाकर नारद ने विष्णु की स्तुति की। प्रसन्न होकर विष्णु ने वर मांगने को कहा। नारद ने अपनी माया दिखाने के लिए कहा। विष्णु ने गरुण पर बैठाकर कान्यकुब्ज ले गये और एक सरोवर में स्नान करने के लिये कहा जहाँ डुबकी लगाते ही यह काशिराज की कन्या सुशीला के रूप में स्त्री बन गये। बाद में सुशीला रूप धारी कन्या का विवाह विदर्भ राज़ सुशर्मा से हो गया। बाद में सुशर्मा तथा काशिराज का आपस में युद्ध हुआ और दोनों का विनाश हो गया। दुखातिरेक से ये चिता में प्रवेश कर गये।[69]

देवीभागवत के मत में अपने नारी अवतार में नारद तालजंघ राजा की पत्नी बने थे।[70] कजिस समय ब्रह्मदेव ने सत्र किया था उस समय उपस्थित ब्रह्मबाणों में नारद भी एक थे।[71] नारद ने कोटितीर्थ, जयादित्य, नवदेवी अट्टादित्य आदि तीर्थो की स्थापना की।[72]

कृष्ण कथाओं में नारद के विषय में कुछ आख्यान प्राप्त होते हैं। एक बार नारद नन्द के घर गये वहाँ इन्होंने विचार किया कि जब कृष्ण प्रत्यक्ष विष्णु हैं तो उनकी पत्नी लक्ष्मी भी यहाँ कही होगी। इसी विचार ने इसने लक्ष्मी को ढूँढ़ना प्रारम्भ कर दिया और देखा कि भानु नामक गोप की अन्धी, लूली एवं बहरी कन्या बनकर लक्ष्मी ने नन्द परिवार में जन्म लिया है।[73]

69· ब्रह्म 228
70· दे0भा0 6/28-30
71· पद्म0 सृ0 34
72· स्कन्द0 1/43-47
73· पद्म0 पा0 71

कृष्ण जन्म के समय देवकी और वसुदेव जेल में थे। कंस देवकी और वसुदेव के आठवें पुत्र को ही मारना चाहता था किन्तु कंस की पापराशि बढ़ाने के लिये सारे पुत्रों के वध करने की प्रेरणा नारद ने ही दी थी। इसी उपदेश से कंस ने देवकी के छः पुत्रों की हत्या कर दी।[74]

नरकासुर वन्दीखाने से मुक्त किये गये सोलह हजार स्त्रियों से कृष्ण ने विभिन्न मण्डपों में एक ही मुहूर्त में विवाह किया था। इसी की सत्यता जानने के लिये नारद कृष्ण के घर चले गये। वहाँ नारद ने देखा कि वहाँ श्रीकृष्ण अपनी प्रत्येक पत्नी के कमरे में उपस्थित रहकर किसी न किसी कार्य में तल्लीन हैं।[75]

एक बार श्रीकृष्ण अपनी पत्नी रुक्मिणी के पास बैठे थे। उसी समय नारद ने उसे स्वर्ग का पारिजातक पुष्प दिया। कृष्ण ने उसे रुक्मिणी को दिया। इस कारण सत्यभामा तथा कृष्ण में झगड़ा उत्पन्न हो गया।[76] "पति का दान करने से वही पति जन्म जन्मान्तर में प्राप्त होता है।" यह कहकर सत्यभामा से कृष्ण को दान रूप में प्राप्त कर लिया। बाद में कृष्ण तथा पारिजातक वृक्ष के भार का सुवर्ण होकर, इसने उसे लौटा दिया।[77] नारद ने हिमालय को सलाह दी थी कि वे पार्वती का विवाह शंकर से कर दें।[78]

मारकण्डेय पुराण की एक कथानुसार एक बार इन्द्र अपनी सभा में अप्सराओं के साथ बैठे हुए थे। उसी समय वहाँ नारद पहुँच गये। आतिथ्य सत्कार के पश्चात्

74· भाग0 1/1/64
75· भाग0 10/59/33-45
76· ह0वं0 2/65-73, विष्णु 5/30
77· पद्म0 उ0 88
78· पद्म0 सृ0 43

इन्द्र ने नारद से पूछा "मैं किस अप्सरा को नृत्य करने का आदेश दूँ। नारद ने कहा गुणों मे जो अपने को श्रेष्ठ समझती हो। तब मैं श्रेष्ठ, मै श्रेष्ठ कहकर परस्पर में झगड़ा उत्पन्न हो गया। इन्द्र ने श्रेष्ठता का निर्णय नारद पर छोड़ दिया। नारद ने कहा जो दुर्वासस् ऋषि को मोहित कर सके उसे ही मैं श्रेष्ठ समझूँगा। बाद वपु नामक एक अप्सरा इस कार्य के लिये तैयार हुई।[79] इसके अतिरिक्त अनेक पौराणक व्यक्तियों के साथ नारद का सम्बन्ध आता है। जैसे - नलकूबर, प्रहलाद, रुद्रकेतु, शेष तथा वृन्दा आदि।

धर्मशास्त्रकार

धर्म व्यवहार पर नारद के "लघुनारदीय" एवं वृहन्नारदीय दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं। याज्ञवल्क्य तथा पराशर ने प्राचीन धर्मशास्त्रकारों ने नारद का उल्लेख नहीं किया हैं। किन्तु विश्वरूप ने वृद्ध याज्ञवल्क्य का एक श्लोक उद्धृत कर[80] नारद को दस धर्मशास्त्रकारों में से आद्य धर्मशास्त्रकार मान लिया है। विश्वरूप ने अन्यत्र इसका उल्लेख कई बार किया है।[81] अग्निपुराण में "नारदस्मृति" का काफी भाग आया है। "स्मृति चन्द्रिका", हेमाद्रि, पराशर माधवीय आदि ग्रन्थों में नारी के कई श्लोक लिये गये हैं।

नारद सात प्रकार के दिव्य दिये हैं जबकि याज्ञवल्क्य पाँच प्रकार के। नारद किस प्रदेश के थे यह स्पष्ट नहीं है। नारद ने "कार्षापण" का उल्लेख किया हैं जो पंजाब में प्राप्त होता था। कार्षापण का अर्थ सिक्का होता है। भट्टोजी दीक्षित ने "ज्योतिर्नारद" नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है।[82] रघुनन्दन ने वृहन्नारद का एवं "निर्णयसिन्धु" संस्कार कौस्तुभ, आदि ग्रन्थों में "लघुनारद" का उल्लेख किया

79· मार्क0 1/30-47
80· याज्ञ0 1/4-5
81· याज्ञ0 2/190, 196, 226, 3/252
82· चतुर्विंशतमत 11

है।[83]

नारद ने सामवेद पर एक "शिक्षा" की रचना की भट्ट शोभाकर ने इस पर भाष्य लिखा है। नारद के नाम पर "नारदपुराण" एवं वास्तुशास्त्र" सम्बन्धी एक अन्य ग्रन्थ पाया जाता है उनमें से "नारदपुराण" इसने "सारस्वत कल्प" में बताया था।[84]

नारद विश्वामित्र के ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक थे।[85] राम की सभा के एक धर्मशास्त्री तपस्या करने वाले शम्बूक नामक शुद्र का राम के दारा बध करवाया था। सोलह वर्ष की उम्र में मृत बालक को जीवित किया।[86]

"नारदभक्ति सूत्र" को वेष्णव आचार्य निर्देशक ग्रन्थ मानते हैं। यह भगवतपुराण पर आश्रित हैं। नारदभक्ति सूत्र भाषा तथा विचार दोनों ही दृष्टि से सरल है।

नारदकाव्य - एक सूक्तद्रष्टा ऋषि का नाम।[87]

नारद-पर्वत - वैदिक ऋषिदय।[88]

नारदिन् - विश्वामित्र का पुत्र।

नारदी वृन्दारण्य के कौसुम सरोवर में स्नान करने के कारण उनका पुरषत्व नष्ट हो गया और वे सभी बन गये। उस समय उन्हें "नारदी" नाम प्राप्त हुआ।[89]

नारदकण्ड वदरीनाथ में तप्तकुण्ड से अलकनन्दा तक एक पर्वतशिला फैली हुई है। इसके नीचे अलकनन्दा के तट पर "नारदकुण्ड" है। जहाँ यात्री पुण्यार्थ स्नान करते हैं। व्रज में गोवर्धन पर्वत के निकट भी एक नारदकुण्ड पाया जाता है।

83· नारद0 13/27
84· नारद0 2/82
85· म0भा0, अनु0 4/59
86· वा0रा0, उत्तर 74
87· ऋ0 8/13, 9/104-105
88· ऐ0ब्रा0 7/34, 8/31 तथा नारद0 1
89· नारद0 उ0 80

नारद परिव्राजक उपनिषद - यह एक परवर्ती उपनिषद् हैं।

<u>नारदपञ्चयत्र</u> प्राचीन "पाञ्चरात्र" सम्प्रदाय का प्रतिपादक "नारदपञ्चरात्र" नामक एक प्रसिद्ध वैष्णव ग्रन्थ हैं। उसमें दसों महाविद्याओं की कथा विस्तार से कही गयी है। नारदपञ्चरात्र और ज्ञानामृतसार से पता चलता है कि भागवत धर्म की परम्परा बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार से भी नष्ट नहीं हुई थी। इसके अनुसार हरिभजन ही मुक्ति का परम कारण है।

ब्रह्मा के मानस पुत्र देवर्षि नारद पौराणिक साहित्य के एक अतीव रोचक पात्र है जिनमें अनेक परस्पर विरोधी तत्वों का एकत्र समावेश है। वे एक ऋषि, विष्णु भक्त, देवों व मनुष्यों के संदेशवाहक भ्रमणप्रेमी, कलहप्रेमी एवं निःस्वार्थ भाव से जन-जन की सेवा लगे रहने वाले दिव्य पुरूष हैं। उनके इन्हीं गुणों से प्रेरित होकर संस्कृत नाटककारों ने उन्हें अपने नाटक में पात्र बनाया है अथवा उनका उल्लेख किया है। प्रमुखतः आश्चर्य चूड़ामणिः, बालचरित, अविमारक एवं विक्रमोर्वशीयम् में इनका उल्लेख किया गया है।

<u>आचार्य चूड़ामणि</u>

सप्तम अंक में नेपथ्य से नारद का आगमन सुनायी पड़ रहा है-[90] देवताओं का सन्देश लेकर नारद मुनि का (आकाश) से अवतरण हुआ है[91] राम और लक्ष्मण देवर्षि का अभिवादन करते हैं। नारद राम को लंका में सीता के पातिव्रत धर्म के प्रभाव से देवगण तथा पितरों के आगमन की सूचना देकर उन्हें सभी का दर्शन कराते हैं। राम विरहावस्था में भी सीता के आभूषणमंडिता होने की उनकी चारित्रिक शुद्धता में सन्देह का कारण बताते हैं। अब नारद अनसूया-वरदान का रहस्य खोलते हैं। रहस्य का उद्घाटन करते हुए नारद यह कहते हैं कि अनसूया के वरदान से सीता के शरीर में संलग्न सभी चीजें तुम्हारी दृष्टि में आभूषण ही

---

90. (नेपथ्ये) - नारदोऽहमागच्छामि देवशासनेन। -आ0चू0, सप्तम अंक पृ0सं0 248

91. वही, 7/23

प्रतीत होगी।[92] राम देवर्षि के वचन में श्रद्धा कर सीता चरित्र के सम्बन्ध में पूर्ण आश्वस्त हो जाते हैं। नारद जी राम को अयोध्या लौट जाने का देवताओं का आदेश सुनाकर लक्ष्मण से सीता को लाने का आग्रह करते हैं।[93] नारद राम की महिमा का वर्णन करते हैं।[94]

इस अंक में नारद की उपस्थिति नाटककार की अपनी सूझ है। प्रस्तुत नाटक में नारद की भूमिका उपसंहर्ता मात्र की है, वह नाटक की कथा का सार्थक पात्र नहीं है।

बालचरित

इस नाटक के प्रथम व पञ्चम अंक में नारद का चित्रण किया गया है। नारद का व्यक्तित्व पौराणिक कल्पनाओं एवं लोकविश्वासों का मिश्रित रूप उपस्थित करता है। वे वीणा-प्रेमी और कलहप्रिय है।[95] उन्हें शांति में बैठना पसन्द नहीं।[96] लोगों में बैर पैदा करना और उन्हें आपस में लड़ाना उनका प्रिय विनोद है।[97] वे लोक-लोकान्तरों में भ्रमण करते हैं। नारद कृष्ण का दर्शन व परिक्रमा कर उनके ईश्वरीय रूप की स्तुति करते हुए ब्रह्मलोक लौट जाते है।[98] दूसरी बार पृथ्वी पर नारद गंधर्व और अप्सराओं को साथ लेकर आते हैं।[99]

अविमारक

इस नाटक के षष्ठ अंक में नारद का उल्लेख हुआ है। भास ने अपने इस नाटक में नारद को कलह-उत्पादक के रूप में नहीं अपितु मानव जगत् की

---

92. नारद - तस्याश्शरीरगतं तव दर्शनपथे सर्व मण्डनरूपं भविष्यति।
आ0चू0, सप्तम अंक, पृ0 253
93. नारदः - तेन हि आनयनार्थ देव्या लक्ष्मणंमाज्ञापय। वही, सप्तम अंक, पृ0 254
94. नारदः - अहो, नु खलु तवानुभावो विस्मयनीयः। पश्य-
कार्मुकेण शमिते तवाधुना रावणे त्रिभुवनैकण्टके।
वासवस्य रघुवीर केवलं जातम्बुधरमण्डनं धनुः।। वही, 7/29
95. बालचरित, 1-5 96. वही, 1-4
97. वैराणि भीमकठिनाः कलहाः प्रिया मे। वही
98. यावदहमपि भगवन्तं नारायणं प्रदक्षिणीकृत्य ब्रह्मलोकमेव यास्यामि। वही
99. कंसे प्रमथिते विष्णोः पूजार्थं देवशासनात्
सगन्धर्वाप्सरोभिश्च देवलोकादिगहातः।। बालचरित 5/17

समस्याओं का समाधन करने वाले एक दयालु व उदार दिव्य पात्र के रूप में अंकित किया है। वे अपने दिव्य ज्ञान से दूसरों के वृत्तान्त को जानने में समर्थ हैं। उन्हें अविमारक के अग्निपुत्र होने तथा उसके प्रणयजीवन के समस्त उतार-चढ़ावों का ज्ञान हैं।[100]

विक्रमोर्वशीयम्

पञ्चम अंक में नारद का चित्रण हुआ है। आकाश की ओर देखकर यह तो भगवान् नारद हैं। इन्द्र द्वारा प्रेषित नारद स्वर्ग से आकर सूचित करते हैं कि आगे देवों और असुरों का महायुद्ध होने वाला हैं, जिसमें देवताओं को पुरूरवा के पराक्रम की पुनः आवश्यकता होगी। इन्द्र चाहते हैं कि पुरूरवा विरक्त होकर वन में न जाएं। इसी उद्देश्य से उन्होंने उर्वशी को पुरूरवा के जीवन पर्यन्त उसके पास रहने की अनुमति दे दी है।[101]

100· अविमारक, पृ0 183

101· नारदः - त्रिकालदर्शिभिर्मुनिभिरादिष्टः सुरासुरसंगरो भावी।
भलांश्च सायुगीनः सहायो नः। तेन त्वया न शस्त्र संन्यस्तव्यम्।
इयं चोर्वशी यावदायुस्तव सहधर्मचारिणी भवत्विति।
-विक्रमो0 5, पृ0 229

वाल्मीकि

ऋक्ष अर्थात् वाल्मीकि को चौबीसवें परिवर्त का व्यास कहा गया है। ये दाशरथि राम के समकालीन थे। वाल्मीकि के शालिहोत्र, अग्निवेश्य, युवनाश्व तथा शरद्वसु नाम के चार पुत्र थे। अग्निवेश्य दीर्घजीवी था जो आचार्य द्रोण का गुरु था। प्राचीन काल में अग्निवेश्य ने ही पुनर्वसु आत्रेय के आयुर्वेद के उपदेश को तन्त्रबद्ध किया था। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में वाल्मीकि के वेद-प्रवचन अर्थात् चरण के सन्धि और उच्चारण सम्बन्धी तीन नियम दिये गये हैं ये तीनो नियम इस प्रकार हैं -

§1§ पकारपूर्वश्च वाल्मीकेः 5/36/, अर्थात् जिस "श" से पूर्व "प्" हो उसको "छ्" नहीं होता। इस नियमानुसार तैत्तिरीय संहिता 4/3/2 के अनुष्टुप छारदी पाठ के स्थान में वाल्मीकि चरण में "अनुष्टुप शारदी" पाठ ही था।

§2§ कपवर्गपरश्चाग्निवेश्यवाल्मीक्योः/9/4/ अर्थात् जिस विसर्जनीय से परे कवर्ग और पवग्र हो उसके सस्थान ऊष्म[1] नहीं होता अर्थात् कवर्ग परे रहने पर जिह्वामूलीय और पवर्ग परे रहने पर उपध्मानीय नहीं होता।

इस नियमानुसार वाल्मीकि के प्रवचन में "यःकामयेत"[2] और "अग्निः पशुरासीत्"[3] पाठ था। उस समय के अन्य चरणों में "यःकामयेत" में यः के विसर्ग के स्थान पर जिह्वामूलीय और "अग्निः पशुरासीत्" में विसर्ग के स्थान पर उपध्मानीय का उच्चारण था।

§3§ उदान्तो वाल्मीकेः/18/6/- अर्थात् वाल्मीकि शाखा में "ओम् का उच्चारण केवल उदात्त स्वर से होता था। अन्य आचार्यो के समान अनुदात्त और स्वरित में

1· तैत्तिरीय प्रातिशाख्य 1/19 के "परे षड्ऊष्माणः" सूत्रानुसार क्रमशः "क,श,ष,स,ह" ये 6 उष्म वर्ण है। इनमें प्रारम्भिक पांच ऊष्म क्रमशः कवर्गादि के सस्थान ऊष्म कहलाते हैं।

2· तैत्तिरीय संहिता 2/1/2

3· वही, 5/7/36

नहीं। इसी प्रकार मैत्रायणी प्रातिशाख्य[4] में वाल्मीकि चरण सम्बन्धी नियमों का उल्लेख हुआ है। तैत्तिरीय और मैत्रायणी प्रातिशाख्यों के उक्त नियमों से वाल्मीकि प्रोक्त वेद पाठ का सद्भाव अत्यन्त विशद है।

वेद का प्रवचन करने के कारण ही वाल्मीकि एक ऋषि के रूप में जाने जाते थे। वाल्मीकि द्वारा विरचित रामायण संस्कृत भाषा का प्रथम आर्ष[5] महाकाव्य माना जाता है। आर्ष महाकाव्य के गुणवैशिष्ट्य का उल्लेख महाभारत में मिलता है। इतिहास पर आधारित एवं सदाचार-सम्पन्न आदर्शो का प्रतिपादन करने वाले काव्य को "आर्ष काव्य" कहा जाता है। वह सद्गुण एवं सदाचार का पोषक, धीरोदात्त एवं गूढ़ गहन विचारों से परिपूर्ण श्रवणीय छन्दों से युक्त रहता है।[6]

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के भाष्य में माहिषेय के अनुसार - वाल्मीकेः शाखिनः। मन्त्रकृत वाल्मीकि ही रामायण के कर्ता थे। अश्वघोष उसे च्यवन ऋषि का पुत्र बताते हैं। वाल्मीकि निःसन्देह राम के समकालीन थे।

वाल्मीकि अपने को प्रचेता का पुत्र कहते हैं।[7] ऐसा उल्लेख रामायण तथा अध्यात्म रामायण में मिलता है। कतिपय विद्वान इन्हें निम्न जाति का बताते हैं। मनुस्मृति में प्रचेता को वसिष्ठ, नारद, पुलस्त्य कवि आदि का भाई कहा गया है।[8] स्कन्द पुराण के वैशाख माहात्म्य में इनको जन्मान्तर का व्याध कहा गया है। व्याध जन्म के पूर्व भी सृम्भ नामक श्रीवत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे। व्याध जन्म में शंख ऋषि के सत्संग से राम नाम का जप करने से वाल्मीकि दूसरे जन्म में "अग्निशर्मा" के रूप में जाने गये। वहाँ भी व्याधों के साथ में पड़कर कुछ दिन प्राक्तन संसकारवश

4· मैत्रायणी प्रातिशाख्य 2/6, 2/30, 5/38, 9/4

5· बालकाण्ड पश्मोत्तर शाखं 4/40।। 5/41।

6· इतिहासप्रधानार्थ शीलचरित्र्यवर्धनम्।
धीरोदात्त च गहनं श्रव्यैवृत्तैरनलड·कृतम्।
लोकयात्राक्रमश्चापि पावनः प्रतिपाद्यते।
विचित्रार्थपदाख्यानं सूक्ष्मार्थन्यायबृंहितम्।। -महाभारत

7· वा0रा0, 7/96/18, 7/93/16, 7/111/11, अध्यात्म रामायण, 7/31

8· मनुस्मृति, 1/35

व्याध कर्म में प्रवृत्त रहे। इसके पश्चात् सप्तर्षियों की कृपा से "मरा-मरा" जपकर तथा बाँबी पड़ने से वाल्मीकि नाम से विख्यात हुए। स्कन्दपुराण, वंगला के कृतिवास रामायण, मानस, अध्यात्म रामामयण, आनन्द रामायण, भविष्य पुराण आदि में भी यह कथा कुछ परिवर्तन के साथ उपलब्ध होती है।[9]

महर्षि वाल्मीकि संस्कृत के आदिकवि हैं तथा उनका काव्य आदि काव्य है। उनकी कविता स्थान तथा समय में बाँधी नहीं जा सकती। महर्षि वाल्मीकि की अद्भुत कविता और उसकी महनीयता का प्रमुख कारण उनका तपोबल हैं। "तपः स्वाध्याय निरतं तपस्वी वाग्विदां परम्" से रामायण जैसे महाकाव्य का तप शब्द से ही आरम्भ होता है। तपस्वी शब्द के द्वारा महर्षि ने अपनी जीवनी लिखी है। तप के द्वारा ही वाल्मीकि ने ब्रह्म का साक्षात् दर्शन किया। तपस्वी वाल्मीकि राम का ही जप करते थे। उनका रामायण महनीय कला का उत्तमोत्तम उदाहरण हैं। फ्रांस के महान् आलोचक फ्लाउबेर ने "महनीय कला" के लिये जिस आदर्श को काव्य-गोष्ठी में प्रस्तुत किया है वह आदर्श रामायण में सुन्दर ढंग से अपनी अभिव्यक्ति प्राप्त कर रहा हैं। फ्लाउबेर के विचार से "महान कला" ﴾ग्रेट आर्ट" इन वस्तुओं की साधना तथा प्रसारणा से मण्डित होती है[10] - "मानव सौख्य की अभिवृद्धि, दीन-आर्त जनों का उद्धार, परस्पर में सहानुभूति का प्रसार, हमारे और संसार के बीच सम्बन्ध के विषय में नवीन या प्राचीन सत्यों का अनुसन्धान जिससे इस भूतल पर हमारा जीवन उदात्त तथा ओजस्वी बन जाय या ईश्वर की महिमा झलके।" यही लक्षण वाल्मीकीय रामायण पर प्रत्यक्षतः दिखाई पड़ता है। वाल्मीकि समस्त राष्ट्र के हित चिन्तक करते हैं।

तमसा नदी के तट पर वाल्मीकि का आश्रम था।[11] पश्चिमोत्तर शाखीय

9· कल्याण सं0 स्कन्दपुराणाङ्क, पृ0 381, 709, 1024, अध्यात्म रा0, 2/6/64-92, आनन्द रामायण, राज्यकाण्ड, 14/21-49, भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग, 4/10

10. Walter Pater-Appreciations : Style नामक प्रख्यात ग्रन्थ में उद्धृत पृ0 38 संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ0 72 पर उद्धृत।

11· वा0रा0, बाल0 1/3, 4 वा0रा0, 2/56/16

रामायण में भी यह रामायण उल्लिखित है।[12] सम्मेलन पत्रिका[13] के अनुसार - वाल्मीकि आश्रम प्रयाग झाँसी रोग तथा राजापुर मानिकपुर रोड के संगम पर स्थित है। गोस्वामी तुलसीदास के मतानुसार इनका आश्रम वारिपुर दिगपुर के मध्य §विलसित भूमि§ था। मूल गोसाई चरितकार दिगवरिपुरा के बीच सीतामढ़ी के वाल्मीकि आश्रम मानते हैं। कानपुर में स्थित विठूर को भी कतिपय लोग वाल्मीकि ऋषि का आश्रम मानते हैं।[14]

आदि कवि वाल्मीकि का रामायण पृथ्वी का प्रथम काव्य है। वे विश्व के समस्त कवियों के गुरु हैं। उनका यह काव्य भारत के लिये गौरव की वस्तु है और देश की सच्ची बहुमूल्य राष्ट्रीय निधि है। श्री व्यास देव जी ने महर्षि वाल्मीकि के जीवनी का वर्णन श्रद्धापूर्वक किया है।[15] मत्स्य पुराण में व्यास जी ने इन्हें "भार्गवसत्तम" के रूप में स्मरण करते हैं[16], तथा भागवत में "महायोगी"[17] संज्ञा से विभूषित किया है।

ऋषि कवि वाल्मीकि से सम्बन्धित अनेक जनकथाएँ प्रचलित रही हैं जिन्हें यहां देना अप्रासंगिक नही होगा। एक कथा के अनुसार वाल्मीकि मूलतः रत्नाकर नाम के डाकू थे। घने जंगल से होकर आने-जाने वाले यात्रियों को लूटना ही उनका व्यवसाय तथा आजीविका का मुख्य साधन हो गया था। कदाचित् उसी मार्ग से सप्तर्षि निकल रहे थे। रत्नाकर के इस पापाचरण को देखकर सप्तर्षियों ने इन्हें विभिन्न उपदेश दिये और इस पापकृत्य के परिणाम के सम्बन्ध में रत्नाकर को सावधान

12· पश्चिमोत्तर शाखीय रामायण, 2/114

13· सम्मेलन पत्रिका, 43/2 पृ0 133

14· वा0रा0, 7/66/1, 7/7/14

15· स्कन्द0-वैष्णवखण्ड, वैशाखमाहात्म्य, अ0 17-20 तक। संक्षिप्त स्कन्दपुराणांक पृ0 374 से 383 तक। आवन्त्यखण्ड अवन्तीक्षेत्र माहत्म्य के 24वें अध्याय में। कल्याण सं0 स्कन्दपुराणांक पृ0 708-9, प्रभासखण्ड, अध्याय 278। सं0 स्कन्दपुराणांक, पृ0 1025-6 तथा अध्यात्म रामायण अयोध्याकाण्ड, 6/64-92

16· मत्स्य0 12/61

17· भागवत0 5/18/5

भी किया। उन ऋषियों ने इनसे कहा "जिन कुटुम्बियों के लिये तुम नित्य पापसञ्चय करते हो उनसे जाकर पूछ लो कि, वे लोग तुम्हारे इस पाप में सहभागी बनने के लिये तैयार हैं, या नहीं।" वाल्मीकि द्वारा कुटुम्बियों से पूछने पर उन्होंने इसे कोरा जवाब दिया, "तुम्हारा पाप तुम सम्हालो हम तो केवल धन के ही भोग करने वाले हैं" इसका रत्नाकर के मन पर अधिक प्रभाव पड़ा। यह सुनकर इसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। सप्तर्षियों से धार्मिक जीवन की दीक्षा लेकर रत्नाकर ने साधना आरम्भ कर दी। समाधि के लम्बे समय तक चलने के कारण दीमकों ने उनके चारो ओर वाल्मीक {बाँबी} बना ली। ज्ञानदृष्टि के खुल जाने पर जब वे उस वल्मीक से बाहर आये तभी से उनका नाम वाल्मीकि हो गया। महर्षि वाल्मीकि ने दृढ़ संयम, तीव्र मेधा तथा आर्ष एवं विलक्षण प्रतिभा के बल पर कुलपति तथा ऋषि का पद प्राप्त किया।

एक दिन आदि कवि महर्षि वाल्मीकि स्नान करने के लिये तमसा {टौंस} नदी के तट पर गये। अभी स्नान का उपक्रम ही कर रहे थे कि एक प्रेमासक्त, मधुर कूजन वाले, पास में ही विचरण करते हुए क्रौञ्च पक्षी के युगल में से नर क्रौञ्च को बहेलिये ने मार डाला। लहूलुहान वह क्रौञ्च भूमि पर तड़प रहा है, क्रौञ्ची दुःखी होकर विलाप कर रही है। तब क्रौञ्ची के उस करुण क्रन्दन को सुनकर वाल्मीकि का हृदय करुणा से द्रवित हो गया।[18] करुणा-उद्वेलित महर्षि के मुख से स्वतः ही एक पद्य शाप रूप में निकल पड़ा -

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।[19]

अर्थात् हे निषाद तुमने काममोहित इस क्रौञ्च पक्षी को मार डाला, अतएव तुम बहुत दिनों तक प्रतिष्ठ प्राप्त न करो।" इस श्लोक के प्राकट्य से महर्षि स्वयं

18· तथाविधं द्विजं दृष्ट्वा निषादेन निपातितम्।
ऋषेर्धर्मात्मवस्तस्य कारुण्यं समपद्यत।।
ततः करुणवेदित्वादधर्मोऽयमिति द्विजः।
निशाम्य रुदतीं क्रौञ्चीमिदं वचनमब्रवीत्।। -वा0रा0 2/13, 14

19· वा0रा0, बालकाण्ड 2/15

आश्चर्य में पड़ गये।[20] शोक से व्याकुल उनके हृदय से छन्दबद्ध तन्त्रीलययुक्त, वैदिक वाणी से भिन्न वाणी कैसे प्रसूत हो गयी ? इसी चिन्ता में पड़े हुए वे महर्षि स्नानोपरान्त अपने आश्रम में आये।[21] तत्पश्चात् स्वयं भूतभावन पद्मयोनि ब्रह्मा वहाँ प्रकट हुए। महामुनि उन्हें देखकर आश्चर्य में पड़ गये। शीघ्रता से उठकर हाथ जोड़कर ब्रह्मा का आतिथ्य सत्कार किया। तथा स्तुतियों द्वारा पूजन किया तथा क्रौञ्ची का करुण कूजन सुनाई पड़ रहा था। ब्रह्मा जी ने वाल्मीकि से कहा ऋषि श्रेष्ठ मेरी इच्छा है कि इसी लौकिक छन्द के पद्यात्मक शैली में रामचरित का प्रणयन करो। राम, लक्ष्मण, सीता से सम्बन्धित तथा राक्षसों से भी सम्बन्धित सम्पूर्ण वृत्तान्तों का निबन्ध करो। रामचरित लिखते समय जो बाते तुम्हें नहीं पता होंगी वे सब मेरी कृपा से प्रकट हो जायेंगी। अर्थात् लोकपितामह ब्रह्मा ने वाल्मीकि को "आर्षचक्षु" होने का वरदान भी दिया, जिससे वे अपने कथानायक के भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् जीवन को हस्तामलकवत देख सकें। ब्रह्मा जी ने कहा जब तक पृथ्वी पर हिमालय आदि पर्वत तथा गंगा आदि नदियाँ विद्यमान रहेंगी तब तक तुम्हारे कीर्ति स्तम्भ की भाँति यह राम कथा अमर रहेगी। चित्रकूट जाते समय जब भगवान राम ने महर्षि वाल्मीकि से अपने लिए उपयुक्त निवास स्थल पूछा तब महर्षि ने उनसे कहा था -

हे राम सम्पूर्ण प्राणियों के आप ही एक मात्र उपयुक्त निवास स्थान है। सभी प्राणियों का हृदय ही आप का निवास है। यह आपका सामान्य निवास स्थल है। आपने सीता-लक्ष्मण सहित अपने रहने का स्थान पूछा है इसलिए हे रघुकुल तिलक अब मै आपका विशेष निवास स्थल बतला रहा हूँ - जो शान्त समान देखने वाले और सम्पूर्ण जीवों के प्रति द्वेषहीन हैं तथा रात-दिन शुद्ध हृदय

20· चिन्तयन् स महाप्राज्ञश्चकार मतिमान्मतिम्।
शिष्यं चैवाब्रवीद् वाक्यमिदं स मुनिपुङ्·गवः।। वा0रा0, बा0 2/17

से आपका ही भजन करते हैं, उनका हृदय आपका सुन्दर निवास स्थान है, जो धर्म-अधर्म दोनों को छोड़केर निरन्तर आपका ही भजन करता है। हे राम उसके मन-मन्दिर में सीता-लक्ष्मण सहित आप सुखपूर्वक निवास करें। जो आपके मन्त्रों का जाप करता है, आप ही जिसके एकमात्र शरण हैं तथा द्वन्दहीन एवं निस्पृह हैं, उसका उदार हृदय आपका सुन्दर मंदिर है। जो अहंकारशून्य, शान्त स्वभाव, राग-द्वेष से रहित एवं मृतपिण्ड, पत्थर तथा सुवर्ण में समान दृष्टि रखने वाले है। उन वीतराग महात्माओं के हृदय-गृह में आज सुखपूर्वक निवास करें। जो भक्त आप में ही मन औरबुद्धि को समाहित कर सदा संतुष्ट रहता है और अपने सम्पूर्ण ऐहिक-लौकिक कर्मों में आपको ही समर्पित कर देता है। उसका मानस आपका पवित्र निकेतन है। जो अप्रिय की प्राप्ति पर द्वेष नहीं करता, प्रिय को प्राप्त कर हर्षित न होता तथा जो सम्पूर्ण प्रपंच को मायामय देखता है। इसलिए संसार से मन हटाकर आपके गुरु की आराधना में लीन रहता है। उसका निश्छल मन आपका पवित्र गृह है। जो जन्म, सत्ता, बढ़ना, बदलना, क्षीण होना और नष्ट होना - इन छः विकारों को अपने शरीर में ही देखता है। उसका हृदय कमल आपका सुन्दर आवास है। जो महात्मा चित्स्वरूप, सत्यस्वरूप, अनन्त, अद्वितीय, निर्लेप, सर्वगत और पूज्य आप परमेश्वर को समस्त अन्तः करणों में विराजमान देखते हैं, हे राम उनके हृदय कमल में आप सीता-लक्ष्मण सहित सुखपूर्वक निवास करें। सदैव अभ्यास से जिनका चित्त स्थिर हो गया है, एकमात्र जो आपकी चरण सेवा में रत है, उनके मन-सरसिज में आपसीता सहित निवास कीजिए। हे राम जिसके प्रभाव से मैने ब्रह्मर्षि पद को प्राप्त किया है। आपके उस नाम की महिमा का वर्णन कैसे किया जा सकता है ?[22]

राम ने कहा कि अगर सीता शपथपूर्वक अपने पातिव्रत के सम्बन्ध को करे तो मैं उसे स्वीकार कर लूँगा, उनके ऐसा कहने पर महर्षि वाल्मीकि ने उनकी बात को स्वीकार कर लिया।दूसरे दिन वे सीता सहित उस यज्ञ वाट में पहुँचे,

---

22· अध्यात्म रामायण, अयोध्याकाण्ड, अध्याय 6

जहाँ प्रमुख ऋषि, महर्षि, देवता, दैत्य सभी उपस्थित थे। जैसे ब्रह्मा के पीछे वेदमाता सावित्री चल रही थी वैसे ही सीता हाथ जोड़े हुए, अश्रुपूर्ण नेत्रों से राम को हृदय में धारण किए हुए महर्षि वाल्मीकि के पीछे-पीछे चल रही थी। सीता के करूणापूरित हृदय को देखकर सभी ने सीता की जय-जयकार की। जनसमूह के मध्य में खड़े होकरमहर्षि वाल्मीकि ने राम से कहा - हे राम सुन्दर व्रत का आचरण करने वाली यह सीता आपके द्वारा लोकनिन्दा के भय से मेरे आश्रम के निकट छोड़ दी गयी है। हे लोकापवाद से भयभीत राम यह सीता अपने पातिव्रत्य का प्रमाण आपके समक्ष उपस्थित करेगी। आप आज्ञा दीजिए। सीता के ये जुड़वे लव-कुश आपके ही पुत्र हैं। राघवनन्दन प्रचेता मुनि का मै दसवाँ पुत्र हूँ। मैने कभी असत्य भाषण नहीं किया है। राम हजारों वर्षो तक मैने कठोर तपस्या की है। यदि यह सीता अपवित्र होगी तो मुझे मेरी तपस्या का फल नहीं मिलेगा। यदि यह सीता पापरहित हो तो मन, वचन तथा कर्मसे किए गये पुण्यों का फल मैं प्राप्त करूँगा। वाल्मीकि ने कहा कि "सीता पवित्र हैं।" यह जानकर ही मैने इसका वन में ग्रहण किया है। पवित्र आचरण वाली, निष्पाप यह सीता लोकनिन्दा से भयभीत आपको अपनी पतिव्रता का प्रमाण देगी वाल्मीकि मुनि ने कहा - हे राम सीता आप को प्राणों से भी प्यारी है और आप स्वयं जानते है कि यह पवित्र है केवल लोकापवाद के भय से आप ने इसे त्याग दिया है।[23]

वाल्मीकि के सम्बन्ध में प्रचलित कथा के उत्तरार्द भाग का भवभूति आदि अनेक कवियों ने अपने काव्यों, नाटकों में उल्लेख किया है।[24] इस किंवदन्ति से स्पष्ट हो जाता है कि वाल्मीकि के समय में राम कथा के अनेक रूप सूतों और मागधों के गीतों में अवश्य प्रचलित थे। वाल्मीकि ने उस प्रचलित कथा का सांगोपांग अनुशीलन करके उसे एक विस्तृत एवं सुन्दर काव्य के रूप में प्रकट किया।

---

23. वा0रा0, उत्तरकाण्ड, अ0 96

24. भवभूति, उत्तररामचरितम् -द्वितीय अंक

वाल्मीकीय रामायण के युद्धकाण्ड के फलश्रुति अध्याय में आदि आर्षकवि वाल्मीकि का उल्लेख है।[25] वहाँ रामायण नामक काव्य के जो वाल्मीकि द्वारा विरचित है उसके पठन से पाठकों को धर्म, यश एवं आयुष्य प्राप्त होने की फलश्रुति दी गयी है सम्पूर्ण प्राचीन वाङ्मय में आर्ष कवि वाल्मीकि के सम्बन्ध में यह एकमात्र उल्लेख प्राप्त होता है।

कुछ विद्वानों के मतानुसार वाल्मीकि रामायण के दो से छः तक के काण्डों की रचना करने वाला आदि कवि वाल्मीकि तथा वाल्मीकि रामायण के बाल एवं उत्तरकाण्डों में उल्लिखित राम दाशरथि राजा के समकालीन वाल्मीकि दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे। परन्तु ईशा पू0 प्रथम शताब्दी में इस ग्रन्थ के बाल एवं उत्तरकाण्ड की रचना जब समाप्त हो चुकी थी उस समय आदि कवि वाल्मीकि तथा महर्षि वाल्मीकि दोनों को एक ही माने जाने की परम्परा स्थापित हुईथी। वा0रा0 के उत्तरकाण्ड में उल्लिखित महर्षि वाल्मीकि प्रचेतस ऋषि का दसवाँ पुत्र था, और यह जाति से ब्राह्मण तथा अयोध्या के राजा दशरथ के मित्र थे।[26]

भारतीय परम्परा के अनुसार वाल्मीकि एवं श्रीराम को समकालीन माना जाता है। अनेक इतिहास के विद्वान् भी इसी परम्परा को स्वीकार करते हैं। पाश्चात्य विद्वान् इस पर एक मत नहीं हैं। जहाँ तक दोनों की समकालीनता का प्रश्न है इससे सम्बन्धित अनेक प्रसंग स्वयं रामायण में ही मिल जाते हैं। रामायण के आरम्भ में ही वाल्मीकि द्वारा प्रश्न किये जाने पर महर्षि नारद जब राम[27] तथा रामराज्य[28] का वर्णन करते हैं तब वे सदा वर्तमान अथवा भविष्यत् काल का ही प्रयोग करतें हैं। इसके अतिरिक्त रामायण के उत्तरकाण्ड में लोकापवाद के भय से क्षुब्ध होकर गर्भवती जानकी को राज्य से निर्वासित कर दिया था तब ऋषि वाल्मीकि ने दुःख से कातर् हृदया सीता को अपने तपोवन में आश्रय दिया था।[29] ऋषि

---

25. वा0रा0, युद्ध 128/105
26. वा0रा0, उत्तर0 96/18, 47, 16
27. वा0रा0, बाल0 1/8-20
28. वही, 1/91-96
29. रामायण, उत्तरकाण्ड 49/10-23

वाल्मीकि ने ही सीता के दोनों पुत्रों कुश एवं लव को सम्पूर्ण शिक्षा दीक्षा प्रदान की थी।[30] उक्त प्रसंगों के विवेचनोपरान्त कहा जा सकता है कि वाल्मीकि राम के समकालीन थे।

रामायण में वाल्मीकि की वन्दना करते हुए कहा गया है -

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरं।
आरुह्य कविता शाखा वन्दे वाल्मीकि कोकिलम्।
यः पिपवन् सततं रामचरितामृत सामरम्।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम्।
कवीन्दुं नौमि वाल्मीकिं यस्य रामायणीं कथाम्।
चन्द्रकामिव चिन्वन्ति चकोरा इव साधवः।।

भारतीय धर्मप्राण जनता में धर्म, कर्म और आदर्श की संयुक्त त्रिवेणी प्रवाहित कर देने वाले वाल्मीकि का आदि कवि अभिधान सार्थक तथा प्रयोजनपूर्ण है। इनसे पूर्व भी पद्यवद्ध रचनायें हो रहीं थी किन्तु वे मात्र धर्म, उपासना, स्तुति में ही सिमट कर रह गयी थी। सामान्य जनमानसा की समस्याओं से इनका कोई सम्बन्ध नहीं रहा। इसी कमी को दूर करने के लिए प्रगतिशील वाल्मीकि ने धर्मप्राण साहित्य को कर्मप्राण में परिवर्तित करने के लिये "रामायण" की सर्जना की। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में जननायक मर्यादा पुरूषोत्तम राम के अनुपम चरित्र का काव्यमय वर्णन किया है। परवर्ती काल में इसे वेद के समकक्ष अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। स्वयं वाल्मीकि ने भी रामायण को काव्य[31] गीत[32] आख्यान[33] तथा संहिता[34] आदि नामों से अभिहित किया है।

30· रामायण, उत्तरकाण्ड, 66/1-11, 17/14-23, 93/5-19
31· वा0रा0, बाल0 2/41, युद्धकाण्ड 128/105
32· वही, 4/27
33· वही, 4/32 युद्धकाण्ड 128/118
34· वही, युद्धकाण्ड 128/120

सर्वप्रथम दुःख से द्रवित होकर मुनि के मुखारविन्द से जो वाक्य प्रस्फुटित हुआ था वह चार चरणों में आबद्ध था। प्रत्येक चरण में आठ-आठ अक्षर थे तथा उसे वीणा के लय पर भी गाया जा सकता है।[35] महर्षि वाल्मीकि ने क्रौञ्च पक्षी की पीड़ा से पीड़ित होकर जिन समान अक्षरों वाले चार चरणों से युक्त वाक्य का गान किया था वह उनके हृदय का शोक था किन्तु उनकी वाणी द्वारा उच्चारित होकर श्लोक रूपमें परिणत हो गया।[36] शुद्ध अन्तःकरण वाले महर्षि वाल्मीकि ने इसी प्रकार के श्लोकों से सम्पूर्ण रामायण की रचना की।[37] उदाचेता महर्षि ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र को लेकर जो रचना की है वह उनके यश को बढ़ाने वाला है। राम के उदार चरित्रों का प्रतिपादन करने वाले मनोहर पदों का प्रयोग किया है।[38] धर्मपरायण महर्षि वाल्मीकि ने योग का आश्रय ग्रहणकर पूर्वकाल में जो-जो घटनायें घटित हुई थी उन सभी को वहाँ हाथ पर रखे हुए आँवले की तरह प्रत्यक्ष देखा।[39] सबके मन को प्रिय लगने वाले राम के समस्त चरित्रों का समाधि के द्वारा यथार्थ रूप से निरीक्षण करके महाबुद्धिमान महर्षि वाल्मीकि ने उन सबको महाकाव्य का रूप देने की चेष्टा की।[40]

महर्षि वाल्मीकि ने राम के समस्त चरित्र के आधार पर विचित्र पदार्थों से युक्त रामायण की रचना की।[41] जिसमें चौबीस हजार श्लोक पाँच सो सर्ग तथा उत्तर सहित सात काण्डों का प्रतिपादन किया है।[42] महर्षि वाल्मीकि ने विचार किया कि ऐसा कौन शक्तिशाली पुरुष होगा जो महाकाव्य को पढ़कर सबको सुना सके।[43]

35· पादबद्धोक्षरं समस्ततनवीलय समन्वितः। शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतुनान्यथा।।
वा0रा0, बा0 2/18

36· समाक्षरैश्चतुर्भिर्यः पादैर्गीतो महर्षिणा।
सोऽनुव्याहरणाद् भूयः शोकः श्लोकत्वमागतः।। वा0रा0, बा0 2/40

37· तस्य बुद्धिरियं जाता महर्षेर्भावितात्मनः। कृत्स्नं रामायण काव्यमीदृशैः करवाण्यहम्।।
वा0रा0, बा0 2/41

38· उदारवृत्तार्थपदैर्मनोरमै, स्तदास्य रामस्य चकार कीर्तिमान्।
समक्षरैः श्लोकशतैर्यशस्विनो, यशस्करं काव्यमुदार दर्शनः।। वा0रा0, बा0 2/42

39· ततः पश्यति धर्मात्मा तत् सर्वं योगमस्थितः।
पुरा यत् तत्र निवृत्तं पाणावामलकं यथा।। वा0रा0, बा0 3/6

शुद्ध अन्तःकरण वाले महर्षि वाल्मीकि के ऐसा विचार करते ही मुनि वेष धारण किये हुए राजकुमार कुश और लव ने आकर महर्षि के चरणों में प्रणाम किया। वाल्मीकि ने लव और कुश को सुयोग्य समझकर उत्तम व्रत का पालन करने वाले उन महर्षि ने वेदों के अर्थ का विस्तार के साथ ज्ञान कराने वाले उन महर्षि ने वेदों के अर्थ का विस्तार के साथ ज्ञान कराने के लिये उन्हें सीता के चरित्र से युक्त सम्पूर्ण रामायण नामक महाकाव्य का जिसका दूसरा नाम पौलत्स्यवध अथवा दशानन वध था।

स्व0 पं0 भगद्दत्त के अनुसार वाल्मीकि, काव्य का आदि कर्ता होते हुए भी, श्लोक का उपज्ञाता नहीं है। इसी भाव को काशिका[44] का "वाल्मीकेः श्लोकाः" प्रतयुदाहरण व्यक्त करता हैं। रघुकार हरिषेण कालिदास रघुवंशं में लिखते हैं -

निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः।।14/70।।
सखा दशरथस्यापि जनकस्य च मन्त्रकृत।
संचस्कारोभयप्रीत्या मैथिलेयौ यथाविधि।। 15/31।।
बृत्तं रामस्य वाल्मीकेः कृतिस्तौ किन्नरस्वरौ।। 15/64।।

अर्थात् व्याध द्वारा मारे गये पक्षी को देखकर उत्पन्न हुआ शोक जिसके श्लोकत्व को प्राप्त हो गया। रामवृत्त मन्त्रकृत वाल्मीकि ने रचा था।[45]

40· तत् सर्वं तत्त्वतो दृष्टवा धर्मेण स महामतिः
अभिरामस्य रामस्य तत् सर्वं कर्तुमुद्यतः।। वा0रा0, बा0 3/7

41· प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत्।। -वा0रा0, बा0 4/1

42· चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः
तथा सर्गशतान् पञ्च षट्काण्डानि तथोत्तरम्।। वा0रा0, बा0 4/2

43· तस्य चिन्तयमानस्य महर्षेर्भावितमात्मनः
अगृहीतां ततः पादौ मुनिवेषौ कुशीलवौ।। -वा0रा0, बा0 4/4

44· काशिका 2/4/21

45· पं0 भगवद्दत्त - वैदिक वाड्·गमय का इतिहास पृ0 104-105 पर उद्दृत।

महर्षि वाल्मीकि की महत्ता को स्वीकार करते हुए कहा जा सकता है कि वाल्मीकि ने कवि के वास्तविक स्वरूप एवं रमणीय आदर्श को जनमानस के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया है। महाकाव्य का माहात्म्य तथा गौरव रामायण से ही प्राप्त होता है। कवि की कल्पना में दर्शना तथा वर्णना दोनों का नयनाभिराम सामञ्जस्य है। इस कल्पना के जन्मदाता महर्षि वाल्मीकि ही कहे जाते हैं। वाल्मीकि में वर्णना के उदय के साथ ही कविता का प्राकट्य हुआ। "मा निषाद प्रतिष्ठामत्मगमः" के उच्चारण करते ही ब्रह्मा उनके सम्मुख प्रकट होकर बोले - महर्षे तुम्हारे आर्ष चक्षु का अब उन्मीलन हो गया है। तुम आद्य कवि हो भवभूति के शब्दों में -

ऋषे प्रबुद्धोऽसि वागात्मनि ब्रह्मणि तद्ब्रूहि रामचरितम्
अव्याहत ज्योतिरार्ष ते चक्षुः प्रतिभाति। आद्यः कविरसि।।

कवि के वास्तविक स्वरूप को वाल्मीकि के दृष्टान्त से विख्यात समालोचक भट्टतौत ने इस पद्य में कितनी रमणीयता से अभिव्यक्त किया है -

दर्शनाद् वर्णनाच्चाथ रूढ़ा लोके कविश्रुतिः।
तथा हि दर्शने स्वच्छे नित्येऽप्यादि कवेर्मुनेः।
नोदिता कविता लोके यावज्जाता न वर्णना।।

संस्कृत काव्य-धारा को दिशा उसी समय निर्देशित हो उठी जब प्रेमासक्त सहचर के आकस्मिक निधन से पीड़ित क्रौञ्ची के करूण क्रन्दन को श्रवण कर वाल्मीकि के अन्तःकरण का शोक श्लोक के रूप में छलक पड़ा था।

महर्षि वाल्मीकि कालिदास तथा भवभूति के साथ-साथ पूरे कवि समाज के उपजीव्य हैं। महर्षि वाल्मीकि का रामायण पृथ्वी तल के समस्त मानव जाति को शीतल छाया प्रदान करने वाला है। महर्षि वाल्मीकि ने जब नारदमुनि से आदर्श गुणों से सुशोभित किसी व्यक्ति का परिचय जानने की जिज्ञासा प्रकट की तो नारद मुनि एक मानव को ही उन अनुपम गुणों का भाजन बतलाया - "तैर्युक्तः श्रूयतां नरः।" भिन्न-भिन्न विकट परिस्थितियों के मध्य रहकर भी मानव अपने शील सौन्दर्य की रक्षा कैसे करे इसे महर्षि वाल्मीकि ने बड़े रमणीय ढंग से निर्दिष्ट किया है।

महर्षि वाल्मीकि का क्रोध और प्रसाद दोनों ही अमोघ है अपने अपराधों के कारण हनन योग्य व्यक्तियों को बिना मारे नहीं रहते और अवध्य के ऊपर क्रोध के कारण कभी उनकी आँख भी लाल नहीं होती।[46] वाल्मीकि की कोमल काव्य-प्रतिभा का नयनाभिराम दिग्दर्शन राम और सीता का समुज्जवल चरित्र है। वाल्मीकि हमारे प्रतिनिधि कवि हैं। राम तथा जनकनन्दिनी सीता के जीवन का आदर्श चित्रित करने के फलस्वरूप वाल्मीकि की यह रसतरङ्गणी सुख तथा शान्ति को प्रवाहित करती हुई विश्व का कल्याण करती हैं। आलोचकों के विचार से कविता रूपी वन में विचरण करने वाले वाल्मीकि महर्षियों तथा मुनियों में सिंह के समान हैं जिनके राम कथा रूपी मिनाद को श्रवण कर कौन मनुष्य परम गति को प्राप्त नहीं होता-

"वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्थ कवितावनचारिणः
श्रृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम्।।"

वाल्मीकि की काव्य शैली को "रसमय पद्धति" भी कहा जा सकता है। वाल्मीकि को बिना समझे कालिदास का अध्ययन अधूरा रहेगा। रघुवंश में कालिदास ने "पूर्व सूरभिः" के द्वारा वाल्मीकि की ओर संकेत किया है। महर्षि वाल्मीकि के सरस हृदय का परिचय कालिदास ने सुन्दर शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त किया है।[47] कालिदास को अपनी काव्यकला को पुष्ट करने में वाल्मीकि से स्फूर्ति तथा प्रेरणा मिली हैं। महर्षि वाल्मीकि की दूसरी विशाल रचना योगवशिष्ठ है, इसमें उन्होंने रहस्यमय ढंग से श्रीराम के विस्तृत चरित्र का वर्णन किया है।

रामायण में बालकाण्ड में वाल्मीकि को तपस्वी, महर्षि तथा मुनि कहा गया है।[48] इनका आश्रम तमसा §टौंस§ एवं गंगा के समीप विद्यमान था।[49]

46· "नास्य क्रोधः प्रसादो वा निरर्थोऽस्ति कदाचन।
हन्तेष नियमाद् वध्यानवध्येषु न कुप्यति।। -वा0रा0, 22/4/6

47· तामभ्यगच्छद् रुदितानुसारी, मुनिः कुशेध्ममाहरणाय यातः।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः, श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः।। -रघुवंश 1/4

48· वा0रा0, बाल0 1/1, 2/4, 4/4

49· वा0रा0, बाल0 2/3

यह आश्रम गंगा नदी के दक्षिण में ही था क्योंकि सीता के निर्वासन के समय लक्ष्मण तथा सीता अयोध्या से निकलने के पश्चात् गंगा नदी को पार करके तब इस आश्रम में पधारे।[50] एक अन्य परम्परा प्रचलित है जिसके अनुसार इनका आश्रम गंगा के उत्तर में यमुना नदी के किनारे चित्रकूट के निकट माना जाता है।[51] जो आजकल बाँदा जनपद में विद्यमान है। वाल्मीकिय रामायण में इन्हें अपने आश्रम का कुलपति कहा गया है। प्राचीन भारतीय परम्परानुसार "कुलपति" उसे कहते थे जो दस हजार विद्यार्थियों का पालन-पोषण करता हुआ उन्हें शिक्षा प्रदान करता था। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि महर्षि वाल्मीकि का आश्रम काफी बड़ा था।

वाल्मीकि से सम्बद्ध अनेकानेक आख्यायिकायें महाभारत एवं पुराणों में देखी जा सकती हैं किन्तु उत्तरकालीन होने के कारण अविश्वसनीय प्रतीत होती हैं। वाल्मीकि को महाभारत तथा पुराणों में "भार्गव" अर्थात् भृगवंशी बतलाया गया है।[52] एक कथा प्रसिद्ध है कि भार्गव, च्यवन एक बार तपस्या करते हुए इतने अधिक समय तक निश्चल रहे कि उनका शरीर "वल्मीक" से ढक गया। यह कथा वाल्मीकि ﴾जिसका शरीर वल्मीक से आच्छादित थे﴿ नाम से मिलता-जुलता होने के कारण वाल्मीकि एवं च्यवन इन दोनों के कथाओं में सम्मिश्रण किया गया। इन्हीं कारणों से वाल्मीकि को "भार्गव" उपाधि प्रदान की गई।[53]

अध्यात्म रामायण में वाल्मीकि के द्वारा वल्मीक से आच्छादित होने का इसी कथा का विकास उत्तरकालीन साहित्य में वाल्मीक को दस्यु, ब्रह्महन एवं डाकू के रूप में प्रचलित हो गया। जिसका विस्तृत वर्णन स्कन्दपुराण[54] तथा आध्यात्मिक

50· वा0रा0, उत्तरका0 4/7
51· वा0रा0, अयोध्याका0 56/16, दाक्षिणात्य अ0रा0 2/6, रामचरित 2/124
52· म0शा0 57/40
53· भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव, पृ0सं0 832 पर उद्धृत।
54· स्कन्द0 वै0 21

रामायण में हुआ है। इन कथाओं के अनुसार वाल्मीकि को जन्म से ब्राह्मण माना गया है, किन्तु लगातार किरातों के साथ रहने के कारण कुसंगत से चोरी आदि बुरे कर्मों में रत रहने से इनका ब्राह्मणत्व नष्ट हो गया तथा एक शूद्र स्त्री के गर्भ से इनको कई पुत्र भी उत्पन्न हुए। जब ये वल्मीक से आच्छादित हो गये थे। कुछ समय पश्चात् ऋषियों ने इन्हें बाहर निकलने का आदेश दिया और कहा "वल्मीक" में तपस्यारत रहने के कारण तुम्हारा दूसरा जन्म हुआ है। अतएव आज से तुम वाल्मीकि नाम से ही सुविख्यात होगे।[55] स्कन्दपुराण में भी यही कथा उपलब्ध होती है, किन्तु वहाँ ऋषि बनने के पूर्व का इनका नाम "अग्निशर्मन" दिया गया है।

फादर कामिलबुल्के आदि कुछ विद्वानों के मतानुसार पुराणों में उपलब्ध समस्त कथाओं में वाल्मीकि की नीच जाति प्रतिध्वनित होती है किन्तु इस सम्बन्ध में अन्तिम रूप से कहना अत्यन्त कठिन है। इन कथाओं में मूल रूप से "रामनाम" का निर्देश अप्राप्य है इससे प्रतीत होता है कि "रामभक्ति साम्प्रदाय का विकास होने के पश्चात् यह सारा वृत्तान्त राम नाम के गुणगान में परिणत कर दिया गया है।[56] पुराणों में इसे छब्बीसवाँ वेदव्यास तथा श्री विष्णु का अवतार कहा गया है।[57] भरद्वाज ऋषि इनके शिष्य थे।

रामायण की जन्म कथा के सम्बन्ध में कहा गया है कि राम कथा की रचना करने की प्रेरणा वाल्मीकि को नारद मुनि से प्राप्त हुई। इस सम्बन्ध में वाल्मीकि से नारद के साथ किये गये एक सम्बाद का उल्लेख बाल्मीकीय रामायण में प्राप्त होता है। एक बारतप और स्वाध्याय में तल्लीन एवं बाक्प्रवीण नारद से वाल्मीकि ने प्रश्न किया कि "इस संसार में ऐसा कोन महापुरूष है जो आचार, विचार और

---

55. अ0रा0, अयोध्याकाण्ड 6/42-88।
56. कमिलवुल्के - रामकथा, पृ0सं0 47
57. विष्णु0, 3/3/18

पराक्रम में आदर्श माना जा सकता है। उस समय नारद ने वाल्मीकि को रामकथा का सार सुनाया उसी को श्लोकबद्ध करके इसने अपने रामायण महाकाव्य की सर्जना की।[58] इस आख्यायिका से ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में रामकथा से सम्बन्धित लोक कथाएँ विद्यमान थी जिसे सुनकर वाल्मीकि ने छन्दोबद्ध रूप में रामायण की रचना की।

राम के द्वारा परित्यक्ता सीता की देखभाल महर्षि वाल्मीक ने ही की थी। उस समय सीता गर्भवती थी। तदनन्तर यथासमय उसे दो जुड़वे पुत्र उत्पन्न हुए। उन दोनों पुत्रों का नामकरण संस्कार "कुश" और "लव" महर्षि वाल्मीकि द्वारा ही सम्पन्न हुआ था। तथा उनका पालन-पोषण के साथ विद्या दान भी दिया। वे दोनों कुमार बड़े होने पर इसने उन्हें स्वयं वाल्मीकीय रामायण महाकाव्य की शिक्षा दी। तत्पश्चात् कुश एवं लव ने वाल्मीकीय रामायण का घूमघूमकर गायन करना शुरू कर दिया। ऐसा करते हुए वे दोनो अयोध्या नगरी में पहुँच गये, जहाँ राम दाशरथि के अश्वमेघ यज्ञ में रामायण का गायन प्रस्तुत कर लोगों को मन्त्रमुग्ध कर लिया।[59]

राम सभा में कुश और लव के द्वारा रामायण का अभिनयपूर्वक जो गायन किया गया उसे देखकर राम भाव विह्वल हो उठे। बाद में जब उन्हें यह विदित हुआ कि ये दोनों ऋषिकुमार उन्हीं के पुत्र हैं तो उनको प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं रह गया। राम ने सीता को अपने पास बुलवा लिया। उस समय सीता के साथ वाल्मीकि भी राम सथा में उपस्थित हुए। स्वयं वाल्मीकि ने सीता के सतीत्व के विषय में साक्ष दिये। उस समय महर्षि वाल्मीकि ने अपने सहस्र वर्षो के तप का तथा सत्यप्रतिज्ञता का उल्लेख करके सीता को स्वीकार करने की प्रार्थना राम से की।[60] तदनन्तर वाल्मीकि के कहने पर सीता ने पातिव्रत्य की शपथ लेकर पृथ्वी में प्रवेश किया।

58· वा0रा0, बाल0 1

59· वा0रा0, उत्तरकाण्ड 93-94

वाल्मीकीय रामायण, महाभारत तथाभागवत ये तीनों प्रमुख ग्रन्थ पौराणिक साहित्य के अन्तर्गत माने जाते हैं। वेदान्त ग्रन्थों की प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत भगवद्गीता उपनिषद एवं ब्रह्मसूत्र आते हैं। उपर्युक्त ग्रन्थों का भारतीय तत्त्वज्ञान के विकास में प्रमुख योगदान है। इन ग्रन्थों में वाल्मीकीय रामायण एवं भागवत क्रमशः कर्मयोग एवं भक्ति तत्त्वज्ञान के प्रतिपादक ग्रन्थ हैं। रामायण में आदर्श पुत्र भ्राता माता-पिता आदि के जो कर्तव्य बताये गये हैं वे अत्यन्त हृदयस्पर्शी एवं आदर्शभूत प्रतीत होते हैं। इस प्रकार रामायण में भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार आदर्श जीवन का चित्रण किया गया है। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की कथावस्तु में स्वार्थ का परित्याग, पितृपरायणता बन्धुप्रेम जैसे सात्विक गुणों को प्रकृष्ट रूप से चित्रित किया है। इसीलिए वाल्मीकि रामायण महाभारत से अधिक लोकप्रिय है। रामायण की लोकप्रियता इसी से प्रतीत होती है कि भारत एवं दक्षिण-पूर्व एशिया की सभी भाषाओं में उपलब्ध रामकथा विषयक रचनाएँ सदियों से जनता के नित्यपाठ के ग्रन्थ वन चुकी हैं। वाल्मीकीय रामायण में वर्णित राम, लक्ष्मण, सीता आदि देवता के रूप में सम्पूर्ण भारतवर्ष में पूजे जाते हैं।

वाल्मीकीय रामायण एक काव्य प्रधान चरित्र है। वाल्मीकि ने घोषणा की है कि "रामायण में राम एवं सीता के चरित्र का कथन करता हूँ।"[61] वाल्मीकीय रामायण की सम्पूर्ण कथावस्तु राम एवं उनके कुटुम्बीजन से सुशोभित है। राम, लक्ष्मण, सीता, दशरथ आदि का "हषित", "भाषित" एवं "चेष्टित" पराक्रम का वर्णन करना यही उसका प्रधान हेतु है।[62]

वाल्मीकीय रामायण की महत्ता के विषय में डॉ० विण्टरनित्स से लेकर आचार्य विनोवा भावे तक समस्त विद्वानों का अभिन्न मत है। श्री विनोवा भावे

61· काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।
पौलस्त्यवधमित्येव चकार चरितव्रतः।। -वा०रा०, बाल० 4/7

62· वा०रा०, बाल० 3/4

जी ने अपना विचार प्रकट करते हुए कहा है - "चित्तशुद्धि प्रदान करने वाला समस्त हिन्दू धर्म ग्रन्थों में वाल्मीकि रामायण भगवद्गीता से भी अधिक श्रेष्ठ है। जहाँ भगवद्गीता नवनीत है वहाँ रामायण माता के दूध के समान है। नवनीत का उपयोग मर्यादित लोग ही कर सकते हैं, किन्तु माता का दूध तो सभी के लिए लाभदायक रहता है।[63] इसीलिए वाल्मीकि रामायण के प्रारम्भ में ब्रह्मा ने रामायण से सम्बन्धित जो आशीवर्चन वाल्मीकि को प्रदान किया है, वह उचित प्रतीत होता है -

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले
तावद्रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।[64]

अर्थात् इस सृष्टि में जब तक पर्वत खड़े हैं एवं नदियाँ बहती हैं तब तक राम कथाका गान लोग करते ही रहेंगे।

वाल्मीकि के रामायण की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में डॉ० याकोवी का विचार है - "वर्ण्य विषय की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण दो भागों में विभाजित किया जा सकता है §1§ बाल एवं अयोध्या काण्ड में वर्णित अयोध्या की घटनाएँ, जिनका केन्द्र विन्दु इक्ष्वाकु राजा दशरथ हैं। §2§ दण्डकारण्य एवं रावण से सम्बन्धित घटनाएँ, जिनका केन्द्र विन्दु रावण दशग्रीव हैं। इनमें से अयोध्या की घटनाएँ ऐतिहासिक प्रतीत होती हैं। जिनका आधार किसी निर्वासित इक्ष्वाकुवंशीय राजकुमार से है। रावण वध से सम्बन्धित घटनाओं का मूल उद्गम वेदों में वर्णित देवताओं की कथाओं में देखा जा सकता है।[65]

सभी भाषाओं पर रामकथा से सम्बन्धित अनेकानेक ग्रन्थों की सृष्टि हुई जिनके फलस्वरूप वाल्मीकि एक प्रातः स्मरणीय विभूति बन गये।[66]

63· सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव - भारतवर्षीय प्राचीन चरित्रकोश पृ०सं० 834
64· वा०रा०, बाल० 2/36
65· याकोवी, रामायण पृ० 86-127
66· श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
दियतुः पादायोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।। भारतीय चरित्रकोश पृ० 835 पर उद्धृत।

आदि कवि के आदि काव्य की रचना अनुष्टुभ् छन्द में की गयी है। वाल्मीकि रामायण से पूर्व कई वैदिक ऋचायें अनुष्टुभ में थी। किन्तु उनके लघु-गुरु अक्षरों में नियन्त्रण का अभाव था फलतः वे गेय नहीं बन पायीं। इस कारण ब्राह्मण आरण्यक जैसे वैदिकोत्तर साहित्य में अनुष्टुभ छन्द का लोप हो गया और इन सभी ग्रन्थों की रचना गद्य में होने लगी। इस अवस्थामें वेदों में उपलब्ध अनुष्टुभ् छन्द को लघु गुरु अक्षरों को नियन्त्रण में रखकर वाल्मीकि ने सर्वप्रथम "मा निषाद्" श्लोक की, तत्पश्चात् समग्र रामायण की रचना की।[67]

वाल्मीकि के द्वारा प्रस्थापित अनुष्टुभ् छन्द में श्लोक के प्रत्येक पाद का पाँचवा अक्षर लघु एवं छठवाँ अक्षर गुरु था। इसी प्रकार समपादों में सातवाँ अक्षर ह्रस्व एवं विषम पाद में सातवाँ अक्षर दीर्घ था। इस छन्द की रचना के कारण वाल्मीकि आदि कवि कहलाए। इससे बढ़कर "विश्व" जैसे संस्कृत भाषा के शब्द कोश में "कवि" शब्द का अर्थ भी वाल्मीक ही दिया गया है।

गेय महाकाव्य के रूप में वाल्मीकि रामायण की रचना की गयी है। रामायण की रचना समाप्त होने के पश्चात् इसके साभिन्य गायन का प्रयोग "त्रिताल" एवं सप्त जाति में तथा वीणा के स्वरों में कौन गायक सुन्दर रूप में प्रस्तुत कर सकेगा, इस सम्बन्ध में वाल्मीकि चिन्तन करने लगे।[68] वाल्मीकि के समय में रामायण की गायन के साथ-साथ अभिनय भी किया जाता था। ऐसा स्पष्ट उल्लेख वाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है। उस समय रामायण का गायनकरने वाले कुश लव को "स्थानकोविद" {कोमल, मध्य, एवं उच्च स्वरोच्चारणों में प्रवीण}, "मार्गगानतज्ज्ञ" {मार्ग नामक गायन प्रकार में कुशल} ही नहीं बल्कि "गान्धर्वतत्त्वज्ञ" {नाट्यशास्त्र} एवं "रूपलक्षणासम्पन्न" {अभिनय सम्पन्न} कहा गया है।[69]

67· सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव - भारतवर्षीय प्राचीन चरित्रकोष, पृ0 835-36

68· चिन्तयामास को न्वेतत प्रयुञ्जादिति प्रभुः।
पाठये गेये च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम्
जातिभिः सप्तभिर्युक्तं तन्त्रीलय-समन्वितम्।। -वा0रा0, बा0 4/3, 8

69· वा0रा0, बा0 4/10/11

वाल्मीकीय रामायण में उपलब्ध भौगोलिक वर्णन से प्रतीत होता है कि वाल्मीकि उत्तरभारत के निवासी थे। गंगा नदी को मिलने वाली तमसा नदी के किनारे अयोध्या के निकट उनका आश्रम था। कई अभ्यासिकों के मतानुसार वाल्मीकि को उत्तर भारत एवं पंजाब प्रदेश की जितनी सूक्ष्म जानकारी थी, उतनी दक्षिण एवं मध्य भारत की नहीं थी क्योंकि कोसल देश एवं गंगा नदी के आस-पास के स्थलों का भौगोलिक वर्णन जितना स्पष्ट रूप से वाल्मीकि ने किया है उतना दक्षिण भारतीय स्थलों का वर्णन नहीं प्राप्त होता।

वाल्मीकि ने उत्तर भारत के जिन स्थलों का वर्णन किया है उनमें से कुछ प्रमुख स्थल इस प्रकार हैं - अयोध्या[70], सरयू[71], तमसा नदी[72],कोशल देश[73], श्रृंगवेरपुर[74], नंदिग्राम[75], मिथिला, सिद्धाश्रम, गौतमाश्रम एवं विशाला नगरी[76], गिरिव्रज अथवा राजगृह[77], भरद्वाजाश्रम[78], बाह्लक[79], भरत की अयोध्या-केकय-गिरिव्रज प्रवास[80] आदि।

दक्षिण भारत के स्थलों का वर्णन इस प्रकार किया गया है - पञ्चवटी[81], पम्पा नदी[82], दण्डकारण्य[83], अगस्त्याश्रम[84], जनस्थान[85], किष्किन्धा[86], लंका[87], विन्ध्यादि।[88]

वाल्मीकीय रामायण का रचनाकाल के सम्बन्ध में भारतीय प्राचीन चरित्रकोश के अनुसार रामायण के सात काण्डों में से दूसरे से लेकर छठवें तक के भी रचना

70· वा०रा०, बा० 6/1
71· वही, 24/10
72· वही, 24
73· वही, अयोध्याकाण्ड 50/10
74· वही 50/26
75· वही, 115/12
76· वा०रा०, अयो० 31/68
77· वा०रा०, अयो० 68/21
78· वही, 54/9
79·वही, 68/18
80· वही, अयो० 68/12-21, 71/±18
81· वा०रा०, अर० 13/12
82· वही 6/17
83· वा०रा०, बा० 10/25
84· वा०रा०,अर० 11/83
85· वा०रा०, उ० 81/20
86· वा०रा०, किष्कि० 12/14
87· वही 58/19-20
88· वही, 60/7

स्वयं वाल्मीकि द्वारा की गयी थी शेष दो काण्डों बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड वाल्मीकि के आदि रामायण में नहीं थे। इन दोनों काण्डों में वाल्मीकि का एक पौराणिक व्यक्ति के रूप में उल्लेख मिलता है। आधुनिक अभ्यासकों के मतानुसार वाल्मीकि के आदि काव्य का रचनाकाल महाभारत के पूर्व में अर्थात् 300 ई0पू0 माना जाता है। वाल्मीकि के प्रचलित रामायण का रचनाकाल दूसरी शताब्दी ई0पू0 माना जाता है। आदि वाल्मीकीय रामायण के रचनाकाल दूसरी शताब्दी ई0पू0 माना जाता है आदि वाल्मीकीय रामायण के रचनाकाल के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विद्वानों ने अपना भिन्न-भिन्न मत प्रकट किया है। उनमें से कुछ का मत इस प्रकार है-

डॉ0 याकोबी छठीं शताब्दी ई0पू0, डॉ0 मैक्डानल छठीं शताब्दी ई0पू0, डॉ0 मोनियर विल्यम्स - 5वीं शताब्दी ई0पू0, श्री चि0वि0 वैद्य 5वीं शताब्दी ई0पू0,डॉ0 कीथ चौथी शताब्दी ई0पू0 तथा डॉ0 विण्टरनित्स तीसरी शताब्दी ई0पू0, डॉ0 कीथ चौथी शताब्दी ई0पू0 तथा डॉ0 विण्टरनित्स तीसरी शताब्दी ई0पू0। इनमें से डॉ0 याथोवी, डॉ0 विलियम्स, डॉ0 वैद्य तथा तथा डॉ0 मैक्डानेल वाल्मीकि के आदि काव्य की रचना बौद्ध साहित्य के पूर्व स्वीकार करते हैं, किन्तु बौद्ध साहित्य में जहाँ रामकथा सम्बन्धी स्फुट आख्यान आदि का निर्देश प्राप्त है वहाँ वाल्मीकि रामायण का उल्लेख अप्राप्त्य रहे। इससे निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उस ग्रन्थ की रचना बौद्ध साहित्य में उत्तरकालीन ही प्रतीत होती है।

महर्षि पाणिनि के अष्टाध्यायी में वाल्मीकि अथवा वाल्मीकि रामायण का निर्देश अप्राप्य है, किन्तु उस ग्रन्थ में कैकेयी, कौशल्या, शूर्पणखा आदि रामकथा से सम्बन्धित पात्रों का उल्लेख प्राप्त होता है।[89] इससे अनुमानतः कहा जा सकता है कि पाणिनी के काल में राम कथा प्रचलित थी।

89· अष्टाध्यायी 7/3/2, 4/1/155, 6/2/122

महाभारत में रामायण के कुछ उद्धरण प्राप्त होते हैं। इसके विपरीत महाभारत में रामायण का कोई उल्लेख नहीं हुआ है। सात्यकि ने भूरिश्रवस् राजा का प्रायोपविष्ट शिरच्छेद किया अपने इस कृत्य का समर्थन करते हुए सात्यकि वाल्मीकि का एक श्लोकार्द्ध हनुमत् इन्द्रजि संवाद[90] उद्धृत करते हुए कहता है -

अपि चायं पुरागीतः श्लोको वाल्मीकिना
न हन्तव्या स्त्रियश्चेति यद्ब्रवीषि पल्वंगमव्युवि।
सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा।
पीडाकरममित्राणां यत्स्यात्कर्तव्यमेव तत्।।[91]

महाभारत में एक अन्य स्थल पर रामायण को प्राचीन काल में रचा गया काव्य (पुरागीतः) कहा गया है।[92]

एक अन्य जनकथा के अनुसार श्रावण माह में अर्ध रात्रि के समय सीता को दो पुत्र प्रसूत हुए जैसे ही वाल्मीकि को यह विदित हुआ वैसे बालकों की सुरक्षा के लिये शीघ्रता से मुनि दौड़ पड़े। निचले हिस्से में तोड़ी हुई दर्भमुष्टि, अभियन्त्रित करके उसने वृद्ध स्त्रियों को दी तथा प्रथम जन्म ग्रहण किये हुए पुत्र के शरीर से दर्भ का उपरीला हिस्सा घुमाने के लिये कहा। इस प्रकार इन दोनों पुत्रों का नाम क्रमशः कुश तथं लव रखने को कहा।[93] जिस दिन लव तथा कुश प्रसूत हुए उसी दिन लवणासुर का पारिपत्य करने के लिए जाता हुआ शत्रुघ्न महर्षि वाल्मीकि को आश्रम में ही ठहरा हुआ था। यह सूचना पाते ही शत्रुघ्न आह्लादित हो उठे।

पद्मपुराण में कहा गया है कि लवणासुर का पारिपत्य करके शत्रुघ्न जब वापस जा रहा था उस समय वह वाल्मीकि के आश्रम में आया था। सीता आश्रम में प्रसूत हो चुकी है यह वार्ता वाल्मीकि ने उससे नहीं बतायी।[94] यह कथन वाल्मीकि रामायण के कथन से समानता नहीं रखता।

90· वा0रा0, यु0 81/28
91· म0डा0, 118/48/975-976
92· म0व0 273/6

तत्पश्चात वाल्मीकि ने इनके जातकर्मादि संस्कार किये। वेद एवं वेदो के दृढ़ीकरण के लिये लव तथा कुश को रामायण की शिक्षा दी। धनुर्विद्या के समान क्षात्रविद्या में इन्हें शिक्षित किया।

भुशुण्डि रामायण में कहा गया है कि सीता विलाप कर रही हैं ऐसा समाचार पाते ही महर्षि वाल्मीकि वहाँ गये। उन्होंने सीता को धैर्य बँधाते हुए बोले - "रोओ मत।" प्रभु सब कुछ जानते हैं किन्तु देव वञ्चित दुर्दान्त लोक अनभिज्ञ है। इस समय राम केवल लोक की उपासना में निरत हैं। कभी भी वे तुम्हारा परित्याग नहीं करेंगे। इस तपोवन में तुम शान्तचित्त होकर रहो। लोक का सन्देह लोक ही दूर करेगा। राम पद्म पत्रवत् निर्लिप्त हैं। तुम उनकी नित्याशक्ति हो। प्राकृतजन या सामान्य लोग तुम्हारी महिमा को क्या समझें ? चिन्ता व्याकुल सीता को समझाकर महर्षि वाल्मीकि अपने आश्रम में उसे ले आये।[95]

वाल्मीकि सम्बन्धी जानकारी कुछ कोशों से भी प्राप्त होती है। उनमें प्राचीन चरित्र कोशानुसार §1§ वाल्मीकि एक व्याकरणकार, जिसके विसर्ग-सन्धि से सम्बन्धित अभिमतों का निर्देश प्रातिशाख्य में प्राप्त है।[96] §2§ एक पक्षिराज जो गरूणवंशीय सुवर्ण पक्षियों के वंश में उत्पन्न हुआ था। दास के अनुसार ये पक्षी न होकर सप्तसिन्धु की मायावर आर्य जाति थी।[97] ये कर्म से क्षत्रिय थे तथा बहुत बड़े विष्णु भक्त थे।[98] §3§ एक व्यास §4§ एक शिव भक्त जिसने शिवभक्ति के सम्बन्ध में अपना अनुभव युधिष्ठिर के कथन किया था।

इस विलक्षण प्रतिभा वाले ऋषि कवि के सम्बन्ध में पौराणिक कोश में कहा गया है कि - भृगुवंशोत्पन्न तथा प्रचेता के वंशज एक मुनि जो जगत्विख्यात

---

94. पद्म0 पा0 59
95. प्राचीन चरित्रकोश, पृ0 153
96. तै0प्रा0 5/36, 9/4, 18/6
97. ऋग्वैदिक इण्डिया, पृ0 65/148
98. म0उ0 99/6, 8

रामायण के रचयिता और आदि कवि कहे जाते हैं। तमसा नदी ﴾आधुनिक टौंस﴿ के तट पर इनका आश्रम था। उत्तरी बिहार के चम्पारन जिला के अन्तर्गत भैसालोटन ग्राम में इनका आश्रम कहा जाता है जिसका आधुनिक नाम "वाल्मीकिनगर" 14·01·1964 ई0 से घोषित किया गया है। एक दिन एक व्याध ने क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक को मारा, जिसे देखकर इनके मुख से एक श्लोक निकला जो लौकिक छन्दों का प्रथम उदाहरण था - "मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समा। यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।" कवि के मुख से निकला छन्द विशुद्ध वर्णयुक्त अनुष्टुप् था जो इन्हें इतना पसंद आया कि इन्होंने सारे महाकाव्य रामायण की रचना प्रायः इसी छन्द में कर दी। व्यासदेव ने "वृहदर्मपुराण" में इनकी तथा इनके रामायण की प्रशंसा की है। महर्षि ने दिव्य ज्ञान के प्रभाव से रामावतार से पहले ही रामायण की रचना की थी। दुर्मुख से सीता जी के सम्बन्ध में लोकापवाद सुन श्री राम ने उन्हें बनवास की आज्ञा दी थी। इस समय वाल्मीकि ने ही उन्हें अपने आश्रम पर रखा था जहाँ श्री राम के यमज पुत्रों का जन्म हुआ। वाल्मीकि ने ही लव और कुश रामचन्द्र जी के दोनों पुत्रों को शिक्षा दी थी और रामायण याद करायी थी।

विशेष

पूर्वकाल में सुमति नामक एक भृगुवंशी ब्राह्मण थे जिनकी पत्नी कौशिक वंश की कन्या था। जिसके गर्भ से अग्निशर्मा नामक एक पुत्र हुआ जो पिता के कहने पर भी वेदाभ्यास में मन नहीं लगाता था। एक बार देश में अकाल पड़ने पर यह परिवार विदिशा के वन में चला गया तथा वहीं आश्रम बना रहने लगा। अग्निशर्मा का साथ डाकुओं से हो गया और यह एक प्रसिद्ध डाकू तथा लुटेरा बन गया। कुछ दिनों में उधर से सप्तर्षि आये जिन्हें इसने घेरा। अत्रि ऋषि की कृपा से इन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ और इसने 13 वर्षो तक अत्रि के आदेशानुसार "राम" नाम जपकर सिद्धि प्राप्त की। 13 वर्षो के पश्चात् सप्तर्षि पुनः आये और इनके ऊपर जमी बाँबी ﴾वल्मीक﴿ देख कर बोले - "तुम दीर्घकाल तक वल्मीक में बैठे रहे हो, अतः तुम वाल्मीकि नाम से विख्यात होंगे। सप्तर्षियों के जाने

के पश्चात् वाल्मीकि ने कुशस्थली में शिवाराधन से कवित्वशक्ति प्राप्त की थी। उत्तरी बिहार के चम्पारन जिलान्तर्गत भैंसालोटन ग्राम के निकट ही वाल्मीकि का आश्रम है और उसके खंडावशेष अभी भी विद्यमान हैं। नेपाल राज्य में त्रिवेणी नामक स्थान में वाल्मीकि की जन्म तिथि अभी भी जनवरी 14 को प्रत्येक वर्ष मनायी जाती है।

तमसा

रामायण की एक प्रसिद्ध नदी का नाम जिसे आजकल "टोंस" कहते हैं। रामायण बालकाण्ड के अनुसार यहाँ वाल्मीकि का आश्रम था। प्रयाग से चित्रकूट जाते समय श्री रामचन्द्र जी यहाँ आए थे।

ऋक्ष

भृगु के वंशज और चौबीसवें {विष्णु पुराणानुसार पच्चीसवें} द्वापर के व्यास। कोई-कोई इन्हें वाल्मीकि भी कहते हैं। उक्त द्वापर में विष्णु के अवतार हुए शूली।[99]

हिन्दी-संस्कृत कोशानुसार वाल्मीकः, वाल्मीकिः {वल्मीकेभवः अण् इञ् वा} एक विख्यात मुनि तथा रामायण के प्रणेता का नाम जन्म से यह ब्राह्मण थे। परन्तु बचपन में माता-पिता द्वारा परित्यक्त होने पर यह कुछ बर्बर पहाड़ियों को मिल गया जिन्होंने इसे चोरी करना सिखलाया यह शीघ्र ही चौर्य कला में प्रवीण हो गया और कुछ वर्षो तक बटोहियों को मारने और लूटने का कार्य करता रहा। एक दिन उसे एक महामुनि मिला जिसको इसने मार डालने का भय दिखाकर कहा कि जो कुछ पास में है सब निकाल कर रख दो परन्तु मुनि ने इसे कहा कि पहले घर जाकर अपनी पत्नी और बच्चों से पूछो कि क्या वह लोग तुम्हारे इस अनन्त अत्याचार व लूटमार के जो तुम अब तक करते रहे हो साझीदार हैं।

---

99. वायु0 23/206, विष्णु, 3/3/18

वह तुरन्त घर गया परन्तु उनकी अनिच्छा को जानकर बड़ा उद्विग्न हुआ। तब मुनि ने उसे "मरा-मरा" ﴾जो राम प्रतीप है﴿ उच्चारण करने के लिए कहा और अन्तर्धान हो गया। यह लुटेरा इस शब्द का वर्षो जप करता रहा, यहां तक कि उसका शरीर दीमकों द्वारा लाई गयी मिट्टी से ढक गया। वही मुनि पुनः आया और इसे बाँबी से निकाला, वल्मीक बाँबी से निकलने के कारण इसका नाम वाल्मीकि पड़ गया। यही बाद में बड़ा प्रसिद्ध मुनि हुआ। एक दिन जब कि वह स्नान कर रहा था। उसने क्रौञ्च पक्षी के जोड़े में से एक को बहेलिए द्वारा मरते हुए देख इस पर ऋषि के मुख से उस दुष्ट बहेलिए के लिए अनजान में कुछ अभिशाप के शब्द निकल गये जिन्होंने अनुष्टुप् छन्द में श्लोक का रूप धारण किया। रचना की यह नई शैली थी। ब्रह्मा के आदेश से इसने "रामायण" नामक प्रथम काव्य की रचना की। जब राम ने सीता का परित्याग कर दिया तो इस ऋषि ने सीता को अपने आश्रम मे शरण दी, उसके दोनो पुत्रों का पालन-पोषण किया, उन्हें शिक्षा प्रदान की। बाद में इसने उनको राम को सुपुर्द कर दिया।[100]

चोबीसवें द्वापर में महर्षि वाल्मीकि व्यास हुए थे। इसका उल्लेख अनेक पुराणों में देखाजा सकता है।[101] "मुनीनामप्यहं व्यासः" ﴾10/36﴿, यहाँ वाल्मीकि का स्मरण किया गया है। इस वाक्य में जो व्यास शब्द आया है वह एक ही व्यास को लक्ष्य नहीं करता बल्कि व्यास रूपी उपाधि को लक्ष्य करता है। इस प्रकार वाल्मीकि भी एक व्यास थे। व्यास के रूप में वाल्मीकि का तथा अन्य व्यासों का भी स्पष्ट रूप से स्मरण गीताकार ने भी किया है। चौबीसवें व्यास के सम्बद्ध में लिङ्ग पुराण में कहा गया है - "परिवर्ते चतुर्विंशे व्यास ऋक्षों यदा विभो।"[102] इस चौबीसवें व्यास को लक्ष्यकर वाल्मीकि शब्द का प्रयोग भी प्राप्त होता है।[103] वाल्मीकि को "भार्गव" कहा गया है। भार्गव भृगु का अपत्य भृगुवंश में उत्पन्न। बुद्धचरित में भी पाया जाता है कि रामायणकार वाल्मीकि च्यवन ऋषि के कुल में

100· हिन्दी-संस्कृत कोश, पृ0 921

101· विष्णु0 3/3 अ0, कूर्मपुराण 1/52 अ0, लिङ·पु 1/24 अ0

102· लिङ·पु0 1/24/111

103· "तृण विन्दु स्त्रयोविंशे वाल्मीकिर्योऽभिधीयते" - लिङ·पु0 3/3/18

प्रसूत हुए थे व्यवन भृगु पुत्र हैं, निष्कर्षतः रामायणकार वाल्मीकि भार्गव ही हुए।[104]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि विष्णु पुराण 3/3/18 में उल्लिखित चोबीसवें व्यास वाल्मीकि रामायणकार वाल्मीकि ही थे मत्स्य पुराण में रामचरितकार वाल्मीकि को "भार्गवसत्रम्" ही कहा गया है।[105]

श्रीमद्भागवतपुराण में कहा गया है कि जब श्री राम ने सीता जी का परित्याग कर दिया तो वे वाल्मीकि मुनि के आश्रम में रहने लगी। सीता जी उस समय गर्भधारण की हुई थी। उनको एक साथ जुड़वे पुत्र उत्पन्न हुए उनके नाम क्रमशः कुश और लव रखे गये। वाल्मीकि मुनि ने ही जातकर्म आदि संस्कार किया।[106]

महर्षि वाल्मीकि लौकिक संस्कृत के आदि कवि और राम कथा के आदि प्रणेता हैं। राम द्वारा निर्वासिता सीता वाल्मीकि के ही आश्रम में निवास करती है और वही पर अपने पुत्रों ‍‌(लव कुश) को जन्म देती हैं। महर्षि ही उनका पालन पोषण करते हैं और उन्हें राम कथा भी याद कराते है। फलतः रामकथा के इस पक्ष से सम्बद्ध नाटकों में वाल्मीकि अनिवार्य रूप से उपस्थित मिलते हैं। उत्तररामचरित, कुन्दमाला, अनर्घराघव आदि में इनका सफल चित्रण हुआ है।

<u>उत्तररामचरितम्</u>

द्वितीय अंक में वाल्मीकि का उल्लेख हुआ है। कुश और लव नामक दो अत्यन्त तेजस्वी और मेधावी बालक जिन्हें जृम्भकास्त्र जन्म से ही सिद्ध है। महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में विद्याध्ययन कर रहें हैं। उन्हें बचपन से ही कोई देवी महर्षि वाल्मीकि के पास ले आई थी। वाल्मीकि ने धात्रीऽकर्म से लेकर (सब प्रकार की सेवा करके) उनका पालन पोषण किया। ग्यारह वर्ष की आयु होने पर क्षात्र धर्म के अनुसार उनका उपनयन संस्कार किया। वेद को छोड़कर शेष सभी क्रिया में उनको

104· बुद्ध चरित 1/43

105· मत्स्य0 12/50/51

106· श्रीमद्भागवत, नवम स्कन्ध, अ0 11, श्लोक सं0 9-16

पारंगत कराया।

महर्षि वाल्मीकि स्नानार्थ तमसा नदी पर गए, वहाँ उन्होंने परस्पर विहार करने वाले क्रौञ्च नाम के जोड़े में से चक को किसी व्याध ने मार डाला। इस करुण दृश्य को देखकर उन्होंनें सहसा प्रादुर्भूत "अनुष्टुप" छन्दोबद्ध वाणी कही।[107] वाल्मीकि ने मनुष्यों में सर्वप्रथम शब्द ब्रह्म के वैसे "विवर्त्त-रूप" रामायण §नामक§ इतिहास का प्रणयन किया।[108]

<u>कुन्दमाला</u>

प्रथम, द्वितीय एक षष्ठ अंक में वाल्मीकि का उल्लेख हुआ है। इस नाटक में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य वाल्मीकि ने किया है। उन्होंने निर्वासित सीता को आश्रय प्रदान कर महर्षियों के अनुरूप हृदय की उदारता प्रकट की है। इस नाटक की सभी घटनायें वाल्मीकि के आश्रम के समीप ही अथवा आश्रम में ही घटित हुई हैं।

वाल्मीकि जनक और दशरथ के मित्र हैं, राम भी उनके शिष्य हैं। इसलिए वाल्मीकि सीता को पुत्री तथा पुत्रवधू मानते थे। जिस समय तपोवन में किसी स्त्री के निर्वासन का समाचार छात्रों से सुनते हैं तो उसको शरण देने के लिए स्वयं जाते हैं।[109] प्रथम सीता पर पुरुष समझकर संकोच करती है कि कैसे प्रत्युत्तर दूँ। जब उसे ज्ञात होता है कि महर्षि वाल्मीकि मेरे पिता के तथा श्वसुर के मित्र हैं तो वह अपनें निर्वासन का कारण बताती हैं।[110] जब वाल्मीकि

107· "मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादकमवधीः काममोहितम्।।" उत्तररामचरितम् 2/5

108· अथ स भगवान् प्राचेतसः प्रथमं मनुष्येषु शब्दब्रह्मणस्तादृशं विवर्तमितिहासं रामायणं प्रणिनाय। -उ0रा0च0 द्वितीयोऽङ्क्

109· आकर्ण्य जहु-तनयां समुपागतेभ्यः, सन्ध्याऽभिषेक-विधये मुनि-दारकेभ्यः।
एकाकिनीमशरणां रुदतीमरण्ये, गर्भाऽऽतुरां स्त्रियमति-त्वरयाऽऽगतोऽस्मि।।
कुन्दमाला 1/27

110· सोऽहं चिरन्तर-सखा जनकस्यराज्ञस्, तातस्य ते दशरथस्य च वाल-मित्रम्।
वाल्मीकिरस्मि विसृजाऽन्य-जनाऽभिशङ्कां, नाऽन्यस् तवाऽयमवले श्वसुरः पिताच।।

ने यह जाना कि रघुकुल भूषण राम के द्वारा निर्वासित हैं तो वहाँ उसे छोड़करलौट पड़ते हैं। परन्तु जब ज्ञात होता है जनकराज पुत्री आदर्श चरित्रवती सीता हैं तो उसे साथ लिवा जाते हैं। आश्रम में सीता के दो पुत्र उत्पन्न होते हैं। वाल्मीकि इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न होने वाले सभी बालकों का नामकरण आदि संस्कार करते हैं और दोनों बालकों को रामायण की कथा पढ़ाते हैं। वे दोनों बालक रामायण पढ़कर गाना सीख लेते हैं।[111]

वाल्मिकि ने ही दोनों बालकों को राम की सभा में उपस्थित होकर रामायण गाने की आज्ञा प्रदान करते हैं और जब रामायण की कथा समाप्त होती है तब कण्व ने उसी समय सब रहस्य राम के समक्ष उद्घाटित किया कि राम, लक्ष्मण, कुश और लव सभी मूर्छित हो गए यह देखकर वाल्मीकि ने तुरन्त सीता को स्पर्श करके सचेत करने की आज्ञा दी। जब सीता के स्पर्श से सभी सचेत हो जाते हैं। वाल्मीकि ने राम को फटकारा कि तुमने यह नहीं सोचा कि संसार को धारण करने वाली पृथिवी की पवित्र सन्तान को तुमने कैसे परित्याग कर दिया केवल लोकापवाद के भय के कारण घर से निकाल दिया तुमने अपवाद के मूल कारण की परीक्षा नहीं की और न निन्दा करने वाले के विषय में ही सोचा कि वह कौन पुरुष है, उसका समाज में क्या स्थान है ? अपने हृदय से नहीं पूछा, तुमने क्या डाला ? राम व्याकुल होकर किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं। फिर वाल्मीकि लक्ष्मण को फटकारते हैं कि तुमने यह क्या किया, विचार से कार्य नहीं किया केवल आज्ञापलन मात्र कर्तव्य किया है। फिर वाल्मीकि ने राम को फटकारते हुए कहा कि हे राम यह बताओं कि रावण के बाद सीता को क्यों स्वीकार किया था उसी समय सीता को छोड़ देना चाहिए था। वहाँ किस देवता के प्रमाण से ग्रहण किया था ? राम ने उत्तर दिया कि अग्नि को प्रमाण मानकर ग्रहण किया था। फिर वाल्मीकि ने कहा कि जब तुमने एक बार एक देवता का विश्वास करके

111· इक्ष्वाकूणां च सर्वेषां क्रियाः पुंसवनादयः
अस्माभिरेव पच्यन्ते मा शुचो गर्भमात्मनः। -कुन्दमाला - 1/31

ग्रहण कर लिया फिर तुम्हारा विश्वास काफूर कैसे हो गया[112] ? सीता इस फटकार से व्याकुल हो जाती हैं कि मेरे कारण से आर्य पुत्र को इतनी फटकार सुननी पड़ रही है, वह घबड़ाकर कानों को बन्द कर लेती है। आगे वाल्मीकि ने पूछा कि कुश और लव जैसी पवित्र सन्तान को जन्म देने वाली सीता के चरित्र पर अविश्वास अग्नि की दृढ़ परीक्षा की भी अवहेलना की और साधारण लोगों के यों ही अनाप-शनाप व्यर्थ बकवास पर विश्वास करके सीता को निर्वासित कर दिया। राम ने कहा कि मै बरबस होकर विचार खो बैठा और यह अनर्थ कर डाला। अन्त में वाल्मीकि राम को सीता की प्रमाणिकता का प्रमाण पृथिवी के द्वारा दिलाकर कुश और लव को समर्पित करके आश्रम में लौट आते हैं।

इस प्रकार इस नाटक की समस्त कथा का मूलाधार वाल्मीकि हैं। वे उदारमना, तपस्वी, रघुकुल के शुभचिन्तक, जनक और दशरथ के मित्र राम के गुरु, कुश और लव का लालन-पालन करने वाले तथा पुंसवन आदि संस्कारों को करने वाले तथा शिक्षा देने वाले और रामायण की कथा को सस्वर पढ़ाने वाले गुरु भी हैं। अन्त में वाल्मीकि ने बड़ी युक्ति से सीता राम और कुश लव का सम्मिलन कराया। अतः वाल्मीकि का चरित्र एक विशेष महत्त्पूर्ण स्थान रखता है।

112· वाल्मीकिः कुश-लव-जननी-विशुद्धि साक्ष्ये
पवन-सखा यदि् देवता नियुक्ता
कथम् इव भवता निरङ्कुशोऽयं
हृदि निहितो नु पृथग्जनाऽपवादः। -कुन्दमाला 6/21

षष्ठ अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

विगत अध्यायों में नाटक के सामान्य स्वरूप, सैद्धान्तिक एवं नाट्यशास्त्रीय पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए आर्ष पात्रों का वैशिष्ट्य, संस्कृत के प्रमुख नाटकों में उनके प्रयोग के वैशिष्ट्य काअध्ययन व मूल्याकंन किया गया है।

अब तक के विवेचन से स्पष्ट होता है कि संस्कृत नाटक अपने आदि मौलिक रूप में मानव जन्म के साथ ही अवतरित हो गया था। संस्कृत साहित्य के विविध विधाओं में लोकप्रियता की दृष्टि से "नाटकों का प्रथम स्थान है।" व्यक्ति सांसारिक विषमताओं से आक्रान्त होकर ऐसे क्षणों के अन्वेषण में लगा रहता है जिनमें वे अपने को भिन्न करके कुछ आनन्दानुभूति कर सके। उसी आनन्द की खोज के लिये विभिन्न साधनों का प्रयोग करता है। दिन भर अथक परिश्रम से श्रमित होकर अपने नन्हें मुन्ने शिशु के लिये उसे घोड़ा बनने में भी विशेष हर्षोल्लास की अनुभूति होती है और बालक भी अपने विनोद के क्षणों में अपने माता-पिता के कार्यों एवं चेष्टाओं का अनुकरण करके न केवल आनन्द का अनुभव करता है अपितु अज्ञात रूप से शिक्षा भी ग्रहण करता है। छोटे तथा बड़ों की उक्त अनुकृति से आनन्दानुभूति की भावना में नाटक के बीज निहित हैं। इसीलिए दशरूपककार धनञ्जय ने "अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्" कहा हैं। जिस प्रकार अनुकरण से प्रसन्न होने की यह प्रवृत्ति शैशवावस्था से ही प्राप्त होती है उसी प्रकार मानव जब अपनी सभ्यता एवं विकास के शैशव में था तभी से नाटक के बीजों का भी वपन हो गया। अतः आदि जंगली जीवन में मनुष्य अपने से इतर प्राणियों का रूप धारण करके अपनी प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करता रहा है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ क्रमशः भूत-प्रेत, देवी-देवता, वीर योद्धाओं, महापुरूषों आदि का रूप धारण करके आनन्द प्राप्त करता रहा है। नाटक के विकास में धर्म और वीर पूजा काविशेष हाथ है इसीलिए हर देश में प्रारम्भि नाटकों पर धर्म का बहुत प्रभाव हैं।

कथावस्तु के विकास, उसकी समस्याओं के समाधान तथा अन्य सभी विशेषताओं की दृष्टि से भी संस्कृत नाटक यूनानी नाटकों से सर्वथा भिन्न हैं। यूनानी नाटक प्रायः दुखान्त होते हैं और संस्कृत नाटक सुखान्त। संस्कृत नाटक, पात्र, अभिनय, नाट्यशाला, भाव, विस्तार एवं संकलन इत्यादि सभी दृष्टियों से यूनानी नाटकों से भिन्न हैं। वस्तुतः नाटक मूलतः भारतीय वस्तु है।

ऋग्वेद के सूक्तों से सोम विक्रय समय होने वाले अभिनय का पता चलता है। "महाव्रतस्तोम" के अवसर पर कुमारियाँ नृत्यगान के साथ अग्नि की परिक्रमा करती थीं। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में शैलूष शब्द आया है। जिसका अर्थ अभिनेता होता है। कौशीतकि ब्राह्मण में यज्ञ के पुरोहित नित्य करते हुए वर्णित हैं। अतः वैदिक युग में वे सभी उपादान प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं जो नाटक के विकास के लिये अपेक्षित हैं।

नाटक में वर्णित जिन चरित्रों के रूप धारण करके अभिनेता गण वाचिक, आंगिक, सात्विक तथा आहार्य अभिनय करते हैं उन्हें पात्र कहते हैं। नाट्यशास्त्र में पुरुषों एवं स्त्रियों के स्वभाव की मीमांसा की गयी है। वहाँ देवों और मनुष्यो तक ही अपने पात्रों को सीमित रखा है। नाटक की परिभाषा के प्रकरण में यह कहा गया है कि अभिनेता वे सब होते हैं जो नाटकीय अर्थ को दर्शकों तक प्रेषित करने में सहायक होते हैं। नाटक की आधिकारिक कथा के फल का उपभोक्ता नायक होता है। इसी प्रसंग में यह भी ख्यापित हुआ है कि बहुत से नाटककारों ने अन्य जीवों को, भावों को तथा जड़ पदार्थो को भी पात्र के रूप में प्रकट किया है। प्रख्यात नाटक अभिज्ञान शाकुन्तल में मृग, भ्रमर, लता, वृक्ष, वनदेवता और कोकिल मानव पात्रों की तरह से प्रयुक्त हुए हैं। भरत मुनि ने नाटक में दिव्य चरित को मात्र सहायक के रूप में ही स्वीकार किया है, नायक के रूप में नहीं ‌§ना0शा0 18/10§

संस्कृत नाटककारों में भास प्रथम नाटककार है जिनके नाटकों में आर्ष पात्रों का व्यापक प्रयोग हुआ है। आर्ष पात्रों का सबसे सार्थक व कलात्मक प्रयोग कालिदास के नाटकों विशेषतः "अभिज्ञान शाकुन्तल" में उपलब्ध होता है। "अभिज्ञान शाकुन्तल" में नाटकीय कथा अन्य नाटकों की अपेक्षा लौकिक व मानवीय है, किन्तु इस मानवीय कथा के मध्य में प्रणय कथा को अभीष्ट दिशा में परिवर्तित या विकसित करने के लिए किया गया है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व दुर्वासा का शाप ही है। इसके द्वारा कालिदास ने अपने प्रेम दर्शन की गम्भीर मीमांसा की है। इस प्रकार संस्कृत के प्रमुख नाटकों में आर्ष पात्रों का प्रयोग अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया है। नाटक के तीनों ही संघटक तत्त्वों "वस्तु, नेता और रस" को इनसे सौन्दर्योपलब्धि हुई है।

इस प्रकार संस्कृत नाटककारों ने परम्परागत कथाओं को अपने नाटकीय उद्देश्यों के अनुरूप परिवर्तित करने, उनके नाटकीय प्रयोग की विभिन्न अवस्थाओं को सोद्देश्य बनाने के लिये, चमत्कारपूर्ण रूप प्रदान करने के लिए, शाप और वरदान, रूप परिवर्तन, माया, दिव्य वाणी आदि तत्त्वों का प्रचुर प्रयोग किया है। आर्ष पात्रों की योजना का एक उद्देश्य नाटक के दिव्य या अति मानवीय पात्रों को पौराणिक विश्वासों के अनुरूप ढालने के लिये उसमें अलौकिक विशिष्टताओं का समावेश करना है।

इस प्रकार संस्कृत नाटककारों ने अपने विभिन्न नाटकों में आर्ष पात्रों के प्रयोग के लिये विभिन्न पद्धतियाँ अपनायीं हैं। कभी ये तत्त्व साक्षात् रूप में प्रयुक्त किये गये हैं और कभी उनकी सूचना मात्र दे दी जाती है। आर्ष पात्र प्रत्यक्ष रूप में मानव-जगत् में अवतीर्ण होकर उनके कार्यों में सम्मिलित होते हैं या कठिनाई के समय साक्षात् सहायता प्रदान कर उन पर अनुग्रह प्रदर्शित करते हैं। उल्लेखनीय है कि नाटकों में आर्ष पात्रों की भूमिका केवल सहायक की होती है। स्पष्ट है कि शाप अनुग्रह आदि व्यापार नायक की लौकिक फल प्राप्ति में सहायता मात्र देतें हैं।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त आर्षपात्रों की उपयोगिता नाट्यशास्त्रीय पृष्ठभूमि के आलोक में उनके स्वरूप व नाटकीय विनियोग की विशेषताओं का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

****

प रि शि ष्ट

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची तथा संक्षिप्त संकेत

- संस्कृत ग्रन्थ
- भरतीय आलोचना-शास्त्रीय हिन्दी ग्रन्थ
- कोश ग्रन्थ
- पत्र-पत्रिकाएँ
- इंग्लिश ग्रन्थ

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची तथा संक्षिप्त संकेत

§अ§ संस्कृत ग्रन्थ

अग्नि पुराण §अ0पु0§ आनन्दाश्रम सन् 1900·

अनर्घ राघव §अ0रा0§ मुरारि, निर्णय सागर प्रेस, पंचम सं0 1937·

अनर्घ राघव §अ0रा0§ संपा0 व व्याख्या0 रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा, वाराणसी, 1960

अभिज्ञान शाकुन्तल §अ0शा0§ कालिदास, संपा0 एम0आर0 काले, मोतीलाल बनारसी दास, दशम सं0, दिल्ली, 1969·

अभिज्ञान शाकुन्तल §अ0शा0§ कालिदास, प्रणेता-डॉ0 कपिल देव द्विवेदी, साहित्य संस्थान, मोती लाल नेहरू रोड, इलाहाबाद, 1984·

अविमारक §अवि0§ भास, टी· गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज 1912·

अभिषेक §अभि0§ भास, टी· गणपति· शास्त्री, 1913, त्रिवेन्द्रम् सीरीज नं0 26·

अभिनव नाट्यशास्त्र §अ0ना0शा0§ सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद् काशी, सं0 2008·

अथर्ववेद §अथर्व§ दामोदरपाद सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, 1958, सायण भाष्य, शंकर पाण्डुरंग पंडित, बम्बई, 1895-98

अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी, विश्व भारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर, वाराणसी·

अष्टाध्यायी §अष्टा0§ पाणिनी, वेङ्कटेश्वर मुद्रणालय, बम्बई, संवत् 1964·

आश्चर्य चूड़ामणि §आ0चू0§ शक्तिभद्र, एस0 कुप्पुस्वामीशास्त्री की भूमिका सहित, मद्रास, 1926·

आपस्तम्ब गृह्य सूत्र §आ0गृ0सू0§ हरदत्त मिश्र कृत अनाकुला टीका, चौ0 सं0 सी, 1928.

आपस्तम्बश्रौत सूत्र §आ0 श्रौ0सू0§ धूर्त स्वामी भाष्य, बड़ोदा, 1955.

आर्षानुक्रमणी §आर्षा0§ राजेन्द्र लाल मिश्र, कलकत्ता, 1892.

आश्वलायन गृह्य सूत्र §आ0गृ0सू0§ भवानी शंकर शर्मा, बम्बई, 1909.

आश्वलायन श्रौत सूत्र भाष्यम् §आ0 श्रौ0सू0भा0§ विद्यारत्न, कलकत्ता, 1874.

उरूभंड़्ग §उरू0§ भास, टी0 गणपति शास्त्री, 1912, त्रिवेन्द्रम् सीरीज सं0 20.

उत्तरामचरितम् §उ0रा§ सं0 डा0 कपिलदेव द्विवेदी, 1968.

उत्तररामचरितम् §उ0रा0§ सं0 टी0 स्व0 ब्रह्मानन्द शुक्ल, साहित्य भण्डार, सं0 1984.

ऋग्वेद-संहिता §ऋ0सं0§ सायण-भाष्य.

ऋग्वैदिक आर्य §ऋ0आ0§ राहुल सांकृत्यायन, किताब महल इलाहाबाद तथा दिल्ली, 1957.

ऋग्वेद-भाष्य-भूमिका §ऋ0आ0भू0§ आचार्य सायण, सं0 डा0 हिरदत्त शास्त्री, 1972.

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका महर्षि दयानन्द सरस्वती, 1966.

ऐतरेय आरण्यक §ऐ0आ0§ सायण भाष्य, बाबा शास्त्री फड़के, आनन्दाश्रम, पूना, 1898.

ऐतरेय ब्राह्मण §ऐ0ब्रा0§ सायण भाष्य, काशीनाथ शास्त्री, आनन्दाश्रम, पूना, 1931.

कठोपनिषद §कठ0§ गीता प्रेस गोरखपुर, 1949.

कर्णभार §कर्ण0§ भास, टी· गणपति शास्त्री, 1912, त्रिवेन्द्रम सीरीज सं0 20

कुन्दमाला नाटकम् §कु0ना0§ दिड्.नाग विरचित, सं0 एवं व्या0 चुन्नीलाल शुक्ल, साहित्य भण्डार सुभाष बाजार, मेरठ, सं0 1972.

कर्पूरमञ्जरी §कर्पू0§ राजशेखर विरचित, मोतीलाल बनारसीदास सं0 1979.

काव्य-प्रकाश (का0प्र0)	मम्मट सं0 आ0 विश्वेश्वर, 1968·
काव्य-मीमांसा (का0मी0)	राजशेखर, अनु0 स्व0 पं0 केदार नाथ शर्मा, प्रथम व द्वितीय संस्करण·
काव्यादर्श (काव्या0)	दण्डी, (संपा॰ एस0 के0 बेल्वरकर) दि ओरियण्टल बुक एज़ेन्सी, पूना, 1924·
काव्यानुशासन (काव्यानु0)	हेमचन्द्र, (संपा0 रसिकलाल पारिख), श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई, 1938·
काव्यालंकार (काव्यालं0)	भामह (संपा0 व अनु0 देवेन्द्रनाथ शर्मा) बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1962·
काव्यालंकार सूत्रवृत्ति (का0सू0वृ0)	बामन, (संपा0 आशुबोध विद्याभूषण व नित्यबोध विद्यारत्न) कलकत्ता, 1922·
काव्य संहिता भाष्य संग्रह (का0सं0भा0सं0)	आनन्दबोध भाष्य, सारस्वती सुषमा, संस्कृत विश्वविद्यालय पत्रिका, वाराणसी·
कामसूत्र-वात्स्यायन कृत (क0सू0)	यशोधरा कृत जय मंगला टीका, बम्बई·
कूर्म पुराण (कू0पु0)	
कौषीतकि गृह्य सूत्र (कौ0गृ0सू0)	भवत्रात भाष्य, टी0आर0 चिन्तामणि, मद्रास, 1944·
कौषीतकि ब्राह्मण (कौ0ब्रा0)	गुलाबराय वझेशंकर छाया, आनन्दाश्रम, पूना, 1911·
गरूड़ पुराण (ग0पु0)	कलकत्ता, सरस्वती प्रेस, 1890·
गोपथ ब्राह्मण (गो0ब्रा0)	राजेन्द्र लाल मित्र तथा हरचन्द्र विद्याभूषण, कलकत्ता, 1872·
चण्डकौशिक (चण्ड0)	क्षेमीश्वर, (व्या0जगदीश मिश्र) चौखम्बा, वाराणसी, 1965·
चारूदत्त	भास, टी0 गणपति शास्त्री, 1914, त्रिवेन्द्रम सीरीज सं0 39·
छान्दोग्य उपषिद् (छा0उ0)	आनन्दाश्रम, पूना, 1934·
जानकी-परिणय (रूपक) (जा0प0)	रामभद्र दीक्षित, दक्षिण प्रेस कमेटी, बम्बई, द्वितीय सं0, 1866·
ज़ैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (जै0उ0ब्रा0)	वी0आर0शर्मा, तिरूपति, 1967·

जैमिनीय ब्राह्मण §जै0ब्रा0§	रघुवीर तथा लोकेश चन्द्र, 1954·
तैत्तिरीय आरण्यक §तै0आ0§	कृष्ण यजुर्वेदीय, बाबा शास्त्री फड्के, आनन्दाश्रम, पूना, 1898·
तैत्तिरीय प्रातिशाख्य §तै0प्रा0§	माहिषेय भाष्य, वेंकट राम शर्मा, विद्याभूषण, मद्रास, 1930·
तैत्तिरीय ब्राह्मण §तै0ब्रा0§	सायण भाष्य, राजेन्द्रलाल मित्र, कलकत्ता, 1862·
तैत्तिरीय संहिता §तै0सं0§	श्रीदामोदरपाद सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, सं0 2013·
दशरूपक §दश0§	धनंजय, §व्या0 डा0 भोलाशंकर व्यास§ चौखम्बा, वाराणसी, 1955·
देवी भागवत पुराण §दे0भा0पु0§	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई·
ध्वन्यालोक §ध्वा0§	आनन्दवर्धन, लोचन व बालप्रिया सहित, चौखम्बा, वाराणसी, 1940·
नागानन्द नाटक §नागा0§	हर्ष, §व्या0 बलदेव उपाध्याय§ चौखम्बा, वाराणसी, 1956·
नाटक चन्द्रिका §ना0च0§	रूप गोस्वामी, §व्या0 प्रो0 बाबूलाल शुक्ल शास्त्री§ चौखम्बा, वाराणसी, 1964·
नाटक लक्षण रत्नकोश §ना0ल0र0§	सागर नदी, §व्या0 .प्रो0 बाबूलाल शुक्ल§ चौखम्बा, वाराणसी, 1972·
नाट्य दर्पण §प्रथम भाग§	रामचन्द्र एवं गुणचन्द्र, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 1929
नाट्य शास्त्र §ना0शा0§	भरतमुनि, अभिनवभारती-सहित, ओरियण्टल सीरीज, आरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा·
निरूक्त §नि0§	लक्ष्मण स्वरूप, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1967·
पद्मपुराण §प0पु0§	आनन्दाश्रम ग्रंथमाला, पूना·
प्रबोध चन्द्रोदय §प्र0च0§	कृष्णमिश्र, व्या0 रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा, वाराणसी, 1955
प्रसन्न राघव	जयदेव विरचित, पाणिनी अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली·

पारस्करगृह्यसूत्र (पा0गृ0) — गोपाल शास्त्री, नेने, बनारस, 1926·

प्रियदर्शिका — हर्ष, चौखम्बा, वाराणसी, 1955·

ब्रह्म पुराण (ब्र0पु0) — आनन्दाश्रम, संस्कृत सीरीज, 1895·

ब्रह्मवैवर्त पुराण (ब्र0पु0) — कलकत्ता, 1888, जीवानंद भट्टाचार्य संशोधित·

ब्रह्माण्ड पुराण (ब्र0पु0) — वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई·

बृहद्देवता (बृह0) — शौनक, भाग 1-2, संपा0 ए0ए0 मैक्डानल, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1965·

भगवद्गीता (भग0) — शंकर भाष्य, गीता प्रेस, गोरखपुर सं0 2024·

भागवतपुराण (भा0पु0) — 1-2 खण्ड, गीता प्रेस, गोरखपुर सं0 2021·

भावप्रकाशन — शारदातनय, गायकवाड, ओरियन्टल सीरीज, सं0 45, बडौदा, 1930·

भासनाटक चक्र — भाग 1-2, संपा0 बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा, वाराणसी·

भविष्य पुराण (भ0पु0) — वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई·

मत्स्य पुराण (म0पु0) — आनन्दाश्रम, ग्रन्थमाला, पूना·

महानाटक — मधुसूदन मिश्र, व्या0 जीवानन्द विद्यासागर, तृतीय सं0 कलकत्ता, 1939·

महाभारत (म0भा0) — 1-4, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं0 2015·

महावीर चरित (म0च0) — भवभूति, संपा0 व व्या0 श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1955·

मनुस्मृति (मनु0) — कुल्लूक कृत टीका, काशी संस्कृत सीरीज पुस्तक माला, 114

मार्कण्डेय पुराण (मा0पु0) — आनन्दाश्रम, ग्रन्थमाला, पूना·

मालती माधव (मा0मा0) — भवभूति, संपा0 मंगेश रामकृष्ण तेलंग, निर्णय सागर प्रेस, 1936·

मालविकाग्नि मित्र — कालिदास, संपा0 सी0आर0 देवधर, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 1966·

मिताक्षरा (मिता0) — अन्नमभट्ट·

मुद्राराक्षस §मुद्रा0§ — विशाखदत्त, संपा0 व व्या0 डा0 सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा, वाराणसी, 1961·

मृच्छकटिक §मृच्छ§ — शूद्रक, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1950·

मैत्रायणी संहिता §मै0सं0§ — श्रीपाददामोदर सातवलेकर औन्ध, 1942·

यजुर्वेद §यजु0§ — श्रीपाददामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, 1957·

याज्ञवल्क्य संहिता §या0सं0§ — मनुमथनाथ दत्त कलकत्ता, 1980·

याज्ञवल्क्य स्मृति §या0सं0§ — अपरार्क टीका, आनन्दाश्रम, पूना, 1903·

रघुवंश §रघु0§ — कालिदास, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1956·

रामायण §वा0रा0§ — वाल्मीकि, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं0 2020·

वसिष्ठ ऋषि का दर्शन — ऋग्वेद का स0म0 तथा अथर्ववेद के मन्त्र, ले0 श्रीपाददामोदर सातवलेकर·

वायु पुराण §वा0पु0§ — आनन्दाश्रम, ग्रन्थमाला, पूना·

वामन पुराण §वा0पु0§ — वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई

वराह पुराण §व0पु0§ — बंगाल एसियाटिक सोसायटी, कलकत्ता·

विष्णु पुराण §वि0पु0§ — वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई

विष्णु धर्मोत्तर पुराण§वि0ध0पु0§ — वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई·

विक्रमोर्वशीय — कालिदास, संपा0 व व्या0 रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा, वाराणसी, 1963·

वेणी संहार §वे0सं0§ — भट्ट नारायण, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1940·

शतपथ ब्राह्मण §श0ब्रा0§ — माध्यन्दिन, बंशीधर शास्त्री, काशी·

शांखायन गृह्यसूत्र §शा0गृ0सू0§ — सीताराम सहगल, दिल्ली, 1960·

शुक्ल यजुर्वेदीय काण्व संहिता — सायण भाष्य, माधव शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, 1955·

श्वेताश्वतरोपनिषद्§श्वेता0§ — कल्याण उपनिषदङ्क, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1949·

स्कन्ध पुराण §स्क0§ — वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई·

साहित्य दर्पण §सा0द0§ — विश्वनाथ कविराज, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1936·

सामवेद (साम0) — श्रीपाददामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, 1939.

सिद्धान्त कौमुदी (सि0कौ0) — भट्टोदीक्षित, वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई, सं0 1936.

सुश्रुत संहिता (सु0सं0) — सुश्रुत कृत निर्णय सागर प्रेस, बम्बई

सौन्दरनन्द — अश्वघोष कृत, लाहौर, 1928.

हनुमन्नाटक — दामोदर मिश्र, चौखम्बा, वाराणसी, 1967.

हरिवंश पुराण (ह0पु0) — चित्रशाला प्रेस, पूना, 1936.

<u>(ब) हिन्दी ग्रन्थ</u>

धर्मशास्त्र का इतिहास — पी0बी0 काणे, अनु0 अर्जुन चौबे काश्यप, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ, (भाग 1-5)

पुराणगत वेद विषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन — डा0 रमाशंकर भट्टाचार्य, सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

पूर्व भारतेन्दु नाटक साहित्य — डा0 सोमनाथ गुप्त

भवभूति के नाटक — डा0 ब्रज वल्लभ शर्मा, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, प्र0सं0 1973.

भारतीय संस्कृति में ऋषियों का योगदान — डा0 जगत नाराण दूबे, दुर्गा पब्लिकेशन्स, दिल्ली 1989.

भारतीय संस्कृति और साधना — 1-2 खण्ड, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1963.

वैदिक वाड्.मय का इतिहास — वेदों के भाष्यकार, भगवद्दत्त तथा सत्यश्रवा, प्रणव प्रकाशन, नई दिल्ली, 1976. ब्राह्मण तथा आरण्यक भाग, भगवद्दत्त तथा सत्यश्रवा, वही.

वैदिक इन्डेक्स — डा0 मैकडानल, डा0 कीथ अनु0 डा0 राम कुमारराय.

वैदिक साहित्य और संस्कृति — पं0 बलदेव उपाध्याय, 1967.

रामचरित मानस — गोस्वामी तुलसीदास

संस्कृत नाटक — अनु0 डा0 उदयभानु सिंह, मोतीलाल बनारसीदास.

संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — ले0 श्री महेशचन्द्र प्रसाद (द्वितीय भाग) पटना, 1923.

संस्कृत कवि दर्शन — भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा, वाराणसी, 1961.

संस्कृत सुकवि समीक्षा	ले0 बलदेव उपाध्याय, काशी, सन् 1963·
हमारी नाट्य परम्परा	श्री कृष्ण दास·
हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन	डा0 वेदपाल खन्ना·
हिन्दी के पौराणिक नाटकों के मूल स्रोत	शशि प्रभा शास्त्री, प्रथम सं0 1973· राजकमल प्रकाशन, दिल्ली·
हिन्दी के पौराणिक नाटक	डा0 देवसानाढ्य
हिन्दी नाटक उद्भव व विकास	डा0 दशरथ ओझा
हिन्दी दशरूपक	चौखम्बा, वाराणसी, 1955·

{स} कोश ग्रन्थ :

चरित्र कोश	चतुर्वेदी· द्वारका प्रसाद शर्मा, संपा0 श्री नारायण चतुर्वेदी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,
पौराणिक कोश	राणाप्रसाद शर्मा, ज्ञानमण्डल लि0 वाराणसी, सं02028
प्राचीन चरित्र कोश	विनायक पं0 सिद्देश्वर शास्त्री चित्राव, भारतीय चरित्र कोश मण्डल, पूना 1964·
प्राचीन भारतीय संस्कृति कोश	{वैदिक काल से बारहवीं शताब्दी तक} डा0 हरदेव बाहरी, प्र0 सं0 1988, नई दिल्ली·
भारतीय मिथक कोश	डा0 उषा पुरी विद्यावाचस्पति, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली·
वैदिक कोश	राजवीर शास्त्री, आर्ष साहित्य, प्रचार ट्रस्ट, 1975·
वृहत् हिन्दी कोश	
संस्कृत हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे, नाग प्रकाशक, 11ए/यू0ए0 जवाहर नगर, दिल्ली, सं0 1988·
हिन्दी साहित्य कोश	संपा0 डा0 धीरेन्द्र वर्मा

{द} पत्र-पत्रिकाएँ :

आलोचना	नाटक विशेषांक, जुलाई, 1956·
नयी धारा	रंगमंच विशेषांक, अप्रैल, मई, 1952·

नागरी प्रचारणी पत्रिका	वाराणसी
संस्कृत साप्तहिक	फैजाबाद
संगमनी	इलाहाबाद॰
सागरिका §त्रैमासिकी§	संस्कृत परिषद्, सागर विश्वविद्यालय
सुरभारती	प्रयाग विश्वविद्यालय, संस्कृत परिषद् पत्रिका 1954-1956॰

§य§ ENGLISH BOOKS :

A.A. Mcdonnell	Vedic Index of Names and Subjects, Chukhamba Vidya Bhavan, 1962, Hindi translation by Ramkumar Rai.
P.B. Pargiter	Ancient Indian Historical Tradition-Motilal Banarasidas-1972॰
R.H. Dandekar	Vedic Religion and Mythology:Poona University, Poona, 1965.
V.C. Rahurkar	The word Rishi in the Veda:Bulletin of the Decan College Research Institute, Poona (Tarporawala Homo Vol.)
V.C. Rahurkar	The Priosts of the fire cult, vivek Publications, Aligarh.

-- ***-*** ***--***